द्वितीय खण्ड

तृतीय विभाग

सवैया (सुन्दर विलास) ३८१-६६२

(इति सवैया के अंगों की सूची)

चतुर्थ विभाग

साखी ६६३-८१८

(इति साखी के अंगों की सूची)।

पांचवां विभाग

पद (भजन) ८१९-९३८

(इति पदों की सूची) ।

छठा विभाग

फुटकर काव्य संग्रह

(इति फुटकर काव्य-संग्रह की सूची ।)

सवैया

(सुन्दर विलास)

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

अथ सवैया (सुन्दरविलास)

॥ अथ गुरुदेव को अंग (१) ॥

इन्दव

मौज करी गुरुदेव दया करि शब्द सुनाइ कह्यौ हरि नेरौ।
ज्यौं रवि कैं प्रगटयें निशि जात सु दूरि कियौ भ्रम भानि अंधेरौ॥
काइक वाइक मानस हू करि है गुरुदेव हि वंदन मेरौ।
सुन्दरदास कहै कर जोरि जु दादूदयाल कौ हूं नित चेरौ॥ १ ॥

❀ ग्रन्थकर्त्ता श्री सुन्दरदासजी ने इस ग्रन्थ का नाम "सवईया" (सवैया) ही रक्खा था ऐसा ही प्रतीत होता है। "सुन्दरविलास" यह नाम पीछे से किसी ने धरा, है इस पर और सवैया छन्द पर भूमिका और परिशिष्ट "छन्दतालिका" में विस्तार से लिख दिया है।

इन्दव छन्द—इसका दूसरा नाम मत्तगयन्द है—२३ अक्षर का—७ भगण+२ गुरु—११, १२ पर यति होती है। यह सवैया का प्रधान भेद है। जब आठ भगण= २४ अक्षर हो तो किरीट सवैया कहता है।

(१) मौज (फा०) लहर, आनन्द। हरि नेरौ=परमत्मा को अत्यन्त निकट वा पास बता दिया अर्थात् अपने भीतर ही। वा जीव अपना ही ईश्वर है। यह 'तत्वमसि' और 'अहम्ब्रह्मास्मि' के तात्पर्य का द्योतक पद है। भानि अन्धेरौ=भ्रम-रूपी अन्धकार को हटा कर। ज्ञान के प्रकाश से अज्ञानरूपी अन्धेरा नाश हो जाता है। काइक वाइक=कायिक, दण्डवत, प्रणाम। वाचिक या वचन द्वारा, स्तुति आदि

पूरण ब्रह्म विचार निरन्तर काम न क्रोध न लोभ न मोहै।
श्रोत्र त्वचा रसना अरु घ्राण सु देषि कछू कहुं नैंन न मोहै॥
ज्ञान स्वरूप अनूप निरूपण जास गिरा सुनि मोहन मोहै।
सुन्दरदास कहै कर जोरि जु-दादूदयाल हिं मोर नमो है॥ २॥
धीरजवंत अडिग जितेन्द्रिय निर्मल ज्ञान गह्यौ दृढ आदू।
शील संतोष क्षमा जिनकैं घट लागि रह्यौ सु अनाहद नादू॥
भेष न पक्ष निरन्तर लक्ष जु और नहीं कछु वाद विवादू।
ये सब लक्षन हैं जिन मांहि सु सुन्दर के उर है गुरु दादू॥ ३॥
भौ जल मैं बहि जात हुते जिनि काढि लिये अपने करि आदू।
और संदेह मिटाइ दियौ सब काननि टेरि सुनाइ कै नादू॥
पूरण ब्रह्म प्रकाश कियौ पुनि छूटि गयौ यह वाद-बिवादू।
ऐसी कृपा जु करी हम ऊपर सुन्दर के उर है गुरु दादू॥ ४॥

उच्चारण से। मानस=मन से वा अन्तःकरण में विचार द्वारा भावना से। वन्दन=प्रणाम। नित चेरौ=सदा सर्वदा ऐसे परम दयालु सच्चे गुरु का शिष्य रहना सौभाग्य है। सदा दास।

(२) मोहै=मोह (मोहादिक उनमें नहीं है)। नैंन न मोहै=श्रोत्रादि इन्द्रियों के विषय उनको मोहित नहीं कर सकते। जितेन्द्रिय। मोहन मोहै=अत्यन्त मनोहर मन को लुभानेवाली, वा मोह भी नीचा वा लज्जित हो जाता है, मोहादिक उस वाणी से नहीं रहते। नमो=नमस्कार।

(३) आदू=सनातन। अनाहद नादू=अनाहत नाद (योगवृत्ति में—ऊंकार स्वयम्भू शब्द। बिना आहत वा टक्कर के स्वयम् ही जो शब्द अन्दर आत्मा में होता है। यह योगीगम्य है।

(४) अपने करि आदू=अपने निज के कर लिये। गुरु ने शिष्य को साधन और उपदेश द्वारा आप जैसा आदू=ठेठ वैसा ही, कर लिया। "कीया आप समान"। वाद विवादू=द्वैतभाव, तर्कना, ऊहापोह।

कोउक गोरष कौं गुरु थापत कोउक दत्त दिगम्बर आदू।
कोउक कंथर कोउ भरथ्थर कोउ कबीर कोउ राषत नादू॥
कोउ कहै हरदास हमारै जु यौं करि ठानत वाद विवादू।
और तौ संत सबै सिर ऊपर सुन्दर कै उर है गुरु दादू॥ ५॥
कोउ बिभूति जटा नख धारि कहैं यह भेष हमारो हि आदू।
कोउक कांन फराइ फिरै पुनि कोउक सींग बजावत नादू॥
कोउक केश लुचाइ करै ब्रत कोउक जंगम कै शिव वादू।
ये सब भूलि परे जित ही तित सुन्दर कै उर है गुरु दादू॥ ६॥
जोगि कहैं गुरु जैन कहैं गुरु बोध कहैं गुरु जंगम मानैं।
भक्त कहैं गुरु न्यासी कहैं बनबासि कहैं गुरु और बपानैं॥
शेष कहैं गुरु सोफि कहैं गुरु याही तें सुन्दर होत हरानैं।
वाहु कहैं गुरु वाहु कहैं गुरु है गुरु सोइ सबै भ्रम भानैं॥ ७॥
सो गुरुदेव लिपै न छिपै कछु सत्व रजो तम ताप निवारी।
इंद्रिय देह मृपा करि जानत शीतलता समता उर धारी॥
व्यापक ब्रह्म बिचार अखंडित द्वैत उपाधि सबै जिनि टारी।
शब्द सुनाइ संदेह मिटावत "सुंदर वा गुरु की बलिहारी"॥ ८॥

---

(५) दत्त=दत्तात्रेय महामुनि। दिगम्बर=नग्न, नाथ। कंथर=महायोगी नवनाथों में से। भरथर=भर्तृहरि मत्स्येन्द्र का शिष्य। हरदास=हरिदास निरंजनी।

(६) कांन फराई=कानीफ के सम्प्रदाय में मुद्रा कानों में धारनेवाले योगी। केश लुचाइ=केश लुञ्चन जैन साधुओं में होता है। जङ्गम=योगियों की एक शाखा जो स्थिर नहीं रहते, भ्रमते हैं।

(७) बोध=बौद्ध लोग। न्यासी=संन्यासी, वा न्यास ध्यान करनेवाले। सोफि=सूफी, मुसल्मानों में भक्ति मिश्रित वेदान्ती।

(८) मृपा=असत्य, मिथ्या। शीतलता=शीतव्रत, धैर्यमय शान्ति। अक्रोधता। समता=सब को समान जानना। समदर्शीपना। व्यापक=सर्व में अन्त-

पूरण ब्रह्म बताइ दियौ जिनि 'एक अखण्डित व्यापक सारै।
रागरु दोष करैं अब कौन सौं जोइ है मूल सोई सब डारै॥
संशय शोक मिट्यौ मन कौ सब तत्व विचार कह्यौ निरधारै।
सुंदर शुद्ध किये मल धोइ "सुंदै गुरु कौ उर ध्यान हमारै" ॥ ९ ॥
ज्यौं कपरा दरजी गहि ब्यौंतत काष्ट हि कौं बढ़ई कसि आनैं।
कंचन कौं जु सुनार कसै पुनि लोह कौ घाट लुहार हि जानैं॥
पाहन कौं कसि लेत सिलावट पात्र कुम्हार कै हाथ निपानैं।
तैसैंहि शिष्य कसै गुरुदेव जु "सुंदरदास तबै मन मानैं" ॥ १० ॥

मनहर

शत्रु ही न मित्र कोऊ जाकै सब हैं समान
देह कौ ममत्व छाडें आतमा ही राम हैं।
और ऊ उपाधि जाकै कबहू न देपियत
सुखके समुद्र में रहत आठौं जाम हैं॥
ऋद्धि अरु सिद्धि जाकै हाथ जौरि आगे परी
सुंदर कहत ताकै सब ही गुलाम हैं।
अधिक प्रशंसा हम कैसैं करि कहि सकैं
"ऐसैं गुरुदेव कौं हमारे जु प्रनाम हैं" ॥ ११ ॥

र्यामी। अखण्डित=अखण्ड, पूर्ण, एकरस। द्वैत उपाधि=माया को सत्य मानना तथा जीव ब्रह्म को भिन्न स्वतन्त्र मानना द्वैत कहाता है। माया को मिथ्या मानना और जीव ब्रह्म को एक मानना अद्वैत कहाता है।

(९) संशय=सन्देह। जीव ब्रह्म है, वा भिन्न है, ईश्वर से माया उत्पन्न है वा स्वतन्त्र? ऐसे सन्देह। शोक=फिक्र करना कि जीव की कैसे मोक्ष होगी, दुःख की निवृत्ति क्यों कर हो सकै इत्यादि। मल=पाप, मल, विक्षेप, आवरण।

(१०) कसै=कसौटी पर लगा कर जाँचै वा ताव देकर साफ करै। निपानै=घड़ा जाय, बनै।

ज्ञान कौ प्रकाश जाकै अंधकार भयौ नाश
देह अभिमान जिनि तज्यौ जानि सार धी।
सोई सुख सागर उजागर वैरागर ज्यौं
जाकै वैन सुनत बिलात है विकार धी॥
अगम अगाध अति कोऊ नहिं जानै गति
आतमा कौ अनुभव अधिक अपार धी।
ऐसौ गुरुदेव बंदनीक तिहुं लोक माहिं
सुंदर बिराजमान शोभत उदार धी॥ १२॥

काहू सौं न रोष तोष काहू सौं न राग दोष
काहू सौं न वैरभाव काहू की न घात है।
काहू सौं न बक्वाद काहू सौं नहीं विषाद
काहू सौं न संग न तौ कोउ पक्षपात है॥
काहू सौं न दुष्ट वैन काहू सौं न लैन दैन
ब्रह्म कौ विचार कछु और न सुहात है।
सुन्दर कहत सोई ईशनि कौ महाईश
"सोई गुरुदेव जाकै दूसरी न बात है"॥ १३॥

---

(१२) सारधी=सारग्राही बुद्धि द्वारा। विवेक बल से। वैरागर=हीरा। हीरा मणि के समान उजागर=शुद्ध कान्तिधारी और प्रशस्त बहुमूल्य। बिलात=मिट जाय। विकार धी=कलुषता की बुद्धि, कुत्सित बुद्धि।

मनहर छन्द=इसको कवित्त वा घनाक्षरी भी कहते हैं। ३१ अक्षर का, १६+१५ पर विराम, अन्त में एक गुरु। ('सवैया' नाम के ग्रन्थ में यह छन्द आया सो कोई दोष नहीं क्योंकि ग्रन्थ में इन्दव से प्रारम्भ और उस ही सवैया की प्रधानता है। (देखिये भूमिका सवैया प्रकरण) (तथा परिशिष्ट "सवैया छन्द")।)

(१२) बन्दनीक=बन्दनीय, सेवायोग्य। उदार धी=सब पर कृपा की दृष्टि से सब पर परोपकार करने की बुद्धिवाला।

(१३) घात=हानि पहुचानेकी दाव-घात, वैरभाव। विषाद=क्लेश, मन का खिचाव।

लोह कौं ज्यौं पारस पषान हूं पलटि लेत
कंचन छुवत होइ जग में प्रवांनियें।
द्रुम कौं ज्यौं चन्दन हूं पलटि लगाइ वास
आपुके समान ताके शीतलता आनियें॥
कीट कौं ज्यौं भृङ्ग हू पलटि कै करत भृङ्ग
सोउ उड़ि जाइ ताकौ अचिरज मांनियें।
सुन्दर कहत यह सगरै प्रसिद्ध बात
"सद्य शिष्य पलटै सु सत्य गुरु जानिये" ॥ १४ ॥

गुरु विन ज्ञान नांहि गुरु विन ध्यान नांहि
गुरु विन आतमा विचार न लहतु है।
गुरु विन प्रेम नांहि गुरु विन प्रीति नांहि
गुरु विन शील हू संतोष न गहतु है॥
गुरु विन प्यास नांहि बुद्धि को प्रकाश नांहि
भ्रम हू को नाश नांहि संशय रहतु है।
गुरु विन बाट नांहि कौडा बिन हाट नांहि
सुंदर प्रगट लोक वेद यौं कहतु है॥ १५ ॥

---

(१४) पषान=पाषान, पत्थर। पलटि लेत=बदल कर सोना बना देता है। द्रुम=वृक्ष। भृङ्ग=कुम्हारी भौंरा जिसका ऐसा विश्वास है कि शब्द गुञ्जार से लटका भौंरा बनाता है। परन्तु यह बात मिथ्या है यह तो अण्डा गुआले में रख कर लट को उसमें घुसा कर मुंह बन्द कर देती है अण्डा पक कर फूट कर बच्चा निकल कर उस लट को खा-पी कर मिट्टी की पापड़ी को सिर से फोड़ कर बाहर निकल आता है।

(१५) बाट=रस्ता, मार्ग। कौडा बिन हाट=नाणा पास हुये विना दुकानदारी चल नहीं सकती, वैसे ही सच्चे ज्ञानोपदेश देनेवाले गुरु बिना मुक्ति नहीं हो सकती है। यह मुहाविरा है। "आचार्यवान् भव" (श्रुति)—"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देव महेश्वरः"—इत्यादि सहस्रों वचन हैं।

पढे के न बैठो पास आखिर न बांचि सकै
बिन हिं पढे तें कैसें आवत है फारसी।
जौहरी के मिले बिन परख न जाने कोइ
हाथ नग लियें फिरै संशै नहिं टारसी॥
वैदऊ मिल्यौ न कोऊ बूटी कौं बताइ देत
भेद बिनु पाये वाके औषध है छारसी।
सुंदर कहत मुख रंच हूं न देख्यौ जाइ
'गुरु बिन ज्ञान ज्यौं अंधेरे मांहि आरसी" ॥ १६ ॥

गुरु के प्रसाद बुद्धि उत्तम दशा कौं ग्रहै
गुरु के प्रसाद भव दुःख बिसराइये।
गुरु के प्रसाद प्रेम प्रीति हू अधिक बाढै
गुरु के प्रसाद राम नाम गुन गाइये॥
गुरु के प्रसाद सब योग की युगति जानें
गुरु के प्रसाद शून्य मैं समाधि लाइये।
सुन्दर कहत गुरुदेव जौ कृपालु होंहि
तिन के प्रसाद तत्त्व ज्ञान पुनि पाइये॥ १७ ॥

---

(१६) बैठौ=बैठा। पास बैठना=संगति करना। आखिर=अक्षर। अक्षर बांचना=पढ़ना। फारसी आवतन=फारसी भाषा प्राप्त नहीं हो सकती। अर्थात् अनजान पदार्थ का ज्ञान गुरु के बताने से ही आ सकता है। टारसी=कोई पुरुष (सन्देह) को नहीं मिटावैगा। बूटी=औषधि। छार सी=मिट्टी सी। वृथा। 'अन्धेरे में आरसी'—कितना उत्तम उदाहरण है। वही ज्ञान सार्थक और सिद्ध-शुद्ध है जो गुरु द्वारा मिलै। गुरु प्रकाश के समान है। ज्ञान दर्पण समान है।

(१७) प्रसाद=प्रसन्नता, कृपा। प्रेम प्रीति=भक्ति। युगति=युक्ति, साधन विधि। तिनके प्रसाद...—प्रसन्न हुए गुरु से—'जौ' का सम्बन्ध 'तिनके' से है, और दूसरा अर्थ तो भी हो सकेगा।

बूडत भौ सागर में आइकें बंधावै धीर
　　पारऊ लंघाइ देत नाव कौं ज्यौं पेवसौ।
पर उपकारी सब जीवनि के सारै काज
　　कबहूं न आवै जाके गुननि कौ छेव सौ॥
वचन सुनाइ भय भ्रम सब दूर करै
　　सुंदर दिपाइ देत अलष अभेव सौ।
औरऊ सनेही हम नीकै करि देषे सोधि
　　"जग मैं न कोऊ हितकारी गुरुदेव सौ"॥ १८॥

गुरु तात गुरु मात गुरु बंधु निज गात
　　गुरुदेव नख शिख सकल संवार्यौ है।
गुरु दिये दिव्य नैन गुरु दिये मुख बैन
　　गुरुदेव श्रवन दे शब्द हू उच्चार्यौ है॥
गुरु दिये हाथ पांव गुरु दियौ शीस भाव
　　गुरुदेव पिंड मांहि प्रान आइ डार्यौ है।
सुंदर कहत गुरुदेव जू कृपाल होइ
　　फेरि घाट घरि करि मोहि निसतार्यौ है॥ १६॥

कोऊ देत पुत्र धन कोऊ दल बल धन
　　कोऊ देत राज साज देव ऋषि मुन्यौ है।

---

(१८) लघाइ=तिरादै, पार उतार दे। पेवसौ=केवट की तरह। छेव=अन्त। भय=संसार का। भ्रम=संशय, अज्ञान। अलष=ईश्वर जो बुद्धि या इन्द्रियों से जाना नहीं जाय। अभेव=अभेद। अखण्ड। वा भेवता, जिसका भेद न जाना जा सके, गुप्त, गुह्य। (अनन्य अक्षर कवि का "अभेद एकादशा" इसकी व्याख्या करता है)।

(१९) नख शिख सवार्यो=इस मानव देह को सुफल कर दिया। दिव्यनैन=अज्ञान की धुन्ध मिट कर ज्ञान का प्रकाश होने से दिव्यदृष्टि हो गया। श्रवन दे=उपदेश के मर्म को समझने की आन्तरिक बुद्धि वा शक्ति देकर।

कोऊ देत जस मांन कोऊ देत रस आन
कोऊ देत विद्या ज्ञान जगत में गुन्यौ है ॥
कोऊ देत ऋद्धि सिद्धि कोऊ देत नव निद्धि
कोऊ देत और कछु तातें शीस धुन्यौ है ।
सुन्दर कहत एक दियौ जिनि राम नाम
गुरु सौ उदार कोउ देष्यौ है न सुन्यौ है ॥ २० ॥
भूमि हू की रेनु की तौ संख्या कोऊ कहत हैं
भार हू अठारा द्रुम तिन के जौ पात हैं ।
मेघनि की संख्या सोऊ ऋषिनि कही विचारि
बूंदनि की संख्या तेऊ आइ कैं बिलात हैं ॥
तारनि की संख्या सोऊ कही हैं पुरान मांहि
रोमनि की संख्या पुनि जितनेक गात हैं ।
सुन्दर जहां लौं जंत सब ही कौ होइ अन्त
"गुरु के अनंत गुन कापै कहे जात हैं" ॥ २१ ॥

---

(१९) हाथ पांव=ज्ञान के उच्च लोक में चढ़ने की शक्ति दी और सामग्री प्रदान की । धोरा भाव=मस्तिष्क में ईश्वर की भावना धारने की शक्ति दी । पिंड मांहि प्राण=गुरु के उपदेश से पूर्व अन्यथा ज्ञान के कारण मानो यह शरीर वा अंतःकरण निर्जीव ही था । सत्यज्ञान के संचार से सजीव सा हो उठा । फेरि घाट घरि करि=इस देह (वा अन्तःकरणादि के ग्राम) को मानों फिर से बना कर सुडौल और योग्य बनाया, जैसे द्विजों में द्विजन्मा बनाने का वैदिक विधान है उस ही प्रकार [illegible]

(२०) घन=घना, बहुत । मुन्यौ=मुनिगण । आन=आतङ्क, प्रभाव । गुन्यौ है= गुना गया, क्रिया द्वारा सिद्ध हुआ, गुणगान । शीस धुन्यौ=सिर हिलाया, अफसोस करना (कि गुरु होकर यह क्या हुआ) । रामनाम=परमात्मा का नाम जिससे बढ़ कर और कोई पदार्थ उभय लोक में नहीं । (२१) आइकै बिलात=आकाश से पड़ कर नष्ट हो जाती हैं तो भी बुद्धिमानों ने उनकी गणना कर ली है ।

गोविंद के किये जीव जात हैं रसातल कौं
गुरु उपदेशे सुतौ छूटैं जम फंदतें।
गोविन्द के किये जीव बस परे कर्मनि कैं
गुरु के निवाजे सो फिरत हैं स्वच्छंद तें॥
गोविंद के किये जीव बूड़त भौसागर मैं
सुन्दर कहत गुरु काढे दुख द्वंद तें।
और ऊ कहां लौं कछु मुख तें कहैं बनाइ
"गुरु की तौ महिमा अधिक है गोविन्द तें"॥ २२॥

चिंतामनि पारस कल्पतरु कामधेनु
और ऊ अनेक निधि वारि वारि नाषिये।
जोई कछु देषिये सु सकल विनाशवंत
बुद्धि मैं विचार करि यहु अभिलाषिये॥
तातें अब मन वच क्रम करि कर जोरि
सुन्दर कहत सीस मेलि दीन भाषिये।
बहुत प्रकार तीनो लोक सब सोधे हम
"ऐसी कौन भेंट गुरुदेव आगैं राषिये"॥ २३॥

---

(२२) अधिक गोविन्द तें="गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागों पाइ। बलिहारी गुरुदेव की सतगुर दिया मिलाइ।"—सुन्दरदासजी ने गुरु की महिमा गोविन्द से भी बढ़ा दी है।

(२३) यहु अभिलाषिये=यह उत्कृष्ट लालसा करें कि गुरु के लायक भेंट करने का कोई पदार्थ मिले। राषिये=धरिये, अर्पण कीजे।

(२४) दासभाव=भक्ति के अनेक भावों में से प्रभु के चरणों का चाकर (हनुमानजी की तरह) बना रहना दृढ़ता से। तैसे=उनके समान। अर्थात् प्रसिद्ध भगवद्भक्तों के समान जो ... चवान महात्मा।

महादेव वामदेव ऋषभ कपिलदेव
व्यासदेव शुक हू जैदेव नामदेव जू।
रामानन्द सुपानन्द कहिये अनंतानन्द
सुरसुरानन्द हू के आनन्द अछेव जू॥
रैदास कबीरदास सोझादास पीपादास
धनादास हू के दासभाव ही की टेव जू।
सुन्दर सकल संत प्रगट जगत माहिं
तैसें गुरु दादूदास लागे हरि सेव जू॥ २४॥

गुरुदेव सर्वोपरि अधिक विराजमान
गुरुदेव सब ही तें अधिक गरिष्ट हैं।
गुरुदेव दत्तात्रय नारद शुकादि मुनि
गुरुदेव ज्ञान घन प्रगट वशिष्ट हैं॥
गुरुदेव परम आनन्दमय देषियत
गुरदेव वर वरियान हू वरिष्ट हैं।
सुन्दर कहत कछु महिमा कही न जाइ
ऐसौ गुरुदेव दादू मेरे सिर इष्ट हैं॥ २५॥

योगी जैन जगम संन्यासी बनवासी बौध
और कोऊ भेष पक्ष सब भ्रम भान्यौं है।

---

(२५) वरिष्ट=(जैसे गुरु, गरियान, गरिष्ट वैसे) अत्यन्त श्रेष्ठ।

(२६) भ्रम भान्यौं=उन मतों में जो भ्रम वा असत्य बातें थी उनको मिटा दिया। मत=मत, शास्त्र, चास्तविक पक्ष। कबिसुर —मूल पुस्तकमें कबिसुर, मुनिसुर, कविसुर, पाठ है। परन्तु लय' और शुद्धताके कारण यह पाठ किया गया है। यद्यपि छंद उसही पाठ से ठीक था—"तापस ऋ—पिसुरसु—निसुर क – विसुर ऊ" ॥ छंद-भग दोनों ही तरह नहीं है, कि अक्षर वे ही १६ वर्ने रहते हैं। शुद्ध शब्द हैं—ऋषीश्वर, मुनीश्वर, कवीश्वर। ऊ=भी (जैसे 'तेऊ' में)

तापस ऋषीसुर मुनीसुर कवीसुर ऊ
सबनि को मत देषि तत पहिचान्यौं है ॥
वेदसार मंत्रसार स्मृतिऽ पुरान सार
ग्रन्थनि को सार सोई हृदै माँहि आन्यौं है।
सुन्दर कहत कछु महिमा कही न जाइ
ऐसौ गुरुदेव दादू मेरे मन मान्यौं है ॥ २६ ॥
जीते हैं जु काम क्रोध लोभ मोह दूरि किये
और सब गुननि कौ मद जिन भान्यौं है।
उपजै न कोउ ताप शीतल सुभाव जाकौ
सब ही मैं समता संतोष उर आन्यौं है ॥
काहू सौं न राग दोष देत सब ही कौं पोष
जीवत ही पायौ मोष एक ब्रह्म जान्यौं है।

---

(२६)...—वेदसार=वेदोंका सार, वेदांत (उपनिषद आदि)। मंत्रशास्त्रों का सार=तंत्र=आत्मबल की वृद्धि और मंत्र द्वारा अनुष्ठान से व्यवहारिक और पारमार्थिक सिद्धि की प्राप्ति का विधान। स्मृति=धर्मशास्त्र, व्यवहारिक और परमार्थिक कर्मों की विधियोंका ऋषियों द्वारा प्रतिपादन किया विधान संग्रह। पुराण=पांच लक्षणों वाला सृष्टि आदि का वर्णन व प्राचीन कथाओं का अनुक्रम इत्यादि का संग्रह। ग्रथनि=अन्य ग्रन्थ अन्य विद्याओं के (षट्शास्त्र, साहित्य, व्याकरण, कोष, काव्य इत्यादि शिल्प आदि के)।—एक आत्मा के अपरोक्ष, अनुभव से दिव्य दृष्टि हो जाती है तब सब जगत् और विद्याएं हस्तामलक हो जाती है। इस ही को "अनुभव फुरना" कहते हैं। यही सिद्धि कहाती है जिससे बड़े २ चमत्कार प्रगट हो जाते हैं। आत्मा का बड़ा भारी लोक, आत्मा की बड़ी भारी ताकत और आत्मा का बड़ा-भारी खजाना है। वह अपार और अटूट है।

सुन्दर कहत कछु महिमा कही न जाइ
ऐसौ गुरुदेव दादू मेरे मन मान्यौं है ॥ २७ ॥
॥ इति उपदेश गुरुदेवकौ अंग ॥ १ ॥

॥ अथ उपदेश चितावनी को अंग (२) ॥

हसाल छन्द

(राम हरि राम हरि बोल सुवा)।

तौ सही चतुर तू जान परवीन अति परै जिनि पंजरै मोह कूवा।
पाइ उत्तम जनम लाइ लै चपल मन गाइ गोविंद गुन जीति जूवा॥
आपु ही आपु अज्ञान नलनी बंध्यौ बिना प्रभु विमुख कै बार मूवा।
दास सुन्दर कहै परम पद तौ लहै "राम हरि राम हरि बोलि सूवा" ॥१॥
नफ्स सैतान कौं आपुनी कैद करि क्यां दुनी मैं परचा पाइ गोता।
है गुनहगार भी गुनह हीं करत है पाइगा मार तब फिरै रोता॥
जिनि तुम्है पाक सौं अजब पैदा किया तू उसै क्यौं फरामोस होता।
दास सुन्दर कहै सरम तबही रहै "हक्क तू हक्क तू बोलि तोता" ॥ २ ॥
आबकी बुन्द औजूद पैदा किया नैन मुख नासिका करि संजूती।
ख्याल ऐसा करै उही लीये फिरै जागिकै देपि क्या करै सूती॥

---

(२७) मद भान्यौ—जौ गुणों का मिथ्या अभिमान करते थे उनका गर्व गंजन किया। जीवतही पायौ मोष=जीवन्मुक्त हो गये। दादूजी और उनके शिष्यों का जीवन्मुक्ति का सिद्धांत था।

(उपदेश चितावनी) — हसाल छंद—३७ मात्राका छन्द जिसमें २० और १७ मात्रा पर विराम हो तथा अंत में यगण (।ऽऽ) हो। इसमें और कड़खा छन्द में इतना ही भेद है कि कड़खा में ८, १२, ८,९ पर बिराम होता है, (१) पंजरै=पिंजरे में। लाइ लै=पकड़ ले। जीति जूवा माया जाल का जूवा खेलमें जीतनेवाले। नलनी=नली जिसको तोता पकड़े रहता है। कै वार मूवा=जन्म मरण पा चुका।

भूलि उस पसम कौं काम तें क्या किया वेगि दे यादि करि मरि निपूती ।
दास सुन्दर कहै सर्व सुख तौ लहै "भी तुही भी तुही बोलि तूती" ॥ ३ ॥
अवल उस्ताद के कदम की पाक हो हिरस बुगुजार सब छोडि फैंना ।
यार दिलदार दिल मांहि तू याद कर है तुम्हीं पास तू देपि नैंना ॥
जांन का जांन हैं जिंदका जिंद है सपुनका सपुन कछू संमुझि सैंना ।
दास सुन्दर कहै सकल घट मैं रहै "एक तू एक तू बोलि मैंना" ॥ ४ ॥

मनहर

कांन के गये तें कहा कांन ऐसौ होत मूढ
नैंन के गये तें कहा नैंन ऐसे पाइहै ।
नासिका गये तें कहा नासिका सुगन्ध लेत
मुख के गये तें कहा मुख ऐसे गाइहै ॥
हाथ के गये तें कहा हाथ ऐसौ काम होत
पांव के गये तें ऐसै पांव कत धाइहै ।
याही तें विचार देपि सुन्दर कहत तोहि
देह के गये तें ऐसी देह नहीं आइहै ॥ ५ ॥
बार बार कह्यौ तोहि सावधांन क्यों न होहि
ममता की मोट सिर काहे कौं धरतु है ।
मेरौ धन मेरौ धाम मेरे सुत मेरी बांम
मेरे पशु मेरो ग्राम भूलौ यों फिरतु है ॥

---

(३) वेगि दै=शीघ्र ।

(४) हिरस बुगुजार=कामना को छोड दे (फा०) । फैंना । छल कपट । तुम्हीं पास=तेरे अंदरही । नैंना=ज्ञान चक्षु से । जान का जान=जीव का भी परम तत्व जीव-परमात्मा । जिंदका जिंद=जीवन का भी आदि कारण-परात्पर । सखुन का सखुन=सर्व उपदेशों का आदि कारण-महावाक्यों का परम तत्त्व । सैंना=गुरु की समझौती, इशारा । आत्मा के बारीक मर्म और रम्ज का भेद समझने के लिये प्रवचन

तूं तौ भयौ बावरौ विकाइ गई बुद्धि तेरी
ऐसौ अन्धकूप गृह तामें तू परतु है।
सुन्दर कहत तोहि नेक हूं न आवै लाज
काज कौ बिगारि कै अकाज क्यौं करतु है॥ ६॥
तेरैं तौ कुपेच पर्यौ गांठि अति घुरि गई
ब्रह्मा आइ छोरैं क्यौं ही छूटत न जबहू।
तेल सौं भिजोइ करि चीथरा लपेट राषै
कूकर की पूंछ सूधी होइ नहीं तबहू॥
सासू देत सीष बहू कीरी कौं गनत जाइ
कहत कहत दिन बीत गयौ सबहू।
सुन्दर अज्ञान ऐसौ छाड्यौ नहिं अभिमान
निकसत प्रान लग चेत्यौ नहिं कबहू॥ ७॥
बालू मांहि तेल नहिं निकसत काहू विधि
पाथर न भीजै बहु बरषत घन है।
पानी के मथे तें कहूं घीव नहिं पाइयत
कूकस कै कूटे नहिं निकसत कन है॥
शून्य कूं मूठी भरे तें हाथ न परत कछु
ऊसर के बाहें कहा उपजत अन है।

और विवाह की आवश्यकता नहीं। कहने सुनने से क्या प्रयोजन। वहां तो ज्ञान का इशारा गुरु का आत्मा से शिष्य की आत्मा में ज्ञान सचार कर देता है। सोवा, तोता, तूती और मैना यह प्यारा जीव है जो काया पिंजरे में रहता है।

(६) विकाइ गई बुद्धि=विषयादि हीन-मूल्य पदार्थों में यह बुद्धि-हीरा वृथा खोया गया।

(७) कीरी कौं गनत=कीड़ी समान गानैं। निरादर करै।

उपदेश औषध कवन विधि लागै ताहि
सुन्दर असाध्य रोग भयौ जाकै मन है ॥ ८ ॥

वैरी घर माँहि तेरे जानत सनेही मेरे
दारा सुत वित्त तेरौ पोसि पोसि पाहिंगे।
और ऊ कुटुंब लोग लूटैं चहुं वोरही तें
मीठी मीठी बात कहि तोसौं लपटाहिंगे॥
संकट परैगौ जब कोऊ नहिं तेरौ तब
अतिहि कठिन बांकी बेर बुटि जाहिंगे।
सुन्दर कहत तातें झूठौ ही प्रपंच यह
सुपनै की नाहिं सब देषत बिलाहिंगे॥ ६ ॥

बारू के मंदिर माँहि बैठि रह्यो थिर होइ
राषत है जीवने की आसा केऊ दिन की।
पल पल छीजत घटत जात घरी घरी
बिनसत बार कहा षबरि न छिन की॥
करत उपाइ झूंठे लैन दैन षांन पांन
मूसा इत उत फिरै ताकि रही मिनकी।
सुन्दर कहत मेरी मेरी करि भूलौ शठ
"चञ्चल चपल माया भई किन किन की" ॥ १० ॥

---

(८) कूकस=थोथा घास। ऊसर=नहीं उपजाऊ भूमि। मन का पाठांतर तन भी है। परंतु मन शब्द से अर्थ का गौरव होता है।

(९) सनेही=प्रेम करने वाले, मित्र। जानत=तू यह जानता है कि ये (मेरे सनेही हैं ?) कठिन बांकी बैर बुटि=संकट और टेढे मेढे अवसर आने पर पूठ फेर जायगे। पाठांतर "कठिनता की बेर उठि"।

(१०) मिनकी=बिल्ली (काल, मृत्यु)। मूसा=चूहा (जीवात्मा, शरीरधारी प्राणी)। भई किन किन की=किसी की भी नहीं हुई।

श्रवनूं लै जाइ करि नाद की लै डारे पासि
नैंनवा लै जाइ करि रूप वसि करयौ है।
नथुवा लै जाइ करि बहुत सुंघावै फूल
रसनूं लैजाइ करि स्वाद मन हरयौ है॥
चरनूं लै जाइ करि नारी सौं सपर्श करै
सुन्दर कोउक साध ठगनि तैं डरयौ है।
कांम ठग क्रोध ठग लोभ ठग मोह ठग
"ठगनि की नगरी मैं जीव आइ परयौ है"॥ ११॥

पायौ है मनुष देह औसर बन्यौ है आइ
ऐसी देह बार बार कहौ कहां पाइये।
भूलत है बावरे तू अबकै सयानौ होइ
रतन अमोल यह काहे कौं ठगाइये॥
समुझि बिचार करि ठगनि कौ संग त्यागि
ठगाबाजी देष कहुं मन न डुलाइये।
सुन्दर कहत तोहि अब सावधान होइ
"हरि को भजन करि हरि मैं समाइये"॥ १२॥

घरी घरी घटत छीजत जात छिन छिन
भीजत ही गरि जात माटी कौ सौ ढेल है।
मुक्ति हूं कै द्वारै आइ सावधान क्यौं न होहि
बार बार चढत न त्रिया कौ सौ तेल है॥
करि लै सुकृत हरि भजन अखंड उर
याही मैं अंतर परै या मैं ब्रह्म मेल है।

---

(११) श्रवनूं=कान (इंद्रिय) ऐसे नाम देकर पुरुषवभाव दिया है। नथुवा=नाक। =जीभ, कोउक साध=कई विशेष साधनसे सावधान जितेंद्रिय महापुरुष महात्मा।
(१२) ठगाबाजी=ठगी, ठग विद्या। सयानौ=सयाना, सावधान समझदार।

मनुष जनम यह जीति भावै हारि अब
सुन्दर कहत यामैं जुवा कौ सौ खेल है ॥ १३ ॥

जोबन कौ गयौ राज और सब भयौ साज
आपुनि दुहाई फेरि दमामौ बजायौ है।
लकुटी हथ्यार लिये नैननि कौ ढाल दीये
सेत बार भये ताकौ तंबू सौ तनायौ है ॥
दसन गये सु मानौ दरबान दूरि कीये
जौंगरी परी सु और बिछौना बिछायौ है।
सीस कर कंपत सु सुन्दर निकार्‌यौ रिपु
"देषत ही देषत बुढापौ दौरि आयौ है" ॥ १४ ॥

इन्दव

षींच तुचा कटि है लटकी कचकू पलटे अजहूं रत वांमी।
दंत भया मुख के उपर नपर न गये सुपरी पर कांमी ॥

---

(१३) तिया कौ सौ तेल हैं=स्त्री के विवाह में कुमारी के, तेल जो चढाया जाता है, तब ही चढ़ता है दुबारा नहीं चढ़ता है, वैसे ही नरदेह बार २ नहीं मिलती। "तिरिया तेल हमीर हठ चढै न दूजी बार"। याही में=इस देह ही में-परमात्मा से दूर रह जाय और इस ही में उस की प्राप्ति हो जाय यह कर्म्म, ज्ञानके आधीन हैं।

(१४) गयौ राज=दौर खतम हो गया। और सब भयो साज=रंग-ढंग बदल गये, अवस्था और ही हो गई। दमामा बजायौ=नकारा बजा चुका, जो कुछ करना था कर चुका। ढाल दीये=अंधा हो गया यही मानों आंखों पर ढकनी ही ढाल दो गई। तंबू सो तनायौ है=कूच की मंजिल पर डेरा डाल दिया, चलने की निशानी है। जौंगरी=शरीर की खाल ढीली होकर सिमट गई। बिछौना=विश्राम लेने का निशान है, अंत समय की सामग्री है, यह यौवन की समय की सेज नहीं है। निकार्‌यौ रिपु=काम क्रोधादि शरीरस्थ महान् रिपुओंने मार पीट कर राज्य छीन कर देश बाहर कर दिया। उनके डरसे कांपता है मानों।

कंपति देह सनेह सु दंपति संपति जंपति है निश जामी।
सुन्दर अंतहु भौन तज्यौ न भज्यौ भगवंत सु लौन हरांमी ॥१५॥
देह घटी पग भूमि मडै नहिं औ लठिया पुनि हाथ लईजू।
आंषिहु नाक परै मुख तैं जल सीस हलै कटि ग्रीव नईजू॥
ईश्वर कौं कबहूं न संभारत दुःख परै तब आहि दईजू।
सुन्दर तौहु विषै सुख वंछत 'धौरे गये पै बगैं न गईजू' ॥ १६ ॥
पाई अमोलिक देह इहै नर क्यौं न विचार करै दिल अन्दर।
काम हु क्रोध हु लोभ हु मोह हु लूटत हैं दस हूं दिसि द्वन्दर॥
तू अब वंछत है सुरलोकहि कालहु पाइ परै सु पुरंदर।
छाडि कुबुद्धि सुबुद्धि हृदै धरि 'आतम राम भजै किन सुन्दर' ॥१७॥
इंद्रिनि के सुख मांनत है शठ याहित तें बहुते दुख पावै।
ज्यौं जल मैं झष मांस हि लीलत स्वाद बंध्यौ जल बाहरि आवै॥

---

(१५) ग्रीव=गरदन । तुचा=त्वचा, खाल। कटि=कमर। कच=सिरके बाल। रतवामी=वामरत, स्त्री का प्रेमी। हत भया=हे भइया—तेरे। दांत अथवा दांत जो जन्म भर बहे, अर्थात् खाते चाबते रहे सो। नषरे=नखरे, मिजाजीपन, हाव-भाव नजाकत। खुवरी=असली, सचमुच, पक्का (खरा) षर=खर, गधा (गधेके समान कामी) दंपति=स्त्री पुरुषों का बुड्ढा हो जाने पर भी प्रेम हैं। जपति=(धन दौलत का ही) स्मरण करता है, जिक्र होता है। बोलता है। निसजामी=यहां रात दिन, दिन दिन प्रति। अथवा सुखभोग में रात्रि एक (याम) पहर सी बीतती है। लौन हरामी=नमक हरामी स्वामी-विमुख। ईश्वर को कृतज्ञता न अर्पण करने वाला।

(१६) नईं=झुकी। आहि दई=हाय भगवान! (पुकारना) बगैं=पशुओं पर एक दुष्ट मक्खी (मुहावरा है)।

(१७) द्वंद्वर=विषयादिक। परै सु पुरन्दर=इंद्र भी गिरै, नाशै। (इसमें "किरीट" सवैया है)।

ज्यौं कपि मूठि न छाडत है रसना बसि बंदि परयौ बिललावै।
सुन्दर क्यों पहिलें न संभारत 'जौ गुर खाइ सु कांन बिंधावै' ॥१८॥

कौंन कुबुद्धि भई घट अंतर तूं अपनौ प्रभु सौं मन चोरै।
भूलि गयौ बिषया सुख मैं सठ लालच लागि रह्यौ अति थोरै॥
ज्यौं कोउ कंचन छार मिलावत लै करि पाथर सौं नग फोरै।
सुन्दर या नर देह अमोलिक 'तीर लगी नवका कत बोरै' ॥१९॥

देषत के नर सोभित हैं जैसें आहि अनूपम केरि कौ थंभा।
भीतरि तौ कछु सार नहीं पुनि ऊपर छीलक अंबर दंभा॥
बोलत हैं परि नाहिं कछू सुधि ज्यौं बबयारि तें बाजत कुंभा।
रूसि रहैं कपि ज्यौं छिन मांहि सु याहि तें सुन्दर होत अचंभा॥२०॥

देषत के नर दीसत हैं परि लक्षन तौ पसुके सब ही हैं।
बोलत चालत पीवत षात सु वै घरि वै बन जात सही हैं॥
प्रात गये रजनी फिरि आवत सुन्दर यौं नित भार वही हैं।
और तौ लक्षन आइ मिलै सब एक कमी सिर शृंग नहीं हैं॥२१॥

प्रेत भयौ कि पिशाच भयौ कि निशाचर सौ जित ही तित डोलै।
तूं अपनी सुधि भूलि गयौ मुख तें कछु और की औरई बोलै॥
सोइ उपाइ करै जु मरै पचि बंधन तौ कबहूं नहिं षोलै।
सुन्दर जा तन मैं हरि पावत सो तन नाश कियौ मति भौलै॥२२॥

---

(१८) गुर=गुड़ (मुहाविरा है)।

(१९) कत=क्यों, किस लिये।

(२०) अंबर दंभा=ढोंग का वेश। बबयारि=मुंहकी फूंक (घड़े में बोलने से)।

(२१) भारवही=भार वाहने वाला, पशु। "यथा खरश्चन्दन भारवाही"।

(२२) मरै=अज्ञानवश ऐसे उपाय (काम) करता है जिन से उल्टा मरता है—दुर्गति को पाता है। भौलै=भूलकर भी।

पेट तें बाहिर होतहि बालक आइकैं मात पयोधर पीनौं।
मोह बढ्यौ दिन ही दिन और तरुन्न भयौ त्रिय कै रस भीनौं॥
पुत्र पउत्र बंध्यौ परवार सु ऐसि हि भांति गये पन तीनौं।
सुन्दर राम कौ नाम बिसारिसु आपुहि आपुकौ बंधन कीनौं॥२३॥
मात पिता सुत भाई बंध्यौ जुवती कै कहैं फ्हा कान करै हैं॥
चौरी करै बटपारी करै किरषी बनजी करि पेट भरै हैं॥
शीत सहै सिर घांम सहै कहि सुन्दर सो रन मांहि मरै हैं।
बांधि रह्यौ ममता सबसौं नर ताहि तें बांध्यौइ बांध्यौ फिरै हैं॥२४॥
तू ठगि कै धन और कौ ल्यावत तेरेउ तौ घर औरइ फोरै।
आगि लगै सबही जरि जाइ सु तू दमरी दमरी करि जोरै॥
हाकिम कौ डर नांहि न सूझत सुन्दर एक हि बार निचौरै।
तूं परचै नहि आपु न पाइ सु तेरी हि चातुरि तोहि ले बौरै॥२५॥

मनहर

करत प्रपंच इनि पंचनि कै बसि पर्‌यौ।
परदारा रत भै न आनत बुराई कौ।
पर धन हरै पर जीव की करत घात
मद्य मांस पाइ लव लेश न भलाई कौ॥
होइगो हिसाब तब मुखतें न आवै ज्वाब।
सुन्दर कहत लेखा लेत राई राई कौ॥

---

(२३) पयोधर=स्तन, चोगा। पीनौं=पीया, पान किया। पन तीनौं=तीन अवस्थाएं-बालपन, जवानी, बुढापा।

(२४) किरषी=कृषी, खेती। बांध्यौ=बंधा हुआ। (ममता, मायाजाल से लिप्त) बंधन में पड़ा है, फंसा हुआ है।

(२५) एकहि बार निचौरै=(हाकिम लोग) मुकद्दमों में बड़ी घूस लेकर बटोरे धन को सूत लेते हैं। डुबौरै=चावै।

इहां न किये विलास जम को न तोहि त्रास,
उहां तौ न ह्वै है कछु राज पोपांबाई को ॥ २६ ॥

दुनियो कौ दौडता है औरति कौ लोडता है,
औजूद कौ मोडता है बटोही सराइ का।
मुरगी कौं मोसना है बकरी को रोसता है
गरीबौं कौं पोसता है बेमिहर गाइ का ॥
जुल्म कौं करता है धनी सौं न डरता है
दोगज कौं भरता है षजाना बलाइ का।
होइगा हिसाब तब आवैगा न ज्वाब कछु
सुन्दर कहत गुन्हेगार है षुदाइ का ॥ २७

कर करि आयो जब पर पर काट्यौ नार
भर भर बाज्यौ ढोल घर घर जान्यौ है।
दर दर दौर्‌यो जाइ नर नर आगै दीन
घर घर बकत न नेक अलसान्यौ है ॥

---

(२६) भै=भय, डर। उहां=ईश्वर के घर। पोपाबाई=प्रसिद्ध पोलका "टके सेर भाजी टके सेर खाजा।" 'सब धान बाईस पसेरी'। यह कुम्हार लड़की लड़ेले के राजा के यहां प्रधान हो गई थी सो उसने ऐसा राज्य जमाया आप ही फांसी लटकी थी।

(२७) लोडता है=लड़ता है या लाड करता है। बटोही=राहगीर मुसाफिर। यह ससार सराय है। थोड़ी देर ठहरने का स्थान है। मोसता है=उसकी गर्दन मरोड़ कर मार डालता है। हिंसा करता है। रोसता है=रोस (क्रोध) करके मारता है, जिबह करता है, काटता है। (यह अप्रशस्त शब्द है) रौंधना का रूपान्तर हो सकता है। बेमिहर=निर्दयी (गाय के वास्ते) यह मुसलमानों के प्रति कहा गया है।

सर सर साधै धन तर तर तोरै पात
जर जर काटत अधिक मोद मान्यौ है।
फर फर फूल्यौ फिरै डर डरपै न मूढ
हर हर हंसत न सुन्दर सकान्यौ है ॥ २८ ॥*

जनम सिरानौ जाइ भजन विमुख शठ
काहे कौं भवन कूप विन मीच मरिहैं।
गहित अविद्या जानि शुक नलिनी ज्यौं मूढ
करम विकरम करत नहिं डरिहै ॥
आपु ही तैं जात अंध नरकनि धार धार
अजहुं न शंक मन मांहि अब करिहै।
दुःख कौ समूह अवलोकिकैं न त्रास होइ
सुन्दर कहत नर नागपासि परिहै ॥ २९ ॥*

---

*ऐसा चिन्ह जिन छन्दों के अंत में लगा है, वे चित्रकाव्य हैं। देखो चित्रकाव्यों के चित्रों को तथा सूची को।

(२७) दोजग=दोजख, (फारसी) नरक। खजाना बलाइ का=बलाओं (दोषों, पापों) का भंडार बनता है।

(२८) यह चित्रकाव्य है, देखो सूची और चित्रों में। कर कर=पूर्वजन्म के कर्म करके यहां आया, जन्मा। घर घर=घरड़ घरड़ भोंटे ओजार वा फरसे से रगड़ कर। नार=नाल (नाला नाभिका बच्चे का) भर भर=भड़ भड़ शब्द होकर। दर दर=दरवाजे दरवाजे। प्रत्येक मनुष्य के आगे। बर बर=बड़ बड़, बहुत बाचाल। अलसान्यौ=मुरझाया, थका, वा आलस्य किया। सर सर=सरड़ सड़ सूंत कर लावै। वा आहिस्ता होले होले लावै। तर तर=तरु तरु प्रत्येक वृक्ष के, अर्थात् जहां २ मिले वहीं से धन बटोरै। जर जर=जरड़ जरड़ शब्द के साथ। मूल काटै। वा अन्य पुरुषों की जड़ काट अपना स्वार्थ करै। डर डरपै=भय के पदार्थ वा काल से भी। हर हर=हड़ हड़ शब्द से, जोर से।

(२९) यह भी चित्रकाव्य है। सिरानौ=बीता। गहित=गृहीत, पकड़

जग मग पग तजि सजि भजि राम नाम
काम को न तन मन घेरि घेरि मारिये।
मूंठ मूठ हठ त्यागि जागि भागि सुनि पुनि
गुनि ज्ञान आन आन वारि वारि डारिये॥
गहि ताहि जाहि शेष ईस सीस सुर नर
और वात हेत तात फेरि फेरि जारिये।
सुन्दर दरद पोइ धोइ धोइ बार बार
सार संग रंग अग हेरि हेरि धारिये॥ ३०॥*
झूठो जग एन सुन नित्य गुरु वैन वैपै
आपुने हू नैंन तोऊ अंध रहे ज्वानी मैं।

हुआ। जानि=जान बूझकर, वा तू जान ले। विकरम=विकर्म, बुरे काम। पप!, अज हू और अब-दोनों शब्द-मिलकर अर्थ का बल बढ़ाते हैं। अर्थात् शीघ्र, अब देर न कर। नागपाश=एक प्रकार की तांत्रिक पाश व फंदा जिसमें प्रबल शत्रु को बांध लेते हैं। सुन्दरदासजी ने नागबंध चित्रकाव्य रचा है और नागपाश ही नाम दिया है। यह संसार भी नागपाश की तरह भयानक दृढ़ बंधन है, बिना प्रबल उपाय के छूट वा टूट नहीं सकता है।

(३० चित्रकाव्य) जगमग=जगत के मार्ग में। पग तजि=पग धरना, जाना छोड़, अर्थात् संसार त्याग दे। सजि=रंगो सामग्री कर। तन=शरीर (यदि भजन नहीं हुआ इससे तो) काम का नहीं। घेरि २—जिधर मन दुले उधर से पकड़ कर लावै। मूंठ मूंठ=मिथ्या माया में लगने की धृष्टता मत कर। सुनि=श्रवण कर। गुनि=मनन कर। ज्ञान आन=निदिध्यासन कर। आन=ज्ञान से अन्य पृथक अज्ञान। मिथ्या=अविद्या। वारि वारि डारिये=निछावर करके त्यजिये। गहि=ग्रहण कर। शेष=उस माया और गुण से अतिरिक्त ब्रह्म को जो देव और मनुष्यों का ईश्वर है उसे शिर पर धरो। वात हेत=माया में लगाव। फेरि २=बारंबार। जारिये=जला दीजे। मिटा दीजे।

केते राव राजा रंक भये रहे चलि गये,
मिलि गये धूर मांही आये ते कहानी मैं।
सुन्दर कहत अब ताहि न सुरत आवै,
चेतै क्यों न मूढ चित लाय हिरदानी मैं।
भूले जन दाव जात लोह को सो ताव जात,
आप जात ऐसे जैसें नाव जात पानी मैं॥ ३१ ॥*

इमिला

हठ योग धरै तन जात भिया हरि नाम विना मुख धूरि परै।
शठ सोग हरै छन गात किया चरि चांम दिता भुप पूरि जरै॥
भठ भोग परै गन पात धिया अरि काम किना सुख भूरि मरै।
मठ रोग करै घन घात हिया परि राम तिना दुख दूरि करै॥ ३२ ॥५

इस२ रे अग मैं मूल पुस्तक फतहपुरवाली (क) में जो छन्द १२ वां है वही अन्त में दो वारा लिखा हुआ था सो छोड़ दिया गया। और यह ३१ वां छद उस (क) पुस्तक में इस अंग में नहीं है, इससे लिखा गया।

(३१) एन=खास, तत्वतः वा, जमाना। देखै=अपने स्थूल नेत्रोंसे व्यवहारिक वा चर्म दृष्टि से पदार्थों को देखै तो अज्ञानी हो रहै। हिरदानी=हृदय, मन (हिरदा + दानी) हृदय का स्थान, अतरात्मा। हरिदानी भी पाठ है। दाव=यह मनुष्य देह निस्तार होनेका मोका वा अवसर है। ताव=ताता लोह ही कूटने से बढ़ता वा बनता है ऐसे ही जवानी वा मनुष्य देह है। नाव=जमीन पर नाव नहीं चल सकती है। आव=आय। आयु बीती जाती है।

३२, ३३—'इमिला छन्द'=दुमिल सवैया-आठ सगण (॥ऽ) का-२४ अक्षर का छद सवैया का भेद है। (देखो छद तालिका परिशिष्ट),

(३२)—(चित्रकाव्य)—भिया=हे भाई! अथवा बहता (बीतता) जाता है। 'भया' भी पाठ है। हठयोग के साधन से शरीर नीरोग और मन वश होता

गुरु ज्ञान गहै अति होइ सुखी मन मोह तजै सब काज सरै।
धुर ध्यान रहै पति पोइ सुखी रज लोह यजै तब लाज परै॥
सुरतान उहै हति दोइ रुषी तन छोह सजै अब आज मरै।
पुर थान लहै मति धोइ दुखी जन योह रजै जग राज करै॥३३॥ *

॥ इति उपदेश चितावनी को अंग ॥ २ ॥

है, परन्तु योग साधन केवल करने से ही काम नहीं चलैगा। भगवान् का भक्तिपूर्वक भजन करो। धूरि परै=किरकिरी होय। तिरस्कार होवे। सठ सोग=हे मूर्ख! अथवा मूर्खों का सा (संसार को) शोक, हरो=निवारण करो। छन=क्षण-क्षण भर। वा क्षणिक, क्षणभंगुर। चरि=चरकर खाकर। वा चरच कर अलङ्कृत करके, आभूषणों से सज्जित हुआ। चाम=गात्र, चमड़े का शरीर भुप=भुक्त, भुगतने पर पूरि=पूरमें, काष्ठादि में, वा पूर्ण, पूरा हो जाने पर। जरै=(अग्नि में) जलै। मठ=भट्टी (भाड़, अग्निकुण्ड)

भोगादिक इस योग्य हैं कि जला दिये जांय तो कोई हानि नहीं। गन=गणना करो, हिसाब लगाओ। घात धिया=बुद्धि द्वारा आत्मा को खा जाते हैं अर्थात् बिगाड़ते हैं। भाग जिनका समाधान बुद्धि करती है वेजाने बूझे, हमारी आत्मा की बहुत हानि करते हैं। अरि काम किना=शत्रु का सा काम किया। झूरि=बहुत रो २ कर, अर्थात् सुखों और भोगों के लिये जो बहुत ललायित हुये वे अपने शत्रु आपही हुये और यों मरे, नाशको प्राप्त हुये। वे आत्म-हत्यारे बने। मठ रोग=योगाश्रम में स्थित योग की विडंबना भभकट भलेही करा। घन घात हिया परि=(हिया) मन पर बहुत ताड़ना देकर उसके ऊपर दबाव डालो। (परन्तु) उन विधानों से सिद्धि सन्दिग्ध है। केवल राम (प्रभु) ही संसार के दुखों को मिटा सकते हैं। अथवा मठ शरीर, हिया-मन, इन पर भले ही यम नियम व्रत तप आदिका प्रभाव डाल कर सताओ, परन्तु दुख तो राम ही मिटावैगा।

* (३३)—(चित्र काव्य)—गुरु द्वारा सच्चा अद्वैत ज्ञान प्राप्त करके सच्चिदानन्द में मग्न हो जानेसे मन का संसार मोह मिट जानेसे मोक्ष प्राप्ति पर कार्य सिद्ध होता

॥ ३ ॥ अथ काल चितावनी को अंग

इंदव

मंदिर माल विलाइति है गज ऊंट दमामे दिना इक दोहै।
तात हु मात त्रिया सुत बंधव देषि धौं पामर होत विछोहै॥
झूठ प्रपंच सौं राचि रह्यौ शठ काठ की पूतरि ज्यौं कपि मोहै।
मेरि हि मेरि करै नित सुन्दर आंप लगै कहि कौनको को है॥ १॥
ये मेरे देश विलाइति हैं गज ये मेरे मंदिर या मेरी थाती।
ये मेरे मात पिता पुनि बंधव ये मेरे पूत सु ये मेरे नाती॥
ये मेरि कामिनि केलि करैं नित ये मेरे सेवक हैं दिन राती।
सुन्दर वैसैं हि छाडि गयौ सब तेल जर्‌यौ रु बुझी जब बाती॥ २॥

है। और संसार की कल्पित प्रतिष्ठा को त्याग कर भगवत् की ओर सन्मुख होनेवाला स्वामी धर्मपरायण, पुरुष ध्यानावस्थित होकर, इन्द्रिय और विषयादि शत्रुओं से युद्ध करैगा तब ही उस को अपने पन की रक्षा की लाज मनमें आवैगी। वही सुलतान। (बादशाह-सम्राट) है। जो पुरुष प्रतिष्ठा को त्याग देता है और शरीर में शूरता का उत्साह करता है तब लड़ता है और मरने को तयार रहता है—'अबहि मृत्यु किन होई' ऐसा निश्चय दृढ़ रखता है परन्तु युद्ध से नहीं हटता है। तब ही वह 'पुर थान' (परम धाम, परम गति) राजनगर को पाता है, और अपनी बुद्धि के मल-विक्षेप आवरन दोषों को ज्ञान के पवित्र जलसे धोकर (निर्धूत-कल्मष) शुद्ध हो जाता है। ऐसे रजपूती करता है वही राज्य, (अक्षय-साम्राज्य) को पा सकता है।

(काल चितावनी) छन्द (१)—धौं=(देख) तो सही, कि। या किस तरह, झट ही। पामर=हे पापी जीव। काठ की पूतरि=काठका बना हुआ बंदर—पुतली देख सच्चा बंदर उसको असली मानता है। वैसे इस माया के इन्द्रजाल को सच्चा संसार मान मनुष्य फंसा है। आंप लगै=मरजाने पर।

(२) थाती=धनकी धरोहर गाड़ी हुई। तेल जर्‌यो=शक्ति घटी, आयु बीती। बाती=बत्ती, शरीर। पल फेरी=एक पलक में पलटा खा जाता है।

तें दिन च्यारि निराम लियौ सठ तेरे कहैं कछु है गइ तेरी।
जैसें हि बाप ददा गये छाडि सु तैसें हि तू तजिहै पल फेरी॥
मारि है काल चपेटि अचानक होइ घरीक में राष की ढेरी।
सुन्दर लै न चलै कछु संग सु "भूलि कहै नर मेरि हि मेरी"॥ ३॥
कै यह देह जराइ कै छार किया कि किया कि किया कि किया है।
कै यह देह जिमी महिं पोदि दिया कि दिया कि दिया कि दिया है।
कै यह देह रहै दिन चारि जिया कि जिया कि जिया कि जिया है।
सुन्दर काल अचानक आइ लिया कि लिया कि लिया कि लिया है॥ ४॥
संत सदा उपदेश बतावत केश सबै सिर सेत भये हैं।
तू ममता अजहूं नहिं छाडत मौति हू आइ संदेश दये है॥
आज कि काल्हि चले उठि मूरष तेरे हि देपत केते गये हैं।
सुन्दर क्यौं नहिं राम संभारत या जग में कहि कौन रहे हैं॥ ५॥
देह सनेह न छाडत है नर जानत है सठ है थिर येहा।
छीजत जाइ घटै दिन ही दिन दीसत है घट कौ नित छेहा॥
काल अचानक आइ गहै कर ढाहि गिराइ करै तन पेहा।
सुन्दर जानि यहै निहचै धरि एक निरंजन सौं करि नेहा॥ ६॥
तू कछु और विचारत है नर तेरौ विचार धर्यौ ई रहैगौ।
कोटि उपाइ करै धन कै हित भाग लिष्यौ तितनौ ई लहैगौ॥
भोर कि सांझ घरी पल मांझ सु काल अचानक आइ गहैगौ।
राम भज्यौ न कियौ कछु सुकृत सुन्दर यौं पछिताइ कहैगौ॥ ७॥

---

(४) किया कि किया कि (इत्यादि) किया की बार बार उक्ति अर्थ को बलवान और भाव की दृढ़ता तथा काल के क्रम को दिखाती है—अर्थात् ऐसा होता ही रहता है, यह बात रीति जगत् में दृढ़ निश्चित है।

(५) दये=दिया।

(६) येहा=यह। छेहा=छेद, अंत। पेहा=खेह, राख

(७) लहैगौ=पावैगा, मिलैगा।

भूलि गयौ हरि नाम कौं तूं सठ देपि धौं कौन संयोग बन्यौं है।
काल अचानक आइहै या कठ पेपि धौं भूठौ सौ तानौ तन्यौं है॥
छार करै सब चाम कौं लूटै जु आदि कौ ऐसौंहि जीव हन्यौं है।
कोउ न होत सहाइ कौं कूटै अनादि कौ सुन्दर यासौं सन्यौं है॥ ८॥
बीति गये पिछले सब ही दिन आवत हैं अगिलौ दिन नेरै।
काल महा बलवंत बडौ रिपु सांधि रह्यौ सिर ऊपर तेरै॥
एक घरी मंहि मारि गिरावत लागत ताहि कछू नहिं बेरै।
सुन्दर संत पुकारि कहै सबहूं पुनि तोहि कहूं अब टेरै॥ ९॥
सोइ रह्यौ कहा गाफिल ह्वै करि तो सिर ऊपर काल दहारै।
धामस धूमस लागि रह्यौ सठ आय अचानक तोहि पछारै॥
ज्यौं बन मैं मृग कूदत फांदत चित्रक लै नख सौं उर फारै।
सुन्दर काल डरै जिहिं कै डर ता प्रभु कौं कहि क्यौं न संभारै॥ १०॥
चेतत क्यौं न अचेतन ऊंघन काल सदा सिर ऊपर गाजै।
रोकि रहै गढ कै सब द्वारनि तू तब कौन गली होइ भाजै॥
आइ अचानक केस गहै जब पाकरि कै पुनि तोहि झुलाजै।
सुन्दर कौन सहाइ करै जब मूंड हि मूंड भराभरि बाजै॥ ११॥
तूं अति गाफिल होइ रह्यौ सठ कुंजर ज्यौं कछु शंक न आनै।
माइ नहीं तन मैं अपने बल मत्त भयौ विषया सुख ठांनै॥

---

(८) कौन सयोग=मनुष्य देह, अच्छा कुल, अच्छी सत्संगति आदिकी प्राप्ति।

(९) सांधि रह्यौ=तीर का निशाना लगा रहा।

(१०) धामस धूमस=धूमधाम। लागि रह्यौ=दाव घात कर रहा है। चित्रक=चीता।

(११) ऊंघ न=मत ऊंघै। पाकरिके=(पाकरिकै)=पकड़करके। झुलाजै=झुलावैं, लटकावैं। मूंडहि मूड भराभर बाजै=आपस में सिर टकरावैं, लड़ाई होने लग जाय और मांथे फूटने लगैं।

पोसत पासत वै दिन वीतत नीति अनीति कछू नहिं जानैं ॥
सुन्दर केहरि काल महारिपु दंत उपारि कुंभस्थल भानैं ॥ १२ ॥
मात पिता जुवती सुत बंधव आइ मिल्यौ इन सौं सनमंधा।
स्वारथ के अपने अपने सब सो यह नाहिं न जानत अंधा ॥
कर्म विकर्म करै तिन कै हित भार धरै नित आपनैं कंधा।
अंत विछोह भयौ सब सौं पुनि याहि तें सुन्दर है जग धंधा ॥ १३ ॥

मनहर

करत करत धंध कछुव न जानैं अंध
आवत निकट दिन आगिलौ चपाकि दै।
जैसैं बाज तीतर कौं दावत अचानचक
जैसें बक मछरी कौं लीलत लपाकि दै ॥
जैसैं मक्षिका की घात मकरी करत आइ
जैसैं सांप मूषक कौं ग्रसत गपाकि दै।
चेति रे अचेत नर सुन्दर संभारि राम
ऐसैं तोहि काल आइ लेइगौ टपाकि दै ॥ १४ ॥
मेरौ देह मेरौ गेह मेरौ परिवार सब
मेरौ धन माल मैं तौ बहुविधि भारौ हौं।
मेरौ सब सेवक हुकम कोउ मेटै नांहि
मेरी जुवती कौ मैं तौ अधिक पियारौ हौं ॥

---

(१२) पोसत पासत=आप छीने और दूसरों से छिनावै (मुहावरा)। केहरि=सिंह। कुंभस्थल=गंडस्थल। ललाट मस्तक।

(१३) सनमधा=सम्बन्ध। जगधधा=संसारका कार व्यवहार। अथवा यह जगत धधा (कार्य्यरूप) मात्र है।

(१४) चपाकदै=तुरत, झटपट। (दै=शीघ्रता, तड़ाका का द्योतक-राजस्थानी भाषा) लीलत=निगल जाता है। लपाक दै=एक ही ग्रास में गड़प कर जाता है। गपाकि दै=गप से गले उतार लेता है। टपाक दै=टप से उचट कर ले जायगा।

मेरौ वंश ऊंचौ मेरे बाप दादा ऐसे भये
करत बडाई मैं तौ जगत उज्यारौ हौं ।
सुन्दर कहत मेरौ मेरौ करि जानैं सठ
ऐसी नहिं जानै मैं तौ काल ही कौ चारौ हौं ॥१५॥
जब तें जनम धर्‌यौ तब ही तें भूलि पर्‌यौ
बालापन मांहि भूलौ संमुझ्यौ न रुख मैं ।
जोवन भयौ है जब काम बस भयौ तब
जुवती सौं एक मेक भूलि रह्यौ सुख मैं ॥
पुत्रउ पौउत्र भये भूलौ तब मोह बांधि
चिंता करि करि भूलौ जानै नहिं दुख मैं ।
सुन्दर कहत सठ तीनौं पन मांहिं भूलौ
भूलौ भूलौ जाइ पर्‌यौ काल ही के मुख मैं ॥ १६ ॥
ऊठत बैठत काल जागत सोवत काल
चलत फिरत काल काल वोर घर्‌यौ है ।
कहत सुनत काल पात हू पीवत काल
काल ही के गाल मांहि हर हर हंस्यौ है ॥
तात मात बंधु काल सुत दारा गृह काल
सकल कुटंब काल काल जाल फंस्यौ है ।
सुन्दर कहत एक राम बिन सब काल
काल ही कौ कृत्त कियौ अंत काल ग्रस्यौ है ॥१७॥

---

(१५) भारो=भारी, बड़ा ।

(१६) रुख=सैन, निगाह का इशारा । एकमेक=गटपट मिला हुआ, दो तन एक जान ।

(१६) पौउत्र=पौत्र, पोता । (छन्द के निमित्त ऐसा किया है)।

(१७) वोर=की तरफ । इस छंद में सर्वत्र काल से प्रयोजन एक सर्व भक्षक

जब तैं जनम लेत तब ही तैं आयु घटै
माइ तौ कहत मेरौ बडौ होत जात है।
आज और काल्हि और दिन दिन होत और
दौर्‍यौ दौर्‍यौ फिरत खेलत अरु खात है॥
बालापन बीत्यौ जब जोबन लग्यौ है आइ
जोबन हू बीतैं बूढौ डोकरा दिखात है।
सुन्दर कहत ऐसें देषत ही बुझि गयौ
तेल घटि गये जैसें दीपक बुझात है॥ १८॥

सब कोउ ऐसें कहैं काल हम काटत हैं
काल तौ अचड नाश सबकौ करतु है।
जाकै भय ब्रह्मा पुनि होत है कंपाइमान
जाकै भय असुर सुर इद्रऊ डरतु है॥
जाकै भय शिव अरु शेष नाग तीनौं लोक
केउक कल्प बीतैं लोमस परतु है।
सुन्दर कहत नर गरब गुमान करै
तू तौ सठ कहूं पलक में मरतु है॥ १९॥

काल से है परन्तु अर्थमें बारीक सा भेद भी करना पड़ता है। कहीं काल को सामग्र, काल की गति, नाश के वा बधन क कारण, मायाजाल इत्यादि।

(१८) आयु घटै=लौकिक म प्रत्येक सालगिरह पर खुशी मनाइ जाती है। परन्तु प्रत्येक वर्ष असल म अवस्था म कम होता जाता है। दीपक बुझात है=तेल बीतने पर दीवा बुझ जाता है वैसे ही आयु घटने पर शरीर का पतन हो जाता है।

(१९) काल हम काटत हैं=काल का बिताना काल का काटना है। दिन टेर करना। काल किसी के काटे नहीं कटता है, यह कहने मात्र है। लोमस=वह दीर्घजीवी ऋषि जो ब्रह्मा के मरने पर शिर पर से एक बाल तोड़ कर फेंकता है कि नित्य उसके ब्रह्मा मरै नित्य मुडन कहां से, कैसे करावै।

काल सौं न बलवंत कोऊ नहिं देषियत
सब कौं करत अंत काल महा जोर है।
काल ही कौ डर सुनि भयौ मूसा पैकंबर
जहां जहां जाइ तहां तहां वाकौ गोर है॥
काल है भयानक भैभीत सब किये लोक
स्वर्ग मृत्यु पाताल मैं काल ही को सोर है॥
सुन्दर काल को काल एक ब्रह्म है अखंड
वासौं काल डरै जोई चल्यौ उहि वोर है॥ २०॥

बरषा भये तें जैसें बोलत भंभीरी सुर
पंड न परत कहुं नैकहूं न जानिये।
जैसें पूगी बाजत अखण्ड सुर होत पुनि
ताहू मैं न अंतर अनेक राग गांनिये॥
जैसें कोऊ गुडी कौं चढावत गगन मांहि
ताहू की तौ धुनि सुनि वैसैं ही बषांनिये।
सुन्दर कहत तैसें काल कौ प्रचंड वेग
राति दिन चल्यौ जाइ अचिरज मांनिये॥ २१॥

माया जोरि जोरि नर राषत जतन करि
कहत है एक दिन मेरै काम आइहै।

---

(२०) मूसा पैकंबर=यहूदियों का एक पैगम्बर (ज्ञानी पुरुष) जिसके द्वारा 'तौरेत' नामक धर्म पुस्तक प्रगट हुई। इसने काल की अवहेलना की तब इसके पीछे पड़ा तब इसको ईश्वर की महिमा का ज्ञान हुआ और आंख खुली। गोर=खयाल, भय। अथवा मरने की निशानी कबर। सोर=जोर, शोर। प्रभाव। वोर=तरफ, मार्ग।

(२१) भंभीरी=झींगरी। गुडी=पतंग, तुक्का जिसके घूंघरू बांध कर आकाश में उडा चढा कर पलंग से बांध देते थे सो रात को उसकी एक सी आवाज आया करती। यहां काल की निरन्तर इकसार गति वर्णित है।

तोहि तौ मरन कछु बार नहिं लागै सठ
देषत ही देषत बबूला सौ बिलाइहै ॥
धन तौ धर्‍यौई रहै चलत न कौडी गहै
रीते ही हाथनि जैसौ आयौ तैसौ जाइहै ।
करि लै सुकृत यह बरिया न आवै फेरि
सुन्दर कहत पुनि पीछे पछिताइहै ॥ २२ ॥

बावरौ सौ भयौ फिरै बावरी ही बात करै
बावरे ज्यौं देत बायु लागत बौरानौ है ।
माया कौ उपाइ जानै माया की चातुरी ठानै
माया मैं मगन अति माया लपटानौ है ॥
जोबन कौ मदमातौ गिनत न कोऊ नातौ
काम बस कामिनी कै हाथ ही बिकानौ है ।
अति ही भयौ बेहाल सूझत न मांथै काल
सुन्दर कहत ऐसौ बोर कौ दिवानौ है ॥ २३ ॥

झूठौ धन झूठौ धाम झूठौ कुल झूठौ काम
झूठौ देह झूठौ नाम धरि कैं बुलायौ है ।
झूठौ तात झूठौ मात झूठे सुत दारा भ्रात
झूठौ हित मानि मानि झूठौ मन लायौ है ॥
झूठौ लैंन झूठौ दैंन झूठे मुख बोलै बैंन
झूठे झूठे करि फैल झूठ ही कौं धायौ है ।
झूठहीं मैं ये तौ भयौ झूठ ही मैं पचि गयौ
सुन्दर कहत सांच कबहूं न आयौ है ॥ २४ ॥

---

(२२) बबूला=बुदबुदा । बरिया=बिरिया, समय, मुहूर्त ।

(२३) देत बायु=बकवाद करै । बौरानौ=पागल हुआसा । बोर कौ=अन्य और कोई ।

(२४) "झूठ" शब्द की पुनरावृत्ति बड़ी चतुराई से की है । इससे हास्य

दीर्घाक्षरी

झूठे हाथी झूठे घोरा झूठे आगै झूठा दौरा
झूठा बंध्या झूठा छोरा झूठा राजा रानी है।
झूठी काया झूठी माया झूठा झूठै धंधा लाया
झूठा मुवा झूठा जाया झूठा याकी वानी है॥
झूठा सोवै झूठा जागै झूठा झूझै झूठा भाजै
झूठा पीछै झूठा लागै झूठै झूठी मानी है।
झूठा लीया झूठा दीया झूठा पाया झूठा पीया
झूठा सौदा झूठै कीया ऐसा झूठा प्रानी है॥ २५॥

झूठ सौं बंध्यौ है लाल ताही तें ग्रसत काल
काल बिकराल व्याल सबही कौं खात है।
नदी को प्रवाह चल्यौ जात है समुद्र माहि
तैसें जग कालहि कै मुख में समात है॥
देह सौं ममत्व तातैं काल कौ भै मानत है
ज्ञान उपजै तें वह कालहू विलात है।
सुन्दर कहत परब्रह्म है सदा अखंड
आदि मध्य अन्त एक सोई ठहरात है॥ २६॥

नाशवान, वृथा, अनित्य, नश्वर, आडम्बर, दम्भ, कपट आदि अर्थ लेना=जहां जैसा ठीक हो।

(२५) इस छद में भी 'झूठ' शब्द की पुनरुक्ति उस ही ढंग पर, परंतु कुछ *अधिक चतुराई से है। इस में सारे वर्ण गुरु हैं इस से शब्दालंकार का चित्रकाव्य* है। छोरा=छोड़ा, मुक्त हुआ। झूझै=लड़ै। सब जगत् स्वप्न की तरह मिथ्या है।

(२६) लाल=प्यारा मद ताने के तौर पर शब्द है। बच्चा, पूत। व्याल=सर्प काल हू विलात है=ब्रह्म में दिक्, काल, कारण, गुण स्वभावादि कुछ नहीं। ब्रह्मप्राप्ति से काल को जीत लिया जाता है। सोही ठहरात है=जिस का आदि, मध्य और

इंदव

काल उपावत काल पपावत काल मिलावत है गहि माटी।
काल हलावत काल चलावत काल सिपावत है सब आंटी॥
काल बुलावत काल मुरावत काल डुलावत है वन घाटी।
सुन्दर काल मिटै तब ही पुनि ब्रह्म बिचार पढै जब पाटी॥ २७॥

॥ इति काल चितावनी को अंग ॥ ३ ॥

देहात्म बिछोह को अंग (४)॥

इन्दव

वै श्रवना रसना मुख वैसैंहि वैसैंहि नासिक वैसैंहि अपी।
वै कर वै पग वै सब द्वार सु वै नख सीस हि रोम असपी॥
वैसैं हि देह परी पुनि दीसत एक बिना सब लागत पपी।
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह 'बोलत हौ सु कहां गयौ पंपी'॥ १॥

बोलत चालत पीवत पात सु सींचत हौ द्रुम कौ जैसैं माली।
लेतहु देतहु देपत रीझत तोरत तान बजावत ताली॥
जामहिं कर्म निकर्म किये सब है यह देह परी अब ठाली।
सुन्दर सो कतहू नहिं दीसत पेल गयौ इक पेल सौ प्याली॥ २॥

अन्त नहीं सा ही आदि, मध्य और अन्त अर्थात् सदा और सर्वदा विराजमान, नित्य विभु है।

(२७) गहि माटी=पकड़ कर रत खेत, नाश, कर देता है। आंटी=पेच, प्राच के दग। पाटी=पाटा पढ़ना, प्रारम्भिक दीक्षा विद्यार्थियों की तरह गुरु से पावै, प्रवद्य की शक्ति प्राप्त करै, ज्ञान में परिपक्व हो जावै।

(देहात्म बिछोह) (१) अपी=आंख, नेन। असपी=असंख्यात, बहुत। परी=पड़ा, कङ्काल। पपी=पक्षी।

(२) ठाली=चेष्टा रहित। सूनी। प्याली=खिलाड़ी।

मात पिता जुवती सुत बंधन लागत हैं सब कौं अति प्यारौ।
लोग कुटंब परौ हित राषत होइ नहीं हम तें कहु न्यारौ॥
देह सनेह तहां लग जानहुं बोलत है मुख शब्द उचारौ।
सुन्दर चेतनि शक्ति गई जब वेगि कहै घर मांहि निकारौ॥ ३॥
रूप भलौ तब ही लग दीसत जौं लग बोलत चालत आगैं॥
पीवत पात सुनै अरु देषत सोइ रहै उठिकैं पुनि जागैं॥
मात पिता भइया मिलि बैठत प्यार करै जुवती गर लागैं।
सुन्दर चेतनि शक्ति गई जब देषत ताहि सबै डरि भागैं॥ ४॥

मनहर

कौन भांति करतार कियौ है शरीर यह
पावक कै मध्य देषौ पानी कौ जमावनौ।
नासिका श्रवन नैन वदन रसन वैन
हाथ पाव अंग नख शिख कौ वनावनौ॥
अजव अनूप रूप चमक दमक ऊप
सुन्दर शोभित अति अधिक सुहावनौ।
जाही क्षन चेतना सकति जब लीन होइ
ताही क्षन लगत सवनि कौं अभावनौ॥ ५॥
मृत्तिका कौ पिंड देह ताही मैं युगति भई
नासिका नयन मुख श्रवन वनाये हैं।

(३) उचारौ=उच्चारण। मांहिं=अन्दर से बाहर। (मांहि से)।

(४) आगैं=अगाड़ी सामने। गर लागैं=गले लगैं, आलिंगन करैं। डरि=डर कर।

(५) पावक=अग्नि, जठराग्नि पेट मैं। नासिका=पानी की बूंद मैं इतने सुघड़ आकार कैसे बन जाते हैं, यह आश्चर्य है। ऊप=ओप, सफाई, पालिश। अभावनौ=असुहावना, घृणित, बुरा।

सीस हाथ पाव अरु अगुली विराजमान
　　अगुली कै आगै पुनि नख ऊ लगाये हैं ॥
पट पीठि छाती कंठ चिबुक अधर गाल
　　दसन रसन बहु वचन सुहाये हैं।
सुन्दर कहत जब चेतना शकति गई
　　वहै देह जारि बारि छार करि आये हैं।

देह तौ प्रगट यह ज्यौं की त्यौंही जानियत
　　नैंन के झरोपे माहिं झांकत न देपिये।
नाक के झरोपे माहिं नैकु न सुवास लेत
　　कान के झरोपे माहिं सुनत न लेपिये ॥
मुख के झरोपे में वचन न उचार होत
　　जीभ हू कौ पट रस स्वाद न विशेपिये।
सुन्दर कहत कोउ कौन विधि जानै ताहि
　　कारौ पीरौ काहू द्वार जातौहू न पेपिये ॥ ७ ॥

माइ तौ पुकारि छाती कूटि कूटि रोवत है
　　बाप हू कहत मेरौ नन्दन कहा गयौ।
भइया कहत मेरी बांह आज दूरि भई
　　बहन कहत मेरै वीर दुख है दयौ ॥
कामिनी कहत मेरौ सीस सिरताज कहां
　　उनि ततकाल हाथ मैं सिंधौरा है ल्यौ।

---

(६) विराजमान=शाभित, प्रस्तुत ।

(७) झरोपे=बैठ कर देखने का स्थान, इन्द्रिय । पट्रस=छह रस-मीठा, कड़ुवा खारा, चरपरा, कसायला, खट्टा, । नाना प्रकार के स्वाद । कारौ पीरौ=किसी भी रंग का आकार का । ताहि=उस चेतनशक्ति को ।

सुन्दर कहत ताहि कोऊ नहिं जान सकै
बोलत हुतौ सु यह छिन में कहा भयौ ॥ ८ ॥
रज अरु वीरज कौ प्रथम संयोग भयौ
चेतना सकति तब कौन भांति आई है।
कोउ एक कहै बीज मध्य ही कियौ प्रवेश
किन्हूंक पंच मास पीछै कै सुनाई है॥
देह कौ बिजोग जब देषत ही होइ गयौ
तब कोउ कहौ कहां जाइ कै समाई है।
पण्डित ऋषीश्वर तपीश्वर मुनीसुर ऊ
सुन्दर कहत यह किनहुं न पाई है॥ ९ ॥
तब लौं हि क्रिया सब होत है बिबिधि भांति
जब लग घट माहिं चेतन प्रकाश है।
देह कै अशक्त भयें क्रिया सब थकि जात
जब लग स्वास चलै तब लग आश है॥

---

(८) नन्दन=पुत्र । सिंधौरा=सिन्दूर आदि (नारेल वा मेंहदी) जिसको लगाकर वा लेकर सती स्मशान को सती होने को जाती थी। बोलत हुतौ=जो बोलता था सो-वह चेतन शक्ति जिससे बोलने आदि की क्रियाएं शरीर में फुरती हैं। चेतन और जड़ का विवेक इन अवस्थाओं के देखने और उन पर विचार से ही उपजता है। मृतक शरीर और जीवित शरीर की परस्पर की संज्ञा और लक्षणों से चेतन के प्रभाव का प्रक्षेप मन और बुद्धि पर बहुत कुछ होता है।

(९) मृतक को देख कर नाना प्रकार की कल्पना बुद्धिमान लोग करते हैं। उन ही का कुछ वर्णन है। परन्तु निदान सच्चा किसी से नहीं होता, और न हुआ, कि जिससे निश्चय-पूर्वक और निस्सन्देह निर्णय मिल सकै। जीवात्मा का इस पुद्गल में कैसे और किधर से तो प्रवेश होता है, और मर जाने पर इस शरीर में से किधर होकर निकल कर कहां जाता है? इत्यादि शंकाएं सदा से सब विचारशील पुरुषों को

स्वासऊ थक्यौ है जब रोवन लगे हैं तब
सब कोऊ कहै यह भयौ घट नाश है।
काहू नहि देप्यौ किहि वोर कौन कहां गयौ
सुन्दर कहत यह बडोई तमाश है॥ १०॥

देह तौ स्वरूप तौलौ जौलौ है अरूप मांहि
सब कोउ आदर करत सनमान है।
टेढी पाग बांधि वार वार ही मरोरै मूछ
बांह उसकारै अति धरत गुमांन है॥
देश देश ही के लोक आइकैं हजूर होंहि
बैठि करि तपत कहावै सुलतांन है॥
सुन्दर कहत जब चेतना सकति गई
उहै देह ताकी कोउ मानत न आंन है॥ ११

॥ इति देहात्म विछोह कौ अंग॥ ४ ॥

होती आई है। परन्तु सच्चा भेद किसी को नहीं मिला। और शास्त्र, पुराण, दर्शन हैं जिनमें अपने २ ढंग पर युक्ति प्रमाण द्वारा अपना निश्चित पक्ष सिद्ध किया है। परन्तु परस्पर विरोध आता है। और संदेह बना रह जाता है।

(११) अरूप=रूप रहित जीवात्मा तत्व। आत्मा के कोई आकार न होने से इन्द्रियों द्वारा ज्ञात नहीं होता है। इस ही लिये समझाने को आकाश तत्व का और लोह पिंड में ताप का वा पुष्प में सुगन्ध का, वा दूध में घृत का, वा चुंबुक में वा अन्य पदार्थों में आकर्षण शक्ति का, दृष्टान्त दे देते हैं। परन्तु उस चिदात्म परम तत्व का कुछ भी ज्ञान वा आभास यथार्थरूप में नहीं हो पाता है। इतने सत्य और नित्य और स्वयम् सिद्ध पदार्थ का साधारणतया केवल अनुमान वा अटकल से ही, कुछ ज्ञान मान लिया जाता है। केवल वेदांत के ज्ञानियों वा राजयोग के सिद्धोंको, आत्मा का अपरोक्ष ज्ञान होना शास्त्रों में माना गया है।

अथ तृष्णा को अंग (५) ॥

इंदव

नैननि की पल ही पल में क्षण आध घरी घटिका जु गई है।
जाम गयौ जुग जाम गयौ पुनि सांझ गई तब राति भई है॥
आज गई अरु काल्हि गई परसों तरसों कछु और ठई है।
सुन्दर ऐसें हि आयु गई "तृष्णा दिन ही दिन होत नई है" ॥ १ ॥

दुर्मिला

कन ही कनकों बिललात फिरै सठ जाचत है जन ही जन कौं।
तन ही तन कौं अति सोच करै नर खात रहै अन ही अन कौं॥
मन ही मन की तृष्णा न मिटी पुनि धावत है धन ही धन कौं।
छिन ही छिन सुन्दर आयु घटी कबहूं न गयौ बन ही बन कौं॥ २ ॥

इन्दव

जो दस बीस पचास भये सत होहि हजारनि लाप मगैंगी।
कोटि अरब्ब परब्ब असंषि पृथीपति हौंन की चाह जगैंगी॥
स्वर्ग पताल कौं राज करौ तृसना अधिकी अति आगि लगैंगी।
सुन्दर एक सन्तोष बिना सठ "तेरी तौ भूष न क्योंहुं भगैंगी" ॥ ३ ॥
लाप करोरि अरब्ब परब्बनि नीलि पदम्म तहां लग पाटी।
जोरि हि जोरि भण्डार भरे सब और रही सु जिमी तर दाटी॥

---

(१) जाम=एक पहर। जुग जाम=दो पहर, 'तृष्णा' को 'तृपणा' पढ़ो छंद पूर्त्तिके लिये।

(२) कन=दाना, अन्न। बिललात=चिल्लाता, रोता पुकराता। 'तृष्णा' को 'तृपणा' पढ़िये छंद हित। बन मैं=त्यागी होकर एकांत बास।

(३) मगैंगी=मंगैंगी-चाही जायगी। पाह= (अप्रशस्त शब्द)-प्यास, चाह-'आगि...' जैसे जितना ईंधन डालो उतनी बढ़ती है। वैसे ही तृष्णा, अधिक प्राप्ति से अधिक बढ़ती है। इस आग को शमन करने वा बुझानेवाला एक संतोष ही है।

तौहु न तोहि सन्तोष भयौ सठ सुन्दर तैं तृष्णा नहिं घाटी।
सूझत नाहिं न काल सदा सिर मारिकैं थाप मिलाइहै माटी ॥ ४ ॥
भूप लिये दशहूं दिश दौरत ताहि तैं तू कबहूं न अघैहै।
भूप भण्डार भरै नहिं कैसेहुं जो धन मेरु कुबेर लौं पैहै ॥
तू अब आगै हि हाथ पसारत ताहि तैं हाथ कछू नहिं ऐहै।
सुन्दर क्यौं नहिं तोष करै नर पाइ हि पाइ कलौइक पैहै ॥ ५ ॥
भूप नचावत रङ्क हि राज हि भूप नचाइ कैं विश्व बिगोई।
भूप नचावत इन्द्र सुरासुर और अनेक जहां लग जोई ॥
भूप नचावत है अध ऊरध तीनहुं लोक गनैं कहा कोई।
सुन्दर जाइ तहां दुख ही दुख ज्ञान बिना न कहूं सुख होई ॥ ६ ॥
पेट पसार दियौ जित ही तित तैं यह भूप क्षितीयक थापी।
थोर न छोर कछू नहिं आवत मैं बहु भाति भली विधि मापी ॥
देखत देह भयौ सब जीरण तू निति नौतन आहि अद्यापी।
सुन्दर तोहि सदा समझावत "हे तृष्णा अजहूं नहिं धापी" ॥ ७ ॥
तीनहुं लोक अहार कियौ फिरि सात समुद्र पियौ सब पानी।
और जहां तहां ताकत डोलत काढत आंखि डरावत प्रानी ॥
दांत दिखावत जीभ हलावत याहि तैं मैं यह डायनि जानी।
सुन्दर खात भये कितने दिन "हे तृष्णा अजहूं न अघानी" ॥ ८ ॥

---

(४) घाटी=घाटा, घाटी, कमी (अप्रशस्त शब्द)। दांटी=गाद दी। काटी=मारी, कम किई।

(५) तोष=सतोष।

(६) बिगोई=बदनाम किया, भांडा।

(७) थापी=रची। मापी=जांचा, निश्चय किया। नौतन=नूतन, नई। अद्यापी=अबतक।

(८) डायन=डाकिन, बहुत खानेवाली दुष्ट। अघानी=धापी, तृप्त हुई।

पाव पताल परे गये नीकसि सीस गयौ असमान अघेरौ।
हाथ दशौं दिशि कौं पसरे पुनि पेट भरे न समुद्र सुमेरौ॥
तीनहुं लोक लिये मुख भीतरि आपिहु कान बधे चहुं फेरौ।
सुन्दर देह धर्यौ अति दीरघ "हे तृष्णा कहुं छेह न तेरौ"॥ ६॥
बादि वृथा भटकै निशि वासर दूरि कियौ कबहूं नहिं धोपा।
तू हतियारिनि पापिन कोटनि साँच कहूं मति मानहि रोपा॥
तोहि मिल्यौ तबतें भयौ बन्धन तूं मरि है तब ही होइ मोपा।
सुन्दर और कहा कहिये तुहि "हे तृष्णा अबतौ करि तोपा"॥ १०॥
क्यौं जग मांहि फिरै मव मारत स्वारथ कौं न परीजिहि जोलै।
ज्यौं हरिहाइ गऊ नहिं मानत दूध दुह्यौ फछु सो पुनि ढोलै॥
तूं अति चञ्चल हाथ न आवत नीकसि जाइ नहीं मुख बोलै।
सुन्दर तोहि कह्यौ वर केतक "हे तृष्णा अब तू मति डोलै"॥ ११॥
तै कोउ कान धरी नहिं एकहु वोलत बोलत पेट हि पाक्यौ।
हौं कोउ घात वनाइ कहूं जबतैं तब पीसत ही सब फाक्यौ॥
केतक धौस भये परमोधत तैं अब आगै हि कौं रथ हांक्यौ।
सुन्दर सीप गई सब ही चलि "हे तृष्णा कहि कें तोहि थाक्यौ"॥ १२॥

---

(९) परे=आगे। अघेरौ=आगे (पजाबी में अगे को अघे भी बोलते हैं) बहुत आगे (जैसे बड़े से बड़ेरो) बधे=बढ़े, विशाल हो गये।

(१०) हतियारिनि=हत्यारी, घातिनि। पापिन कोटनि=पापिनी, और कुट्टिनी। वा, कोट्यानुकोटि पापों की करनेवाली।

(११) मव मारत=वृथा काल करता हुआ। हरिहाई=हरे को चर कर, हरे को दौड़नेवाली। ढोलै=ढुला दै, आसक्ती होकर मट दुहानी पटका दे। नहीं मुख बोलै=चुपचाप सटक जाय।

(१२) पेट पाक्यो=पेट पकना, उकता जाना, थक जाना। पीसते फाकना=बड़े पहिले हैल पी जाना, अधीरता से कार्य्य सिद्धि से पूर्व ही कार्य्य के फल के लिये

तू हि भ्रमाइ प्रदेश पठावत बूडत जाइ समुद्र जिहाजा।
तू हि भ्रमाइ पहार चढावत यादि वृथा मरि जाइ अकाजा॥
तैं सब लोक नचाइ भली विधि भांड किये सब रङ्क रु राजा।
सुन्दर तोहि दुखाइ कहौं अब "है तृष्णा तोहि नैंकु न लाजा" ॥ १३॥

॥ इति तृष्णा को अंग ॥ ५ ॥

अथ अधीर्य उराहने को अंग (६)॥

इन्दव

पांव दिये चलनै फिरनै कहुं हाथ दिये हरि कृत्य करायौ।
कान दिये सुनिये हरि को जस नैंन दिये तिनि माग दिखायौ॥
नाक दियौ मुख सोभत ता करि जीभ दई हरि को गुन गायौ।
सुन्दर साज दियौ परमेश्वर पेट दियौ परि पाप लगायौ॥ १॥
कूप भरै अरु बाव भरै पुनि ताल भरै बरषा ऋतु तीनौं।
कोठि भरै घट माट भरै घर हाट भरै सब ही भरि लीनौं॥

लल्चायित होकर उसे बिगाड़ देना। परमोधत=प्रबोधन, सावचेत, जाग्रत करते २। आगे रथ हांकना=पहिले ही दौड़ा देना।

(१३) भांड किये=फजीहत की, किरकिरी कर दी, प्रतिष्ठा बिगाड़ दी। दुखाइ कहौं=कड़ी कटु, तीखी सुनाऊं। कटतो कटू। क्योंकि तैंने संसारियों का बड़ा अकाज किया है।

अधीर्य उराहना=अधीरता के लिये उलाहना-उपालम्भ-देना। अधीर होकर अधीरता उत्पन्न करनेवाले कारणों के पैदा कर देने या देने के लिये ईश्वर को बुरा भला कहना, शिकायतें करना। इस अंग में भूख और पेट की ही शिकायतें हैं।

(१) माग=मार्ग, रास्ता। पाप लगायौ=पाप लगाना, आफत पैदा करना, जीव को झंझट कर देना।

पन्दक पास बुपार भरै परि पेट भरै न घडौ दर दीनौं।
सुन्दर रीतौ हि रीतौ रहै यह कौन पडा परमेश्वर कीनौं ॥ २ ॥

मनहर

किधौं पेट चूल्हा किधौं भाठी किधौं भार आहि
जोई कछु झौंकिये सु सब जरि जातु है।
किधौं पेट थल किधौं बांबी किधौं सागर है
जितौ जल परै तितौ सकल समातु है ॥
किधौं पेट दैत्य किधौं भूत प्रेत राक्षस है
पांव पाव करै कहुं नैकु न अघातु है।
सुन्दर कहत प्रभु कौन पाप लायौ पेट
जबतें जनम भयौ तब ही को पातु है ॥ ३ ॥

विग्रह तौ विग्रह करत अति बार बार
तनु पुनि तनुक न कबहुं अघायौ है।
घट न भरत क्यौंहीं घट्यौई रहत नित
शरीर निराइ मैं तौ कछुव न पायौ है ॥
देह देह कहत ही कहत जनम बीत्यौ
पिण्ड पिण्ड काजै निश दिन इलचायौ है।
पुद्गल गिलत गिलत न तृपत होइ
सुन्दर कहत वपु कौन पाप लायौ है ॥ ४ ॥

---

(२) वाय=बावड़ी । कोठि=कोठो अनाज को । माट=बड़ा मटका । पदक=बड़ा गढ़ा । पास=अनाज की बड़ी खाई। बुपारी=बुखारी, खड़की । दर=दरवाजा, दरार, दरीदा फटा हुआ रखना । घड़ा=खड्डा, गढ़ा ।

(३) किधौं=या तो, कहीं, क्या यह । भार=भाड़ ।

(४) बिग्रह=लड़ाई, तकाजा । तनु=शरीर । तनुक न=थोड़ा सा भी नहीं । निराइ=निनाण किया हुआ, खाली हुआ अर्थात् भूखा का भूखा होकर । देह देह=दो,

पाजी पेट काज कोतवाल को आधीन होत
कोतवाल सु तौ सिकदार आगे लीन है।
सिकदार दीवान के पीछे लग्यो डोलै पुनि
दीवान हू जाइ पतिसाह आगे दीन है॥
पातिसाह कहै या खुदाइ मुझै और देइ
पेट ही पसारै नहिं पेट बसि कीन है।
सुन्दर कहत प्रभु क्यौं हू नहिं भरै पेट
एक पेट काज एक एक कौ आधीन है॥ ५॥

तैंतौ प्रभु दीयौ पेट जगत नचायौ जिनि
पेट ही कै लिये घर घर द्वार फिर्यौ है।
पेट ही कै लिये हाथ जोरि आगै ठाडौ होइ
जोइ जोइ कह्यो सोइ सोइ उनि कर्यौ है॥
पेट ही कै लिये पुनि मेघ शीत घाम सहै।
पेट ही कै लिये जाइ रनु माहिं मर्यौ है।
सुन्दर कहत इन पेट सब भांड किये
और गैल छूटी परि पेट गैल पर्यौ है॥ ६॥

पेट सो न बली जाकै आगै सब हारि चले
राव अरु रंक एक पेट जीति लिये हैं।
कोउ बाघ मारत विदारत है कुंजर कौं
ऐसे सूर बीर पेट काज प्रान दिये हैं॥
यंत्र मंत्र साधत अरायन मसान जाइ
पेट आगै डरत निडर ऐसे हीये हैं॥

देवा, था। पिंट पिड=यह शरीर बात बात के लिये। पुद्गल=शरार। गिल्त=भोजन के ग्राम निगल्ने निगलते (खा खा कर) वपु=शरीर।

(५) पाजी=पियादा, सिपाही। सिकदार=फौजदार के रुतबे का अफसर।

(६) रनु=रण, संग्राम।

देवता असुर भूत प्रेत तीनों लोक पुनि
सुन्दर कहत प्रभु पेट जेर किये हैं ॥ ७ ॥

प्रात ही उठत सब पेट ही की चिंता सब
सब कोऊ जात आपु आपुने अहार कौं।
कोउ अन्न खात पुनि आमिष भषत कोउ
कोउ घास चरत चरत कोउ दार कौं॥
कोऊ मोतीफल कोऊ वास रस पय पान
कोऊ पौंन पीवत भरत पेट भार कौं।
सुन्दर कहत प्रभु पेट ही भ्रमाये सब
पेट तुम दियौ है जगत हौन ख्वार कौं॥ ८ ॥

इन्दव

पेट हि कारण जीव हतै बहु पेट हि मांस भषै रु सुरापी।
पेट हि लै करि चौरी करावत पेट हि कौं गठरी गहि कापी॥
पेट हि पासि गरे मंहिं डारत पेट हि डारत कूप हु वापी।
सुन्दर काहे कों पेट दियौ प्रभु "पेट सौ और नहीं कोउ पापी" ॥ ९ ॥
औरन कौं प्रभु पेट दिये तुम तेरै तौ पेट कहूं नहिं दीसै।
ये भटकाइ दिये दश हूं दिशि कोउक रांधत कोउक पीसै॥
पेट हि कारन नांचत है सब ज्यौं घर ही घर नाचत कीसै।
सुन्दर आपु न खाहु न पीवहु कौंन करो इन ऊपर रीसै॥ १० ॥

---

(७) जेर=आधीन (फा०)

(८) आमिष=मांस। दार=दाल, दला अन्न। मोती फल=मुक्ता फल, जैसे हंस मोती को खाता है। ख्वार=(फा०) खराब करने को, ज़लील करने को।

(९) सुरापी=मदिरा पिई। कापी=काटी, गठकटापन किया। पासि गरे मंहि डारत=ठग लोग गले में रस्सी डाल आदमियों को मार कर लूटकर जमीन में गाड़ देते थे (देखो तांतिया भील का किस्सा) वापी=बावड़ी।

(१०) कीसै=बंदर। रीसै=रीस, क्रोध।

मनहर

काहे कौ काहु कै आगैं जाइ कै आधीन होइ
दीन दीन वचन उचार मुख कहते।
जिनकै तौ मद अरु गरव गुमान अति
तिनकै कठोर बैन कबहुं न सहते॥
तुम्हरे हिं भजन सौं अधिक लै लीन अति
सकल कौं त्यागि कै एकंत आइ गहते।
सुन्दर कहत यह तुमही लगायौ पाप
"पेट न हुतौ तौ प्रभु बैठि हम रहते" ॥ ११ ॥

पेट ही कै वसि रंक पेट ही कै वसि राव
पेट ही कै वसि और खान सुलतान है।
पेट ही कै वसि योगी जंगम संन्यासी शेष
पेट ही कै वसि बनवासी खात पांन है॥
पेट ही कै वसि ऋषि मुनि तपधारी सब
पेट ही कै वसि सिद्ध साधक सुजांन है।
सुन्दर कहत नहिं काहू कौ गुमान रहै
पेट ही कै वसि प्रभु सकल जिहांन है ॥ १२

॥ इति अधीर्य उराहने कौ अंग ॥ ६ ॥

अथ विश्वास कौ अंग (७) ॥

इन्दव

होहि निचिंत करै मत चिंत हि चंच दई सोई चिंत करैगौ।
पांव पसारि परयौ किन सोवत पेट दियौ सोइ पेट भरैगौ॥

---

(११) गहते=गहन वन-एकांत वासी बने रहते। बैठे रहते=परिश्रम और भागदौड़ हमें न करनी पड़ती। बैठे २ भजन किया करते।

(१२) गुमान=घमंड, गर्व।

जीव जिते जलके थल के पुनि पाहन में पहुंचाइ धरैगो।
भूपहि भूप पुकारत है नर सुन्दर तू कहा भूप मरैगो ॥ १ ॥
धीरज धारि विचार निरन्तर तोहि रच्यौ सुतौ आपु हि ऐहै।
जतक भूप लगी घट प्राण हि तेतक तू अनयासहि पै है ॥
जौ मन मैं तृष्णा करि धावत तौ तिहुं लोक न पात अवै है।
सुन्दर तू मति सोच करै कछु चंच दई सोइ चूनि हु दै है ॥ २ ॥
नैकु न धीरज धारत है नर आतुर होइ दशौ दिश धावै।
ज्यौं पशु पंखि तुडावत वंधन जौं लग नीर न आव हि आवै ॥
जानत नाहिं महामति मूरप जा धरि द्वार धनी पहुचावै।
सुन्दर आपु कियौ घढि भाजन सो भरि है मति सोच उपावै ॥ ३ ॥
भाजन आपु घढ्यौ जिनि तौ भरिहै भरिहैं भरिहैं भरिहै जू।
गावत है तिनकै गुन को ढरिहै ढरिहैं ढरिहै ढरिहै जू ॥
सुन्दरदास सहाइ सही करि हैं करि हैं करि हैं करि है जू।
आदि हु अंत हु मध्य सदा हरि है हरि है हरि है हरि है जू ॥ ४ ॥
काहे कौं दौरत है दश हू दिशि तू नर देषि कियौ हरि जू कौ।
वैठि रहै दुरिकैं मुख मूदि उघारि कैं दांत, पवाइ है टूकौ ॥

---

(२) ऐ हैं=आवैगा, पोषण करने को बिना ही बुलाये दया करके आये बिन नहीं रहैगा अवश्य ही। अनयास=अनायास, बिना परिश्रम, स्वयम् ही स्वतः। चूनि=चून, आटा (भोजन को)।

(३) जौं लग=जबतक। जा धरि द्वार=आप ही ले जाकर घर के दरवाजे तक। धनी=धणी, स्वामी। घढि=घड़ कर, बना कर। भाजन=बरतन, शरीर।

(४) "भरि" आदि शब्दों की पुनरुक्ति अर्थ और प्रयोजन को बलवान करने का निश्चय दृढ़ाने को है। ढरि=दयार्द्र होंगे। कृपा करैंगे। सही=निश्चय।

गर्भ थकै प्रतिपाल, करी जिन होइ रह्यौ तब तू जड मूकौ।
सुंदर क्यौं बिललात फिरै अब राषि हृदै बिसवास प्रभू कौ ॥ ५ ॥

जा दिन तैं गर्भवास तज्यौ नर आइ अहार लियौ तब ही कौ।
पात हि पात भये इतने दिन जानत नांहि न भूंछ कहीं कौ ॥
दौरत धावत पेट दिपावत तू सठ कीट सदा अंत ही कौ।
सुंदर क्यौं बिसवास न राषत सो प्रभु बिश्व भरै कबही कौ ॥ ६ ॥

पेचर भूचर जे जल के चर देत अहार चराचर पौषै।
वे हरि जू सब कौं प्रतिपालत जो जिहिं भांति तिसी बिधि तोषै ॥
तूं अब क्यौं बिसवास न राषत भूलत है कत धोषै हि धोषै ॥
तोहि तहां पहुंचाइ रहे प्रभु सुंदर बैठि रहै किन ओषै ॥ ७ ॥

मनहर

काहे कौं बघूरा भयौ फिरत अज्ञानी नर
तेरै तौ रिजक तेरै घर बैठैं आइहै।
भावै तूं सुमेर जाहि भावै जाहि मारू देश
जितनोंक भाग लिष्यो तितनोंई पाइहै ॥
कूप मांझ भरि भावै सागर कै तीर भरि
जितनोंक भांडौ नीर तितनौं समाइहै।

---

(५) कियौ=काज किया हुआ, करतब। गर्भ थकै=गर्भवास से लगाकर। मूकौ=मूक, बिना बाणी।

(६) गर्भ शब्द ग्रभ पढ़ा जाना चाहिये, गण के ठीक करने को। भूंछ=बेडौल, मूर्ख। कीट=कीड़ा। सो प्रभु=वह प्रभु ऐसा है कि, उस ऐसे प्रभु का जो कि, कबही कौ=न जाने किस काल से, सदा ही से जिस को हम अब के पैदा हुये क्या जान सक्ते हैं।

(७) तोषै=तुष्ट, प्रसन्न हो। तहां पहुंचाइ=जहां तू है वहीं भोजन पहुचावेगा अवश्य। ओषै=ओट में, किसी स्थान में।

ताही तें संतोष करि सुंदर विश्वास धरि
जिन तौ रच्यो है घट सोई अमराइहै ॥ ८ ॥

काहे कौं करत नर उद्यम अनेक भांति
जीवनौ है थोरौ तातें कल्पना निवारिये ।
साढे तीन हाथ देह छिनक में छूटि जाइ
ताके लिये ऊंचे ऊंचे मंदिर संवारिये ॥
माल हू मुलक भये तृपति न क्यौंही होइ
आगे ही कौं प्रसरत इंद्री क्यौं न मारिये ।
सुंदर कहत तोहि बावरे समझि देषि
"जितनीक सोरि पांव तितने पसारिये" ॥ ६ ॥ *

काहे कौं फिरत नर दीन भयो घर घर
देषियत तेरौ तौ अहार एक सेर है ।
जाकौ देह सागर में सुन्यौ सत जोजन कौ
ताहू कौं तौ देत प्रभु या में नहिं फेर है ॥
भूषौ कोउ रहत न जानिये जगत माहिं
कीरी अरु कुंजर सबनि हीं कौ दे रहै ।
सुंदर कहत तू विश्वास क्यौं न राषै शठ
वार वार संमुझाइ कह्यौ केती बेर है ॥ १० ॥

---

(८) वघूरा=भभूला पवनका, भूत प्रेत । अमराइ=अमर, अटल, विन घट बढ के होता है ।

* यह ९ वां छंद मूल (क) वा (ख) पुस्तकों में नहीं है । अन्य पुस्तकों में मिला सो यहां लिख दिया है ।

जितनीक सौर=सौड, सौडक, जितनी सी बडी हो उतने ही पाव पसारना उचित है, अधिक बढ़ाना कुछ फल नहीं देता है (मुहाविरा) ।

(१०) दे रहै=देता रहता है ।

तेरै तो अधीरज तू आगिली ही चित करै
आज तौ भर्‌यौ है पेट कालिह कैसी होइहै।
भूषौ ही पुकारै अरु दिन उठि पातौ जाइ
अति ही अज्ञानी जाकी मति गई पोइ है।
ताकौं नाहि जानै शठ जाकौ नाम विश्वम्भर
जहां तहां प्रगट सबनि देत सोइ है।
सुंदर कहत तोहि वाकौ तौ भरोसौ नांहि
एक विसवास बिन याही भांति रोइ है॥ ११॥
देषियौं सकल विश्व भग्त भरनहार
चूच कै समान चूनि सवही कौं देत हैं।
कीट पशु पषि अजगर मच्छ कच्छ पुनि
उनकै न सौदा कोऊ न तौ कछु पेत है॥
पेट ही कै काज रात दिवस भ्रमत सठ
मैं तौ जान्यौ नीकै करि तूतौ कोऊ प्रेत है।
मानुष शरीर पाइ करत है हाइ हाइ
सुन्दर कहत नर तेरै सिर रेत है॥ १२॥
तू तौ भयौ बावरौ उतावरौ फिरत अति
प्रभु कौ विश्वास गहि काहे न रहतु है।
तेरौ तो रिजक है सु आइ है सहज मांहि
यौंहि चिंता करि करि देह कौं दहतु है॥
जिनि यह नख शिख साजि कै संवार्‌यौ तोहि
अपने किये की वह लाज कौं वहतु है।

(११) सोइ है=वह ही (देता) है।

(१२) रेत=धूल, मिट्टी। सिर धूल देना (मुहाविरा है) धिक्कार देना।

काहे कौं अज्ञानी कछु सोच मन माहिं करै।
भूखौ तूं कबै न रहै सुन्दर कहतु है ॥ १३ ॥
जगत में आइ तैं बिसार्‍यौ है जगतपति
जगत कियौ है सोई जगत भरतु है।
तेरैं चिंता निश दिन औरई परी है आइ
उद्यम अनेक भांति भांति के करतु है॥
इत उत जाइकैं कमाइ करि ल्याऊं कछु
नेकु न अज्ञानी नर धीरज धरतु है।
सुन्दर कहत एक प्रभु कौ बिश्वास बिन
बादि कै वृथा ही सठ पचि कै मरतु है ॥ १४ ॥

॥ इति विश्वास को अंग ॥ ७ ॥

अथ देह मलीनता गर्व प्रहार कौ अंग (८) ॥

मनहर

देह तौ मलीन अति बहुत बिकार भरे
ताहू मांहिं जरा व्याधि सब दुःख रासी है।
कबहूंक पेट पीर कबहूंक सिर बाहि
कबहूक आंखि कांन मुख में बिथासी है॥
औरऊ अपने रोग नख शिख पूरि रहे
कबहूक स्वास चले कबहूंक पासी है।

---

(१३) दहतु है=जलाता है, दुःख पाता है। बहतु है=निबाहता है। सुन्दर कहतु है=यह कहना उस सुन्दरदास का है, जिसको अपने निज के अनुभव से सतोष की महिमा निश्चित हो चुकी है।

(देह मलीनता) देहकी मलिनता की ओर विचार को खींचकर देह के अभिमान का निवारण करते हैं। यहाँ देह जड़ और अनित्य वस्तु को क्षणिक न समझ कर मनुष्य भूले रहता है और इस पर भी घमंड रखता है, विवेक शून्य बन जाता है।

ऐसौ या शरीर ताहि आपनौ कै मानत है

सुन्दर कहत या मैं कौंन सुखरासी है ॥ १ ॥

जा शरीर माहि तू अनेक सुख मानि रह्यौ

ताही तूं बिचारि यामैं कौंन बात भली है।

मेद मज्जा मास रग रगनि माहिं रकत

पेट हू पिटारी सी मैं ठौर ठौर मली है॥

हाडनि सौं मुख भर्‌यौ हाड ही कै नैंन नाक

हाथ पाव सोऊ सब हाड ही की नली है।

सुन्दर कहत याहि देषि जिनि भूलै कोइ

भीतरि भगार भरि ऊपर तें कली है ॥ २ ॥

इन्दव

हाडकौ पिंजर चाम मढ्यौ सब, माहिं भर्‌यौ मल मूत्र बिकारा।

थूक रु लार परै मुख तें पुनि व्याधि बहै सब औरहु द्वारा॥

माम की जीभ सौं षाइ सबै कछु ताहि तें ताकौ है कौन बिचारा।

ऐसे शरीर मैं पैसि कै सुन्दर कैसैक कीजिये सुच्य अचारा ॥ ३ ॥

थूक रु लार भर्‌यौ मुख दीसत आंषि मैं गीज रु नाक मैं सेंढौ।

औरऊ द्वार मलीन रहै नित हाड के मास के भीतरि बैठौ॥

ऐसे ही निराधार मिथ्या भ्रम को दूर कर विवेक की स्थापना मलिन काया में ग्लानि को उत्पन्न कर के, करते हैं।

(१) 'भर' का सम्बन्ध आगे के चरण में 'ताहूमाहि से है। ज्यान=बुरुप। च्या[?]=कष्ट क्लेश, दुःख। रगौ=समूह। सिर बाहि=माथा पकड़ कर। वा शिरमें दर्द। विपर्ग=व्यथा रोगवाला दुःख सा। पूरि रहे=भरे हैं। शरीर रोग का धर है।

(२) रकत=रक्त, रुधिर। मली=मैल। भगार=भखार, तुच्छ पदार्थ।

(३) व्याधि बहै=रोगवाला दुःख बहता है, होता है। सुच्य=शौच, शुद्ध।

ऐसैं शरीर में बास कियौ तब एक से दीसत बांभन ढेढौ।
सुन्दर गर्व कहा इतने पर "काहे कौं तूं नर चालत टेढौ" ॥ ४॥
जा दिन गर्भ संयोग भयौ जब ता दिन वून्द छिपाहुति तांही।
द्वादश मास अधो मुख भूलत बूडि रह्यौ पुनि वारस मांहीं॥
ता रज बीरज की यह देह सु तू अब चालत देषत छांहीं।
सुन्दर गर्व गुमान कहा सठ आपुनि आदि बिचारत नांहीं॥ ५॥

॥ इति देह मलीनता गर्व प्रहार को अंग ॥ ८ ॥

अथ नारी निंदा को अंग (९)॥

मनहर

कामिनी की देह मानौं कहिये सघन वन
उहां कोऊ जाइ सु तौ भूलि कैं परतु है।
कुंजर है गति कटि केहरि को भय जामैं
वेनी काली नागनीऊ फन कौं धरतु है॥
कुच है पहार जहां काम चोर रहै तहां
साधिकै कटाक्ष बान प्रान कौं हरतु है।
सुन्दर कहत एक और डर अति तामैं
राक्षस बदन षांऊं षांऊं ही करतु है॥ १॥

(४) गीज=गीड़, आंख का मैल। सेढौ=सीट, नाक का मैल। वेढौ=बखेड़ा, भाड़-भखड़, बीहड़। बन, जंगल। बामन=ब्राह्मण। ढेढौ=ढेढ, अंत्यज।

(५) छिपाहुति तांही=छिपा हुआ था उस स्थान (मद) में। द्वादश मास=अवधि प्रायः नौ महीने की है, परन्तु प्रसंग से १२ महीने कहे हैं। वा रस मांहिं=रज और रक्त मिले तरल पदार्थ में-जो उस शिशु की खूराक होती है। देषत छांहीं=अपने शरीर की छाया देख-देख गर्व करता हुआ।

(नारी निंदा-छंद १) इस छन्द में स्त्री के शरीर को एक भयानक घने जंगल

विष ही की भूमि मांहिं विष के अंकूर भये
नारी विष वेलि बढी नख शिख देषिये।
विष ही के जर मूल विष ही के डार पात
विष ही के फूल फर लागे जू विशेषिये॥
विष के तंतू पसारि उरझाये आंटी मारि
सब नर वृक्ष पर लपटी ही लेषिये।
सुन्दर कहत कोऊ एक तरु बचि गये
तिन कै तौ कहुं लता लागी नहीं पेषिये॥ २॥

उदर में नरक नरक अधद्वारनि में
कुचन में नरक नरक भरी छाती है।
कंठ में नरक गाल चिबुक नरक बिंब
मुख नें नरक जीभ लार हू चुचाती है॥
नाक में नरक आंषि कांन में नरक बहै
हाथ पांव नख शिख नरक दिपाती है।
सुन्दर कहत नारी नरक को कुंड यह
नरक में जाइ परै सो नरक पाती है॥ ३॥

से उपमा देकर रूपक बांधा है। वेनी=केश की बंधी हुई चोटी। फन=झब्बा जो चोटी के छोर पर लटकाया जाता है उसको 'डोरी' भी कहते हैं। यही सांपनी का फण है मानों। राक्षस बदन=राक्षस का सा भक्षण-शील मुख, जिसके देखने से ही कामी पुरुष शिकार हो जाता है, यही उसका खाऊं खाऊं पना समझिये।

(२) नारी को विषवृक्ष वा वेल वा विषकन्या कहा है। जर=जड़। फर=फल तंतू=भुजाएं। एक तरु=सतजन।

(३) बिम्ब=होंठ, बिम्बफल समान लाल कोमल मीठे। चुचाती=टपकती।

(३) दिपाती है=दिखलाई देते हैं। नरक-पाती=नरक-गामी। (पाती= पड़नेवाला)।

कामिनी कौ अंग अति मलिन महा अशुद्ध
रोम रोम मलिन मलिन सब द्वार हैं।
हाड मांस मज्जा मेद चाम सौं लपेट राषे
ठौर ठौर रकत के भरेई भंडार हैं॥
मूत्र ऊ पुरीष आंत एक मेक मिलि रही
और ऊ उदर माहिं विविध विकार हैं।
सुन्दर कहत नारी नख शिख निंद रूप
ताहि जे सराहैं तेतौ बडेई गंवार हैं॥ ४॥

कुण्डलिया

रसिक प्रिया रस मंजरी और सिंगार हि जानि।
चतुराई करि बहुत विधि विषै बनाई आंनि॥
विषै बनाई आनि लगत विषयिन कौं प्यारी।
जागै मदन प्रचण्ड सराहैं नख शिख नारी॥
ज्यौं रोगी मिष्टान्न पाइ रोगहि विस्तारै।
सुन्दर यह गति होइ जुतौ रसिक प्रिया धारै॥ ५॥

---

(४) निंद रूप=निंदा के योग्य आकार वा शरीर वाली। निंद्य-रूपा।

(५) रसिक-प्रिया=महाकवि केशवदासजी का रचा रसकाव्य वा नायिकाभेद का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। केशवदासजी का समय १६१२ से १६७४ तक का है। रसिक प्रिया ग्रन्थ के सिवा इनका रचा "नखशिख' भी है। सुन्दरदासजी ने इन के रसग्रन्थों पर कटाक्ष ही नहीं किया है वरन रसिकता का पूर्ण खण्डन कर दिया है। रसमंजरी-संस्कृत का रसकाव्य ग्रन्थ। इस ही का अनुवाद 'सुन्दर शृंगार' काव्य है जिसका नामोल्लेख यहां सुन्दरदासजी ने किया है। आगरानिवासी सुन्दर कविने यह ग्रन्थ संवत् १६८८ में बनाया था। भाषा में रसमंजरी उस समय या पहिले का कोई ग्रन्थ नहीं जाना गया। विषै बनाई आनि=विषय (रसिकता) को लेकर सुन्दररूप दे दिया जो वास्तव में महाविष हैं। स्त्रीलिंग क्रिया में चिन्त्य है। इसका झुकाव उक्त

रसिक प्रिया कै सुनत ही उपजै बहुत विकार।
जो या मांही चित्त दे बहै होत नर ख्वार॥
बहै होत नर ख्वार बार तौ कछुव न लागै।
सुनत विषय की बात लहरि विष ही की जागै॥
ज्यौं कोइ ऊंघे हुतौ लह्यौ पुनि सेज बिछाई।
सुन्दर ऐसी जानि सुनत रसिक प्रिया भाई॥ ६॥

॥ इति नारी निंदा कौ अंग ॥ ६ ॥

अथ दुष्ट कौ अंग (१०)॥

मनहर

आपनै न दोष देषै परके औगुन पेषै
दुष्ट कौ सुभाव उठि निंदाई करतु है।
जैसें काहू महल संभारि राप्यौ नीकै करि
कीरी तहा जाइ छिद्र ढूंढ़त फिरतु है॥
भोर ही तें सांझ लग सांझ ही तें भोर लग
सुन्दर कहत दिन ऐसें ही भरतु है।
पाव के तरोस को न सूझै आगि मूरष कौं
और सौं कहत सिर ऊपर बरतु है॥ १॥

ग्रन्थों की ओर भी है जिनमें प्रथम दो स्त्रीवाची है। प्रारै=पढ़ै विचारै और उसमें रत हो जाय।

(६) ऊंघै=ऊंघतो। "ऊंघै छोर बिछायो लाघ्यो" प्रसिद्ध कहावत है। रसिकों को ऐसा वा ऐसे रसिकता के ग्रन्थ मिल जाय फिर करेला और नीम चढा। बावली बाई भूतों खदेडी हो जाय।

(१) तरोस=तळे, नीचे (जैसे पढोरा। न सूझै=अपना दोष तो आप को दीखै नही दूसरों का दोष दिखाता फिरै। (मुहाविरे हैं)।

इन्दव

घात अनेक रहैं उर अंतर दुष्ट कहै मुख सौं अति मीठी।
लोटत पोटत व्याघ्र हि त्यौं नित ताकत है पुनि ताहि की पीठी॥
ऊपर तें छिरकै जल आनि सु हेठ लगावत जारि अंगीठी।
या महिं क्रूर कछू मति जानहुं सुन्दर आंपुनि आंखिन दीठी॥ २॥
आपुन काज संवारन के हित और को काज बिगारत जाई।
आपुन कारज होउ न होउ बुरौ करि और कौ डारत भाई॥
आपुहु षोवत औरहु षोवत षोइ दुवौं घर देत बहाई॥
सुन्दर देषत ही बनि आवत दुष्ट करै नहिं कौंन बुराई॥ ३॥
ज्यौं नर पोषत है निज देह हि अन्न बिनाश करै तिहि बारा।
ज्यौं अहि और मनुष्य हि काटत वाहि कछू नहिं होइ अहारा॥
ज्यौं पुनि पावक जारि सवै कछु आपुहु नाश भयौ निरधारा।
त्यौं यह सुन्दर दुष्ट सुभाव हि जानि तजौ किन तीन प्रकारा॥ ४॥
सर्प डसै सु नहीं कछु तालक बीछू लगै सु भलौ करि मानौ।
सिंह हु षाइ तौ नांहि कछू डर जौ गज मारत तौ नहिं हांनौ॥
आगि जरौ जल बूडि मरौ गिरि जाइ गिरौ कछु भै मति आंनौ।
सुन्दर और भले सब ही दुख दुर्जन संग भलौ जिनि जानौ॥ ५॥

॥ इति दुष्ट कौ अंग ॥ १० ॥

---

(२) व्याघ्र=चीता। "अधिक नवत है ढींकली, चीता, चोर, कमान"। पीठी=पीठ (पीठनाकना दूसरे से दगा करना।) हेठ लगावत...'आग लगाकर पानी को दौड़ना"। (३) तीन प्रकार के पिशुन यहां वर्णन किये हैं जो उत्तम, मध्यम, कहे जा सकते हैं। (४) अन्न=अन्य, दूसरा मनुष्य। तिहिं बारा=तत्काल, तुरन्त। सबै कछु...दूसरे के सर्वस्व का और अपना भी नाश। इस में तीनों प्रकार के दुष्टों के उदाहरण दिये हैं।

(५) तालक=तअल्लुक (अ०) लगाव, कुछ नुकसान का खयाल (मत करो)

अथ मन कौ अंग (११)॥

मनहर

हटकि हटकि मन राषत जु छिन छिन
सटकि सटकि चहुं वोर अब जात है।
लटकि लटकि ललचाइ लोल वार वार
गटकि गटकि करि विष फल षात है॥
भटकि भटकि तार तौरत करम हीन
भटकि भटकि कहुं नैकु न अघात है।
पटकि पटकि सिर सुन्दर जु मानी हारि
फटकि फटकि जाइ सुधौ कौंन बात है॥ १॥

पलु ही मैं मरि जात पलु ही मैं जीवत है
पलु ही मैं पर हाथ देषत विकानौ है।
पलु ही मैं फिरै नव खडहु ब्रह्मण्ड सब
देष्यौ अनदेष्यौ सुतौ यातै नहिं छानौ है।
जातौ नहि जानियत आवतौ न दीसै कछु
ऐसौ सौ वलाइ अब तासौ पर्यौ पानौं है।

हानौ=हानि। इस छदमें दुष्ट पुरुष के ससर्ग को अन्य महादुखो और नारक कर्मो वा कारणों से भी बहुत हानिकारक बताया है। अर्थात् दुष्ट का ससर्ग कभी नहीं करना चाहिये।

(११ वां अग) मन के अग मे मन के लक्षण, स्वभाव, शक्ति, अवगुण, गुण महिमा सब वर्णन किये गये हैं। यह महान् शक्ति, मनुष्य के शरीर में है। यह आत्मा का प्रतिभास है। इस से बुरा होना चाहो बुरा हो लो, भला होना चाहो भला हालो। "मन एव मनुष्याणां कारणम् बधमोक्षयो"। इसही से बधन और इसही से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। (देखो भागवत् एकादश स्कध भिक्षु गीता)।

(१) हटकि=रोककर, मना करके। सटकि=खटसे निकल जाता है)।

सुन्दर कहत याकी गति हू न लषि परै

"मनकी प्रतीति कोऊ करै सो दिवांनौं है" ॥ २ ॥

घेरिये तो घेर्‌यो हू न आवत है मेरो पूत

जोई परमोधिये सु कान न धरतु है।

नीति न अनीति देषै शुभ न अशुभ पेषै

पलु ही मैं होती अनहोती हु करतु है॥

गुरु की न साधु की न लोक वेद हू की शंक

काहू की न मानै न तो काहू तें डरतु है।

सुन्दर कहत ताहि धीजिये सु कौंन भांति।

"मन को सुभाव कछु कह्यौ न परतु है" ॥ ३ ॥

काम जब जागै तब गनत न कोऊ साप

जानै सब जोई करि देषत न माथी है।

क्रोध जब जागै तब नैकु न संभारि सकै

ऐसी विधि मूलकी अविद्या जिनि साधी है।

लहकि=बड़े चाव से लचक २ कर। लोल=चचल। तार तोरत=एकाग्रता लगी हुई को बिगाड़ देता है। करमहीन=मदभागी। पटकि सिर=सिर मार कर, बहुत पचकर। फटकि=फटकारे से, बेबसी वा बेपरवाही से। सुधौं=इस तरह की, इस ढग की (यह क्या बात है, अर्थात् अचरज है)।

(२) मरि जात=वृत्तिरहित, वश में आजाता है। पर हाथ=प्रेमवश होकर दूसरे पुरुष वा स्त्री में जा बैठता है। अनदेख्यो=इसकी विशालता ऐसी है कि स्वप्न में या योगदृष्टि से अज्ञात पदार्थ भी जान सकता है। पानौं परयो=पाला पड़ना, काम पड़ना।

(३) मेरो पूत="म्हारो बेटो" यह (रजवाड़ी भाषा में) तर्ज भरी बोली है। इसमें कुछ जबरदस्तपने, अलहदता आदि का भाव है। कान न धरतु=सुनता नहीं। होती अनहोती=सत्कर्म, अकर्म। सहज या असम्भव।

लोभ जब जागै तब त्रिपत न क्यौंहूं होइ
सुन्दर कहत इनि ऐसे हि में पाधी है।
मोह मतवारो निश दिन हि फिरत रहै
"मन सौ न कोऊ हम देष्यौ अपराधी है" ॥ ४ ॥

देषिवे कौं दौरै तो अटकि जाइ वाही वोर
सुनिवे कौं दोरै तो रसिक सिरताज है।
सूघवे कौं दौरै तो अघाइ न सुगंध करि
पाइवे कौं दोरै तो न धापै महाराज है॥
भोग हू कौं दौरै तो तृपति नहीं क्यौं हूं होइ
सुन्दर कहत याहि नैकहूं न लाज है।
काहू को कह्यो न करै आपुनी ही टेक परै
"मन सौ न कोऊ हम जान्यो दगाबाज है" ॥ ५ ॥

देषै न कुठौर ठौर कहत और की और
लीन जाइ होत हाड मांस. ऊ रगत मैं।
करत बुराई सर औसर न जानै कछु
धका आइ देत राम नाम सौं लगत मैं॥
याहे, सुर असुर वहाये सब भेष जिनि
सुंदर कहत दिन घालत भगत मैं।

---

(४) साप=सम्बन्ध, रिश्तेदारी। मा धी=माता वा युवती। महापाप का मति होने से विवेकशून्यता का वर्णन है। मूल की अविद्या=मूला माया, वा घोर मूर्खता। पाधी=खाया, ग्रहण किया। अर्थात् लोभवश ही लीन अलीन का विवेक जाता रहता है।

(५) महाराज=बड़ा जबरदस्त बलवान (यह तंज़ से कहा है) टेक परै=हठ करै। दगाबाज=बेईमान, धोखेबाज, दुष्ट।

और ऊ अनेक अंतराय ही करत रहै
"मन सौ न कोऊ है अधम या जगत मैं" ॥ ६ ॥
जिनि ठगे शंकर विधाता इन्द्र देव मुनि
आपनौ ऊ अधपति ठग्यौ जिनि चन्द है।
और योगी जंगम संन्यासी शेष कौन गनै
सब ही कौं ठगत ठगावै न सुछन्द है॥
तापस ऋषीश्वर सकल पचि पचि गये
काहू कै न आवै हाथ ऐसौ या पै वंद है।
सुंदर कहत बसि कौन विधि कीजै ताहि
"मन सौ न कोऊ या जगत माहि रिन्द है" ॥ ७ ॥
रङ्क कौं नचावै अभिलाषा धन पाइबे की
निश दिन सोच करि ऐसैं ही पचत हैं।
राजाहि नचावै सब भूमि ही को राज लेव
औरउ नचावै कोई देह सौं रचत है॥
देवता असुर सिद्ध पन्नग सकल लोक
कीट पशु पंषी कहु कैसैं कै बचत हैं।
सुंदर कहत काहू संत की कही न जाइ
"मन कै नचाये सब जगत नचत हैं" ॥ ८ ॥

(६) लीन=लिप्त अनशा न करैं। सर औसर=वक्त बे वक्त, समय कुसमय। धका आइ देत=हटा देता है-जब भगवान में भक्ति की लगन होने लगती है तब। बाहे=हानि पहुंचाई। बहाये=काली धार डुबो दिये। अर्थात् सन्मार्ग से हटाकर कुमार्ग मे लगा दिये। दिन घालत=(मुहाविरा) दुःख पहुंचाता है। अंतराय=विघ्न।

(७) अधिपति=स्वामी-मनका स्वामी चन्द्रमादेव है। या पै बंद है=इसके पास ऐसे पेच हैं। अर्थात् बड़ा चलाक है। रिंद (फा॰)=बदमाश, शैतान। असल में रिंद फकीर अवधूतको कहते हैं। (८) नचावै=जैसे बाजीगर बंदर को

इन्दव

केतक द्यौस भये संमुझावत नंकु न मांनत है मन भौंदू।
भूलि रह्यौ विषया सुख मैं कछु और न जानत है सठ दौंदू॥
आपि न कांन न नाक बिना सिर हाथ न पांव नहीं मुख पौंदू।
सुन्दर ताहि गहै कोउ क्यौं करि नीकसि जाइ घडौ मन लौंदू॥ ९॥
दौरत है दश हूं दिश कौं सठ वायु लगी तब तैं भयौ वैंडा।
लाज न कान कछू नहिं रापत शील सुभावकि फोरत मैंडा॥
सुंदर सीष कहा कहि देइ भिदै नहिं बांन छिदै नहिं गैंडा।
लालच लागि गयौ मन बीपरि बारह बाट अठारह पैंडा॥ १०॥
स्वान कहूं कि शृगाल कहूं कि बिडाल कहूं मन की मति तैसी।
ढेढ कहूं किधौं डूम कहूं किधौं भांड कहूं कि भंडाइ दे जैसी॥

नाच नचावै। अपने वश में करके जो चाहे सो ही भला बुरा काम करावै। ससारी जाल में फसाये रक्खै।

(९) भौंदू=मूर्ख। दौंदू=दौंदा एक कव्वा होता है, इस अर्थ में नीच वा और न जानत है शठ दौंदू=अन्य कार्य (तत्कार्य) करना जानता नहीं। वा—तौंद तूद फुलानेवाला पेटभर, हट्टखव्वा, निठल्ला। पौंदू=पूद, चूतड़, अधोभाग शरीर का वा पांडा सी गर्दन। लौंदू=लौंडा, चालाक। वा लौंदा—मक्खन के समान चिकना वा फिसलना जो हाथ में से खिसक जाय।

(१०) वैंडा=वड, बावरा भांड, टेढ़ा, अकड़ बाका। मैंडा=मेर खेतकी, मर्यादा, हद्द। भिदै नहि वान=वाण से भेदन के योग्य नहीं। छिदै नहीं गैंडा=गैंडे की ढाल शस्त्र से नहीं कट सकती, कटै वहीं फिर भर जाती और वैसी ही हो जाती है। अकाट्य, अच्छेद्य। गयो मन बीपरि=मन बिखर गया, नाना मार्ग वा तरफ चला गया, काबू से बाहर हो गया। बारह बाट= (मुहाविरा) बेकाबू, कपूत, नालायक निकल गया। अठारह पैंडा=और भी बढ़कर बिगाड़ हो गया। नष्ट भ्रष्ट। "बारह बाट अठारह पैंडा"—यह अकेला भी मुहाविरा है अर्थ बिगड़ा वा बिगाड़ू। तितर

चौर कहूं वटपार कहूं ठग जार कहूं उपमा कहुं कैसी।
सुन्दर और कहा कहिये अब या मन की गति दीसत ऐसी॥ ११॥
कै घर तू मन रंक भयौ सठ मांगत भीष दशौं दिश डूल्यौ।
कै घर तैं मन छत्र धर्यौ सिर कामिनि संग हिंडोरनि झूल्यौ॥
कै घर तू मन छीन भयौ अति कै घर तूं सुख पाइर फूल्यौ।
सुंदर कै वर तोहि कह्यौ मन कौंन गली किहिं मारग भूल्यौ॥ १२॥
इन्द्रिनि के सुख चाहत है मन लालच लागि भ्रमैं सठ यौं हीं।
देषि मरीचि भर्यौ जल पूरन धावत है मृग मूरष ज्यौं हीं॥
प्रेत पिशाच निशाचर डोलत भूष मरे नहिं धापत क्यौं हीं।
वायु वघूर हिं कौंन गहै कर सुंदर दौरत है मन त्यौं ही॥ १३॥
कौन सुभाव पर्यौ उठि दौरत अंमृत छाडि चचोरत हाडै।
ज्यौं भ्रमकी हथिनी दृग देषत आतुर होइ परै गज षाडै॥
सुंदर तोहि सदा संमुझावत एक हु सीष लगै नहिं रांडै।
वादि वृथा भटकै निश बासर रे मन तू भ्रमकी किन छांडै॥ १४॥

वितर। "मनही के घाले गये नहि घर बारह बाट"। "नई जवानी बारह बाट"। "हवा लगी ससार की हो गया बारह बाट"· मोह को आदि लेकर बारह मार्ग।

(११) स्वान=श्वान, कुत्ता। श्र्गाल=स्यार, स्याल। विड़ाल=बिलाव, बिल्ली। ढेढ=नीचातिनीच पुरुष। डूम=खुशामदी। भांड=प्रशसा से माँग खाने वाला। भडाइ दे=दूसरों की भांडणी भांडै, बुराई करै।

(१२) कै वर=कितनी बेर। डल्यौ=(रा०) डुला, फिरा। पाइर=(रा०) पाकर। फूल्यौ=फूला न समाया अग में। कौन गली (भूल्यौ। किहिं मारग भूल्यौ=मार्ग भूलना, किस गली जाना=रास्ता भूलकर बेराह होना, गुमराह होना। (मुहाविरे है)। (१३) मरीचि=मरीचिका, मृगतृष्णा का जल। प्रेत—उनकी तरह। कर=हाथ में।

(१४) चचोरत=निचोरता, चूसता है (मु०)। भ्रमकी=बनावटी, धोखेकी। रांडै=सीख रांड नहीं लगती। अथवा रांडका कै सीख नहीं लगती।

है सन कौ सिरमौर ततछिन जौ अभि अंतर ज्ञान विचारै।
जौ कछु और विषै सुख वंछत तौ यह देह अमोलिक हारै।
छाडि कुबुद्धि भजै भगवंत हि आपु तिरै पुनि औरहि तारै।
सुंदर तोहि कह्यौ कितनी घर तू मन क्यौं नहि आपु संभारै ॥ १५ ॥
जौ मन नारिकी वोर निहारत तौ मन होत हैं ताहि कौ रूपा।
जौ मन काहु सौं क्रोध करै जब क्रोधमई होइ जात तद्रूपा॥
जौ मन माया हि माया रटै नित तौ मन बूडत माया के कूपा।
सुन्दर जौ मन ब्रह्म विचारत तौ मन होत है ब्रह्मस्वरूपा ॥ १६ ॥

मनहर

कबहूं कै हंसि उठै कबहूं कै रोइ देत
कबहूं बकत कहुं अंत हू न लहिये।
कबहूंक पाइ तौ अघाइ नहि काही करि
कबहूंक कहै मेरे कछु नहिं चहिये॥
कबहूं आकाश जाइ कबहूं पाताल जाइ
सुन्दर कहत ताहि कैसें करि गहिये।
कबहूंक आइ लागै कबहूं उतारि भागै
"भूत के से चिन्ह करै ऐसौ मन कहिये" ॥ १७ ॥
कबहूं तौ पाप कौ परेवा कै दिपावै मन
कबहूंक धूरि के चांवर करि लेत है।

---

(१५) और (१६) में मन को वास्तविक वस्तु ब्रह्मस्वरूप की ओर ध्यान दिलाया गया है। 'तद्रूपा में तकार द्वित्व नहीं होगा। जिस पदार्थ को अनुभव करै वही वा उस जैसा हो जाना यह आत्मा की शक्ति है यह एक दार्शनिक सिद्धान्त है और बहुत अंश में सत्य है, और शास्त्रों में जगह २ इसका वर्णन है और सिद्धि का यही हेतु है।

कबहूं तौ गोटिका उछारत आकाश वोर
कबहूंक राते पीरे रङ्ग स्याम सेत है॥
कबहूं तो आंब कौ उगाइ करि ठाडौ करै
कबहूं तो सीस धर जुदे करि देत है।
बाजीगर कौ सो ख्याल सुन्दर करत मन
सदाई भ्रमत रहै ऐसौ कोऊ प्रेत है॥ १८॥
कबहूंक साध होत कबहूंक चोर होत
कबहूंक राजा होत कबहूंक रङ्क सौ।
कबहूंक दीन होत कबहूं गुमानी होत
कबहूंक सूधौ होत कबहूंक वंक सौ॥
कबहूंक कामी होत कबहूंक जती होत
कबहूंक निर्मल होत कबहूंक पंक सौ।
मन कौ स्वरूप ऐसौ सुन्दर फटिक जैसौ
कबहूंक सूर होत कबहूं मयंक सौ॥ १९॥

---

(१८) पांख को परेवा=एक पाख हाथ में दिखलाकर हथ फेरी से उसका पक्षी बना कर दिखावे। इस छन्द में मन की बाजीगरी की सी चलाएं दिखाकर समझाया है। धूरि के चांवर=धूल की चुटकी के चावल बना देता है। गोटिका=गोली आकाश में उड़ा देता है। और नाना प्रकार के रङ्ग बदल देता है और उनकी हेर फेर कर देता है। आंब—सखी गुठली को मिट्टी में गाडकर जल छिड़क कर आम का रोंख उगा देता है। सीस धर... किसी पुरुष को कटा दिखा देता है, उसका सिर अलग, धड़ अलग। ऐसा आख्यान तुजुक जहांगीरी में लिखा है और सुना भी जाता है। प्रेत भूत भी ऐसे चहन दिखा देता है, छलावा होकर अनेक अद्भुत भयानक बातें कर देता है। बाजीगर और भूत-प्रेत जगह २ भटका करते हैं। इससे वहां प्रेत को बाजीगर के साथ बताया है।

(१९) गुमानी=घमंडी। फटिक=बिल्लोर जिनके पास जो रङ्ग लाया जाय वैसा ही रङ्ग का हो जाता है। सूर=सूर्य।

हाथी कौ सौ कान किधौं पीपर कौ पान किधौं
ध्वजा कौ उडान कहूँ थिर न रहतु है।
पानी कौ सौ घेरि किधौं पौंन उरफेर किधौं
चक्र कौ सौ फेरि कोऊ कैसैं कै गहतु है॥
अरहट माल किधौं चरषा कौ ष्याल किधौं
फेरि पात बाल कछु सुधि न लहतु है।
धूम कौ सौ धाव ताकौ राषिबे कौ चाव ऐसौ
मन कौ सुभाव सु तौ सुन्दर कहतु है॥ २०॥

सुख मानै दुख मानै सम्पति विपति मानै
हर्ष मानै शोक मानै मानै रङ्क धन है।
घटि मानै बढि मानैं शुभ हू अशुभ मानै
लाभ मानै हानि मानै याही तें छपन है॥
पाप मानै पुन्य मानै उत्तम मध्यम मानै
नीच मानै ऊंच मानै मानै मेरौ तन है।
स्वरग नरक मानै बन्ध मानै मोक्ष मानै
सुन्दर सकल मानै तातैं नांउं मन है॥ २१॥

---

(२०) पानी कौ सो घेरि=भंवर। अहर नदी का। उरफेर=बघूरा, भभूला। ष्याल=फिरने की घटना, या चरखी जिसका बालकों का खिलौना होता है। धूम कौ सो धाव=धुवां आग से निकल कर ऊंची उठ फैलती है और फिर विलायमान हो जाती है वैसे। राषिबे को चाव=इसका सन्बन्ध धुवां से होतो यह अर्थ हो कि धुवां रोक रखना जैसा कठिन है वैसे ही मन का रोकना है। और जो इसका सम्बन्ध मन के वर्णित लक्षणों और स्वभावों के साथ हो तो यह अर्थ हो कि मनको बश करने की लालसा एक साधारण बात नहीं है। क्या ऐसे दुर्दम मनरूपी प्रबल पिशाच को कैद करने का चाव है, क्या इसका चाव? यह प्रश्न करने से अभिप्राय सूचना। ऐसा स्वभाव मनका है, आप इसको मामूली न जानें।

(२१) इस में "मन" इस शब्द की व्युत्पत्ति को दिखाते हैं कि मन यह

नाम इसको क्यों दिया गया ? रङ्क=दीन, दरिद्र। धन=धनाढ्यता। मानै मेरो तन है=मन शरीर से पृथक् होने पर भी शरीर में ममता होना अज्ञान है। यही अविवेक और इनको पृथक २ मानना ही विवेक है। नाउ=नाम (यह) मन यह नाम क्यों है, इसका कारण बताया है मन शब्द सं० मनम् का भाषारूप है। और मन

शब्द की "मन्यते अनेन इति मन मन् वरणे असुन्"-यह व्युत्पत्ति है। जिस से मानने का काम हो, जो मानने का कारण वा साधन वा औजार हो, सो ही मन। वैशेषिक शास्त्र में मन को संकल्प विकल्प रूपी अणु (जो अत्यन्त सूक्ष्म और देखने में न आवै) शक्ति, आत्मा से पृथक् कहा है, क्योंकि इस को द्रव्य माना गया है और आत्मा द्रव्य नहीं है। संख्या, परिणाम, पृथकत्व, संयोग, वियोग, परत्व, अपरत्व, संस्कार-ये आठ इस के गुण कहे हैं। ज्ञान और कर्म दोनों धर्म इस में हैं। यह अंतःकरणचतुष्टय का एक विभाग वेदांत में है—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। परन्तु योग में मन ही का नाम चित्त कहा है। जैन और बौद्ध शास्त्रों में मन को छठी इंद्रिय कहा गया गया है। उपनिषदों मे मन का बहुत वर्णन है। मन को इंद्रियों का राजा और रथी और प्रेरक और ब्रह्म ही कहा है। इत्यादि यों शास्त्रों में मन के सम्बन्ध में भांति २ का विचार हुआ है। यह आभ्यन्तर शक्ति है जिसके गुण, कर्म, लक्षण, धर्म आदि से जैसा ज्ञानियों का प्रतीत हुआ वैसा ही लिखा है। इसमे कुछ भी सन्देह नहीं कि यह हमारे अन्दर एक महान् शक्ति है। इसका एक लोक या राज्य वा पृथक् अधिकार मानना उचित है। चार शरीरों-स्थूल, सूक्ष्म, कारण और प्रत्यक्—से यह एक शरीर वा लोक का राजा वा स्वयम् लोक है। चार कोशों अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय-में यह एक कोश कहा गया है। इसमें बनाने वा सृष्टि करने की शक्ति है। पुराणों मे ब्रह्माजी मन से और ब्रह्माजी के मन से प्रथम सृष्टि हुई। उसही को मानसिक सृष्टि कही जाती है। सातों महर्षि, आदि पितृ, और चार मनु मानसिक सृष्टियाँ यथा गीता में (१०।६) भी कहा है। स्थूल देह की सृष्टि का क्रम पीछे से हुआ। अनेक दार्शनिक विद्वान् सृष्टि को मनोमय—ईश्वर शक्ति-भगवान् के मन से प्रादुर्भूत मानते हैं। इस ही से वेदांत में इस सृष्टि वा प्रकृति को स्वप्न भी कहा है। मन से ऊपर (इस ही का एक गुण) विवेक बुद्धि,

जोई जोई देषै फहु सोई सोई मन आहि
 जोई जोई सुनै सोई मन ही कौ भ्रम है।
जोई जोई सूंघै जोई पाई जौ सपर्श होइ
 जोई जोई करै सोऊ मन ही कौ भ्रम है॥
जोई जोई ग्रहै जोई त्यागै जोई अनुरागै
 जहां जहां जाइ सोई मन ही कौ भ्रम है।
जोई जोई कहै सोई सुन्दर सकल मन
 जोई जोई कल्पै सु मन ही कौ भ्रम है॥ २२॥

एक ही बिटप विश्व ज्यौं कौ त्यौं ही देषियत
 अति ही सघन ताके पत्र फल फूल है।
आगिले झरत पात नये नये होत जात
 ऐसे याही तरु कौं अनादि काल मूल है॥
दश च्यारि लोक लौं प्रसरि जहां तहा रह्यौ
 अध पुनि ऊरध सूक्षम अरु थूल है।
कोऊ तौ कहत सत्य कोऊ तौ कहै असत्य
 सुन्दर सकल मन ही कौ भ्रम भूल है॥ २३॥*

शुद्ध बुद्धि है। उसका साधन द्वारा प्रभाव वा बल बढ़ाने से मन की वृत्तियां वा चंचलता रोकने से आत्मा का स्वरूप प्रत्यक्ष वा सिद्ध होने लगता है। यह सब को सम्मत है।

(२२) क्रम=विधान, कर्म। अनुरागै=अनुराग वा चाव करके ग्रहण करै भ्रम=धर्म, वास्तविक स्वभाव। कल्पै=संकल्प-विकल्प करै।

* छंद २३ वां चित्रकाव्य भी है। देखो चित्रकाव्य के चित्र।

(२३) बिटप=वृक्ष। विश्व=संसार। संसार में घटाव बढाव केवल वृक्ष के पत्तों, फूलों और फलों के समान बताया है, यही तो जन्मांतर है। शास्त्र में (गीता १५।१-३।) सृष्टि को अश्वत्थ (पीपल) इसही कारण से कहा है। औ

तौ सौ न कपूत कोऊ कतहूं न देषियत
तौ सौ न सपूत कोऊ देषियत और है।
तू ही आप भूलि महा नीच हू तें नीच होइ
तूं ही आपु जाने तें सकल सिर मौर है॥
तू ही आपु भ्रमै तब भ्रमत जगत देखै
तेरै थिर भये सब ठौर ही को ठौर है।
तू ही जीव रूप तू ही ब्रह्म है आकाशवत
सुन्दर कहत मन तेरी सब दौर है॥ २४॥
मन ही के भ्रम तें जगत यह देषियत
मन ही कौ भ्रम गये जगत बिलात है।
मन ही के भ्रम जेवरी में उपजत सांप
मन के विचारें सांप जेवरी समात है॥

इसका मूल (अनादि काल ब्रह्म) है अनादि काल। चौदह लोक—(सात ऊपर के) भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक। (सात नीचे के) अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल। अध=नीचे। ऊरध=ऊपर। ऊच नीच सापेक्षता से ही है असल में नहीं है। सूक्ष्म=इंद्रियगोचर न हो, मन बुद्धयादिक परमात्मा तक। स्थूल=इंद्रियगोचर, पच तत्व और उन से बने पदार्थ। सत=तीनों काल में रहै। असत्य=जो बिगड़े, बदलै, वा नाश हो। अक्षर और क्षर। सद्वाद के प्रवर्तक रामनुजादि। असद्वाद के चार्वाकादि वा वेदांत भी। (यह चित्रकाव्य है।)

(२४) इस छंद में मन से सम्बोधन करके बहुत उत्तम रीति से मन को समझाया है और बहुत तत्व की बातें कही हैं। मन को आत्मा का बेटा कहा है। अवगुण में प्रवृत्त होनेसे पुत्र भी कुपुत्र कहाता है और सद्गुणी होने से सुपुत्र वैसे ही यह मन विषयादि से हटकर अहंकार को मिटा कर परमात्मतत्व अपने पिता का अनुयायी और आज्ञावर्ती हो जाय तो इस की सपूताई है। नहीं तो कपूताई। आपु

मन ही के भ्रमतैं मरीचिका कौ जल कहै
मन ही के भ्रम सीप रूपौ सौ दिपात है।
सुन्दर सकल यह दीसै मन ही कौ भ्रम
"मन ही कौ भ्रम गये ब्रह्म होइ जात है" ॥ २५ ॥

मन ही जगत रूप होइ करि निसतर्‍यौ
मन ही अलय रूप जगत सौं न्यारौ है।
मन ही सकल घट व्यापक अखण्ड एक
मन ही सकल यह जगत पियारौ है॥
मन ही आकाशवत हाथ न परत कछू
मन के न रूप रेष वृद्ध ही न बारौ है॥
सुन्दर कहत परमारथ विचारै जब
"मन मिटि जाइ एक ब्रह्म निज सारौ है" ॥ २६ ॥

॥ इति मन कौ अंग ॥ ११ ॥

जनतै=अपना असली स्वरूप जान लेने से-अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि"—मैं आत्मा ही हूं। स्थिर भये=चचलता छूट कर एकाकार हो जाने से। आकाशवत्=आकाश समान सर्वव्यापी और अलिप्त और अतिसूक्ष्म। मन जीव होकर, जीव फिर ब्रह्म हो जाय-यह क्रम है।

(२५) यहां तीन दृष्टान्त वेदांतके दिये हैं—(१) रज्जुसर्प का (२) रजत शुक्ति का (३) मृगमरीचिका का यह तीनों अध्यास वाद से सम्बन्ध रखते हैं। वेदांत सूत्र में अ० ३ पाद ३-४ तथा शांकरभाष्य के उपोद्घात में विस्तार से है। अध्यास ही को भ्रम कहते हैं।

(२६) मन ही जगत रूप=यह जगत मनोमय सृष्टि है। ईश्वर का एक विचार मात्र यह सकल संसार है। फिर, यह मन सकल स्थूल प्रपंच से पृथक् है, क्योंकि यह सूक्ष्म है इसका स्वभाव, धर्म, गुण स्थूल प्रकृति से भिन्न है। प्रपंच, दृष्ट यह अदृष्ट। सकल घट व्यापक=यहां मन को आत्मस्वरूप मानकर सर्वव्यापक कहा। "मनो वै ब्रह्म" (श्रुति)

अथ चाणक को अंग (१२)॥

मनहर

जोई जोई छूटिवे कौ करत उपाइ अज्ञ
सोई सोई दृढ करि बन्धन परत है।
जोग जज्ञ जप तप तीरथ व्रतादि और
झपापात लेत जाइ हिवारै गरत है॥
कानऊ फराइ पुनि केशऊ लुंचाइ अङ्ग
विभूति लगाइ सिर जटाऊ धरत है।
विनु ज्ञान पाये नहिं छूटत हृदै की ग्रन्थि
सुन्दर कहत यौं ही भ्रमि कै मरत है॥ १॥

पियारो=प्यारा, प्रिय। आत्मा आनन्दस्वरूप है। सत, चित, आनन्द प्राप्त तीन गुणोंमें आनद गुण कथित है, यहां। रूप रेप=(महाविरा) आकार रहित। आकार रेखाओं का विकार होता है। रेखा परमाणुओं का विकार है। अत सूक्ष्म से स्थूल का बनना प्रतीत होता है। मन मिटि जाइ=यहां मन के सकल्प विकल्पात्मक स्वभाव या धर्म से प्रयोजन है। जब अत करण का वृत्ति होती रह जाय, साधन, समाधि या प्रेमाभक्ति आदि—विधानों से, तब परमात्म स्वरूप का अपरोक्ष-अनुभव हो जाता है। निज सारौ=निज सार "राम नाम निजसार है काया मोक्ष करत" इत्यादि में निजसार का प्रयोग है। असल, अपना, सारतत्व वा स्वरूप। यही सब साधना का परम फलस्वरूप सिद्धि और यही मोक्ष या मुक्ति है। इस मन के अग का श्री दादूदयालजी की बाणी के अग १० मन के अङ्ग से मिलाने से और भी अधिक अनन्द होगा। अन्य महात्माओं-रज्जबजी की बाणी १५२ का अङ्ग। यही सुन्दरदासजी की साखी में मनका अङ्ग। जगजीवणजी की बाणी में। कबीरजी की बाणी में। इत्यादि।

निर्मात्रिक (छप्पय)

जप तप करत धरत व्रत जत सत
मन वच क्रम भ्रम कपट सहत तन।
वलकल वसन असन फल पत्र जल
कसत रसन रस तजत बसत वन॥
जरत मरत नर गरत परत सर
कहत लहत हय गय दल बल धन।
पचत पचत भव भय न टरत सठ
घट घट प्रगट रहत न लषत जन॥ २॥

जोग करै जाग करै वेद विधि त्याग करै,
जप करै तप करै यूं ही आयु पूटि है।
यम करै नेम करै तीरथऊ व्रत करै
पुहमी अटन करै वृथा स्वास टूटि है॥
जीवे को जतन करै मन मैं बासना धरै
पचि पचि यौं ही मरै काल सिर कूटि है।

इस में अनेक प्रकार वेष और रङ्ढङ्ग को वृथा, और ज्ञान ही को सर्वोत्तम कहा है। हृदै की ग्रन्थि=दिल की घुंडी। मन की कसक। संदेह, संशय। भ्रमि के मरत है=अनेक प्रकार के विध-विधान, मतमतांतर, पठनपाठन, ढूंढ तलाश, इधर-उधर के शास्त्र सिद्धांत आदि को ढूंढते फिरने से सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होवै नहीं, उल्टा मिथ्या ज्ञान होने से अपनी आत्मा को मारना है। वृथा ही पचकर मरना है।

(२) कष्ट का 'कपट' छन्द के लिये बनाना पड़ा। वल्कल=छाल। वसन=वस्त्र। असन=भोजन। रसन=जिह्वा। घटघट''=ईश्वर सर्वव्यापी सब पदार्थों में विद्यमान है, तो भी उसको यह अज्ञ मनुष्य नहीं जान लेता है अनेक कठिन उपाय और तपादि साधना करने पर भी प्राप्त नहीं कर सकता। अर्थात् ज्ञान के बिना ईश्वर प्राप्ति नहीं है।

औरऊ अनेक विधि कोटिक उपाइ करै
सुन्दर कहत विनु ज्ञान नहिं छूटि है॥ ३॥

बुद्धि करि हीन रज तम गुन छाइ रह्यो
वन वन फिरत उदास होइ घर तें।
कठिन तपस्या धरि मेघ शीत घाम सहै
कन्द मूल पाइ कोऊ कामना के डरतें॥
अति ही अज्ञान और विविधि उपाइ करै
निज रूप भूलि करि बँधै जाइ परतें।
सुन्दर कहत मूंधी वोर दिश देषै मुख
हाथ मांहि आरसी न फेरै मूढ करतें॥ ४॥

मेघ सहै शीत सहै शीश परि घाम सहै
कठिन तपस्या करि कन्द मूल षात है।
जोग करै जज्ञ करै तीरथऊ व्रत करै
पुन्य नाना विधि करै मन में सिहात है॥
और देवी देवता उपासना अनेक करै
आंवन की हौंस कैसैं अकडोडे जात है।
सुन्दर कहत एक रवि के प्रकाश विन
जैंगनै की जोति कहा रजनी बिलात है॥ ५॥

---

(३) 'वेद विधि'—इसका सम्बन्ध 'जाग करै' से है पूटी=बीती, चली गई। पुहमी=पृथ्वी। अटन=भ्रमण। स्वास टूटी=जीवन के स्वास योंही चले गये। सिर कूटि=माथे पर प्रहार करेगा। अर्थात् मार देगा।

(४) मूंधी वौर=उल्टी तरफ। दर्पण की पीठ (प्राचीन काल का फौलादी आइना)।

(५) हौंस=हविस, चाह। अकडोडे=आक की पाडी (फल)। जैंगनें=जुगनू, खद्योत, आग्या, पटवीजना।

"आप ही के घट में प्रगट परमेश्वर है
ताहि छोडि भूले नर दूर दूर जात है।
कोई दौरै द्वारिका कौ कोई काशी जगन्नाथ
कोई दौरै मथुरा कौ हरिद्वार न्हात है॥
कोई दौरै बद्रीनाथ विषम पहाड चढै
कोई तौ केदार जात मन में सिहात है।
सुन्दर कहत गुरुदेव देहि दिव्य नैंन
दूर ही कै दूरवीन निकट दिषात है" ॥ ६ ॥*

कोऊ फिरै नागै पाइ कोऊ गूदरी बनाइ
देह की दशा दिषाइ आइ लोक धूत्यौ है।
कोऊ दूधाधारी होइ कोऊ फलाहारी तोय
कोऊ अधोमुख झूलि झूलि धूम घूत्यौ है॥
कोऊ नहिं षाहि लौंन कोऊ मुख गहै मौंन
सुन्दर कहत यौंही वृथा मुस कूट्यौ है।
प्रभु सौं न प्रीति माहि ज्ञान सौं परचै नाहिं
"देषौ भाई आंधरै नि ज्यौं बजार लूट्यौ है" ॥ ७ ॥

---

(६) आप ही के घट में=अपने ही शरीर भीतर। हृदय में। अन्तरात्मा अपने अन्दर ही विराजमान है। इस प्रकार परब्रह्म की सत्ता का मानना दाददयाल के पथधारियों का प्रधान मत है। और नानक, कबीर, रैदास, आदि इस मर्म के पहुंचवान साधुओं का तथा वेदांत का यही परम सत्य दृढ निश्चय है।

* ६ छन्द (क) (ख) पुस्तकों में नहीं है। अन्य पुस्तकों में है सो यहां से उद्धृत किया गया है। (७) धूत्यौ=धूत्यो, धूर्त्तता की, छल किया। घूत्यौ=घूट २ कर पीया। मुस कूट्या=मुस्सी कूट कर अन्न निकालने के लिये वृथा उद्योग करना। आंधरे ने बाजार लूट्या=अंधा बाजार, को कैसे लूटमार करे ? अर्थात् आरम्भर बल या अनहोनी कार्यवाही करना।

इन्दव

आसन मारि संवारि जटा नख उज्जल अङ्ग विभूति चढाई।
या हम कौं कछु देइ दया करि घेरि रहै बहु लोग लुगाई॥
कोउक उत्तम भोजन ल्यावत कोउक ल्यावत पान मिठाई।
सुन्दर लै करि जात भयौ सब मूरष लोगनि या सिधि पाई॥ ८॥
ऊरध पाइ अधौमुख ह्वै करि घूटत धूमहि देह झुलावै।
मेघहु शीतहु घाम सहै सिर तीनहु काल महा दुख पावै॥
हाथ कछू न परै कबहूंकन मूरप फूकस कूटि उडावै।
सुन्दर वंछि विषै सुख कौं "घर बूडत है अरु झांझण गावै॥ ९॥
गेह तज्यौ अरु नेह तज्यौ पुनि षेह लगाइ कै देह संवारी।
मेघ सहे सिर सीत सह्यौ तनु धूप समै जु पञ्चागनि बारी॥
भूप सही रहि रूंष तरै परि सुन्दरदास सहे दुख भारी।
डासन छाडि कैं कांसन ऊपर "आसन मार्‍यौ पै आस न मारी"॥ १०॥
जौ कोउ कष्ट करै बहुभातिनि जाति अज्ञान नहीं मन केरौ।
ज्यों तम पूर रह्यौ घर भीतरि कैसैंहु दूर न होत अन्धेरौ॥

---

(८) इस में कपटवेश धूर्त्त साधु का वर्णन है। या=हे! 'लैकरि जात भयो=माल मता लेकर चल दिया। अर्थात् उन मूख भक्तों का सर्वस्व हरण कर तीन तेरह हो गया। या=यह।

(९) झांझण गावै=मारवाड़ में खुशी का एक गीत होता है। उधर घर बरबाद हो रहा है और इधर उनको कुछ चिंता ही नहीं। निश्चित होकर रागें अलापते हैं। अर्थात् बड़े ही असावधान वा बेफिक्र हो रहे हैं। अर्थात् मनुष्य देह पाकर आयुष्य बहुमूल्यवान को वृथा खोते हैं, हरिभजन नहीं करते।

(१०) डासन=बिछौना (संसार सुख) कांसन=कांस के मोटे घास पर। आसन मार्‍यो=आसन लगाया, योगाभ्यास किया। आस=आशा तृष्णा, कामना।

लाठिनि मारिये ठेलि निकारिये और उपाइ करै बहुतेरौ।
सुन्दर सूर प्रकाश भयो तब तौ कतहूं नहिं देषिय नेरौ॥ ११॥
धार बह्यौ पग धार ह्यौ जल धार सह्यौ गिरिधार गिर्‌यौ है।
भार संच्यौ धन भारथ हू करि भार लयौ सिर भार पर्‌यौ है॥
मार तप्यौ बहि मार गयौ जम मार दई मन तौ न मर्‌यौ है।
सार तज्यौ पुट सार पच्यौ कहि सुन्दर कारिज कौंन सर्‌यौ है॥ १२॥
कोउ भया पय पान करै नित कोउक पात है अन्न अलौंना।
कोउक कष्ट करै निसबासर कोउक बैठि कै साधन पौंना॥
कोउक बाद बिबाद करै अति कोउक धारि रहै मुख मौंना।
सुन्दर एक अज्ञान गये बिनु सिद्ध भयो नहिं दीसत कौंना॥ १३॥
कोउक अङ्ग बिभूति लगावत कोउक होत निराट दिगम्बर।
कोउक स्वेत कषाइक बोढत कोउक काय रंगै बहु अम्बर॥
कोउक वल्कल सीस जटा नख कोउक बोढत हैं जु बघम्बर।
सुन्दर एक अज्ञान गयें बिनु ये सब दीसत आहि अडम्बर॥ १४॥
कोउक जात पिराग बनारस कोउ गया जगनाथ हिं धावै।
को मथुरा बदरी हरिद्वार सु कोउ भया कुरषेत हि न्हावै॥
कोउक पुष्कर ह्वै पञ्च तीरथ दौरइ दौरै जु द्वारिका आवै।
सुन्दर वित्त गड्यौ घर मांहिं सु बाहिर ढूंढत क्यौं करि पावै॥ १५॥

---

(१२) यह चित्रकाव्य है। पग=खड्ग। ह्यौ=मारा गया। गिरिधार=पहाड़ का किनारा। भार=(१) बहुत (२) बोझ (३) भाड़। मार=कामदेव। मार=ताड़ना पिटना। पुट=खोट।

(१५) पंचतीरथ=पांचतीर्थ एक स्थान में-यथा कुरुक्षेत्र, बिन्दु। वित्त गड्यो=हृदय में प्रविष्ट परमात्मा बाहर ढूंढने से क्या मिले। पेसर, भी कर्णंत कनखल, हरिद्वार।
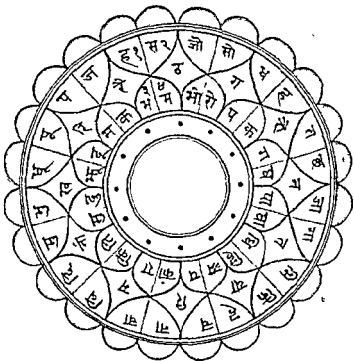
Engraved & printed by *Gaya Art Press Cal.*

(१३) कङ्कण बंध पहिला १

डुमिला छन्द

हठ जोग धरी तन जात भिया, हरि नाम विनां मुख धूरि परे ।
मठ सोग हरी छन गात न्त्रिया, चरि चाम दिना भुप भूरि जरे ॥
भठ भोग परी गन पात धिया, अरि काम क्रिना सुख झूरि मरे ।
मठ रोग करी घन घात हिया, परि राम तिना दुख दूरि करे ॥१३॥

—o—

[इसके पढ़ने की विधि सामने पृष्ठ पर देखें]

कंकण बन्ध (१)

पढ़ने की विधिः—

कंकण के भीतर विभाग इस प्रकार हैं कि ऊपर की बड़ी पंखड़ियों के और नीचे की छोटी पखड़ियों के दो २ टुकड़े हैं। और इन टुकड़ों के चार २ (दो पिछलों और दो पहिलों) के बीच में चौकोर से घर बन गये हैं। अब छन्द के चारों चरणों के आद्य अक्षरों पर १-२-३-४ के अङ्क रख दिये गये हैं और ये अक्षर बड़ी छोटी पत्तियों के टुकड़ों में पास २ लिखे हुए हैं। यह भी ध्यान में रहे कि छन्द का प्रत्येक शब्द दो २ अक्षरों का है। (१) चौकोर घर के १२ अक्षर चारों पंखड़ियों के टुकड़ों के अक्षरों के साथ चार २ बेर पढ़े जाते हैं। (२) प्रथम चरण यों पढ़ना चाहिए—ह (बड़ी पांखड़ी के प्रथमार्ध का अक्षर) ठ (चौकोर घर के अक्षर) के साथ पढ़ें। इसही प्रकार आगे सब युग्माक्षरों के ग्यारहों शब्द पढ़ें। प्रत्येक चरण में बारह २ शब्द दो २ अक्षरों के होने से पढ़ना सहज है। (३) द्वितीय चरण इस प्रकार पढ़ें—स (बड़ी पखड़ी के द्वितीयार्ध का अक्षर) के साथ ठ (पास के चौकोर घर के अक्षर) को पढ़ें। इसही प्रकार आगे के ग्यारहों शब्द। (४) तृतीय चरण यों पढ़िये—भ को ठ के साथ (जो छोटी पांखड़ी के प्रथमार्ध का अक्षर, चौकोर घर के अक्षर हैं) पढ़ें। और आगे के ग्यारहों शब्द इसही ढंग से। (५) चतुर्थ चरण पढ़ने की विधि यह है—म (छोटी पांखड़ी के द्वितीयार्ध के अक्षर) को ठ (उसही) के साथ पढ़कर आगे ११ शब्दों को यों ही ॥

आगे कछू नहिं हाथ पर्यौ पुनि पीछे बिगारि गये निज भौंना।
ज्यौं कोउ कामिनि कन्तहिं मारि चली संग और हि देषि सलौंना॥
सोउ गयौ तजिकैं ततकाल फहै न बनै जु रही मुख मौंना।
तैसेंहि सुन्दर ज्ञान बिना सब छाडि भये नर भांड के दौंना॥ १६॥
ज्यौं कोउ कोस कट्यौ नहिं मारग तेलकलै घर मैं पशु जोये।
ज्यौं बनिया गयौ बीस के तीस कौं बीस हु मैं दशहू नहिं होये॥
ज्यौं कोउ चौबे छबे कौं चल्यौ पुनि होइ दुबे दुइ गाठि के षोये।
तैसेंहि सुन्दर और क्रिया सब राम बिना निहचै नर रोये॥ १७॥
जो कोउ राम बिना नर मूरष औरन के गुन जीभ भनैगी।
आनि क्रिया गढते गडवा पुनि होत है मेरि कछू न बनैगी॥
ज्यौं हथफेरि दिषावत षावर अन्त तौ धूरि की धूरि छनैगी।
सुन्दर भूल भई अतिसै करि "सूते की भैंसि पडाइ जनैगी"॥ १८॥

---

(१६) भौंना=भवन, घर। घर बिगड़ना (मुहाविरा) हाथ पड़ना (मुहाविरा) भांड के दौंना=दूसरों की बुराई कर अल्पलाभ (दौने के बराबर) पाना। घणी बिगाड़ थोड़ी पाना। सब भ्रष्ट कर पछताना। प्रसाद को उच्छिष्ट करना। यह एक आख्यायिका से सम्बन्ध रखता है।

(१७) तेलकलै=तेल कल (घाणी या कोल्हू) में। जाये=जोते, जोड़े। घाणी के बैल चक्कर ही लगाया करते हैं परन्तु मंजिल नहीं काटते, वैसे ही संसार चक्र में मनुष्य भ्रमता रहता है परन्तु इस चाल से परमार्थ के रस्ते में आगे नहीं बढ सकता। उसका सब भ्रमण वृथा ही है। बीस के तीस कौं=बीस रुपये के तीस रुपये के नफे के लिये व्यापार करने को गया। अर्थात् लाभ करके जन्म गमाया सच्चा लाभ भगवत्प्राप्ति का नहीं हुआ। उलटी हानि हुई। होये=हुये। चौबे'' छबे दुब्बे—(प्रसिद्ध मुहाविरा कहावत) "चौबेजी छब्बे होने चले पर दुब्बे के सांसे पड़े।

(१८) गडवा''गडवा से गेर होना (मुहा०) कुछ का कुछ हो जाना।

होइ उदास विचार विना नर ग्रेह तज्यौ धन जाइ रह्यौ है।
अम्बर छाडि वघम्बर लै करि कै तप कौं तन कष्ट सह्यौ है॥
आसन मारि सवासन ह्वै मुख मौंन गही मन तौ न गह्यौ है।
सुन्दर कौन कुबुद्धि लगी कहि या भवसागर मांहिं वह्यौ है॥ १६॥
भेप धर्‌यौ परि भेद न जानत भेद लहे बिनु षेद हि पैं है।
भूपहि मारत नीन्द निवारत अन्न तजैं फल पत्रनि षैहैं॥
और उपाइ अनेक करैं पुनि ताहि तें हाथ कछू नहिं ऐहैं।
या नर देह वृथा सठ षोवत सुन्दर राम बिना पछितैहैं॥ २०॥
आपने आपने थान मुकाम सराहन कौं सब बात भली है।
यज्ञ व्रतादिक तीरथ दान पुरान कथा जु अनेक चली है॥
कोटिक और उपाइ जहाँ लगि तें मुनि कै नर बुद्धि छली है।
सुन्दर ज्ञान विना न कहूं सुख भूलन की बहु भाँति गली है॥ २१॥
कोउक चाहत पुत्र धनादिक कोउक चाहत बाँझ जनायौ।
कोउक चाहत धात रसायन कोउक चाहत पारद पायौ॥
कोउक चाहत जन्त्रनि मन्त्रनि कोउक चाहत रोग गमायौ।
सुन्दर राम विना सब ही भ्रम देषहु या जग यौं डहकायौ॥ २२॥

गडवा=छोटा लोटा। भेर=बड़ा नरसिंघा बाजा। सूते की=गाफिल की। पड़ा जनना दूसरे चालाक ने पाडी को चुराकर पाडा ला धरा। ससार में सब गनी से ईश्वर भजना।

(१९) उदास=विरक्त। सवासन=वासना सहित, वासना वा कामना को न त्यागकर रसवर्ज वा रसरहित न होकर।

(२०) बिन षेद=क्लेश वा श्रम किये बिना ही। ज्ञान मार्ग से सहज ही।

(२१) गली=मार्ग।

(२२) डहकायौ=धोखा खाया। बहकावट में पड़ गया। भ्रमग्रस्त हो गया।

काहेकौं तू नर भेष बनावत काहे कौं तूं दश हू दिश डूलै।
काहे कौं तू तन कष्ट करै अति काहे कौं तू मुख तें कहि फूलै॥
काहे कौं और उपाइ करै अब आंन क्रिया करि कैं मति भूलै।
सुन्दर एक भजै भगवंत हि तौ सुखसागर में नित झूलै॥ २३॥

॥ इति चाणक्य को अंग ॥ १२ ॥

अथ विपरीत ज्ञानी को अंग (१३)॥

मनहर

एक ब्रह्म मुख सौं बनाइ करि कहत है
अन्तहकरन तौ विकारनि सौं भर्यौ है।
जैसं ठग गोबर सौं कूपौ भरि राषत है
सेर पांच घृत लैकैं ऊपर ज्यौं कर्यौ है॥
जैसैं कोड भांडे मांहि प्याज कौं छिपाइ राषै
चौधरा कपूर कौ लै मुख बांधि धर्यौ है।
सुन्दर कहत ऐसैं ज्ञानी है जगत मांहि
तिन कौं तौ देषि करि मेरौ मन डर्यौ है॥ १॥
देह सौं ममत्व पुनि गेह सौं ममत्व सुत
दारा सौं ममत्व मन माया में रहतु है।

(२३) डूलै=डोलै, फिरै, भ्रमता रहै। फूलै=गर्व करै। सुखसागर=ब्रह्मानन्द का समुद्र या लोक। झूल=हिलोर लेवै। मग्न हो जाय। (प्राचीन काल में धनवान, अमीर व राजाओं की स्त्रियां पलगों पर लटके हुओं पर झूला करती थी। अब भी किसी २ देश में यह रिवाज है।

(विपरीत ज्ञानी का अङ्ग) (१) कूपो=सीदड़ा, भांडा। ऐसैं ज्ञानी=इस प्रकार कपटी व दम्भी ज्ञानी। कपटी साधु या कपटमुनी।

थिरता न लहै जैसें कंदुक चौगान मांहि
कर्मनि के वसि मार्यौ धक्का कौं वहतु है ॥
अंतहकरन सुतौ जगत सौं रचि रह्यौ
मुख सौं बनाइ बात ब्रह्म की कहतु है।
सुन्दर अधिक मोहि याही तें अचभौ आहि
भूमि पर पर्यौ कोऊ चन्द कौं गहतु है ॥ २ ॥

मुख सौं कहत ज्ञान भ्रमै मन इन्द्री प्रान
मारग के जल मैं न प्रतिबिंब लहिये।
गाठि मैं न पैका कोऊ भयौ रहै साहूकार
बातनि ही मुहर रुपैया गनि गहिये ॥
स्वपनै मैं पचामृत जीमि कै तृपति भयौ
जागे तें मरत भूष पाइबे कौं चहिये।
सुन्दर सुभट जैसैं काइर मारत गाल
"राजा भोज सम कहा गांगौ तेली कहिये" ॥ ३ ॥

ससार के सुषनि सौं आसक्त अनेक विधि
इन्द्री हू लोलप मन कबहू न गह्यौ है।

---

(२) कदुक=गैंद। धका कौं वहतु है=धक्के खाता फिरता है। बे ठिकान है। चद कौं गहतु है=चाद को पकड़ता है, बालक की तरह सरीह असम्भव बात करता है।

(३) मारग के जल=बहता जल। पैका=दमड़ी, पैसा कौड़ी। "पैका नांही गांठड़ी" (दादू बाणी अग १३। सा० १११-११२)। मारत गाल=बड़े बोल बोलना बकवाद करना। राजाभोज गांगातेली—यह प्रसिद्ध कहावत है "कहां तो राजाभोज और कहां गांगातेली"। राजाभोज की होडाहोडी उज्जैन में एक गागातेली ने भी दातव्यता की थी। वहां उसका स्मारक भी बताते हैं। परन्तु वास्तव में यह पराजित "गांगेय तैलग" राजा था जिसका जिक्र इतिहास में अनुसधान से लिखा गया है।

कहत है ऐसै में तौ एक ब्रह्म जानत हौं
ताहि तें छोडि कै शुभ कर्मनि कौं रह्यौ है ॥
ब्रह्म की न प्रापति पुनि कर्म सब छूटि गये
दहुंन तें भ्रष्ट होइ अध बीच बह्यौ है।
सुन्दर कहत ताहि त्यागिये स्वपच जैसैं
याही भांति ग्रन्थ में वशिष्टजी हू कह्यो है ॥ ४ ॥
ज्ञान की सी बात कहै मन तौ मलीन रहै
वासना अनेक भरी नैकु न निवारि है।
जैसैं कोऊ आभूपन अधिक बनाइ राख्यौ
कलीई ऊपर करि भीतरि भंगारि है॥
ज्यौं हीं मन आवै त्यौं हीं पेलत निशंक होइ
ज्ञान सुनि सीप लयौ ग्रन्थन विचारि है।
सुंदर कहत वाकै अटक न कोऊ आहि
कोई वासौं मिलै जाइ ताहि कौ बिगारि है ॥ ५ ॥
हंस स्वेत बक स्वेत देषिये समान दोऊ
हंस मोती चुगै बक मछरी कौं पात है।
पिक अरु काक दोऊ कैसैं करि जाने जांहि
पिक अंब डार काक करंक हि जात है॥
सिंधौ अरु फटक पपान सम देषियत
वह तौ कठौर वह जल में समात है।

---

(४) स्वपच=श्वपच, चांडाल। ग्रन्थ में=योगवशिष्ट वेदांत ग्रन्थ। वशिष्टजी-योगवाशिष्ट ग्रन्थ में वाल्मीकिजीने वशिष्ट मुनि और श्रीरामचन्द्र का सम्वाद वर्णन किया है। उसमें ऐसे मिथ्या ज्ञानी को त्याज्य लिखा है।

(५) भंगारि=भरती, कालबूत।

सुंदर कहत ज्ञानी बाहिर भीतर शुद्ध
ताकौ पटतर और बातनि की बात है॥ ६॥

॥ इति विपरीत-ज्ञानी को अंग ॥ १३ ॥

अथ वचन विवेक को अंग (१४)॥

मनहर

जाकै घर ताजी तुरकीन कौ तबेला बंध्यौ
ताकै आगै फेरि फेरि टट्टुवा नपाइये।
जाकै पासा मलमल सिरी साफ ढेर परे
ताकै आगै आनि करि चौसई रपाइये॥
जाकौं पंचामृत खात खात सब दिन बीते
सुन्दर कहत ताहि राबरी चपाइये।
चतुर प्रवीन आगै मूरख उचार करै
"सूरज कै आगै जैसैं जँगणां दिपाइये"॥ १॥

एक बाणी रूपवंत भूषन बसन अंग
अधिक विराजमान कहियत ऐसी है।
एक बाणी फाटे टूटे अंबर उढ़ाये आनि
ताहू मांहि विपरीति सुनियत तैसी है॥
एक बाणी मृतक हि बहुत सिंगार किये
लोकनि की नीकी लगै संतनि कौं भैसी है।

---

(६) पिक=कोयल। करक=करक, मुर्दा पशु। पटतर=समानता, बराबरी।

(१) ताजी=अरब देश का घोड़ा। तुरकीन=तुरकिस्तान का घोड़ा। पासा=बढ़िया कपड़ा। सिरी=उत्तम वस्त्र। साफ=उच्चप्रकार का रेशमी वस्त्र। चौसई=गजी, मोटा कपड़ा। नपाइये=कुदाइये, चाल चलवाइये। जँगणा=जुगनू, खद्योत, आग्या। (देखा "जँगणां की जोत")।

सुन्दर कहत बांणी त्रिविधि जगत मांहि
जानै कोऊ चतुर प्रवीन जाकै जैसी है ॥ २ ॥

राजा कौ कुंवर जौ स्वरूप कै कुरूप होइ
ताकौं तसलीम करि गोद लै पिलाइये।
और काहू रैति कै स्वरूप होइ सोभनीक
ताहू कौं तौ देषि करि निकट बुलाइये ॥
ताहू कै कुरूप कारौ कूबरौ है अंगहीन
वाको वोर देषि देषि माथौ ई हलाइये।
सुन्दर कहत वाके वाप ही कौ प्यार होइ
यौं ही जानि बांनी कौ विवेक ऐसै पाइये ॥ ३ ॥

बोलिये तौ तब जब बोलिबे की सुधि होइ
न तौ मुख मौंन करि चुप होइ रहिये।
जोरिये ऊ तब जब जोरिबौ ऊ जांनि परै
तुक छंद अरथ अनूप जामैं लहिये ॥
गाइये ऊ तब जब गाइबे कौ कंठ होइ
श्रवण कै सुनत ही मन जाइ गहिये।
तुकभङ्ग छन्दभङ्ग अरथ मिलै न कछु
सुन्दर कहत ऐसी बानी नहिं कहिये ॥ ४ ॥

एकनि के बचन सुनत अति सुख होइ
फूल से झरत हैं अधिक मन भांवने।
एकनि के बचन असम मानौं बरषत
श्रवण कै सुनत लगत अलषांवने ॥

---

(२) जाकै जैसी=जिसको जैसी आती है वैसी।

(३) तसलीम=(अ०) मुजरा, प्रणाम। सोभनीक=बहुत सुंदर। प्यार=प्यारा, प्रिय।

(४) [illegible]

एकनि के वचन कंटक कटु विष रूप
करत मरम छेद दुख उपजावने।
सुन्दर कहत घट घट में वचन भेद
उत्तम मध्यम अरु अधम सुनावने॥ ५॥

काक अरु रासभ उलूक जब बोलत हैं
तिनके तौ वचन सुहात कहि कौन कौं।
कोकिला रु सारी पुनि सूवा जब बोलत हैं
सब कोऊ कान दे सुनत रव रौन कौं॥
ताहि तें सुवचन विवेक करि बोलियत
यौंहि आंक बाक बकि तौरिये न पौन कौं।
सुन्दर समुझि कें वचन कौं उचार करि
नाहीं तर चुप ह्वै पकरि बैठि मौन कौं॥ ६॥

प्रथम हिये विचारि ढीम सौ न दीजै डारि
ताहि तें सुवचन संभारि करि बोलिये।
जाने न कुहेत हेत भावै तैसी कहि देत
कहिये तौ तब जब मन माहिं तौलिये॥
सब ही कौं लागै दुख कोऊ नहिं पावै सुख
बोलिकैं वृथा ही तातें छाती नहिं छोलिये।
सुन्दर समुझि करि कहिये सरस बात
तब ही तौ बदन कपाट गहि षोलिये॥ ७॥

---

(५) अशम=पत्थर। अलभावने=असुहावने। भद्दे। बुरे।

(६) रासभ=गधा। उलूक=उल्लू। सारी=मैना। रव=शब्द। रौन=रमनीक आक बाक=अक बक, ऐण्ड बैंड। तौरियन पौन कौ=(पौन तोड़ना=जोर से बोलना) बकवाद न कीजिये।

(७) छाती नहिं छोलिये=(छाती छोलना=कर्णकटु, असह्य बोलना)

और तौ वचन ऐसैं बोलत हैं पशु जैसैं
तिनके तौ बोलिबे मैं ढङ्गहू न एक हैं।
कोऊ राति दिवस बकत ही रहत ऐसैं
जैसी विधि कूप मैं बकत मानौं भेक हैं॥
बिविधि प्रकार करि बोलत जगत सब
घट घट मुख मुख बचन अनेक हैं।
सुन्दर कहत तातैं वचन बिचारि लेहु
"बचन तौ उहै जामैं पाइये बिवेक हैं"॥ ८॥

जैसैं हंस नीर कौ तजत है असार जानि
सार जानि क्षीर कौं निरालौ करि पीजिये।
जैसैं दधि मथत मथत काढि लेत घृत
और रही यही सब छाछि छाडि दीजिये॥
जैसैं मधु मक्षिका सुबास कौं भ्रमर लेत
तैसैं ही ब्यवरि करि भिन्न भिन्न कीजिये।
सुन्दर कहत तातैं बचन अनेक भांति
"बचन मैं बचन बिवेक करि लीजिये"॥ ९॥

प्रथम ही गुरु देव मुख तैं उचार कर्यौ
वेई तौ वचन आइ लगे निज हीये हैं।
तिन कौ बिवेक करि अंतहकरन मांहि
अति ही अमोल नग भिन्न भिन्न कीये हैं॥

दु खद वाणी न कहिये। वदन कपाट=मुंह के कवाड़, होंठ। उचारणार्थ मुंह खोलना।

(८) इस छंद में पदान्त को पूर्व सवैये की रीति दिखाने को रख दिया है। भेक=मेंढक।

(९) पीजिये=पी लेता है। भ्रमर=और भौंरा। ब्यवरि करि=छेद या विभाग कर करके। भिन्न भिन्न चतुराई से उचारण करके। अथवा गुरु से।

आपु कौ दृष्टि गयौ पर उपकार हेत
नग हि निगलि कैं उगलि नग दीये हैं।
सुन्दर कहत यह बांनी यौं प्रगट भई
और कोऊ सुनि करि रंक जीव जीये हैं॥ १०॥

वचन तें द्वुरि मिलै वचन विरुद्ध होइ
वचन तें राग बढै वचन तें दोष जू।
वचन तें ज्वाल उठै वचन शीतल होइ
वचन तै मुदित वचन ही तें रोष जू॥
वचन तें प्यारौ लगै वचन तें दूरि भगै
वचन तें मुरझाइ वचन तें पोष जू।
सुन्दर कहत यह वचन कौ भेद ऐसौ
वचन तें बंध होइ वचन तें मोष जू॥ ११॥

वचन तें गुरु शिष्य बाप पूत प्यारौ होइ
वचन तें बहु विधि होत उतपात है।
वचन तें नारी अरु पुरुष सनेह अति
वचन तें दोऊ आपु आपु मैं रिसात है॥
वचन तें सब आइ राजा के हजुर होंहि
वचन तें चाकर ऊ छोडि कै परात है।
सुन्दर सुवचन सुनत अति सुख होइ
कुवचन सुनत हि प्रीति घटि जात है॥ १२॥

---

(१०) इस छन्द में सुन्दरदासजी अपनी रचनाओं को अपने गुरु श्रीदादूदयाल की बाणी का अनुकरण कहते हैं। रंक जीव=दीन लोग, संसारी जन। जिये हैं=सुख पाये या असनरूपी काल से बचे।

(११) दुरि=दूर कर, या दर कर, दया या सहानुभूति करके मिलैं, मेल करैं।

(१२) रिसात=रोष या रोष करते हैं। परात हैं=दूर चले जाते हैं।

एक तौ वचन सुनि कर्म ही में वहि जांहि
करत बहुत विधि स्वर्ग की उमेद है।
एक है वचन दृढ़ ईश्वर उपासना कै
तिन में तौ सकल ही वासना कौ छेद है ॥
एक है वचन तामें एक ही अखंड ब्रह्म
सुन्दर कहत यौं बतायौ अंत वेद है।
वचन अनेक ही प्रकार सब देषियत
वचन विवेक किये वचन में भेद है ॥ १३ ॥
वचन तें योग करै वचन तें यज्ञ करै
वचन तें तप करि देह कौं दहतु है।
वचन तें बंधन करत है अनेक विधि
वचन तें त्याग करि वन में रहतु है ॥
वचन तें उरझि रु सुरझै वचन ही तें
वचन तें भांति भांति संकट सहतु है।
वचन तें जीव भयौ वचन तें ब्रह्म होइ
सुंदर वचन भेद वेद यौं कहतु है ॥ १४ ॥

॥ इति वचन विवेक को अंग ॥ १४ ॥

---

(१३) छद है=(ईश्वर में)कामना का ह्रास वा नाश है। एक ही अखंड ब्रह्म=तत्वमस्यादि वाक्य वेदांत के वचन एक अद्वैत ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं।

(१४) इस छन्द में वह अन्यत्र 'वचन' शब्द से सुवचन, दुर्वचन, दोनों से प्रयोजन हो सकता है। अधिकारी और कारण भेदसे ऐसा होना ससार में अनुभव सिद्ध है। यह भाव उदाहरणों से स्पष्ट हो सकते हैं। यथा—कुटिल स्त्री के दुर्वचन से वा राज्य वा सम्पत्ति के नष्ट हो जाने से भी योगी होते हैं तथा ईश्वर प्राप्ति वा सिद्धि पाने के हेतु भी योगी होते हैं। इस ही प्रकार प्रकार अन्य में जान लेना। गुरु के उपदेश को भी 'वचन' शब्द का अर्थ सर्वत्र ही प्रथम ले सकते हैं तथा शत्रु

अथ निर्गुण उपासना को अंग (१५) ॥

इन्दव

ब्रह्म कुलाल रची वहु भाजन कर्मनि कैं वसि मोहि न भावै।
विष्णु हु संकट आइ सहै प्रभ काहु कौं रक्षक काहु संतावै॥
शंकर भूत पिशाचनि कैं पति पानि कपाल लिये विल्लावै।
याहि तैं सुन्दर त्रीगुन त्यागि सु निर्मल एक निरंजन ध्यावै॥ १॥

मित्र वा जनसाधारण के को भी। जसे मालिन की बोली "सूवा चूका" को सुनकर वा "कीया था कुछ काज कौ—सर्यो न एको काज (दादूवाणी १०।३४) को सुनते ही रज्जबजी त्यागी हो गये। इत्यादि। उरझि=उलझ जाय बंध जाय। बंधन के विषयों में लगा देने वाले उपदेश से बंधन का विचार और कर्म होता है। सुरझि=सुलझ जाय। छुट वा मुक्त हो जाय। मोक्ष साधन की विधि बतानेवाले उपदेश से जीव मुक्त हो जाता है। अथवा व्यवहार पक्षमें कैद हो जाय, बांध लिया जाय, कठिनाइयों में पड़ जाय। वा शुभ सुन्दर वचन वा स्तुति वा खुशामद वाक्य से कैद आदि से छुटकारा पा जाय। इत्यादि। संकट—जैसे महाराज ने कैकेई महाराणी को वचन देकर, वा 'हरिश्चन्द्र' महाराज ने र को वचन देकर महा दुख भोगे। जीव भयो=भेद भाव सिखावन वा ? संसार और द्वैत होता है। अपने आपको भिन्न जीवरूप समझ कर न्यारा समझता है। यही जीव होना है। वेद यों—"सवश्रवाक्यो ध्नंति" इत्यादि। वाणी भेद का वर्णन प्रसिद्ध है। (महाभाष्य कृत) सदा शुभ बोलने का वेद में उपदेश है।

र्गुण उपासना अङ्ग) (१) ब्रह्म=ब्रह्मा। कुलाल=कुम्हार। वह ब्रह्मा वश रहते हैं। विष्णु संकट=सुरासुर संग्राम में युद्ध कर राक्षसों को मारते न भक्तों की रक्षा करते हैं। राम कृष्णादि अवतार धारण करके भी।

कोटिक बात बनाइ कहै कहा होत भया सब ही मन रंजन।
शास्त्र संमृति बेद पुरान बषानत है अतिसै लुक अंजन॥
पानी मैं बूडत पानी गहै कत पार पहूंचत है मति भंजन।
सुन्दर तौ लग अंधे की जेवरी जौं लौं न ध्याय है एक निरंजन॥ २॥

मंजन सो जु मनोमल मंजन सज्जन सो जु कहै गति गुझ्झै।
गञ्जन सो जु इन्द्री गहि गंजन रंजन सो जु बुझावै अबुझ्झै॥
भंजन सो जु भख्यौ रस मांहि बिदुज्जन सो कतहूं न अरुझ्झै।
व्यञ्जन सो जु बढ़ै रुचि सुन्दर अंजन सो जु निरंजन सुझ्झै॥ ३॥

जा प्रभु तें उतपत्ति भई यह सो प्रभु है उर इष्ट हमारै।
जो प्रभु है सब कै सिर ऊपर ता प्रभु कौं हम हू सिर धारैं॥
रूप न रेष अलेप अखण्डित भिन्न रहै सब कारिज सारैं।
नाम निरंजन है तिन कौ पुनि सुन्दर ता प्रभु कैं बलिहारैं॥ ४॥

पानि=पाणि हाथ में बिल्लावैं=भिक्षार्थ शब्दकरैं। या महाकालरूप हो रुधिर से खप्पर भरने को वचन उचारैं। त्रिगुन=सत-रज-तम (त्रिगुण)।

(२) भया=हो गया। लुक अजन=भुरकी डालना। पानी गहे=पानी में पड़े, डूबना फल है बिना नाव व केवट के तिर कर पार उतरना कठिन है। मति भजन=मूर्ख। अधे की जेवरी=जिस रस्सी को पकड़ कर अधा चलता है। गाडरी प्रवाह। "अधेन नीयमाना यथांधाः।"

(३) गुझ्झै=गुह्य, रहस्य, आत्मरहस्य। गजन=दमन। बुझावै=समझावै। अबुझ्झै=अबुद्ध, बिना समझा, अज्ञात। भजन=(यहां) भाजन, पात्र। बिदुजन=विद्वज्जन, पडितजन। अरुझ्झै=उरझै, रुकै। सुझ्झै=सूझै, अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त हो।

(४) अंजन=मलवाला, स्थूल, निरञ्जन न हो सो, इंद्रियगोचर, क्षर। अच्युत=अक्षर, निरञ्जन, नित्य, त्रिकालअबाधित। ब्रह्म निराकार। सिर ऊपर। सर्वश्रेष्ठ इष्टदेव। छाया=माया को छाया के साथ तुलना करते हैं। छाया दीखने मात्र है, वस्तु नहीं है।

जो उपजै बिनसै गुन धारत सो यह जानहुं अञ्जन माया।
आवै न जाइ मरै नहिं जीवन अच्युत एक निरंजन राया॥
ज्यौं तरु तत्व रहै रस एक हि आवत जात फिरै यह छाया।
सो परब्रह्म सदा सिर ऊपर सुन्दर ता प्रभु सौं मन लाया॥ ५॥
जौ उपज्यौ कछु आइ जहां लग सो सब नास निरंतर होई।
रूप धरयौ सु रहै नहिं निश्चल तीनिहुं लोक गनै कहा कोई॥
राजस तामस सात्विक जो गुन देषत काल ग्रसै पुनि वोई।
आपु हि एक रहै जु निरंजन सुन्दर के मन मानत सोई॥ ६॥
देवनि कै सिर देव विराजत ईश्वर कै सिर ईश्वर कहिये।
लालनि कै सिर लाल निरंतर पूवन कै सिर पूव सु लहिये॥
पाकनि कै सिर पाक सिरोमनि देषि विचारि उहै दृढ़ गहिये।
सुन्दर एक सदा सिर ऊपर और कछू हम कौं नहिं चहिये॥ ७॥
शेष महेश गनेश जहां लग विष्णु विरंचिहु कै सिर स्वांमी।
व्यापक ब्रह्म अखण्ड अनावृत बाहरि भीतर अन्तरयामी॥
वोर न छोर अनन्त कहैं गुन याहि तें सुन्दर है घन नांमी।
ऐसौ प्रभू जिन कै सिर ऊपर क्यौं परि है तिनकौ कहि पांमी॥ ८॥

॥ इति निर्गुण उपासना को अंग ॥ १५ ॥

---

(६) रूप धर्यौ=नाम रूपधारी सब प्रकृति के पदार्थ। निश्चल=स्थिर।

(७) पाक (फा०)=पवित्र, निर्मल निर्लेप। एक=एक अद्वितीय ब्रह्म।

(८) अनावृत=अनावर्त्तिन, नित्यमुक्त, अजन्मा, अविनाशी। अंतरयामी=अन्तर्यामी, आभ्यन्तर शक्तियों को नियंत्रण करनेवाला। "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया" (गीता १८।६१) घन नामी=बहुत नामवाला। अनन्त ईश्वर के अनन्त ही नाम। पांमी=कचाई, कमी, घाटा।

अथ पतिव्रत को अंग (१८) ॥

इन्दव

व्यानकि वोर निहारत ही जैसैं जात पतिव्रत एक व्रती कौ।
होत अनादर ऐसी हि भांति जु पीछै फिरै पुनि सूर सती कौ॥
नैकहि मैं हरवो होइ जात घिसैं अध विन्द ज्यौं जोग जती कौ।
राम हृदै तैं गयें जन सुन्दर "एक रती विन एक रती कौ"॥ १॥

जो हरि कौ तजि आन उपासत सो मति मन्द फजीहति होई।
ज्यौं अपनै भरतार हि छाडि भई विभचारिनि कामिनि कोई॥
सुन्दर ताहि न आदर मांन फिरै विमुखी अपनी पति पोई।
बूठि मरै किनि कूप मँझार कहा जग जीवत है सठ सोई॥ २॥

एक सही सब कै उर अन्तर ता प्रभु कौं कहि काहि न गावै।
संकट मांहि सहाइ करै पुनि सो अपनौं पति क्यौं विसरावै॥
चारि पदारथ और जहां लग आठहुं सिद्धि नवै निधि पावै।
सुन्दर छार परौ तिनि कै मुख जो हरि कौं तजि आंनहि ध्यावै॥ ३॥

(पतिव्रत को अङ्ग ।) (१) अन्य=अन्य, पराया। पीछे फिरै=पीठ दिखावै, भाग जाय। सूर सती=शूर वीर। तथा साधुसंत भक्तजन। हरवो=हलका, अधम, रा हुआ। घिसैं=पतन होय। जोग जती=योगी। एक रती विन=रती जो वीर्य वा ती का सत उसके नहीं रहने से। एक रती की=एक रत्ती भर, बहुत हलका, हीन तित "एक रती विन पाव रती को" भी मुहाविरा है।

(३) सही=स्वय सिद्ध, निश्चय करके, निःसन्देह। चारि पदारथ=पुरुषार्थ तुष्टय–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। आठहु सिद्धि=आठ सिद्धियां-अणिमा, महिमा, रिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, नवनिधि=नो निधियां-पद्म, महापद्म, ख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील, खर्व।

पूरन काम सदा सुखधाम निरञ्जन राम सिरज्जन हारौ।
सेवक होइ रह्यौ सब कौ नित कुंजर कीट हि देत अहारौ॥
भंजन दुःख दरिद्र निवारन चिंतकरै पुनि संझ संवारौ।
ऐसै प्रभु तजि आंन उपासत सुन्दर है तिन कौ मुख कारौ॥ ४॥
होइ अनन्य भजै भगवंत हि और कछू उर मैं नहिं राषै।
देविय देव जहां लग हैं डरि कै तिन सौं कहुं दीन न भाषै॥
योग हु यज्ञ ब्रतादि क्रिया तिन कौं नहिं तौ सुपनै अभिलाषै।
सुन्दर अमृत पान कियौ तब तौ कहि कौंन हलाहल चाषै॥ ५॥

मनहर

काहे कौ फिरत नर भटकत ठौर ठौर
डागुल की दौर देवी देव सब जांनिये।
योग यज्ञ जप तप तीरथ ब्रतादि दान
तिन हूं कौ फल सोऊ मिथ्याई बषांनिये।
सकल उपाय तजि एक राम नाम भजि
याहि उपदेश सुनि हृदै मांहिं आंनिये।
ताही तें संमुझि करि सुन्दर बिस्वास धरि
और कोउ कहै कछु ताकी नहिं मांनिये॥ ६॥
पति ही सौं प्रेम होइ पति ही सौं नेम होइ
पति ही सौं क्षेम होइ पति ही सौं रत है।
पति ही है यज्ञ योग पति ही है रस भोग
पति ही है जप तप पति ही कौ ब्रत है॥

---

(४) सम्झ=सांझ। सम्झ संवारी=नित्य। 'अमृत खाते जहर क्यों खांय' (मुहाविरा)। (५) में है।—"अमृत पान कियौ"'

(६) डागुली की दौर="क्या बुनियाद" क्या बिरता। अर्थात् ये क्षुद्र हैं। ईश्वर महान् है। (मुहाविरा)।

पति ही है ज्ञान ध्यान पति ही है पुन्य दान
पति ही तीरथ न्हांन पति ही को मत है।
पति बिन पति नाहिं पति बिन गति नांहि
सुन्दर सकल विधि एक पतिव्रत है॥ ७॥

जल को सनेही मीन बिछुरत तजै प्रान
मणि बिन अहि जैसें जीवत न लहिये।
स्वाति बूंद के सनेही प्रगट जगत मांहि
एक सींप दूसरौ सु चातक ऊ कहिये॥
रवि कौ सनेही पुनि कँवल सरोवर में।
ससि कौ सनेही ऊ चकोर जैसें रहिये।
तैसें ही सुन्दर एक प्रभु सौं सनेह जोरि
और कछु देखि काहू वोर नहि बहिये॥ ८॥

॥ इति पतिव्रत को अंग ॥ १६ ॥

---

(७) यह छन्द और ८ वा छन्द अति विख्यात हैं। पातिव्रत धर्मका मानो चरम सिद्धांत सूत्र है। क्षेम=रक्षा, खेम-कुशल। रत=अनुरक्त। वा आनन्द। यत=यतीत्व। मत=धर्म। स्त्री सहधर्मिणी होती है। पति नाहि= प्रतिष्ठा नहीं रहती। लाज गाल।

(८) यह कितना सुन्दर और मनको मुदित कर देनेवाला छन्द है। सनेही=प्रेमी।

(८) वोर=तरफ। बहिये=जाइये, फिरिये, झुकिये। सुन्दरदासजी का यह पतिव्रत धर्म वर्णन भाषा-साहित्य में अनुपम रत्न है। नैतिक सामाजिक धार्मिक और आध्यात्मिक किसी भी अर्थ में लगाकर देखिए, कैसा प्रभावदायक और चमत्कारी मिलेगा।

अथ विरहनि उराहने को अंग (१७) ॥

मनहर

प्रिय कौ अंदेसौ भारी तोसौं कहौं सुनि प्यारी
यारी तोरि गये सु तौ अजहूं न आये हैं।
मेरै तौ जीवन प्रांन निश दिन उहै ध्यान
सुख सौं न कहूं आंन नैंन झर लाये हैं ॥
जब तें गये बिछोहि कल न परत मोहि
तातें हूं पूछत तोहि किन बिरमाये हैं।
सुन्दर बिरहनी कै सोच सपी बार बार
हम कौं बिसारि अब कौन के कहाये हैं ॥ १ ॥

हम कौं तौ रैंनि दिन शंक मन मांहि रहै
उनकी तौ बातनि मैं ठीक हूं न पाइये।
कबहूं संदेसौ सुनि अधिक उछाह होइ
कबहूंक रोइ रोइ आंसुनि बहाइये ॥
औरनि कै रस बस होइ रहे प्यारे लाल
आवन की कहि कहि हम कौं सुनाइये।

(अंग १७ वां) "विरहनि उराहना"—पतिप्रेमा स्त्री, अपने प्यारे पति को विरह में उनके न आने पर वा अन्य प्रेमी जानकर दुःखी होकर उलहना, प्रतारक प्रेमसने व्यथामये वचन अनायास ही निकालती है। वैसे ही भगवत्प्रेमी जन अपने प्यारे ध्येय परमात्मा की अप्राप्ति में विरहाकुल हो उलहना भरे वचन उच्चारण करते हैं।

(१) अंदेसौ=अंदेशा, चितचिंता, विस्मय। बिछोहि=छोड़कर (इसार में किया हुई)। बिरमाये=विलंबाये, रोक रखे।

सुन्दर कहत ताहि काटिये जु कौंन भांति

जु तौ रूंप आपनेंई हाथ सौं लगाइये ॥ २ ॥

मोसौं कहै औरसी ही वासौं कहै और सी ही

जासौं कहै ताही के प्रतीति कैसें होत है ।

काहू कौ समाप करै काहू सौं उदास फिरै

काहू सौं तौ रस वस एक मेक पोत है ॥

दगाबाजी दुबिध्या तौ मन की न दूरि होइ

काहू के अन्धेरौ घर काहू के उद्दोत है ॥

सुन्दर कहत जाके पीर सौ करै पुकार

जाकै दुख दूरि गयौ ताकै भई बीत है ॥ ३ ॥

हीये और जीये और लीये और दीये और

कीये और कौनऊ अनूप पाटी पढे हैं।

मुख और बंन और नैंन और संन और

तन और मन और जन्त्र मांहि कढे हैं ॥

हाथ और पांव और सीसहू श्रवन और

नख शिख रोम रोम कलई सौं मढे हैं ।

ऐसी तौ कठोरता सुनी न देषी जगत में

सुन्दर कहत काहू वज्र ही के गढे हैं ॥ ४ ॥

---

(२) सुनाइये=सुनाते हैं (पाते, पत्र वा समाचार से) जुतौ=जो तो । लगाइये=लगाया (रोपा और बढ़ाया) हुआ ।

(३) समाप=समोख, संतोष, आश्वासन । पोत=औत प्रोत, हिलामिला । जिसे पति (परमात्मा) प्राप्त नहीं उस बिरही (स्त्री वा भक्त) के घर (हृदय) अंधेरा (ज्ञान का अभाव) है । जिसे मिल गया उसके प्रकाश है । पीर=पीड़ा व्यथा । जिसको दु:ख होय सोही पुकारता है, अन्य नहीं । बिरह वेदना प्रभुभक्त की दशा । बीत=शांति, आराम (रा०) (४) अनूप पाठ पढे=अद्भुत शिक्षा पाई है ।

भई हौं अति बावरी बिरह घेरी बावरी
चलत ऊंचौ बावरो परौंगी जाइ बावरी।
फिरत हौं बतावरी लगत नहीं तावरी
सु वाही कौं बतावरी चल्यौ है जात तावरी॥
थके है दोउ पांवरी चढ़त नहिं पावरी
पियारौ नहिं पावरी जहर बांटि पावरी।
दौरत नहिं नावरी पुकारि कै सुनावरी
सुन्दर कोउ नावरी डूबत रापै नावरी॥ ५॥

॥ इति विरहनि उराहने कौ अंग ॥ १७ ॥

अथ शब्दसार को अंग (१८)॥

मनहर

भूल्यौ फिरै भ्रम तें करत कछु और और
करत न ताप दूरि करत संताप कौ।

जन्र मांहि चढे=किसी कल में होकर निकले है। अर्थात् न्यारा ही रङ्ग-ढङ्ग हो गया है। गढे=बने। घड़े गए।

(१७) बावरी=(१) बावली, दिवानी (विरहसे)। (२) बावड़ी, वापी (अपघात करूंगी) ताव=श्वास (ऊंचा सांस आ रहा है, विरह के दुखसे) बाव=वायु, घघूला, (विरह का प्रबल झोंका)। उतावरी=उतावली जल्दी (पिया ढूंढने में) तावरी=तावड़ी, धूप (देहाभिमान नहीं है) बताव+री=बतादे हे सखी ! जात ताव+री=ताव जाना, अवसर खोना । (शीघ्र ढूंढकर बता दे, फिर न जाने मिलै या न मिलै। यह मनुष्य के पाने का अवसर ईश्वर प्राप्ति का अब ही है, फिर वही चौरासी भरमना तयार है)। पावरी=(१) दोनों पग+हे सखी (२) पांव चलते २ सूज गये सो पांवडी (वा जूता) भी इन में नहीं समाता। (३) मिलै+सखी। (४) पिलादे। नावरी=(१) पहुंची, जा लिया। (२) सुनाव+री,

दक्ष भयौ रहै पुनि दक्ष प्रजापति जैसैं
देत परदक्षणा न दक्षणा दे आप कौं॥
सुन्दर कहत ऐसैं जानें न जुगति कछु
और जाप जपै न जपत निज जाप कौं।
बाल भयौ युवा भयौ वय बीतें वृद्ध भयौ
बप रूप होइ कै विसरि गयौ बाप कौं॥ १॥

इन्दव

पांन उहै जु पीयूष पिवै नित दान उहै जु दरिद्र हि भानै।
कांन उहै सुनिये जस केशव मान उहै करिये सनमानैं॥
तान उहै सुरतान रिझावत जान उहै जगदीश हि जानै।
यान उहै मन वेधत सुन्दर ज्ञान उहै उपजै न अज्ञानै॥ २॥
सूर उहै मन कौं वसि राषत कूर उहै रन मांहि लजै है।
त्याग उहै अनुराग नहीं कहुं भाग उहै मन-मोह तजै है।
तत्व उहै निज तत्वनि जानत यज्ञ उहै जगदीश जजै है॥
रक्त उहै हरि सौं रत सुन्दर मत्त उहै भगवंत भजै है॥ ३॥

चिल्लाकर आवाज दे, हेला पाड़े। (३) नाव+री=नवका। (४) नाव+री=नांव नाम, हे सखी।

(अंग १८) (१) भ्रम=उपाधि, अज्ञान। जो यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति है वोह तो भ्रमवश करता नहीं जिससे मोक्ष मिलै। ताप=तप त्याग, वैराग्य। जिससे संसार के तीनों ताप निवृत्त हो जांय। दक्ष=चतुर (अभिमत्त, अहंकार भरा) दक्ष प्रजापति ने निज अभिमान से शिव पार्वती का अनादर किया, तब शिवजी ने उसका मस्तक काटकर यज्ञविध्वंस कर दिया, वैसे ही यहाँ अहंकार से मत्त होकर आत्माका अनादर (अज्ञान) होने से अपना नाश होता है, मोक्ष नहीं मिलती। मनुष्य देह का पाना ही यज्ञ का सजाना है। परदक्षणा=प्रदक्षणा, परकम्मा। दक्षणा=दक्षिणा, उपकार में दान अर्थात् बाहरी कर्मों का ढोंग तो करता है, अन्तरात्मा में दूरन्तर स्वरूप की प्राप्ति

चाप उहै कसिये रिपु ऊपर दाप उहै दलकारि हि मारै।
छाप उहै हरि आप दई सिर थाप उहै थपि और न धारै॥
जाप उहै जपिये अजपा नित पाप उहै निज पांप विचारै।
वाप उहै सब कौ प्रभु सुन्दर पाप हरै अरु ताप निवारै॥ ४॥

भौन उहै भय नाहिं न जा महिं गौंन उहै फिरि होइ न गौंना।
यौंन उहै धमिये विषया रस रौंन उहै प्रभुसौं नहिं रौंना॥
मौन उहै जु लिये हरि वोलत लौंन उहै सब और अलौना।
सौन उहै गुरु सन्त मिलै जब सुन्दर शंक रहै नहिं कौंना॥ ५॥

कार उहै अविकार रहै नित सार उहै जु असार हि नाघै।
प्रीति उहै जु प्रतीति धरै उर नीति उहै जु अनीति न भाषै॥
तन्त उहै लगि अन्त न टूटत सन्त उहै अपनौ सत राषै।
नाद उहै सुनि धाद तजै सब स्वाद उहै रस सुन्दर चाषै॥ ६॥

का उपाय करके ब्रह्म की प्राप्ति नहीं करता है। पर+दक्षणा=इससे यह अर्थ भी हो सकता है कि अपना आपा नहीं ढूंढ़ता पैले की करता फिरता है।

(१) बुड्ढा हुआ तब आयुष्य का अन्त आया, अब कुछ करने का अवसर ही नहीं रहा। बप रूप=(१) वाप (बड़ा) होने का भाव होनेसे अभिमानी हो गया। अथवा (२) निज आत्मा को न साध कर वपु (शरीर) के रूप के भाव ही में रहा। बाप=ईश्वर। इस सारे अङ्ग के छन्दों में शब्दों के आद्यवर्णों वा प्रतिध्वनित शब्दों से भिन्न चमत्कारी अर्थ निकाल कर चमत्कारी ही रीतिसे वर्णन किया है। ये शब्दालङ्कार और अर्थालंकार दोनों प्रकार से सिद्ध होते हैं। जैसे बप और बाप। पान पीयूष पीवै। (२) सुरतान=सुल्तान, बादशाह। ईश्वर। (३) रन=विषयों के साथ लड़ाई। भाग=भागना। तज्ञ=तत (ब्रह्म) को जाननेवाला (जो अज्ञ न हो) जजै=याचै। (४) दल्कारि=ललकार कर। पाप=जाति। आपा, निजस्वरूप। (५) सौन=सौंण, शगून। कौना=कोई भी नहीं। (६) कार=काम। वा मर्यादा। उस्वास=कुंभक। यहां प्राणायाम और प्रत्याहार आदि से अभिप्राय है।

स्वास उहै जु उस्वास न छाडत नाश उहै फिरि होइ न नासा।
पास उहै सत पास लगै, जम-पास कटै प्रभु कै नित पासा॥
वास उहै गृह वास तजै बन वास नहीं तिहिं ठाहर वासा।
दास उहै जु उदास रहै हरिदास सदा कहि सुन्दरदासा॥ ७॥
श्रोत्र उहै श्रुति सार सुनै नित नैंन उहै निज रूप निहारै।
नाक उहै हरि नाक हि राषत जीभ उहै जगदीस उचारै॥
हाथ उहै करिये हरि कौ कृत पांव उहै प्रभु कै पथ धारै।
सीस उहै करि स्याम समर्पन सुन्दर यौं सब कारज सारै॥ ८॥
सोवत सोवत सोइ गयौ सठ रोवत रोवत कै बर रोयौ।
गोवत गोवत गोइ धर्यौ धन पोवत पोवत तैं सब पोयौ॥
जोवत जोवत बीति गये दिन बोवत बोवत लै विष बोयौ।
सुन्दर सुन्दर राम भज्यौ नहिं ढोवत ढोवत बोझ हि ढोयौ॥ ९॥
देषत देषत देषत मारग बूझत बूझत बूझत आयौ।
सूझत सूझत सूझि परी सब गावत गावत गोविन्द गायौ॥

---

(७) सत पास=सच्ची वा सत्यकी गांठ वा फांसी। नाश=आपा मरना। होइ न नासा=ब्रह्मस्वरूप बन जाय। अमर हो जाय।

(८) श्रुतिसार=वेदांत के सिद्धान्त। निजरूप=आत्मा का स्वरूप। हरि नाक हि राखत=प्रभु या प्रभु भजन ही को सर्वोपरि वा प्रतिज्ञा की परमावधि समझै। नाक रखना मुहाविरा है-टेक रखना, नीची न आने देना, बात को निबाहना। धारै=सिधारै। स्याम=स्वामी, ईश्वर। अमर हो जाय।

(९) सोवत=आलस्य में गाफिल रहकर जीवन खोया। रोवत=प्रपंच में भस्त हाय पोहा करता फिरा। गोवत=बकवाद करता रहा। धन=वीर्य वा जीवन, मनुष्य देह मिलने का अर्थ। बोवत=विषयों का विषरूपी बीज जीवनरूपी भूमि में डाला। सुन्दर=सर्वोत्कृष्ट आनन्दस्वरूप परमात्मा। बोझ ही ढोया=थोथी बेगार सी ही करता रहा। शरीर धार कर मानों हम्माली ही की, कुछ परम लाभ नहीं पाया।

सोधत सोधत सुद्ध भयौ पुनि तावत तावत कंचन तायौ।
जागत जागत जागि पर्‌यौ जब सुन्दर सुन्दर सुन्दर पायौ ॥ १० ॥

॥ इति शब्दसार को अंग ॥ १८ ॥

अथ सूरातन को अंग (१९) ॥

मनहर

सुणत नगारे चोट बिगसै कंवल मुख
अधिक उछाह फूल्यौ मइ हूं न तन मैं।
फिरै जब सांगि तब कोऊ नहिं धीर धरै
काइर कंपाइमान होत देपि मन मैं॥
टूटिकै पतंग जैसें परत पावक मांहिं
ऐसैं टूटि परै बहु सांवत के गन मैं।
मारि घमसांण करि सुन्दर जुहारै स्याम
सोई सूर बीर रुपि रहै जाइ रन मैं॥
हाथ मैं गह्यौ है पर्ग मरिवे कौं एक पग
तन मन आपनौ समरपन कीनौं है।
आगै करि मीच कौं पर्‌यौ है डाकि रन बीच
टूक टूक होइ कै भगाइ दल दीनौं है॥

---

(१०) कंचन तायौ=आत्मरूपी स्वर्ण को ज्ञान की आग से या तप से तपा कर निर्मल किया। जागि पर्‌यौ=मोह निद्रा को हटा कर अपने निजस्वरूप को जान लिया। सुन्दर (१)=कवि। सुन्दर (२)=अच्छी रीति से, उत्तम साधन द्वारा। सुन्दर (३)=आनन्द स्वरूप परमात्मा।

(सूरातन को अङ्ग) (१) सूरातन=शूरवीरता। तन=शरीर के भीतर काम आदिक शत्रुओंसे यम नियमादि जानवीरों द्वारा लड़कर बिजयी रहना। बिगसै=खिलै प्रसन्न होवै, जैसे कवल खिल जाय। माई=मावै, समावै। सांगि=लोह दंड, भरी

पाइ लौंन स्याम कौ हरामखोर कैसैं होइ
नामजाद जगत में जीसौ पन तीनौं है।
सुन्दर कहत ऐसौ कोऊ एक सूर वीर
सीस कौं उतारिकैं सुजस जाइ लीनौं है॥ २॥

पांव रोपि रहै रन मांहि रजपूत कोऊ
हय गय गाजत जुरत जहां दल है।
बाजत झुझाऊ सहनाई सिंधू राग पुनि
सुनत ही काइर की छूटि जात कल है॥
झलकत बरछी तरछी तरवारि बहै
मार मार करत परत खलभल है॥
ऐसे जुद्ध में अडिग सुन्दर सुभट सोई
'घर मांहि सूरमा कहावत सकल है'॥ ३॥

असन बसन बहु भूषन सकल अङ्ग
संपति विविधि भांति भर्यौ सब घर है।
श्रवन नगारौ सुनि छिनक में छोडि जात
ऐसैं नहिं जानै कछु आगैं मोहि मर है॥

भाला। वा लंबी गदा। सावत=सामंत, योद्धा। जुहारैं=सलाम करैं, लश्कर फतह करके प्रणाम करैं।

(२) आगे धरि मीच=मौत को सामने रखकर, अर्थात् मौत से न डर कर। टूक टूक होइ कैं=लड़ने में घावों पूर होकर वा न्योछावर होकर। नाम जाद='नामजादिक', प्रसिद्ध। सीस कौं उतारि=बिना सिर-कमधज हो-लड़े। सीस उतारना=आपा मारना।

(३) झुझाऊ=रणवाद्य, रणसींगा। सिंधुराग=सिंधुड़ा, राग जो लड़ाईमें सहनाई में गाई जाती है। वीर राग। कल=कला, बिसर जाती है। खल भल=खलबली घबराहट, उत्पात।

मन में उछाह रन मांहि टूक टूक होइ
निरभै निशंक वाकै रंच हू न डर है।
सुन्दर कहत कोऊ देह की ममत्व नांहि
'सूरमा के देषियत सीस बिन धर है"॥४॥

जूझिबे कौं चाव जाकै ताकि ताकि करै घाव
आगै धरि पाव फिरि पीछैं न सभारि है।
हाथ लीये हथियार तीक्षण लगायौ धार
बार नहिं लागै सब पिशुन प्रहारि है॥
वोट नहिं रापै कछु लोट पोट होइ जाइ
चोट नहिं चूकै सीस रिपु कौ उतारि है।
सुन्दर कहत ताहि नकु नहि सोच पोच
"ऐसौ सूरवीर धीर मीर जाइ मारि है"॥५॥

अधिक अजान-बाहु मन में उछाह कीये
दीयें गज-गाह मुख बरषत नूर है।
काढै जब करवाल बाल सब ठाडे होहिं
अति विकराल पुनि देषत करूर है॥
नैंक न उसास लेत फौज में फिटाइ देत
षेत नहिं छाडै मारि करै चकचूर है।
सुन्दर कहत ताकी कीरति प्रसिद्ध होइ
"सोई सूरवीर धीर स्याम कै हजूर है"॥६॥

---

(४) मर=मरण, मौत। धर=धड, कमधज।

(५) पिशुन=शत्रु (काम, क्रोध, लोभ मोह आदिक) प्रहारि=मारे। सो पोच=शंका वा डर और कायरता। मीर=अफसर (होकर) नायक दल का (होकर यहां काम (वा क्रोधादिक में से कोई प्रधान शत्रु)।

(६) अजान बाहु=आजानु बाहु, महावीर पुरुष। गजगाह=बखतर पहने।

ज्ञान कौ कवच अङ्ग काहू सौं न होइ भंग
टोप सीस झलकत परम विवेक है।
तीन्है ताजी असवार लीयें समसेर सार
आगें ही कौ पांव धरै भागणैं की टेक है॥
छूटत बंदूक बांण बीतै ज्हाँ घमसाण
देपिकैं पिशुन दल मारत अनेक है।
सुन्दर सकल लोक मांहिं ताकौ जै जै कार
"ऐसौ सूर वीर कोऊ कोटिन में एक है" ॥ ७॥

सूर वीर रिपु कौ निमूनौ देपि चौट करै
मारै तब ताकि करि तरवारि तीर सौं।
साधु आठौं जांम बैठौ मन ही सौं युद्ध करै
जाकै मूह माथौ नहिं देपिये शरीर सौं॥
सूर वीर भूमि परै दौर करै दूरि लौं
साधु शून्य कौं पकरि रापै धरि धीर सौं।
सुन्दर कहत तहां काहू के न पाव टिकैं
"साधु कौ संग्राम है अधिक सूरवीर सौं" ॥ ८॥

करवाल=तलवार, खड्ग। वाल सन ठाढ़े होंहि=शूरवीरता चढ़नेके वक्त शूरवीरों के शरीर के बाल, दाढ़ी मूछ आदि के मोर की छत्री तरह खड़े हो जाते हैं। करूर=क्रूर, रोसभरे। फिटाइ देत=हटादेता है। खेत=रणक्षेत्र, मैदान लडाई का।

(७) तीन्है=तेज, (तीक्ष्ण का रूपान्तर) वा तेज दोडवाले (तीर्ण का रूपान्तर)। समसेर सार=सार जातिके लोहे की तलवार। टेक=प्रतिज्ञा (न भागने की दृढ़ प्रतिज्ञा)। घमसाण=तुमुल युद्ध।

(८) निमूनौ=प्रत्यक्ष आकार वाला, दृश्य। अधिक=मनुष्यों से लड़नेवाले वीरों की अपेक्षा, विना सिरपैर वाले मन और कामादि गुप्त शत्रुओं से लड़नेवाला, ज्ञानी संयमी संत बढ़कर है।

खैंचि करडी कमांण ज्ञान कौ लगायौ बांण
मार्‍यौ महाबली मन जग जिनि रान्यौं है।
ताकै अगिवांणो पंच जोधा ऊ कतल कीये
और रह्यौ पह्यौ सब अरि दल भान्यौं है॥
ऐसौ कोऊ सुभट जगत मैं न देपियत
जाकै आगै कालहूसौ कंपि कै परान्यौं है।
सुन्दर कहत ताकी सोभा तिहूं लोक मांहिं
"साधु सौ न सूरवीर कोऊ हम जान्यौं है" ॥ ६ ॥

काम सौ प्रबल महा जीते जिनि तीनौ लोक
सुतौ एक साधु के विचार आगै हार्‍यौ है।
क्रोध सौ कराल जाकें देपत न धीर धरैं
सोउ साधु क्षमा कै हथ्यार सौं विदार्‍यौ है॥
लोभ सौ सुभट साधु तोप सौं गिराइ दियौ
मोह सौ नृपति साधु ज्ञान सौं प्रहार्‍यौ है।
सुन्दर कहत ऐसौ साधु कोऊ सूर बीर
ताकि ताकि सबहि पिशुन दल मार्‍यौ है ॥ १०

मारे काम क्रोध जिनि लोभ मोह पीसि डारे
इन्द्री हूं कतल करि कीयौ रजपूतौ है।
मार्‍यौ मय मत्त मन मार्‍यौ अहंकार मीर
मारे मद मच्छर ऊ ऐसौ रन रुतौ है॥

---

(९) जग जिनि रान्यौं है=जिन्होंने समार के माया प्रपंच को रणमें मारा है वा उससे रणमें राजा समान संग्राम करके जीता है। पञ्च जोधा=पाँचों विषय पाँच इन्द्रियों के। भान्यौं=मारा। अगिवांणो=अगाऊ, मुखिया, अफसर। सुभट=महावीर परान्यौ=भाग गया।

(१०) तोप=संतोष।

मारी आसा तृष्णा सोऊ पापिनी सापिनी दोऊ
सब कौं प्रहारि निज पदई पहूंतौ है।
सुन्दर कहत ऐसौ साधु कोऊ सूरवीर
वैरी सब मारि कै निचिन्त होइ सूतौ है ॥ ११ ॥

कियौ जिनि मन हाथ इन्द्रिनि कौ सन साथ
घेरि घेरि आपने ई नाथ सौं लगाये हैं।
और ऊ अनेक वैरी मारे सब युद्ध करि
काम क्रोध लोभ मोह पोदि कैं बहाये हैं॥
किये हैं संग्राम जिनि दिये हैं भगाइ दल
ऐसैं महा सुभट सुग्रन्थनि मैं गाये हैं।
सुन्दर कहत और सूर यौंही पचि गये
"साधु सूर वीर वेई जगत में आये हैं" ॥ १२ ॥

महामत्त हाथी मन राख्यौ है पकरि जिनि
अति ही प्रचण्ड जामैं बहुत गुमान है।
काम क्रोध लोभ मोह बाध्यै चारौ पाव पुनि
छूटनै न पावै नैंक प्राण पीलवान है॥
कबहूं जो करै जोर सावधान साझ भोर
सदा एक हाथ मैं अंकुस गुरु ज्ञान है।

---

(११) मय मत्त=मदोन्मत्त। अपनी "मय" में (मौज ही में) मस्त रहने वाला। सूतौ=सुख, सानेवाला। पहूंतौ=पहुंचा।

(१२) मन हाथ=मन को वश में कर लिया। साथ=सहित। नाथ=स्वामी, ईश्वर। इन्द्रियों सहित मन को परमात्मा के ध्यान में लगा दिया। अपने पक्ष में, विनय करके, लकर। औरऊ=जो ईश्वरके पक्षमें न आये उनको मार डाले। पचि=मर गये, नाश हो गये। जगत में आये=उनही का जगत में जन्म लेना सफल है। और आये सो वृथा ही आये।

सुन्दर कहत और काहू के न वसि होइ
'ऐसौ कौन सूर वीर साधु के समान है"॥ १३॥

॥ इति सूरातन को अंग ॥ १९ ॥

अथ साधु को अंग (२०)॥

इन्दव

प्रीति प्रचण्ड लगै परब्रह्म हि और सबै कछु लागत फीकौ।
शुद्ध हृदै मति होइ सु निर्मल द्वैत प्रभाव मिटै सब जीकौ॥
गोष्टि रु ज्ञान अनन्त चलै तहं सुन्दर जैसें प्रवाह नदी कौ।
ताहि तें जानि करै निसवासर "साधु कौ संग सदा अति नीकौ"॥ १॥

जो कोउ जाइ मिलै उन सौं नर होत पवित्र लगै हरि रिङ्गा।
दोष कलंक सबै मिटि जात जु नीच हु आइ कें होत उतंगा॥
ज्यों जल और मलीन महा अति गंग मिलें होइ जात है गंगा।
सुन्दर सुद्ध करै ततकाल सु "है जग माहि वडौ सतसंगा"॥ २॥

---

(१३) इस छन्द में मन को हाथी कह कर रूपक बान्धा है। काम आदिक चार पांव जिसके। प्रण उसके ऊपर महावत। अंकुश, उसके लिए, गुरु का दिया ज्ञान। 'सुन्दर कहत''वसि होइ' यह पादांश मन का विशेषण है। 'ऐसा''' इस का सम्बन्ध प्रथम पादांश में 'जिनि' शब्द से है। अर्थात् जिन्होंने मन हाथी को बांध वश किया ऐसे साधु।

(साधु को अङ्ग २०) (१) 'साधु को संग सदा अति नीकौ' यह पादांश छन्द के प्रारम्भ में बोल कर पढ़ा जाता है-सवैये की चाल इस ही प्रकार होती है। जीकौ=जीव का। जीव और ब्रह्म में भेद बुद्धि मिट जाय। जीव ब्रह्म है यह ज्ञान हो जाय। गोष्टि=सत्सङ्ग साधु मंडली का। ज्ञान का विचार।

(२) होत पवित्र=ज्ञान विवेक के साधनसे धुलकर साफ हो जाय तब उसपर ब्रह्मज्ञान का रङ्ग चढ़ता है। उतंग=उत्तुंग, अत्यन्त ऊंचा। गंग मिलें=गंगा में मिल जाने से।

ज्यों लट भृङ्ग करै अपनै सम ता सनि भिन्न कहै नहि कोई।
ज्यों द्रुम और अनेक हि भाँतिनि चन्दन की ढिग चन्दन थोई॥
ज्यों जल क्षुद्र मिलै जब गंग हि होत पवित्र वहै जल सोई।
सुन्दर जाति सुभाव मिटै सब "साधु के संग तें साधु ही होइ" ॥ ३ ॥
जो कोउ आवत है उनकैं ढिंग ताहि सुनावत शब्द संदेसौ।
ताहि कै तैसि हि ओपद लावत जाहि कै रोग हि जानत जैसौ॥
कर्म कलंकहि काटत हैं सब सुद्ध करैं पुनि कंचन तैसौ।
सुन्दर वस्तु बिचारत है नित संतनि कौ जु प्रभाव है ऐसौ॥ ४ ॥
जो परब्रह्म मिल्यौ कोउ चाहत तौ नित संत समागम कीजै।
अन्तर मेटि निरन्तर ह्वै करि लै उनकों अपनौ मन दीजै॥
वै मुख द्वार उचार करैं कछु सो अनयास सुधा रस पीजै।
सुन्दर सूर प्रकासत है उर और अज्ञान सबै तम छीजै॥ ५ ॥
जा दिन तें सतसंग मिल्यौ तब ता दिन तें भ्रम भाजि गयौ है।
और उपाइ थके सब ही जब संतनि अद्वय ज्ञान दयौ है॥
पोति पवारि हि क्यौं कर छूवत एक अमोलिक लाल लयौ है।
कौन प्रकार रहै रजनी तम सुन्दर सूर प्रकास भयौ है॥ ६ ॥
संत सदा सब कौ हित चंछत जानत है नर बूडत काढैं।
दै उपदेश मिटाइ सबै भ्रम लै करि ज्ञान जिहाज हि चाढैं॥

---

(३) क्षुद्र=छोटा, हीन (मलीन या नदी-नाला)।

(४) वस्तु=परमात्म वस्तु परम तत्व। विचारत=मनन व निदिध्यासन।

(५) अन्तर=बीचका भेदभाव। कपट।

(६) पोति=काचकी पोत (मोती जैसे छोटे दाने)। पवार=सफेद या रक्के दाने। अथवा फैंकने योग्य। अथवा कठोर, हीन-"सुआसु नाक कठोर पँवारी। वह कोमल तिल कुसुम संवारी" (जायसी) कर=हाथ (से मत छू-अर्थात् दूर रख)।

ये विषया सुख नाँहि न छाडत ज्यौं कपि मूठि गहै सठ गाढैं।
सुन्दर यौं दुख कौं सुख मानत हाट हि हाट विकावत आढैं॥ ७॥
सो अनयास तिरै भवसागर जो सतसंगति मैं चलि आवै।
ज्यौं कणिहार न भेद करै कछु आइ चढै तिहिं नाव चढावै॥
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य हू शूद्र मलेछ चण्डाल हि पार लंघावै।
सुन्दर वार कछू नहिं लागत या नर देह अभै पद पावै॥ ८॥
ज्यौं हम पाँहि पिवैं अरु खोढ़हि तैसैंहि ये सब लोग बषानैं।
ज्यौं जल मैं ससि कै प्रतिबिंब हि आप समा जल जन्त प्रवानैं॥
ज्यौं षग छांह धरा परि दीसत सुंदर पषि उडै असमानैं।
त्यौं सठ देहनि के कृत देषत संतनि की गति क्यौं कोउ जानैं॥ ६॥
जौ पषरा कर लै घर डोलत मारत भीष हि तौ नहिं लाजै।
जौ सुख सेज पटंबर अंबर लावत चन्दन तौ अति राजै॥

---

(७) बूड़त काढ़ैं=डूबता है यह जानते हैं तो (तुरत) उसे बाहर निकालैं। चाढैं=चढालैं। गाढैं=गाढी करके, दृढ़। हाट ही हाट=एक हाट से दूसरी हाट पर। आढैं=आढत द्वारा। अर्थात् ससार बाजार है यहां सुख दुःख कर्मोंका व्यापार हो है। किसी के लाभ वा नफा किसी के हानि वा घाटा होता है। कर्मफल अनिवार्य हैं।

(८) कणिहार=कर्णधार, खेवटिया। लंघावैं=उतारै।

(९) बषानैं=साधरण अज्ञ लोगों को संतों की वास्तव गति का तो ज्ञान नहीं इनर रहन-सहन का भी अपना सा ही जानते हैं। आप सम=अपने समान ही चान्द के प्रतिबिम्बों के आकारों को मच्छ-कच्छ समझते हैं कि वे भी मच्छ-कच्छ ही हैं। षग छांह=पक्षी की छाया पृथ्वी पर पड़े उसही को पक्षी का भ्रम करै। देहन की कृत=शरीरों के कर्मों को साधारण समझते हैं परन्तु संतों के कर्म अलग होते हैं, वे कर्मों में लिप्त नहीं होते हैं, उनके कर्म दीखने मात्र हैं। उनकी गति अगाध है।

जौ कोउ आइ कहै मुख तें कछु जानत ताहि वयारि हि बाजै।
सुन्दर संसय दूरि भयौ सब "जो कछु साधु करै सोइ छाजै" ॥ १० ॥
कोउक निंदत कोउक वंदत कोउक आइकै देत है भक्षन।
कोउक आइ लगावत चन्दन कोउक डारत धूरि ततक्षन ॥
कोउ कहै यह मूरख दीसत कोउ कहै यह आहि विचक्षन।
सुन्दर काहु सौं राग न द्वेष सु "ये सब जानहुं साधु के लक्षन" ॥ ११ ॥
तात मिलै पुनि मात मिलै सुत भ्रात मिलै युवती सुखदाई।
राज मिलै गज बाज मिलै सब साज मिलै मन वंछित पाई ॥
लोक मिलै सुरलोक मिलै विधि लोक मिलै बइकुण्ठ हुं जाई।
सुन्दर और मिलै सब ही सुख दुल्लभ संत समागम भाई ॥ १२ ॥

मनहर

देव हू भये तें कहा इन्द्र हू भये तें कहा
विधि हू के लोक तें बहुरि आइयतु है।
मानुष भये तें कहा भूपति भये तें कहा
द्विज हू भये तें कहा पार जाइयतु है ॥
पशु हू भये तें कहा पक्षी हू भये तें कहा
पन्नग भये तें कहौ क्यौं अघाइयतु है।
छूटिबे कौ सुन्दर उपाइ एक साधु सङ्ग
जिनि की कृपा तें अति सुख पाइयतु है ॥ १३ ॥

---

(१०) खपरा कर=खप्पर को हाथ में (लेकर) बयार हि बाजै=पवन बाज गई, उसके चित्तपर संस्कार नहीं होने पाता। कहे सुने का वे बुरा नहीं मानते हैं, न हर्ष मानते हैं। (११) ततक्षन=तत्क्षण, उसी समय। विचक्षन=ज्ञानी।

(१२) बइकुंठ=विष्णुलोक। दुल्लभ=दुर्लभ, कठिनता से मिलने वाला।

(१३) यह छन्द सुन्दरदासजी का बहुत प्रसिद्ध है। आइयतु आदि क्रियाएं निश्चय बोधके निमित्त हैं। "ऐसा होता ही है"।

इन्द्रानी शृङ्गार करि चन्दन लगायौ अङ्ग
बाहि देषि इन्द्र अति काम बस भयौ है।
शूकरी हू कर्दम के चहले में लोटि करि
आगै आइ शूकर कौ मन हरि लयौ है॥
जैसौ सुख शूकर कौं तैसौ सुख मघवा कौं
तैसौ सुख नर पशु पंषिन कौं दयौ है।
सुंदर कहत जाकै भयौ ब्रह्मानन्द सुख
सोई साधु जगत में जन्म जीति गयौ है॥ १४॥

धूलि जैसौ धन जाकै सूलि से संसार सुख
भूलि जैसौ भाग देषै अंत की सी यारी है।
पाप जैसी प्रभुताई सांप जैसौ सनमान
बड़ाई हू बीछनी सी नागनी सी नारी है॥
अग्नि जैसौ इन्द्रलोक विघ्न जैसौ विधिलोक
कीरति कलंक जैसी सिद्धि सींटि डारी है।
वासना न कोऊ वाकी ऐसी मति सदा जाकी
सुन्दर कहत ताहि वन्दना हमारी है॥ १५॥

काम ही न क्रोध जाकै लोभ ही न मोह ताकै
मद ही न मच्छर न कोउ न विकारौ है।

---

(१४) कर्दम=कादा, कीच। चहले=चहल में, कीचड़ की मिट्टी में। मघवा=इन्द्र।

(१५) यह १५ वाँ छन्द सुन्दरदासजी ने बनारसीदासजी जैन कवि आगरे वालों को लिखा था, जिसके उत्तर में बनारसीदासजीने एक छन्द भेजा था जो "समयसार नाटक" में ८ वीं अध्याय का छन्द ५६ वाँ है:—"कीच सो कनक जाकै... ताहि बंदत बनारसी"। (देखो भूमिका)।

दुख ही न सुख मानै पाप ही न पुन्य आनै
हरष न सोक आनै देह ही तें न्यारौ है॥
निंदा न प्रशंसा करै राग ही न दोष धरै
लैन ही न दैन जाकै कछु न पसारौ है।
सुन्दर कहत ताकी अगम अगाध गति
ऐसौ कोउ साधु सु तौ रामजी कौ प्यारौ है॥ १६॥

आठौं यांम यम नेम आठौं यांम रहै प्रेम
आठौं यांम योग यज्ञ कियो बहु दांन जू।
आठौं यांम जप तप आठौं यांम लियो व्रत
आठौं याम तीरथ में करत है न्हांन जू॥
आठौं यांम पूजा बिधि आठौं यांम आरती हू
आठौं यांम दंडवत समरन ध्यांन जू।
सुन्दर कहत तिन कियौ सब आठौं यांम
"सोई साधु जाकै उर एक भगवांन जू"॥ १७॥

जैसें आरसी कौ मैल काटत सिकल करि
मुख मैं न फेर कोऊ वहै वाकौ पोत है।
जैसें बैद नैंन मैं सलाका मेलि शुद्ध करै
पटल गये तें तहां ज्यौंकी त्यौंही जोत है॥
जैसें बायु बादर बपेरि कैं उडाइ देत
रवि तौ अकाश मांहि सदाई उदोत है।
सुंदर कहत भ्रम छिन मैं बिलाइ जात
"साधु ही कै संग तें स्वरूप ज्ञान होत है"॥ १८॥

---

(१६) वें के लिये भी यही कहा जाता है।। अत कौ=मौत की। सांप=सर्प या शाप। पसारौ=फैलाव, आडवर, प्रपंच।

(१७) आठौं याम=आठौं पहर, रात दिन, निरन्तर। (१८) आरसी=आईना,

मृतक दादुर जीव सकल जिवाये जिनि
बरषत बांनी मुख मेघ की सी धार कौं।
देत उपदेश कोऊ स्वारथ न लवलेश
निशि दिन करत हैं ब्रह्म ही विचार कौं॥
औरऊ सन्देहनि मिटावत निमेष मांहि
सूरज मिटावत है जैसैं अन्धकार कौं।
सुन्दर कहत हंस बासी सुख सागर के
"सन्तजन आये हैं सु पर उपकार कौं" ॥ १६ ॥

हीरा ही न लाल ही न पारस न चिंतामनि
औरऊ अनेक नग कहौं कहा कीजिये।
कामधेनु सुरतरु चन्दन नदी समुद्र
नौकाऊ जिहाज बैठि कबहूंक छीजिये॥
पृथ्वी अप तेज वायु व्योम लौं सकल जड
चन्द सूर सीतल तपत गुन लीजिये।

शीशा (पहिले जमानों में फौलाद के दर्पण बनते थे, उन पर मोरचा था जया करता था उसको सिकलगर साफ करते थे)। पोत=मोरचा, दाग। पहल=परदा, मैल्हा।

(१६) मृतक दादुर=मरे मैंडक। गर्मियों में पानी सूखने से मैंडक मछली आदिक सूख जाते हैं। बारिशमें वर्षा की अनी से तर होकर जी उठते हैं। इसही तरह माया के वश होकर विषय की ताप से जीव जो सूख कर मृतक (पतित) हो जाते हैं वे सतजनों की ज्ञानोपदेश की अमृत वर्षा से सजीव वा ज्ञानी और ब्रह्मानन्द को पा कर सुखी हो जाते हैं। स्वारथ न लवलेश=निस्स्वार्थ उपदेश देते हैं। आजकल के वैतनिक अध्यापकों और स्वार्थी प्रोफेसरोंकी सी तरह नहीं। निर्लोभी सतों का ढङ्ग निराला है। निमेष=पल में। संदेहनि=सब धकधौंकी।

सुन्दर विचारि हम सोधि सब देपे लोक
"सन्तनि के सम कहौ और कहा कीजिये" ॥ २० ॥

जिनि तन मन प्रान दीनौ सब मेरे हेत
औरऊ ममत्व बुद्धि आपुनी उठाई है।
जागतऊ सोवतऊ गावत है मेरे गुन
मेरोई भजन ध्यान दूसरी न काई है॥
तिनकै में पीछै लाग्यौ फिरत हौं निश दिन
सुन्दर कहत मेरी उनतें बड़ाई है।
वे हैं मेरे प्रिय मे हौं उनकौ आधीन सदा
"सन्तनि की महिमा तौ श्रीमुख सुनाई है" ॥ २१ ॥

प्रथम सुजस लेत सील हू सन्तोष लेत
क्षमा दया धर्म लेत पापतें डरत हैं।
इन्द्रिनि कौ घेरि लेत मनहू कौं फेरि लेत
योग की युगति लेत ध्यान लै धरत हैं॥
गुरु कौ वचन लेत हरिजी कौ नाम लेत
आतमा कौ सोधि लेत भौ जल तरत हैं।

---

(२०) इस छन्द में संतों के समान वा बराबरी करने के योग्य पदार्थों को ढूढ कर लिखा है कि संतों को किसकी उपमा दी जा सकै वा किसके साथ तुलना की जाय ? उनको हीरा आदि बहुमूल्य मणि कहें, वा चिंतामणि ही कहें, वा कामधेनु, कल्पवृक्ष, चन्दन का वृक्ष, वा समुद्र का जहाज वा पयतच, वा सूरज-चांद इत्यादि संसार में कोई ऐसा पदार्थ नहीं जचा कि जो संतों की समानता के लिये उपयुक्त समझा जाय। अर्थात् संतों का दर्जा बहुत ऊंचा है।

(२१) संतजनों वा अनन्यभक्तों की महिमा (भागवत आदिक ग्रन्थों में) भगवान ने अपने मुखारविंद से वर्णन की है। भक्तों को अपने आप से भी बड़ा कहा है। काई=और कुछ।

सुन्दर कहत जग सन्त कछु लेत नाहिं
"सन्तजन निश दिन लेवौई करत हैं" ॥ २२ ॥

सांचौ उपदेश देत भली भली सीप देत
समता सुबुद्धि देत कुमति हरत हैं।
मारग दिखाइ देत भाव हू भगति देत
प्रेम की प्रतीति देत अभरा भरत हैं॥
ज्ञान देत ध्यान देत आतमा विचार देत
ब्रह्म कौं बताइ देत ब्रह्म मैं चरत हैं।
सुन्दर कहत जग सन्त कछु देत नाहिं
"सन्तजन निश दिन देवौई करत हैं" ॥ २३ ॥

जगत व्यौहार सब देषत है ऊपर कौं
अन्तहकरण कौं न नैंक पहिचानि है।
छाजन कै भोजन कै हलन चलन कछु
और कोऊ क्रिया कै तौ सोइयौ बषांनि है॥
आपुनेई गुननि आरोपत अज्ञानी नर
सुन्दर कहत तातें निन्दाई कौ ठांनि है।

---

(२२) पापनै हरत हैं=(अर्थात्) पुन्य को लेते हैं। भौ जल तरत हैं=भवसागर समुद्र से पारंगतता लेते हैं। कहत जग=लोग तो ऐसा कहते हैं—परन्तु उनका कहना ठीक नहीं। सतों का लेना सिद्ध है। यहाँ व्याज स्तुति है।

(२३) कुमति हरत है=(अर्थात्) सुमति देते हैं। प्रतीति=निश्चय अभरा भरत है=अपूर्ण को पूर्णता देते हैं। ब्रह्म में चरत हैं=ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति करा के ब्रह्मानन्द लोक में विचरने की शक्ति देते हैं। इस छन्द में संतजनों के महत्त्व हे ना सिद्ध किया है। संतजन तो त्यागी हुआ करते हैं फिर उनके पास देने को कहां। परन्तु दातव्यता का, अलंकार की चातुरी से, आरोप कर दिया है।

भाव मैं तो अन्तर है राति अरु दिन कौ सौ
"साधु की परीक्षा कोऊ कैसैं करि जानि है" ॥ २४ ॥

कूप मैं कौ मैंडुका तौ कूप कौं सराहत हैं
राजहंस सौं यहै कितौक तेरौ सर है।
मसका कहत मेरी सर भरि कौंन उडै
मेरैं आगैं गरुड की कितीयक जर है॥
गुबरैंडा गोली कौं लुडाई करि मानैं मोद
मधुप कौं निन्दत सुगन्ध जाकौ घर है।
आपुनी न जानैं गति सन्तनि कौ नाम धरैं
सुन्दर कहत देषौ ऐसौ मूढ नर है॥ २५॥

कोऊ साधु भजनीक हुतौ लयलीन अति
कबहू प्रारब्ध कर्म धका आइ दयौ है।
जैसैं कोऊ मारग मैं चलतै आंपुटि परै
फेरि करि उठै तब उहै पन्थ लयौ है॥
जैसैं चन्द्रमा की पुनि कला क्षीण होइ गई
सुन्दर सकल लोक द्वितिया कौ नयौ है।
देव कौ देवातन गयौ तो कहा भयौ बीर
पीतरि कौ मोल सुतौ नौंहि कछु गयौ है॥ २६॥

---

(२४) ऊपर के छन्द ९ से इस छन्द का अभिप्राय कुछ-कुछ मिलता सा प्रतीत होता है। ऊपर कौ=साधारण मनुष्य सतोंके बाहर के व्यवहार ही को देख सकते हैं उनके अन्तरङ्ग की भावनाओं-ज्ञान भक्ति ब्रह्मनिष्टता योगशक्ति आदि को—नहीं जान सकते। मूर्ख लोग इसके अधिकारी ही नहीं हैं। इसको आगे के। (२५) वें छन्द में उदाहरणों से दरसाते हैं। मसका=मच्छर। सरभरि=बराबर जर=जड़ (क्या बुनियाद) औकात।

(२६) आंपुटि [illegible]

उही दगाबाज उही दुष्टी जु कलङ्क भर्यौ
उही महापापी वांकैं नख शिख कीच है।
उही गुरुद्रोही गो ब्राह्मण कौ हननहार
उही आतमा को घाती हिंसा वाकै बीच है।।
उही अघ कौ समुद्र उही अघ कौ पहार
सुन्दर कहत वाकी बुरी भांति मीच है।
उही है मलेछ उही चण्डाल बुरे तें बुरौ
"सन्तनि की निन्दा करै सुतौ महा नीच है" ॥ २७ ॥

परि है वज्राग्नि ताकै ऊपर अचानचक
धूरि उडि जाइ कहूं ठौहर न पाइ है।
पीछै कैऊ युग महानरक मैं परै जाइ
ऊपर तें यमहू की मार बहु पाइ है।।
ताकै पीछै भूत प्रेत थावर जंगम योनि
सहैगौ संकट तब पीछै पछिताइ है।
सुन्दर कहत और भुगतै अनन्त दुख
"संतनि कौं निंदै ताकौ सत्यानाश जाइ है" ॥ २८ ॥

को नयो है=वह सत फिर वैसा ही उज्ज्वल तपश्चर्या से हो जाता है। उसको सब दोज के चांद को देख हर्षित व प्रणाम करते व पूजते हैं वैसे भाव करने लगते हैं। देव को देवातन=देवता का देवता पन अथवा देवालय (जा नहीं सकता, वह थोड़ी देर को विकृत प्रतीत होता है फिर वैसा का वैसा) पीतरि कौ मोल=सोने का सोनापन गया तो क्या पीतल का भी मोल गया। अर्थात् उसकी असलियत शुद्ध रहती है ही। (मुहाविरे हैं)।

(२७) सन्तजनों की निन्दा से मनुष्य महापातकी हो जाता है। अतः सन्तों की निन्दा नहीं करनी चाहिये।

(२८) के छन्द में भी वही सन्तनिन्दा के बुरे फल को कहा है।

ताहि के भगति भाव उपजि है अनायास
जाकी मति सन्तन सौं सदा अनुरागी है।
अति सुख पावै ताके दुख सब दूरि होंहि
औरऊ काहू की जिनि निन्दा मुख लागी है॥
संसार की पासि काटि पाइ है परम पद
सतसंग ही तें जाके ऐसो मति जागी है।
सुन्दर कहत ताकौ तुरत कल्यान होइ
सन्तन को गुन गहै सोई बड़भागी है॥ २६॥
योग यज्ञ जप तप तीरथ व्रतादि दान
साधन सकल नहिं याकी सरभरे हैं।
और देवी देवता उपासना अनेक भांति
संक सब दूरि करि तिन तें न डरे हैं॥
सब ही के सिर पर पांव दे मुकति होइ
सुन्दर कहत सो तो जनमें न मरे हैं।
(मन वच काय करि अन्तर न राखै कछु
संतन की सेवा करै सोई निसतरे हैं।) ३०॥

॥ इति साधु कौ अंग ॥ २० ॥

---

(२९) यहां सन्तों की भक्ति करके उनसे लाभ उठाने की प्रशंसा है। सन्तों के जो गुण हैं वह ग्रहण करना ही उत्तम है। उनमें कोई अवगुण नहीं होवे हैं जो दिखाई देते हैं वे मन्दबुद्धिजनों का दृष्टिदोष मात्र है और उनकी बुरी भावना है। सन्तों को सदा शुद्ध और निर्दोष समझना ही अच्छी बात है।

(३०.) सन्तजन परमात्मतत्व और अद्वैत ज्ञान की प्राप्ति कराके भक्तजनों का निस्तारा (मोक्ष) करा देनेवाले होते हैं। इसलिये उनकी सेवा शुश्रूषा करने से ही अत्यन्त लाभ हो सकता है। उनसे अन्तर (कपट आदि) नहीं रखना। शुद्ध-

अथ भक्ति ज्ञान मिश्रित को अंग (२१)॥

इन्दव

बैठत राम हि ऊठत राम हि बोलत राम हि राम रह्यौ है।
जीमत राम हि पीवत राम हि धीमत राम हि राम गह्यौ है॥
जागत राम हि सोवत राम हि जोवत राम हि राम लह्यौ है।
देतहु राम हि लेत हु राम हि सुन्दर राम हि राम कह्यौ है॥ १

श्रोत्र हु राम हि नेत्र हु राम हि वक्त्र हु राम हि राम हि गाजै।
सीस हु राम हि हाथ हु राम हि पाव हु राम हि राम हि छाजै॥
पेट हु राम हि पीठ हु राम हि रोम हु राम हि राम हि बाजै।
अन्तर राम निरन्तर राम हि सुन्दर राम हि राम विराजै॥ २

भूमि हु राम हि आपु हु राम हि तेज हु राम हि वायु हु रामैं।
व्योम हु राम हि चन्द हु राम हि सूर हु राम हि शीत न घामैं॥
आदि हु राम हि अन्त हु राम हि मध्य हु राम हि पुस न वामैं।
आज हु राम हि कालि हु राम हि सुन्दर राम हि म्हांमहि थामैं॥ ३

भाव से मुमुक्षुता और जिज्ञासा करनी चाहिये। वे मतमतान्तरों के आडम्बरों
झगड़ों की उपेक्षा करते हुए सरल सहज विधि से बेड़ा पार कर देंगे। अत
सेवा कर्तव्य है। (साधु लक्षण के लिये देखो दादूपद १६४। तथा साधु का व

(भक्ति ज्ञान मिश्रित अंग २१) (१) रह्यौ है=बरतता रहता है। धी
ध्याते हुये ('धीमहि' का रूपान्तर है)। जोवत=देखते हुये।

(२) गाजै=गर्जना करै, उच्च शब्द से रटै। बाजै=गुंजारै, शब्द करै (
रोम से राम धुन लागै)।

(३) शीत न घामैं=शीतोष्ण का दुख भक्तिभाव में नहीं व्यापै। ध
वामैं=स्त्री पुरुष में समभाव रक्खै अर्थात् सबको ईश्वरस्वरूप से भावना में लावै
न समझै। म्हां में (रजवाड़ी) हमारे अन्दर। थामैं (रजवाड़ी) तुम्हारे अ

देप हु राम अदेप हु राम हि लेप हु राम अलेप हु रामैं।
एक हु राम अनेक हु राम हि शेप हु राम अशेप हु तामैं॥
मौंन हु राम अमौंन हु राम हि गौन हु राम हि भौन हु ठामैं।
बाहिर राम हि भीतरि राम हि सुन्दर राम हि है जग जामैं॥ ४॥
दूरि हु राम नजीक हु राम हि देश हु राम प्रदेश हु रामैं।
पूरब राम हि पच्छिम राम हि दक्षिन राम हि उत्तर धामैं॥
आगैं हु राम हि पीछै हु राम हि व्यापक राम हि है बन ग्रामैं।
सुन्दर राम दशौं दिशि पूरत स्वर्ग हु राम पताल हु तामैं॥ ५॥
आप हु राम उपावत राम हि भञ्जन राम संवारन रामैं।
दृष्टि हु राम अदृष्टि हु राम हि इष्ट हु राम करै सब कामैं॥
वर्ण हु राम अवर्ण हु राम हि रक्त न पीत न स्वेत न स्यामैं।
शून्य हु राम अशून्य हु राम हि सुन्दर राम हि नाम अनामैं॥ ६॥

॥ इति भक्ति ज्ञान मिश्रित को अंग ॥ २१ ॥

---

(४) देप लेप =दृष्ट-अदृष्ट, लक्षित अलक्षित। शेप अशेप=नेति नेति कहते, बचै सो अवशिष्ट ब्रह्म। अशेप, सकल, चराचर में व्याप्त। गौन=गमन, गति, स्पन्दन क्रिया का मूलभूत। जग जामैं=जिसमें जगत है वही ब्रह्म है।

(५) नजीक=(फा०) नजदीक, पास (अपने अन्दर ही)। प्रदेश=परदेश, दूर देश। पताल हु तामैं=पाताल जो है उसमें भी।

(६) उपावत=उत्पन्न करता, सिरजता है। भञ्जन=नाश करनेवाला। सवारन=सवारनेवाला, रक्षा वा पालन करनेवाला। दृष्टि=देखने की शक्ति जिससे उसका साक्षात्कार होता है। अदृष्टि=वह अवस्था जिसमें साक्षात्कार न हो। शून्य में समाधि। करै सब कामैं=सर्व कार्य का आदि कारण। अनामैं=अनामय, निर्मल। अथवा जिसका कोई नाम नहीं हो सकता, क्योंकि निर्गुण है।

(अंग २१ की सुन्दरानन्दी टीका समाप्त)

अथ विपर्यय शब्द को अंग (२२)॥

सवईया ६

श्रवन हु देषि सुनै पुनि नैनहु, जिह्वा सूघि नासिका बोल।
गुदा पाइ इन्द्रिय जल पीवै, बिन ही हाथ सुमेर हि तोल॥
ऊंचे पाइ मूड नीचे कों, विचरत तीनि लोक मैं डोल।
सुन्दरदास कहै सुनि ज्ञानी, भली भांति या अर्थ हि षोल॥ १॥

(विपर्यय अंग २२) (१) विपर्यय=उलटा, जो सुनने में असम्भव, असंगत वा बेढंगा जान पड़े परन्तु अर्थ उसका गहरा और चमत्कारी निकले। ऐसा शब्द कबीरजी, गोरषनाथजी, दादूजी, रज्जबजी आदि संतों ने भी कहा है। हमको दो हस्तलिखित टीकाएं तथा प० पीताम्बर जी अहमदाबादवालों की मुद्रित टीका मिली उनके आधार पर तथा जो हमने संतों से, ग्रन्थोंसे अथवा अपने निज के विचार से अर्थ अवभासित हुआ तदनुसार टीका टिप्पणी जहां आवश्यक वा उचित जानी देते हैं। न्यूनाधिक को पंडितजन व महात्मा लोग सुधार लें।

हस्तलिखित उभय टीका (१ ली टीका)—(यह टीका सांकेतिक है) श्रवण=सुरत। नैन=निरत। सूघि=रामरस। बोल=जाप। गुदा पाय=अपानपौन। इन्द्रिय जल पीवै=विषैजल पीवै। हाथ=हेत। सुमेर=अहंकार। ऊंचो पाय=ऊंचो ब्रह्म पायो। मूड नीचे=तब सब को मस्तक नम्र भयो। (२ री टीका)—"श्रवण सुर्णों नाम सुरति सौं शुभाशुभ विचार बारबार अवलोकन करणों सोई देषणों। निरति सौं सर्वकार्य अकार्य का निरणौ करणा सोई सुणनौं। जिह्वा सौं रामराम रटि करि सुष स्वाद की प्राप्ति सोई सूघणौं। नासिका द्वारि सासोसास जपधुनि करणी सोई बोलणां। गुदारूपनै आधारचक्र मध्ये अपान वाय कौं थिर करणां सोई पावणां। भजन करि संयमता सौं इंद्रियां का विकार जीतणां सोई इन्द्रिय जल पीवणां। हाथौं बिना केवल विवेक सौं मेरु नाम अहंकार है ताकौं तोलणां जा जितनक दुग्ग हौवै है सो सर्व एक अहंकार कै आशिरे है, यौं विचार करणां सोई तोल्यां। ऊंचे—यौं विचार कीयां ऊंचा

परमेश्वरजी सो पाया तब सर्व का मुड नाम मस्तक नीचे कौं नम सर्व का मस्तक आपकों नयवा लगि जावै। तब तीनलोक में इच्छाचारी हुवा विचरो, कहीं अटकै नहीं। सुन्दरदासजी कहैं हो ज्ञानी पुरुष याका अर्थ कौं भलीभांति करि बोल, नाम विचारो। सर्व कल्याण साधन सिद्धांत याही में है" ॥ १ ॥

पीताम्बरजी की टीका:—"श्रोत्र द्वारा निकसी जो अंतःकरण की वृत्ति। ता वृत्तिरूप श्रवण करि गुरुके मुख सें महावाक्य के अर्थ कू ग्रहण करिके। अंतर्मुखताते देखे। कहिये ब्रह्मकू अभिन्न-ब्रह्मस्वरूप कू साक्षात् अपरोक्ष जाने। नेत्रद्वारा निकसी जो अंतःकरणकी वृत्ति। ता वृत्तिरूप चक्षु करि सुने। कहिये ब्रह्म औ, आत्मा की एकतारूप महावाक्यके अर्थ कू ग्रहण करै। मधुरादिक षट्रसनतें विलक्षण स्वरूपानंद रसकू आस्वादन करनेवाली जो अंतःकरण की वृत्ति। ता वृत्ति रूप जिह्वा करि। अंतःकरणरूप कमल को विकासनेवाला सुगंधिकू सूंघै। कहिये अनुभव करै। उपनिषद रूप पुष्पन के ज्ञानरूप मकरंद कू ग्रहण करनेवाली अंतःकरण की वृत्तिरूप नासिका करि बोलै। कहिये मनन करनेके वास्तै पूर्व अभ्यास किये शास्त्रन के शब्दन का सूक्ष्म उचारण करै। अथवा निदिध्यासन करनेके वास्ते "सोऽहं ॐ। ब्रह्मैवाहं। अमयोऽहं। निश्चयोऽहं।" इत्यादिक शब्दन का मनमें सूक्ष्म जप करै। बाधित अनुवृत्ति युक्त रागद्वेषादि वासनारूप गुदा करि खाय। कहिये प्रारब्धकर्म तें मिले हुवे अनुकूल सुख वा दुःख का अनुभव करै। भोक्ता, भोग्य औ भोग कू मिथ्या जानि के जो कामनाका जय है तिसरूप लिंग इन्द्रिय करि "मैं अकर्त्ता, अभोक्ता, औ आत्मा हूं" इस निश्चयरूप जल कू पीवै। स्थूल औ सूक्ष्म प्रपंच कार्यरूप शिखर वाला मूल-अज्ञानरूप जो सुमेर पर्वत है। ताकू हाथ बिन ही तौलै। कहिये स्वरूप में विवेचन करिके मिथ्या जानै।—"मैं सर्वत्र व्यापक हूं" ऐसा जो अंतःकरण का निश्चय। औ वैराग्य विवेकादि करि ब्रह्मरूप प्रदेश में गमनरूप जो निश्चय है, तिन दोनू निश्चयरूप पगन कू ऊंचे कहिये मुख्य राखिकै। ज्ञान हुवे पीछे भी व्यवहार काल में बाधित हुआ जो अहंकार फुरता है। सो सर्व सभावमें मुख्य होने तें तिसरूप मुंडी नाचे कू। कहिये अमुख्य राखिके तीनलोक में विचरत डोल। कहिये जहां जहां गति होवै तहां तहां स्वच्छन्द हुआ विचरै।—सुन्दरदासजी कहैं हैं कि हे ज्ञानी! इस सवैये के अर्थ

कू सुनि । भले प्रकार करि खोलो । जैसे किसी अनेक पदार्थन सहित ग्रह के द्वार कू ताला लगा होवै । ताकू खोलतें वे सर्वपदार्थ प्रगट दृष्टि में आवें हैं । तैसे याके खोलनेसे मोक्षोपयोगी पदार्थ दृष्टि आवेंगे । या में यह रहस्य है:—इस पद्यमें मुक्त पुरुष के लक्षण कहे हैं । सोही मुमुक्षु के साधन हैं । या तें तिस अर्थ कू प्रगट करने में मुक्त कू प्रसन्नता औ मुमुक्षु कू उक्त साधनों की प्राप्ति में परम लाभ होवैगा" ॥ १ ॥

सुन्दरानन्दी टीका—पंच ज्ञानेंद्रिया मनके आश्रित हैं । राजयोग और हठयोग से जब मन वश मे हो गया तो श्रवणादिक इन्द्रियोंके अंतर्मुख हो जाने से उनके बहिर्मुख (स्थूल) काय जिस तरह योगी चाहै कर सकता है । उनके कार्यों में उलट-पुलट, लोम-विलोम से अन्तरात्मा के ज्ञान में कुछ भी भेदभाव, वा हानि नहीं हो सकती । हठयोगी गुदा द्वारा गणेशक्रिया वा वस्ति और उड्डियान साधन की सिद्धि से जितना चाहै जल वा दूध गुदासे चढ़ा ले सक्ता है । ऐसेही इन्द्रिय (लिंग) से जल, दुग्ध, घृत खींच सकता है । ऊंचे पांव से शीर्षासन प्रयोजन है । अथवा उर्द्ध रेता होना भी । खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जाने पर गगनगामी होकर स्थूल वा सूक्ष्म शरीरसे लोकान्तर में भ्रमण वा प्रवेश करता है । यह उभय योग मार्गों से सिद्धियोंके अनुसार अर्थ हैं । साधारण पुरुषों को योगियों की क्रियाएं असमव और उल्टी (विपरीत) प्रतीत होती हैं । इसही से विपर्यय कहा जाता है । जो उक्त दोनों टीकाओंमें अर्थ दिये हैं वे वेदांतादि के पक्ष से उत्तम हैं । सुन्दरदासजी ने १२ वर्ष योग साधन किया था । वे योग की सब बातों से भलीभांति अभिज्ञ थे । वेदांत के भाव के साथ योग का भी अभिप्राय था । बिनही हाथों के सुमेर तोलना ज्ञानी की अन्तरात्मा में बिशाल विराट् विश्व प्रपंच की असारता का मिथ्यात्व सिद्ध होना ही अन्तःकरण की वृत्ति में (जहां कोई हाथ वा ताखड़ी बाट नहीं हैं) भासनाना ही तौलना है । यह ज्ञानी की सहज वृत्ति है । साधारण पुरुष को असमव वा बिपरीत सा जान पड़ता है ।—स्वयम् सुन्दरदासजी ने निजरचित 'साषी' में (२० वां अङ्ग) ५० साखियां दी हैं जो विपर्यय के वर्णन में हैं । हम उपर्युक्त मिलती विपर्यय की साखी देते हैं । और अन्य महात्माओं की वाणियों से भी देते हैं । जिस से विपर्यय

लिखने या कहने का प्रमाण अन्यत्र से भी प्राप्त हो और यह ज्ञात हो कि इस ढङ्ग की उक्ति महात्माजनों में एक प्रथा सी थी। अध्यात्मलोक की बातें साधारण पुरुषों को अटपटी सी प्रतीत होती हैं। उनके वास्तविक अभिप्राय के जानने पर बड़ा ही आनंद मिलता है। विपर्यय के समझने के ऊपर सुं० दा० जीने स्वयम् कहा है कि— "सुंदर सब उलटी कही समझैं संत सुजांन। और न जानैं बापुरे भरे बहुत अज्ञान"। ५०। प्रथम छंद विपर्यय पर साखी में इतनाही आया है—"नीचे को मूडी करै तव ऊंचे कौं पाइ"। १।

छमोट—(इस विपर्यय के अङ्ग में) यह छंद मात्रिक सवैया है, जिसको "वीर सवैया" कहते हैं। १६+१५=३१ मात्रा का अन्त में गुरु लघु ऽ। होते हैं।—दादूजी की साखी १३५—"सब घट श्रवनां सुरतिसौं सब घट रसना बैन। सब घट नैनां हो रहे दादू विरहा ऐन"।—तथा—"दादू सबै दिसा सो सारिषा, सबै दिसा मुख बैन। सबै दिसा श्रवणहु सुनैं, सबै दिसा कर नैन"। २१४ अङ्ग ४। श्यामचरणदासजी—"औघट घाट बाट जहँ बाँकी उस मारग हम जाईं। श्रवण बिना बहुवांणी सुनिये, बिन जिह्वा स्वर गावैं। बिना नैन जहँ अचरज दीखै, बिना अंग लपटावैं। बिना नासिका बास पुष्प की, बिना पाव गिरि चढ़िया। बिना हाथ जहँ मिलो धायके, बिन पाधा जहँ पढ़िया।"—(भक्तिसागरादि पृ० २४६)।—इस श्या० च० दा० जीके पदको सवैया ४ में भी लगाना।—जनगोपालजी-"नैन बिनां निरखै सब रूपा। बैन बिनां गावै सब भूपा। अङ्गहि बिना संग सो करै। धरणी बिनां चाल पग धरै। १२०। देव बिन देव पत्र बिन पूजा। जल बिन निर्मल भाव नहिं दूजा। धुनि बिन सबद ज्योति बिन दीपग चदसूर गमि नांही। १२१।—चरन बिनां निरत यहं कीजे। रसना बिन गुन गावै। श्रवनां बिना सुनै सो बानी। बिनही सिरकै नावै। १२२।—(मोह विवेक से)।—कबीरजी का पद—"बिन चरणन को दहु दिशि धावै, बिन लोचन जग सूझै"। (बीजक शब्द १)। तथा—"करचरण विहूनां राजै। कर बिनु बाजै श्रवण सुनैं बिनु श्रवणें श्रोता सोई। इन्द्रिय बिनु भोग स्वाद जिह्वा बिनु, अक्षय पिंड बिहूनां। बीजु बिनु अंकुर पेड़ बिनु तरवर, बिनु फूले फल फलिया" रसि बिनु द्वात कलम बिनु कागज, बिनु अक्षर सुधि सोई। सुधि बिन सहज ज्ञान बिन ज्ञाता, कहै

अन्धा तीनि लोक कौं देषै बहिरा सुनै बहुत विधि नाद।
नकटा बास कमल को लेवै गूगा करै बहुत संवाद॥
टूंटा पकरि उठावै पर्वत पंगुल करै नृत्य अहलाद।
जो कोउ याकौ अर्थ विचारै सुन्दर सोई पावै स्वाद॥ २॥

कबीर जन सोई।" (बीजक शब्द. १६) ।—तथा—"बिनु पग तरुवर चढ़िया"—उक्त)।

(२)—हस्त लि० १ टीका:—अंधा=अन्तर्दृष्टी। बहिरा सुनै—जगत के आकवाक सूं रहित दस प्रकार अनहद सुनै। नकटा=लोकलाज रहित। बास—ब्रह्म सुगंध ले। गूंगा—जगत मन सौं अनोल। टूटा=क्रिया रहित। पर्वत=पाप। पगुल=गति रहित। नृत्य=ध्यान। अहलाद=हर्ष॥ २॥

हस्त लि० २ री टीका:—अंधा, संसार व्यवहार की तरफ सौं अन्तर्दृष्टि। सो तीन लोक कौं देषै, यथार्थ जैसा झूंठ सांच, सार असार कौं जाणैं, असार त्यागि सार ग्रहण करै। बहिरा-जगत बाद-बिवाद रहित निश्चल चित्त होय अन्तरप्रवृत्ति दस प्रकार का अनहद नाद कौं सुनैं। नकटा-नाम लोक लाज कुल कानि रहित निसंक होवै, सो ब्रह्म कमल की बास लेवै, ब्रह्मानन्द रस स्वाद कौं पावै। गूंगा-जगत संबंधी बकवाद सौं रहित होय तब बहुत प्रकार को संवाद नाम ब्रह्मनिरूपण करै। टूंटा-कायक, वायक, मानस तीन स्थान की बिरथा क्रिया रहित। सो पकरि नाम पुरुषार्थ करिके परवत नाम अति भारी पापन को उठावै दूरि करै। पंगुल-नाम गुण विकार चपलता रहित। गुणातीत संत। सो निरत नाम अत्यन्त प्रवीणता सौं भगवत ध्यान मैं अत्यन्त आनन्द हरष कौं पावै॥ २॥

पीताम्बरी टीका:—"मैं आत्मा हूं" इस निश्चय करि अहंता और ममतारूप दो नेत्रन के संबंध तें रहित ज्ञानीरूप जो अंधा। सो जाग्रत, स्वप्न, औ सुषुप्तिरूप तीनलोक कूं ब्रह्मचेतन रूप करि प्रकाशै। अथवा लोक शब्द का अर्थ प्रकाश होने तें बाह्य सूर्यादिक प्रकाश कूं, औ मध्य नेत्रादिक इंद्रियन के प्रकाश कूं, औ अन्तरबुद्धि रूप प्रकाश कूं, अंतःकरण-वृत्ति-उपहित साक्षिरूप करि देखै। कहिये प्रकाशै है—
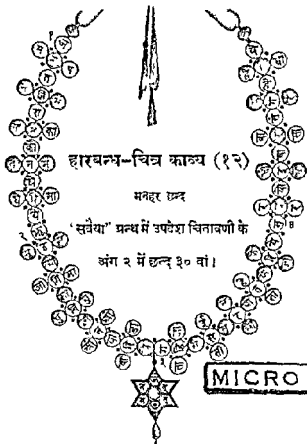
जग मग पग तजि सजि भजि राम नाम, काम क्रोध तन मन घेरि घेरि मारिये।
झूठ मूठ हठ त्यागि जागि भागि सुनि पुनि, गुनि ज्ञान आंन आंनि वारि वारि डारिये।
गहि ताहि जाहि सेस ईस सीस सुर नर, और बात हेत तात फेरि फेरि जारिये।
सुंदर दरद खोइ धोइ धोइ बार बार, सार संग रंग अंग हेरि हेरि धारिये॥३०॥

इसके पढ़ने की विधिः—

श्रोत्रेन्द्रिय के संबंध तें रहित जो ज्ञानीरूप बैरा । सो लौकिक औ शास्त्रीय भेद करि नाना प्रकार के शब्दन का बहुत विधि नाद सुनै है ।—नासिका इन्द्रिय के संबंध तें रहित ज्ञानीरूप जो नकटा सो कमलादिक अनेक पदार्थन की बास लेवै है। वाक् इन्द्रिय के संबंध तें रहित ज्ञानीरूप जो गूंगा, सो नाना प्रकार के लौकिक औ वैदिक शब्दन करि बहुत संवाद करै है —हस्त इन्द्रिय के संबंध तें रहित ज्ञानीरूप जो टुंठा महान कूपरूप पर्वत पकरि के उठावै, कहिये आरंभ करिके वाकी समाप्ति करै है। पादेन्द्रिय के संबंध तें रहित ज्ञानीरूप जो पंगु, सो यथा इच्छा पृथिवी पर नृत्य, कहिये गमन करि अति अन्हाद कूं पावै है । सुन्दरदासजी कहै हैं कि, या सवैये के अर्थ कूं जो कोई मुमुक्षु पुरुष विचारै, सोई जीवन्मुक्तिरूप स्वाद पावै, कहिये श्रेष्ठ सुख का अनुभव करै ॥ २ ॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जीकी साखी—"अन्धा तीनौं लोक कौं सुंदर देखै नैन । बहिरा अनहद नाद सुनि अतिगति पावै चैन" । २ । "नकटा लेत सुगंध कौं यह तो उलटी रीत । सुन्दर नाचै पंगुला गूंगा गावै गीत" । ३ । दादूजी का पद ३०७—"देखत अन्धे अन्ध भी अन्धे ।"'बोलत गूंगे गूंग भी गूंगे" । तथा दादूजी का पद २६९—"श्रवण बिन सुनिबो । बिन कर बैन बजाइये ।—बिन रसना मुख गाइये" । तथा दादूजी का पद २३४ में—"बोलत गूंगे गूंग बुलाये" । "अपंग बिचारे सोई चलाये" ।—तथा दादूजी का पद २१३—"पांगलो उजाया लायो" ।—तथा—"जिभ्या बिहूंणीं गावे" ।—पुनः दादूजी का पद २११—"बिनही लोचन निरषि । श्रवण रहित सुनि सोंइ । बिनही मारग चलै चरण बिन । बिनही पाऊं नाचै निस दिन । बिन जिभ्या गुण गावै" ।—दादूजी की साखी २८ । अङ्ग ४ ।—"दादू बिन रसना जहं बोलिये तहं अन्तरजामी आप । बिन श्रवणहुं सांईं सुनै जे कछु कीजे जाप" । (यह व्याख्या है विपर्यय की) दादूजी की साखी—"दादू नैन बिन देखिबा, अङ्ग बिन पेखिबा, रसन बिन बोलिबा नैन सेती । श्रवण बिन सुंणिबा, चरण बिन चालिबा, चित्त बिन चितवा, सहज एती" । (१९४ । अङ्ग ४ ।)—तथा दादूजी की साखी—"बिन श्रवणहुं सब कुछ सुणैं, बिन नैंनहु सब देखै । बिन रसना मुख सब कुछ बोलै, यहु दादू अचिरज पेखै" । २१६ । अङ्ग ४ ।—पुनः—"जिभ्याहींणे कीरति गाई"—(पद ७१ ।)—

कुंजर कौं कीरी गिलि बैठी सिंघ हि षाइ अघानौ स्याल।
मछरी अग्नि माँहि सुख पायौ जल में हुती बहुत बेहाल॥
पंगु चढ्यौ पर्वत के ऊपर मृतक हि देषि डरानौ काल।
जाकौ अनुभव होइ सु जानै सुन्दर ऐसा उलटा ख्याल॥ ३॥

हरिदासजी निरंजनी की साखी—"अन्धा कौ सब सूझै"। १। बहरै सब कुछ सुनिया। ३। "पगुल मार्ग अगम का लाघा"। ३।—(योग मूल सुख भोग)। कबीरजी का शब्द—"बिन करताल पखावज बाजै, बिन रसना गुन गावै। गावनहार के रूप न रेखा, सतगुरु मिलै बतावै'। (शब्दावली। भेदबानी। २६ में)।—तथा—"तीनलोक ब्रह्मण्ड खंड में, अन्धरा देख तमासा। पंगला मेर सुमेर उड़ावै, त्रिभुवन माहीं डोलै। गूगा ज्ञान विज्ञान प्रकासै, अनहद बानी बोलै"। (शब्दावली। भाग २ शब्द २१ से)।—तथा—"बिन जिह्वा गावै गुन रसाल, बिन चरनन चालै अधर चाल। बिन कर बाजा बजै बैन, निरख देख जहाँ बिना नैन।—(शब्दावली भाग २। होरी १९।)—तथा "बिन कर ताल बजाय, चरन बिन नाचिये"। (श० होली ४।) तथा पद—"पंडित होइ सु पद हि बिचारै मूरिप नाहि न बूझै। बिन हाथनि पाँइनि बिन कानिन, बिन लोचन जग सूझै। बिन मुख खाइ चरन बिन चालै, बिन जिभ्या गुण गावै। आछै रहै ठौर नहिं छाड़ै, दह दिसि ही फिरि आवै। बिन ही ताला ताल बजावै, बिन मदल षट ताला। बिनही सबद अनाहद बाजै, तहाँ निरतत (है) गोपाला। बिना चौलन बिना कंचुरी, बिनहि संग संग होई। दास कबीर औसर भल देष्या, जानैगा जन कोई॥ (क० ग्र०। पद १५९।) —श्रीगुरु गोरषनाथजी का वचन-अदेष देषिबा बिचारिबा, अदृष्टि राषि बाचिया। पाताल की गंगा ब्रह्माण्ड चढ़ाइबा तहाँ निमल बिमल जल पीया। (शब्दी गोरषनाथजी की। २।)—तथा—"अजर जरंता, अकल कलता, जमराजीता, आप अजीता। उलटायी गंगा, भीतरि अंग, भेद भुवता।—जिभ्या बिण गीता, बेद मुणंता, सुता रमता, सांमलता"। १२। (गो० छंद)।—तथा—"अनहद सबद मृदंगा बाजै, तहँ पंगुला नांचण लागा (गो० पद ३८)॥ २॥

ह० लि० १ टीकाः—कुंजर=काम। कीरी=बुद्धि। सिंघ=हंसै। स्याल=जीव।

मछरी=मनसा । अग्नि=ब्रह्म अग्नि । जल (मैं हुती)=काया । पगु=पूर्णातीत । मृनक=आपा अहंकार जीता । काल डरानो=जीवन मृतक सेती काल डरौ ॥ ३ ॥

ह० लि० र री टीका:—कुंजर-जो अतिबली मदोन्मत हस्ती की नांई काम । ताकौं कीरी नाम अति सूक्ष्म जो विवेकवती बुद्धि सो गिलि बैठी नाम जीति बैठी । अहो ! आश्चर्य सबल कौं निबल जीति बैठा, इहि विपर्यय । सिंघ नाम अति गति बलवत जन्म-मरण भय को दाता जीव का ग्रासक जो ससो ताकौं पहली कर्माधीन अतिशायर स्यालरूपी जो जीव हो सो, अब गुरसंत शास्त्र उपदेश भजन ध्यान पुरुषार्थ करि ज्ञान कौं पाय सवल होय ता ससा कौं पायो नाम जीत्यो तृप्त हुवो । मछरी नाम मनसा सो जल नाम जलबूंद को काया ताका विकारां में, बहुत बेहाल नाम दुखी होती, सो अब अग्नि नाम सर्वदुख कर्मन को दाहक ब्रह्माग्नि ज्ञानाग्नि, ताकौं पाय बहोत सुष आनन्द पायो । पंगु नाम जो हलन-चलन गति है सो सर्व कामनाके आसरे है, सो कामना मिटि गई, तब निश्चल हुआ । 'अत्र पाना थिति पाकरी आँगन भया वदेश' । इति । सो ऐसो जो संत मन वा । परवत—नाम अत्यन्त ऊंचा कठिन आपा अभिमान, ता ऊपरि चड्या नाम जीत्या, मोक्ष मार्ग में प्रवर्तमान हुआ । मृतक नाम ज्यूं मृतक शरीर कूं कोई सुख दुख विकार व्यापै नहीं त्यूं जीवते कौं नहीं व्यापै वाको नाम जीवत मृतक है । ऐसो संत को देषि कै डरानौं नाम काल भी ता सत सौं सदा डरता रहै है । 'काल सज्या दे जगत कौं' । इति । तहां 'काल प्रचण्ड को दण्ड मिट्यो' । इति । ता विपर्यय वाणी का पाठ कौंण जाणै तहां कहै हैं 'जाकौं अनुभव होय सो जाणै' । अनुभव नाम साक्ष्यात्कार ज्ञान । अथवा भलै प्रकार शब्द, शास्त्र, विवेक ज्ञान होय सो जाणैं ॥ ३ ॥

पीताम्बरी टीका:—अनत वाराना करि युक्त मनरूप जो हस्ति (कुंजर), ताकू सूक्ष्म विचारवाली अतर्मुख बुद्धिरूप कीरी, ताकू प्रथम अविवेक करि जीवभाव पाया हुआ आत्मरूप स्याल । खाय अघानो-कहिये गुरुकी कृपा तें अपने में उक्त अध्यास का लयकरि के परमात्मानंद कू पाया—जिज्ञासावाली साभास बुद्धिरूप जो मछरी तानें संचित कर्मरूप तृण के दाहक ब्रह्मज्ञानरूप अग्नि (ता) माहि सुख पायो । कहिये निरतिशयानंद कू पाया । सो प्रथम अज्ञानकाल में संसाररूपी जल में तहुव

बेहाल हुती। कहिये दुखी थी।—स्वर्गादिक लोकमें और इस लोक में गमन औ आगमन की इच्छारूप चरणन तें रहित तीव्र वैराग्यवान् मुमुक्षुरूप जो पगु। सो प्रवन तें पर चिदाकाशरूप पर्वत के ऊपर चढ्यो। कहिये स्थित भयो।—देहेन्द्रियादि सघातके अभिमान तें रहित दग्ध पटवन् देहाभिमान से रहित, औ अध्यास की निवृत्तिवाले जीवन्मुक्तरूप जो मृतक। ताकू देखि के काल डरानों, कहिये भयभीत हुआ। यहां श्रुति प्रमाण है:—"परमात्मा के भयकरि मृत्यु भी दौड़ता है"। औ ज्ञानी ब्रह्मरूप होने तें काल का भी काल है। यातें काल कू ज्ञानी का भय सभवै है।—सुन्दरदासजी कहै हैं कि जो कोई अनुभवी कहिये ज्ञानी होय सो (सु) यह अज्ञानीजनों की दृष्टिकरि विपरीत औ आश्चर्यकारक ऐसा उलटा ख्याल, कहिये विषय जानै॥ ३॥

सुन्दरानन्दी टीका — सु० दा० जी की साखी—"कीड़ी कुजर कौं गिलै स्याल सिंह कौं खाइ। सुन्दर जल तैं मच्छली दौरि अग्नि मैं जाइ"। ४। दादू जी का पद २१३—"कीड़ी ये हस्तीये विडार्यो तेन्हें बैठी खाये।—रज्जबजी का पद ५। आसावरी "कीड़ी कुज मार गरास्यो"—रज्जब पद ५ (आसावरी)—"मूसे मीनी खाई"—पद २ (आसा०) मच्छी मध्य समुद समाना"।—"पगुल पर चढि धाये"।—हरिदासजी निरजनी की साखी—"अज्या सिघ सू झूमै" (१)—"मीन मकर कू खावण लागी" ।४।—"मृतक जमकू दई सासना" ।६।—(योग मूल सुखयोग)।—श्यामचरणदासजी "चीते कौं मारि मृग नखसिख खाय गयो, बाघनी को मारि बोक सिंह कौं ग्रसैगो। बिली को मारि चूहे प्रेम को नगारो दियो, दादुर हु पाच सर्प मारि के बसैगो"।— (भक्तिसागरादि-पृ०२१२-१३)।—गुरु अर्जुनदेवजी—"गोको चारे सारदूल। कौड़ी का लख हूवा मूल। बकरी को हस्ती प्रतिपालै"—(राग रामकली ग्रन्थ साहिब में गुरु अर्जुनदेवजी का पद।)।—कबीरजी का पद—"चींटी के पग हस्ती बांधे, छेरी बीगैं खायौ"। (बीजक, पद ५२ से)।—तथा—"नित उठ सिंह स्यार सौं जूझै। कबिरक पद जन विरला बूझै"। (बी० पद ९५ से)।—तथा—"चींटी के मुख हस्ति समान"। बी० पद १०१ में)।—श्रीकबीर शब्द—"पानी बिच मीन पियासी, मोहि सुन सुन आवै हांसी"। (शब्दावली। २९।)।—तथा—"उलट

बुंद हि मांहिं समुद्र समानौ राई मांहिं समानौ मेर।
पानी मांहिं तुंबिका बूडी पाहन तिरत न लागी बेर॥
तीनि लोक मैं भया तमासा सूरय कियौ सकल अंधेर।
मूरष होइ सु अर्थ हि पावै सुंदर कहै शब्द मैं फेर॥ ४॥

स्यार सिंघ को खाय"। (शब्दावली। ३१ में।)।—तथा पद—"एक अचभा देखारे भाई। ठाढा सिंघ चरावै गाई। जलकी मछली तरवर ब्याई, पकड़ि बिलाई मुरगै खाई"। (कबीर ग्रन्थावली। पद ११ से)।—तथा—"अचरज एक देखु ससारा, सुनहाँ खेदै कुजर असवारा। ऐसा एक अचंभा देखा, जमुक केहरि सू लेखा" (क० ग्रं०। पद १४५ में)।—तथा—"उलटि स्याल स्यघ क खाइ, तब यहु फूलै सब बनराइ"। (क० ग्र०। पद ३४९ से)।—गोरषनाथजी—"डूगरि मछाजलि सूसा"। (गो० पद ५ में)।—तथा—"बाँझकेरा बालड़ा पगला तरवर चढ़ियां। (गो० पद २० में)।—तथा—"गावड़ी का मुख मे बाघुला ब्याइला।" (गो० पद २१ में)॥ ३॥

ह० लि० १ टीका:—बुंद=आत्मा, दूजी काया समुद्र=परमात्मा दूजो ब्रह्म माया। राई=भक्ति। मेर=मन। पानी=प्रेम। तुंबिका=काया पाहन=हृदय तिरो=कोमल हुवो। सूरज=ज्ञान। अंधेर=पदार्थ का अभाव। मूरख=ससार कानी सु मूर्ख। अर्थ=ब्रह्म॥ ४॥

ह० लि० २ री टीका:—बुंद नाम जलबूंद की काया। यद्वा बूंद तुल्य अति लघुजीवात्मा। तामैं अति अपार विस्तीर्ण अति बड़ा समुद्र नाम ब्रह्म सो समाना। भजन ध्यान सौं एकता कौं प्राप्त हुआ। राई नाम अति सूक्ष्म जो भगवत-भक्ति, तामैं अतिविस्ताररूप सकल्पात्मक जो मन, मेर पर्वत सदृश, सो समायो, नाम सर्व सकल्प छोड़िकै भक्ति मैं अखड लीन हुवो। पानी नामप्रेम तामैं तुंबिका नाम कड़वी सर्व विकारयुक्त महाकटुकरूप काया तूंबड़ी, सो डूबी रोम रोम मैं महाप्रेम सू मगन होय शुद्ध हुई। पाहन तुल्य अति कठोर जो अभक्त हृदौ सो भगवत-प्रेम कौं पाय। तिरतो नाम कोमल शुद्ध होतां बार न लागी। जहां प्रेम होवैगो तहां ही कोमलता

होता है'—महारूपी माया का समुद अतिसूक्ष्म अरमारूपी बूंद में ज्ञान होते ही लोप हो गया। और 'राई के ओल्हे पर्वत' ऐसी कहावत प्रसिद्ध है। उसके अनुसार गुरु वा शास्त्र के बताये हुए बारीक ज्ञान की सैन प्राप्त होने से भारी अज्ञान का पहाड़ (जो मेरु के समान अज्ञता के हृदय बीच पसरा वा जमा हुआ था) गायब हो गया। तूंबड़ी के छिलके में हवा भरी रहने से तिरती है। इस देहमें अभिमान (अज्ञान) रूपी वायु भरी थी सो उपदेश के ठोंसे से छिद्र होकर निकली और ज्ञानरूपी जल (आत्मज्ञान) उसमें भर गया सो उस जलरूपी ज्ञान में गरक हो गई डूब गई। जीवात्मा परमात्मा में लीन हो गया। अज्ञान के बोझसे बुद्धि भारी अथवा कैड़ी थी सो (रामनाम वा ज्ञान के प्रताप से) हलकी व कोमल होकर संसार समुद्र पर से तिर गई। और अर्थ समीचीन है। गीता में भी भगवान ने एक प्रकार का विपर्यय ही कहा है। "या निशा सर्वभूतानां"(इत्यादि) गीता २।६९। और इस श्लोक पर शांकरभाष्य वा अन्य भाष्य वा टीका देखें।—इमारे सु० दा० जी की साखी— 'समद समानौ बुन्द में, राई माहि मेर। सुन्दर यह उलटी भई, सूरय कियौ अन्धेर"। ५।—राजब पद २ (आसावरी)—"पर्वत उड़ा पवन थिर बैठा'।— हरिदासजी निरजनी की साखी—"समद बुन्द में माया"। २।—"मूरख पण्डित की गति पाई'। ३। (योग मूल मुख भोग)।—तथा—"तिल में मेर समाना"। (उक्त)।—तथा—"पान पानी में भीजे नांहीं।—(उक्त)।—कबीरजी का पद— "पाहन फोरि गंग इक निकसी, चहुंदिसि पानी पानी। तेहिं पानी दुइ पर्वत बूड़े दरिया लहर समानी'। (बीजक शब्द १) तथा—"बिन पवनै जहँ पर्वत उड़ै। जीव जन्तु सब बिरछा बुड़ै॥ धरती उलटि अकाश हि जाई। चींटी के मुख हस्ति समाई॥ सूखे सारवर उठै हिलोल। बिनु जल चकवा करै किलोल॥ बैठा पण्डित पढ़ै पुरान। बिन देखै का करै बखान॥ कहै कबीर जो पद को जान। सोई सन्त सदा परमान"॥ (बी० शब्द १०१)।—तथा—"अन्धे आंखी सूझै। (बी० शब्द १११)।— गोरषनाथजी का पद—"अष्टकुल पर्वत जल बिन तिरिया, अदबुद अचम्भा भारी"। (गो० पद ३ में)।—तथा—"तिल के नाकै त्रिभुवन साध्या, कीया भाव विधाता"। (गो० पद ४ में)।—तथा—"लाकड़ डूबै सिल तिरै, देषतां लुग जाइ। कूट प्रनालै

मछरी बुगला कौं गहि पायौ मूसै पायौ कारौ साप।
सूवै पकरि बिलइया पाई ताकें मुये गयौ संताप॥
बेटी अपनी मा गहि पाई बेटै अपनौ पायौ बाप।
सुंदर कहै सुनहुं रे संतहु तिनकौं कोउ न लागौ पाप॥५॥

वहि गयौ, बुगलौ पीलि न माइ"। (गो० पद ५ में)।—तथा—"चींटी का नेन गजेन्द्र समाइला"—(गो० पद २१ में)।—तथाच—"मगरी का पाणी बु आवै, इन्हो चरचा गोरष गावै"। (गो० पद ३९ से)॥४॥

ह० लि० १ टीका:—मछली=मनसा। बगुला=दम्भ। मूसा=मन। कारे सांप=सर्प। सूवा=प्राण। बिलाई=दुर्मति। बेटी=बुद्धि। मा=माया। बेटा=ज्ञान बाप=ईश्वर।

ह० लि० २ री टीका:—मछरी नाम मनसा ताने बगला नाम ऊपर सें ऊजरो ०८ मांहिसों मैला ऐसो दम्भ। ताको गहि पायो नाम जीति उमासों उठायें दूरि निवार्यो। मूसो नाम मन तानें साप नाम समो सर्पको गरसन करि रह्यो ताहे सांप मसे पाया सकल जग। इति। सो संसाररूपी सांप मनरूपी मूसें ने खायो इहो विपर्यय। मनमूसो क्यू। छानैं छानै अनेक मनोरथां फिरि आनैं यों मूसो। सूवें नाम अति चपल प्राणरमा तानैं पकरि करि अति पुरुषार्थ करिकैं बिलाई नाम ईरप खाई दूरि करी ता बिलाई का नाश हुवां सर्व सन्ताप गया, परम आनन्द हुआ।—बेटी नाम निरवासिनी बुद्धि तानैं अपनी मा नाम माया ममता या जासो बुद्धि उपजे वाही माया, मा, वाही कौं खाई, नाम वाही माया ममता कौं दूरि करी। बेटो नाम ज्ञान जा सरीर में उपज्यो वाही वपु, सरीर कौं खायो, फेरि उत्पत्ति होय नहीं, जन्म मरण रहित कीयो। कोइ न लागी पाप—जो माय बाप खायां या मार्‌यां जो पाप होइ सो इहां नहीं है। इहं विपर्यय शब्द को विचार कीयां अत्यन्त आनन्द सुख सुख का दाता है॥५॥

पीताम्बरी टीका:—निष्काम-उपासनायुक्त बुद्धिरूप मछरी ने ध्यान से विरोधी चित के विक्षेपनामक दोषरूप बगले कूं अभ्यास के बलतें गहि खायो कहिये नाश किया। पापरूप बन्धन कूं कतरनेवाला शुद्ध मनरूप जो मूसा है, तिसनें ध्यान से

विरोधी चित्त के मल नामक दोषरूप कारो सांप खायो कहिये नाश कियो। सुवे—जाकी विवेकरूप चञ्चू है। शम औ दमरूप दो पाद हैं। उपरति औ तितिक्षारूप दो पक्ष हैं। श्रद्धा ओ समाधानरूप दो नेत्र हैं। वैराग्यरूप पेट है। औ मुमुक्षतारूप पुच्छ है। ऐसे अन्तःकरणरूप सूवे ने इस लोक औ परलोक की इच्छारूप बिलारी पकरि खाई। कहिये निवृत्ति करी। ताके सुवे सन्ताप गयो कहिये तिस इच्छा के नाश हुवे, ज्ञान के प्रतिबन्धक संसार के क्लेश की निवृत्ति भई। बेटी—अन्तःकरण की वृत्तिरूप परिणाम कूं प्राप्त भई जो अविद्या, तिस करि ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति होवै है। ऐसे ब्रह्मविद्या की माता अविद्या, औ पुत्री विद्या सिद्ध होवै है। तिस विद्या तें अविद्या का नाश होवै है, ऐसे बेटी अपनी मा खाई। बेटे—ज्ञान हुवे पीछे इच्छानुसार निर्विकल्प अभ्यास करि मन का निग्रह होवै है। तदनन्तर मन की अनंत वासना का नाश होवै है। ऐसे वासनाक्षयरूप बेटे, मनरूप आपनो बाप खायो। सुन्दरदासजी कहैं हैं—हो सन्तो सुनो! मछरी नें बगला कूं खायो, मूसे ने कारो साप खायो, सूवे ने बिलारी खाई, बेटी ने अपनी माता खाई, औ बेटे ने अपनो बाप खायो। तातें तिनकूं कोउ पाप न लग्यो ॥ ५ ॥

सुन्दरानन्दी टीकाः— सुं० दा० जीकी साखी—"मछली बुगला कौं ग्रस्यौ, देषहु याके भाग। सुन्दर यह उलटी भई, मूसैं षायौ काग"। ६।—रज्जब पद ५ (आसावरी)—"मूसैं मीनो खाई"।—"मूसैं षायौ कारो साप"।- हरिदासजी निरञ्जनी—"मूसैं दौड़ि बिलाई पकड़ी" (२)।—"चिड़े सिचाणौं खाया" (२)।—गुरु अर्जुनदेवजी का पद—"दीसत मांस न खाय बिलाई। महा कसाव छुरी सट-पाई" ।—(ग्रन्थ साहिब—पांचवां महाला)।—कबीरजी का पद—"उदधि मांहि ते निकसी छांछरि चौड़े गेह करायो। मैंडुक सर्प रहै यक संगै, बिल्ली स्वान बियाही।... मच्छ अहेरा खेलै। (बीजक पद ५२ से।)।—तथा—"गैया तो नाहर को खायो, हरिना खायो चीता। कागा लगरे फांदिकै, बटेर ने बाज जीता॥ मूसा तो मंजारै खायो, स्यारै खायो स्वाना। आदि को उपदेश जु जानै तासू वैसे बाना॥ एकै तो दादुर सौ खायो, पांचौं जे भुवंगा॥ कहैं कबीर पुकारिकै, हैं दोऊ यकसंगा"। (बी० पद १११)।—तथापद—"ऐसा अद्भुत मेरे गुरु कथ्या, मैं रह्या उभेषै। मूंसा

देव माँहि तें देवल प्रगट्यौ देवल माँहि तें प्रगट्यौ देव।
शिष्य गुरुहि उपदेशन लागौ राजा करै रंक की सेव॥
बंध्या पुत्र पंगु इक जायौ ताकौ घर पोवन की टेव।
सुंदर कहै सु पण्डित ज्ञाता जो कोउ याकौ जानै भेव॥ ६॥

हस्ती सौं लड़ै, कोइ बिरला पेपै॥ मूंसा पैठा बांबि में, लारै सांपणि धाई। उलटै मूसैं सांपणि गिली, यहु अचिरज भाई॥ चींटी परवत ऊषण्यां, लै राष्यौ चौड़ै मुरगा मिनकी सूं लड़ै, झल पांणी दौड़ै॥ सुरही चूंपै बच्छ तलि, बच्छा दूध उतारै ऐसा नवल गुणी भया, सारदूल ही मारै॥ भील लुक्या वन बीझ मैं, ससा सर मारै कहै कबीर ताहि गुर करौं, जो या पदहि बिचारै" ॥—(क० ग्रं०। पद १६१) गोरखनाथजी का पद—"गोरष बाल्हा सतगुर वांणीजी। जीवता न पष्ष्या लेंत आगी न पांणीं जी॥ कोली दूझै भैंस बिरोले, सामूड़ी पाल्णैं बहूड़ो हिंडोलैं कोइल मारी अंबलो बास्यौ, गगन मछलड़ी बुगलो ग्रास्यौ। करसण याकौ रषवालै पाधी, चरिगया अपला पारधी बाधी। सींगी नादै जोगी पूरा, गोरष पष्ष्या जहां चं न सूराजी" ॥ (गो० पद ३७)।—तथा—"मूसा के सबद बिलाई नासै, कउआ ब डाली पीपल बासै"। (गो० पद ३९ में से)।

ह० लि० १ टीका—देव=परमेस्वर। देवल=शरीर। देवल=शरीर पुनः देव=परमेस्वर पुनः। शिष्य=चित्त। गुरु=मन। राजा=रजोगुण या मन। रंक=जीव बंध्या=आत्मा वा बुद्धि। पुत्र=ज्ञान गुणातीत। घर=शरीर॥ ६॥

ह० लि० २ री टीका:—देव जो परमेश्वरजी सर्व को कारणरूप, तामैं स्वइच्छा संसार उत्पत्ति द्वारा, देवल शरीर प्रगट्यो उत्पन्न हुवो। अब या देवल मैं, गुरु शास्त्र सत उपदेश विवेक सौं, देव परमेश्वरजी की प्राप्ति हुई। शिष्य चित्त गो शिष्य रूप! जो पहली मनरूपी गुरु के आधीन आज्ञाचारी हो, सो अब ज्ञान विवेक बलसौं पाय गुरु रूप होय अति बलवांन ताही मनकौं शुद्ध शिक्षादिकैं सिध बनाय आपके वश में स्वतन्त्र करयो। राजा नाम रजोगुण वा मन, सो अज्ञान अवस्था में बलवान होय के अपराध स्वरूप इन्द्रियरूपी धन करि हीन रंक जो जीव ताकौं अपने हुकम सौं कर्मा मैं प्रेरके चलावै हो। अर कोई जीव गुरु उपदेश विवेक बल कं

प्राप्त हुवो, तब वोही राजगुण मनजीव को सेवा करनें लागो। वध्या नाम बुद्धि। वध्या क्यू ? जो सर्वगुण विकार वृत्ति उपत्ति-रहित महानिर्मल शुद्ध, ताकै एक पुत्र नाम ज्ञान पुत्र हूवो। सो पगुल क्यू ? सर्वगुण रहित एक रस। घर-जा शरीर रूपी घर में उपज्या ता घरको पोवन की टेव, अर्थात् ज्ञान उपज्यो तब जन्म-मरण रहित हूवो। साईं पंडित ज्ञानी है जो याका अर्थ का भेद नाम सिद्धांत कू जाणें नाम निश्चै निरणें करै ॥ ६ ॥

पीताम्बरी टीका—सर्व का अधिष्ठान औ कूटस्थ आत्मा रूप (जो) देव (ता) मांहि तें देहरूप देवल प्रगट्यो, कहिये साक्षी विषे, स्वप्न की न्याईं, भ्रांति से प्रतीत भयो। तिस देहरूप देवल मांहि सत् शास्त्र औ सद्गुरु के बोध (कराने) ते (पूर्व अज्ञान काल में जो प्रगट नहीं था सो) सो आत्मा रूप देव प्रगट्यो, कहिये स्व-स्वरूपकरि अपरोक्ष (प्रगट) भयो। शिष्य—पूर्व अविवेक कालमें प्रबल मनरूप गुरु की शिक्षा कू माननेवाला सभास अंत करण सहित विशिष्ट चेतनरूप जो जीव है। सो जीवरूप शिष्य विवेक काल में ब्रह्मविद्या कू पायके, तिस मनरूप गुरुहि उपदेशन लाग्यो, कहिये शिक्षा करिके सूधे मार्ग मे प्रवृत्ति करावने लाग्यो। पूर्व अज्ञानकाल में आपने अधिष्ठान कूटस्थकू आप दबाय के, अवस्था सहित तीन देहरूप नगरीन का अभिमानरूप राज्य के करनेवाला जो अहंकाररूप राजा। सो जीवभावरूप कगालता कू पाया हुवा आत्मारूप रंक की—ज्ञानकाल में ब्रह्मभाव कू प्राप्त हुवा जो आत्मा, ताके वश हुआ, 'मैं देहादिक हू' इस आकार कू छोडिके 'मैं ब्रह्म हूँ' इस आकाररूप धारणा की सेव करै हैं। राजसी औ तामसी वृत्ति रूप आसुरी सपदा से रहित सात्विकी बुद्धिरूप वध्या (माता) ने ज्ञानरूप इक पगु पुत्र जायो कहिये वहिर्मुखवृत्ति रूप पगकर्ते रहित पुत्र उत्पन्न कियो। सो कैसो है ? जाकी रक्त बुद्धिरूपी माता है, शुद्ध अहंकाररूप पिता है, रागादि वृत्तिरूप भगिनिआ हैं, कर्मरूप भाई है, जगतरूप दादा है, औ अज्ञानरूप परदादा है। ताकू इस सघात (शरीर) रूप घर खोवन की टेव पडी है। अर्थात् ज्ञान हुवे पीछे और कुछ रहे नहीं। सुन्दरदासजी कहते हैं कि जो कोई याको भेद कहिये अभिप्राय जानै। सो पुरुष पंडित ज्ञाता कहिये श्रोत्रिय औ ब्रह्मनिष्ठ है ॥ ६ ॥

८ कमल माहिं तें पानी उपज्यौ पानी माँहिं तें उपज्यौ सूर।
सूर माँहिं सीतलता उपजी सीतलता में सुख भरपूर॥
ता सुख कौ क्षय होइ न कबहूं सदा एकरस निकट न दूर।
सुन्दर कहै सत्य यह यौं हीं या में रतो न जानहुं कूर॥७॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जीकी साखी—"गुरु शिष के पायनि परयौ, राजा हूवो रंक। पुत्र बांझ के पगुलै, सुंदर मारी लंक"। ८।—रज्जब पद ४ (असावरी)—"मूरति माहिं देहुरा आया"।—कबीरजी का पद—"देव बिन देहुरा, पत्र बिन पूजा, बिन पखां भंवर बिलंबिया"।—"बांझ का पूत बाप बिना जाया, बिन पाऊं तरवरि चढ़िया"। (क० ग्रं०। पद १५८)।—गोरषनाथजी का पद—"बांझै बेटो जनमियो, नैंणै पुरषन दीठौ"। (गो० पद ५)।—तथा "बारा बरसै बांझ ब्याई। हाथ पग टूंटा"। (गो० पद २१ में)।—

ह० लि० १ टीका—कमल=हृदय। पानी=प्रेम। सूर=ज्ञान (प्रेम से ज्ञान उपजा)। सूर=ज्ञान से ब्रह्मानन्द शांति उपजी॥७॥

ह० लि० २ री टीकाः—कमल नाम हृदा कमल तामें ऊजल संस्कार करि पाणी नाम प्रेम उपज्यौ। पाणी नाम प्रेम सहित भक्ति तामें सूर नाम सूरज्य सर्व अज्ञान नाशक ज्ञान प्रकाश हूवो। अर्थात्, ज्ञान उत्पत्ति का साधक प्रेमा भक्ति ही मुख्य है। अवर गौण है। वा सूरज्य ज्ञान प्रकाश में सीतलता नाम सर्वताप-रहित ब्रह्मानन्द-स्वरूप की प्राप्ति से शांति उपजी) ता शांति रूपी सीतलता में बाह्याभ्यंतर निर्विकार भरपूर नाम परिपूर्ण सुख रह्यो है। या ब्रह्मानन्द प्राप्ति के सुख को नाश किसी काल में भी न होवै। वो सुख वैसाक है, जो सदाकाल एकरस परिणाम रहित अविनाशी है। पुनः कैसाक है नैड़न दूर सर्वत्र सांही है। या मैं वेद-पुराण श्रुति स्मृति संत साधु सर्व प्रमाण हैं किंचिन्मात्र भी कूर नाम मिथ्या मति मानौं। तथा "अक्षयानन्दम्" श्रुतेः॥७॥

पीताम्बरी टीका—च्यारि साधनरूप पंखुरी सहित अंतःकरणरूप कमल माँहि ते तत्त्व पद के अर्थ के शोधनरूप शुद्धतावल, श्रवणरूप विमलता, मननरूप स्थिरी-

हंस चढ्यौ ब्रह्मा के ऊपर गरुड चढ्यौ पुनि हरि की पीठि।
बैल चढ्यौ है शिव के ऊपर सौ हम देष्यौ अपनी दीठि॥
देव चढ्यौ पाती के ऊपर जरप चढ्यौ डाइनि परि नीठि।
सुन्दर एक अचम्भा हूवा पानी माँहिं जरै अङ्गीठि॥ ८॥

वाला, औ असंभावना सहित, विपरीत भावनावाला, मल का नाश करनेवाला निदिध्यासनरूप पानी उपज्यौ, कहिये उत्पन्न भया। तिस निदिध्यासनरूप पानी माँहि ते स्व-स्वरूप के अनुभवरूप सूर उपज्यौ, कहिये सूर्य उत्पन्न भयो। तिस ज्ञानरूप सूर (सूर्य) माँहि ते कार्य सहित अविद्या की निवृत्तिरूप शीतलता उपजी। औ शीतलता में सुख भरपूर, कहिये तिसतें परिपूर्ण ब्रह्मानंद सुख की प्राप्त होवै है। तो ब्रह्मरूप नित्य औ निरतिशय सुख को क्षय कबहू न होइ, कहिये तिस सुख का किसी काल में नाश नहीं होवै। काहेतें, यह ब्रह्मसुख सदा एकरस है। औ सर्वकाल अपना आप है। तातैं निकट कहिये नजदीक, औ न दूर कहिये देशकाल का अन्तरायवस्तु नहीं है। सुंदरदासजी कहते हैं कि यह वार्ता यूही कहिये उक्त रीति सें सत्य है। या में रती कहिये रंच मात्र भी कूर कहिये असत्य न जानहु॥ ७॥

सुन्दरानन्दी टीका —सु० दा० जी की साषी—"कमल माँहि पाणी भयौ, पानी माँहि भान। भान माँहि शशि मिल गयौ, सुंदर उल्टौ ज्ञान"। १।—गुरु अर्जुनदेवजी का पद—"सूखे काठ हरे चलूल। ऊचे थल फूले कमल अनूप"।—(ग्रन्थसाहब ५ वाँ महाला—राग रामकली।)।—

ह० लि० १ टीका —हंस=जीव। ब्रह्मा=रजोगुण। गरुड=ज्ञान। हरि=सतोगुण। बैल=शरीर। शिव=तमोगुण। देव=जीव। पाती=प्रकृति। जरप=मन। डाइन=मनसा। पानी=काया। अगीठ=ब्रह्मअग्नि॥ ८॥

ह० लि० २ टीका —हंस नाम जीव, सो ब्रह्मा नाम ब्रह्मारूप रजोगुण, ता परि चढ्यौ नाम गुरु संत शास्त्र विवेक सों वाकौं जीत्यो। गरुड नाम अति वेग बलवंत सर्व दुःख कर्म क्षयकारी ज्ञान, सो हरि नाम जो विष्णु सम्बन्धी सतोगुण ताकौं जीत्यो। बैल जो अज्ञता जडतारूप वपु नाम शरीर तामैं पुरुषार्थ करिकै शिवरूपी

को तमोगुण ता परि चढ्यौ नाम जीत्यौ। सो इह विपर्ययरूप व्यवहार सिद्धांत हम देष्यौ विवेक दृष्टि सौं। देव नाम सदा देदीप्यमान चेतन जीव, सो पाती नाम अन्तःकरण की प्रकृति ता परि चढ्यौ नाम सर्व प्रकृति जीती। जरप पर डायन चढ़ै यह रीति है, परन्तु यहां विपरीत है—जरप जो संकल्पात्मकरूप मन सो डायन नाम अयत्न पदार्थों की लालसा मकल्पों की कारणरूप मनसा ताकू जीती। इन सर्व साधना को फल सिद्धान्त कहै है। सुन्दरदासजी कहै हैं एक बड़ा अचम्भा देष्या। सो कहा? बुन्द नाम जल बूंद की काया तामैं अंगीठ नाम सर्वदुःख कर्म विकार वासना को दाहक ब्रह्मानन्द स्वरूप प्रातिस्व साक्षात् ज्ञानाग्नि प्रकाश हूवो अर्थात् ब्रह्मानन्द स्वरूप प्राप्त हूवा ॥ ८ ॥

पीताम्बरी टीका:—सात्विकी वृत्ति सहित मनरूप हंस सो रजोगुणरूप ब्रह्मा के ऊपर चढ्यो। कहिये ताकू जीत लियो। पुनि निर्गुण ब्रह्म के अभ्यास युक्त मनरूप गरुड़ सो सतोगुणरूप हरि (विष्णु) की पीठ पर चढ्यो कहिये तिसकू जीति लियो अर्थात् निर्गुण स्थिति कू प्राप्त भयो। रजोगुण की वृत्ति सहित मनरूप बैल तमोगुणरूप शिव पर चढ्यो है कहिये ताकू जीत लियो है। सो हमने अपनी दीठ दृष्टि करि, देष्यो। सो ऐसे:—रजोगुण की वृद्धि तें तमोगुण का पराजय होवै है। इत्यादिक अभ्यास काल में हमने अनुभव किया है। स्वप्रकाश आत्मचैतन्यरूप देव, देहादिक अनात्म संघातरूप पाती—तुलसी पत्रादिक (सेवा की सौंज) के ऊपर चढ्यो। याका अर्थ यह है—जैसे पूजनकाल में पत्रादि सामग्री तें देव की मूर्ति का आच्छादन होय जावै है तातैं सो देखने में नहीं आवै है, पूजन समाप्ति पीछे जब पत्रादि सामग्री को उतारि के नीचे पृथिवी पर डाल देवैं तब देव स्पष्ट देखिये है। तैसे अज्ञानकाल में देहादिक अनात्म प्रपंच के अभिमान तें आत्मा कूं आवरण होवै है, तातैं सो अप्रगट रहै है। औ ज्ञानकाल में जब आवरण निवृत्त होई जावै है तब स्वप्रकाश आत्मा का स्वस्वरूप करि आविर्भाव होवै है। विवेकरूप मनरूप जरप (एक जाति का अंगली जानवर होवै है जाकी पीठ पर चढ़ि के डाकिनी सवारी करै है सो) विनाशकारी दुष्ट सदसत् कहिये डाकिनी के पर नीठ कहिये भयो तरह तें चढ्यो, कहिये इस के प्रयत्न तें प्राप्त हुए के रीति कूं जीत लीने। सुन्दरदासजी कहै हैं कि एक अचम्भा

कपरा धोबी कौं गहि धोवै माटी बपुरी घरै कुम्हार।
सुई विचारी दरजिहि सींवै सोना तावै पकरि सुनार॥
लकरी बढई कौं गहि छीलै पाल सु बैठी धवै लुहार।
सुन्दरदास कहै सो ज्ञानी जो कोउ याकौ करै विचार॥ ६॥

आश्चर्य, हूवा। सो कहै हैं:—दैवी सम्पति के बलतें शीतल अंतःकरणरूप पानी माँहि अंगीठ, कहिये इस लोक के औ परलोक के शुभाशुभ कर्म के फल की दाहक औ ब्रह्मानंद की प्रकाशक, ब्रह्मज्ञानरूप अग्नि जरै है कहिये होवै है॥ ८॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जी की साखी—"ब्रह्म ऊपरि हंस चढि, कियौ गगन दिसि गौंन। गरुड़ चढ्यौ हरि पीठि पर, सुंदर मानैं कौंन। १५। वृषभ भयौ असवार पुनि, सुंदर शिव पर आइ। डाइंण ऊपरि जरष चढि, भलो दई दौराइ"।१६। हरिदासजी निरजनी की साखी—"पाणी मांहीं अगनी प्रकटी"। ४। (योग मूल सु० योग)।—स्यामचरणदासजी का पद—"बैल चढ्यौ शंकर के ऊपर, हंस ब्रह्म के शीश। सिंह चढ्यौ देवी के ऊपर, गुरु ही की वराशीश। नाव चढी केवट के ऊपर, सुत की गोदी माय"। शब्द ७। पृ० ४१८। (भक्तिसागरादि)।—तथा—"जिहि पर अग्नि जलै जल मांहीं" (उक्त पृ० ३४६)।—कवीरजी के पद १११ बीजक में—"पानी मैं पावक जरै"।—गोरषनाथजी—"उलटि गगा चलै, धरणि अंबर भरै, नीर में पैठिके अगनि जारै। (गो० ज्ञान चौतीसा।)।—तथा—"पानी मैं दौं लागी" (गो० पद ५ मे)।—तथा—"कांमणीं जलै अंगीठी तापै, बीचि बैसंदर थरथर कांपै"—(गो० पद ३९ में से)।

ह० लि० १ टीकाः—कपरा=काया। धोबी=मन। माटी=मनसा। कुम्हार=प्राण। सुई=सुरत। दरजी=जीव। सींवै=जीव—ब्रह्म की एकता करै। सोना=सुमरन। सुनार=मन। लकरी=लै (लय)। बढई=कर्म। पाल=काया वा स्तन। लुहार=जीव वा मन॥ ९॥

ह० लि० २ टीकाः—कपरा नाम काया तासों बण्या जो भजन सतसंग शुभकर्म तिनां सौं धोबी जो मन सो निर्मल हूवा। मन धोबी क्यूं करि? 'मन निर्मल तन

निर्मल भाई' माटी जो मनन अरु प्राणायामरूप अभ्यास सो कुम्हार सो वा मन कों धरैं है। क्यों ? जो यो प्राण है सो सर्व वृतियां को उत्पादक है। क्रियाशक्ति द्वारा करि प्राणादि करि भजन क्रिया की सिद्धि होवै है। सुईरूप अतितीक्ष्ण जो सुरति सो दरजी जो जीव ताकी शक्ति सों सुईरूपी सुरति अपने कार्य में प्रवर्त होवै है। ता अपना प्रेरक जीव तासूं सीवै नाम ब्रह्म में एकता करै है। अथवा भ्रांतिअलङ्कार भा है। सुई सुरति ताकू जीव दरजी सीवै ब्रह्म में लगावै। इत्यर्थः। सोना नाम अति निर्मल निर्विकार स्मरन सो सुनाररूप जो मन जाकै आसिरै स्मरन बैन सो सोना। वा मन सुनार कू तावै नाम शुद्ध करै। 'मन मंजन हरि भजन है प्रगट प्रेम की सीर'। लकरी जो लय ताकी भगवत के विषै लगाइले, सो बढ़ई नाम कर्म ताकूं छोलै नाम दूरि करै कर्म घटाई करि। जो बढ़ई नाम पाती सो अनेक घाट घडै, यों कर्म भी चौरासी का देहा वा अनेक घाट घडै, तासों बढ़ई। पाल नाम काया वा स्वास सो लुहार नाम जीव वा मन ताकू भ्रमावै है, प्राण वायु के आसरै मन की चचलता होवै है, प्राण थिर कर्यां मन थिर होवै है। 'स्वास मनोरथ वचन करि मन की जोवनि तीन'। याको विचार नाम याका अर्थ को जो सिद्धान्त ताकूं विचारि करि धारै, वाको नाम ज्ञानी है ॥ ९ ॥

पीताम्बरी टीका चिदाभास सहित मनरूप कपरा (वस्त्र) जो, पूर्व अज्ञान दशा मे पुन्यरूप धोबी सें पापरूप मल दूर करने के वास्तै, धोया जाता था। सो अब ज्ञानदशा में आप धोबी कू गहि (पकरि के) धोवै कहिये "मैं अकर्ता हू औ असंग हू" ऐसें शुद्ध निश्चय तें पापपुण्य ते निर्लेप रहै है। आत्मा के सन्मुख भई अतरवृति बुद्धिरूप माटी। जो पूर्व अविद्याकाल में बाह्यवृत्तिमय मनरूप कुम्हार के वस भई। तिसकरि अनात्माकार होने रूप आप घड़ाती थी। सो अब विद्या दशा में बपरी कहिये स्वर्णकार होने रूप कार्य मे प्राप्त होय कै मनरूप कुम्भारन अनात्म पदार्थ सें विमुख करि घड़ै, कहिये अपने में अतभाव करै है। बुद्धि में जो सूक्ष्म विचार होवै है सो बुद्धि के वृतिरूप परिणाम कूं पावै है सो वृत्ति भी सूक्ष्म होवै है, यातें ताकूं सुई कही है। सो विचारो कहिये गरीबरी है। काहेतें, सो जिस ओर इस यू छे जावे उस ओर यह चली जावै है। जैसे अज्ञानकाल में जब देहाभिमान होवै है औ

तिसकरि विषयन में वासना होवै है तब मानों तिसो धागे के बलकरि "मैं देह हूं औ मैं कर्त्ता-भोक्ता संसारी जीव हूं" इसी तरफ चली जावै है। तहां चलानेवाला चिदाभास सहित अहंकार है सोई मानों दर्जी है तिस के वश होय रहै है। सोही ज्ञानकाल में जब स्वरूप का साक्षात्कार होवै है, तब तिसके बलतें तिस 'चिदाभास सहित अहंकार (जीव) रूप दर्जीहि ब्रह्म सें मिलाय देवै है, सोई मानों सीवै है। बुद्धि उपहित साक्षी जो आत्मा है सो स्वभाव तें ही अति शुद्ध है तातें सो ही मानों सोना है। सो पूर्व संसार दशा में अज्ञान के वश तें चिदाभासरूप सुनार के अधीन था। तिस के कर्तृत्व औ भोक्तृत्वादिक धर्म अपने में आरोप कर लेता था, त्रिविधताप-युक्त संसाररूप अग्नि में तापता था। औ अनेक दुःखन कूं सहता था। सो ज्ञानरूप अग्नि में पाप-पुण्य सुख-दुःख औ गमन-आगमनरूप मल कूं जलावने के वास्तै चिदाभासरूप सुनार कूं पकरि कहिये अपने में कल्पित जानि के तावै कहिये शुद्धता के निश्चय तें अधिष्ठानरूप आप में समावेश करै है॥= भागत्यागलक्षणा करि लक्ष्य का ज्ञान होवै है। सो लक्ष्य शुद्ध चेतन कूं कहै हैं, तिसका विवेचन करनेवाली जो बुद्धि है सोई मानों लकरी है। औ जो माय करि सर्व प्राणीन कूं अंतःकरण में प्रेरणा करै है औ तिन के कर्मानुसार फल भोग देवै है। ऐसा जो माया उपाधिवाला ब्रह्मचेतन है (ईश्वर) सोई मानों बढई (सुतार—खाती) है। ताकूं गहि कहिये कूटस्थ आत्मा में अभिन्न निश्चय करि कै छोलै, कहिये मिथ्या माया उपाधि तें रहित करै है। जो सर्व पदार्थ में ब्रह्म भाव करि निरंतर स्मरण होवै है। ता (निरोध) कूं राजयोग में प्राणायाम कहै है। तिस प्राणायाम-युक्त जो बुद्धि है सोई मानों खाल कहिये धमनी है। औ उक्त प्राणायाम के अभ्यास में प्रवृत्ति करावनेवाला जो मन है सोही मानों लुहार है, तिस लुहार कूं सु कहिये वे खाल बैठी कहिये स्थित भई हुई धमै कहिये चला करै है।—सुन्दरदासजी कहै हैं कि जो कोई या (विपर्यय कथन के सिद्धांतरूप अर्थ कूं) को यथार्थ विचार करै, कहिये विचार द्वारा निश्चय करै सो पुरुष ज्ञानी है॥ ९॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सुं० दा० जीकी साखी—'धोबी कौं उज्जल कियौ, कपरे धपुरै धोइ। दरजी कौं सीयौ सुई, सुन्दर अचिरज होइ। १०। सोनै पकरि

जा घर माँहि बहुत सुख पायौ ता घर माँहि बसै अब कौंन।
लागी सबै मिठाई पारी मीठौ लग्यौ एक वह लौंन॥
पर्वत उडै रुई थिर बैठी ऐसौ कोउक बाज्यौ पौंन।
सुन्दर कहै न मानै कोई तातें पकरि बैठि मुख मौंन॥ १०॥

सुनार कौं, काढ्यौ ताइ कलंक। लकरी छील्यौ बाढई, सुन्दर निकसी बंक"। ११। कबीरजी का शब्द—"साँई दरजी का कोई भरम न पावा। पानी की सुई पवन का धागा। अष्टमास नव सीवत लागा। (शब्दावली। ९।) गोरषनाथजी का पद—"कायागढ भीतरि धोबणिराणीं। कपड़ा धोवै अबधू बिन सिल पाणीं"। (गो० पद ३४)।

ह० लि० १ टीका:—घर=काया। सुख=विषय सुख। मिठाई=विषय स्वाद। लौन=नांम। परवत=पाप तथा आपो अहंकार। रुई=आत्मा। अथवा गरीबी। न=ज्ञान॥ १०॥

ह० लि० २ टीका:—जा कायारूपी घर में अज्ञान अवस्था में बहुत सुख न्यौं हो। अब ज्ञान अवस्था प्राप्ति मैं कौंन बास करै, कौंन सुख मानै, विवेकी कोई ो सुख नहीं मानैं। अज्ञान अवस्था मैं जो अति मीठा प्रिय विषै विकार हा, सो य ज्ञान अवस्था में सर्व बिरस होइ गया। आदि मैं आरंभकाल में लवनरूप भगवत- जन सोई एक मीठा लागा—'पाती बिरियां पारा लागै मीठा लागै मोड़ा सा'। ऐसी ोई आश्चर्य आनन्दस्वरूप ज्ञान आंधीरूप पवन बाज्यो; अतःकरण मैं उत्पन्न हुवो, ासौं पाप आपो अहंकाररूप पर्वत बड़ा हा सो उड़ि गया, रुई नाम नम्रता सो थिर ठी नाम थिर हुई। सो या अति आनन्द विवेकरूपी वार्ता को कौंण मानै, कौंण ो कहिये, किसी को भी कहण ज्यूं है नहीं (यातें) मौन ही बड़ी बात है॥१०॥

पीताम्बरी टीका:—अज्ञानकाल में इस शरीर विषै तादात्म्य अध्यास होवै है यातें यह शरीर सुखरूप भासै है, तातैं सोही मानौं ग्रह (घर) है। ऐसे जा घर (शरीर) माँहि संसार-सम्बन्धी बहुत-विषय-सुख पायो। ता घर माँहि विवेकयुक्त ज्ञान हुवे पीछे अब कौन बसै, कहिये अब तादात्म्य अध्यास कौन करै। भाव यह

हैः—तौलों तादात्म्य अध्यास है तौलों शरीर में सुख भासै है, औ ज्ञान हुवे पीछे भासै नहीं।—इस लोक-सम्बन्धी माला-चंदन-स्त्री आदिक सुख हैं, औ परलोक-सम्बन्धी जो अप्सरा अमृतपानादिक सुख हैं। तिस सुख के भोगरूप (ही) मानों मिठाई है। सो भोगरूप मिठाई विवेक औ वैराग्य करिके खारी लागी, कहिये विरस प्रतीत भई। जब जिज्ञासा होवै नहीं तब ब्रह्मस्वरूप अप्रिय भासै है। औ भाव बिना रसवाला पदार्थ भी विरस प्रतीत होवै है। यातैं यद्यपि ब्रह्मस्वरूप मधुर-रस-वाला सर्व कूं प्रिय है तथापि अज्ञानकाल में क्षार-रस-वाला कहिये अप्रिय भासै है, सोई मानों लौन है। सो ज्ञानकाल में वह एक ही ब्रह्मरूप लौन मीठो लग्यो, कहिये परमानन्दरूप प्रतीत भयो। अज्ञानकाल मे शरीर के विषे जो अहंकार होवै है औ तिसकरि बहिर्मुख मन होवै है सो देह अहंकार अथवा बहिर्मुख मनही मानौ पर्वत है। सो जिसकरि उडै कहिये निवृत्त होवै है। औ अज्ञानकाल में अभिमानते रहित जो वृत्ति होवै है, अथवा जो अतर्मुख वृत्ति होवै है सो वृत्ति ही मानों रुई है। सो जिस करि थिर बैठी, ऐसो कोउक पौन कहिये आत्मज्ञानरूप पवन बाज्यो कहिये चलने लग्यो—सुंदरदासजी कहै हैं कि यह आश्चर्य करनेवाली बात कोई अज्ञानी-जन मानै नहीं, तातैं मौन पकरि बैठिये कहिये अनधिकारी के पास यह गोप्य अनुभव बोलिये नहीं॥ १०॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जीकी साखी—"जाघर मैं बहु सुख किये, ता घर लागी आगि। सुंदर मीठौ नां रुचै, लौन लियौ, सब त्यागि। १२। सुंदर पर्वत उडि गये, रुई रही थिर होइ। बाव बज्यौ इहिं भांति कौ, क्यूंकरि मानै कोइ" ।१३। तथा—"मिष्ट सु तौ करवो लग्यौ, करवो लग्यौ मीठ। सुंदर उल्टी बात यह, अपने नैननि दीठ" । ४६ ।—कबीरजी का पद—"घर जाजरौ बलींडौ टेढौ, औलौती डराई। मगरी तजौं प्रीति पाषै सूं, डांडी देहु लगाई।" (कबीर ग्रंथावली में पद २२)।—तथा—"मीठो कहा जाहि जो भावै"—(क० ग्रं० पद १४७ में)।—गोरखनाथजी "सती सिला अलौंनी कहिये, जिनि चीन्हीं तिनि मीठी"। (गो० बा०। १९६ से) तथा—"लूण कहै अलूणां बाबा, घृत कहै मैं लूखा"। गो० पद ३८)।—

रजनी मांहि दिवस हम देष्यौ दिवस मांहि हम देषो राति।
तेल भर्‌यौ संपूरन तामैं दीपक जरै जरै नहिं बाति॥
पुरुष एक पानी मांहि प्रगट्यौ ता निगुरा की कैसी जाति।
सुन्दर सोई लहै अर्थ कौ जो नित करै पराई ताति॥ ११॥

ह० लि० १ टीका—रजनी=निर्वृत्ति (अवस्था)। दिवस=ब्रह्मनिष्ठा। दिवस और राति=प्रवृत्ति और अज्ञान। तेल=स्नेह (ब्रह्मानन्द) दीपक जरै=ज्ञान प्रकाशमान होवै। बाति=ब्रह्मानन्दवृत्ति। पुरुष=परब्रह्म। पानी=प्रेम। निगुरा=ब्रह्म। पराई=जगत मिथ्या की। ताति=निंदा॥ ११॥

ह० लि० २ री टीका—रजनी नाम निवृत्ति तामैं दिवस नाम ब्रह्मनिष्ठ नाम प्रकाशमान ज्ञान देष्यो। दिवस नाम जो प्रवृत्तिधर्म तामैं अज्ञानरूपी रात्रि देषी अर्थात जहां प्रवृत्ति होय तहां अज्ञान ही होय। तेल नाम स्नेह (अर्थात्) अयन्त सचिक्कण जो फेर छूटै नहीं एसो ब्रह्मानन्द रस पूरण जामैं ऐसो ज्ञानरूप दीपक प्रकाशमान है तामैं धाता ध्यानादिरूपा वृत्ति नहीं प्रकाशै है ध्येयाकार अखंड ज्ञान प्रकाशमान है। यद्वा जामैं स्नेहरूपी तेल परिपूर्ण ऐसो जो प्राणरूपी दीपक जरै है शरीर मैं प्रकाशरूप बणि रह्यौ है सो परिणामरूप प्रकाशमान है। अरु बाती जो ब्रह्माकार वृत्ती सो अखंड एक रस प्रकासै है, नहि जरै नाम नहीं खंडन होय है। पुरुष एक परमेश्वर परमात्मा पूर्णब्रह्म, सो पानी नाम प्रेमा-भक्ति तामैं प्रगट्या नाम प्राप्त हूवो। निगुरा पाठांतर निगुना नाम त्रिगुनातीत परमात्मा की कैसी जाति न कोई जाति है अरु सर्व जातिरूप वोही है। याका अर्थ कौं सो (पुरुष) लहै जो पराई नाम आत्मचेतन सौं भिन्न देहादि ससार ताकी ताति नाम नित्य निंदा करै। क्यकरि करै? जगत् मिथ्या है यौं करै॥ ११॥

पीताम्बरी टीका—अज्ञानकाल में परब्रह्म ही मानौं रात्रि है। काहेतें जो अज्ञानी होवै है सो कदे भी अपने कूं ब्रह्मरूप मानैं नहीं, किंतु ब्रह्म तैं भिन्न मानै है। औ जो कोई कहै कि "तू आत्मा ब्रह्मरूप है" तो सो सुनि के ताकूं बड़ा भय होवै है औ कहै है कि—"मैं तो कर्त्ता भोक्ता, सुखी-दुखी, पाप पुन्यवान जीव हूं

औ ईश्वर का दास हूं, मैं आत्मा हू यह कैसे कह्या जावै ?" । यही मानों तिस रात्रि में भय है। औ जो "मैं आत्मा ब्रह्मरूप होवौं तो सो अपना स्वरूप मेरे कू भासना चाहिये सो तो भासै नहीं। तातैं मैं आत्मा ब्रह्म नहीं हू। यही मानों रात्रि आवरण है। ऐसी पर-ब्रह्मरजनी मांहि ज्ञानकाल में हम दिवस देख्यो। काहेतैं कि ज्ञानी अपने कू ब्रह्मरूप मानै हैं, औ 'अहं ब्रह्मास्मि' कहेते कछु डरै नहीं, औ अपना शुद्ध सच्चिदानन्दरूप आत्मस्वरूप जैसा है तैसा देखै है। एसे तिस रात्रि कू हम दिवस देख्यो है कहिये जान्यौं है।+ ज्ञानी कू परब्रह्म जैसा है तैसा भासै है, तामें पूर्वोक्त भय अथवा आवरण कछू नहीं होवै है। तातैं सो परब्रह्म ही मानों दिवस है। ता मांहि अज्ञानकाल में जगतरूप कार्य्य सहित अविद्या प्रतीत होती थी। तैसे ही ज्ञान-काल में भी प्रतीत होवै है। परन्तु इतना भद है—अज्ञानकाल में सत्यतापूर्वक प्रतीत होती थी, तैसे ज्ञानकाल में प्रतीत होवै नहीं। किन्तु दग्धपट की न्याई बाधितानु-वृत्ति करि प्रतीत होवै है। ऐसे हम रात्रि देखी है। देश, काल और वस्तु के परिच्छेद तैं रहित जो ब्रह्म है सो संपूर्ण व्यापक है, यही मानों संपूर्ण तेल भर्यो है तामें माया औ अविद्या उपहित जो साक्षी चेतन है सोही मानौं दीपक है सो जरै है कहिये तिस माया औ अविद्या के कार्य्यरूप कज्जल कू प्रकाशै है। वे माया औ अविद्यास्वरूप से जड़ औ परप्रकाश होने सै सोही मानों बात कहिये बत्ती हैं, सो जरै नहीं कहि नाश होवै नहीं, काहेतें सामान्य चेतन तिनका विरोधी नहीं है। जब विक्षेप-रहित शान्त अन्तःकरण होवै है तब एकाग्र अन्तरमुख वृत्ति होवै है, तिस वृत्ति का स्वरूप ही मानौं पानी है। ता पानी में एक कहिये सजातीय विजातीय औ स्वगत भेद-रहित पुरुष जो सर्व शरीररूप पुरिन में रहै है, औ अस्ति भाति प्रिय-रूप है, एसो ब्रह्मस्वरूप प्रगट्यो। जो पूर्व अज्ञान-कृत आवरण तैं ढक्यो थो सो सद्गुरु औ सत्शास्त्र के अनुग्रह ते आविर्भाव कू पायो अपरोक्षानुभव को विषय भयो। उक्त परब्रह्म जो पुरुष है ताकू ही इहां निगुरा कहै है, काहे तैं कि आप स्वत जाननेवाला है औ ज्ञानरूप है ताकू गुरु की अपेक्षा बनै नहीं। अथवा जो सत्वादिक तीन गुणन तैं वा रूपादिक चौबीस गुणनते रहित है ताते निगुणा (निर्गुण) है। ता (निर्गुणरूप) निगुरा की कैसी जात कहैं ?। कोई भी जात कही जावै नहीं।

काहे तें—अनेकन के मांही जो एक धर्म रहै है सो जाति कहिये है जैसे सर्व ब्राह्मण के शरीरन में ब्राह्मणत्व जाति है। औ जैसे सर्व घटन में एक घटत्व जाति है—तिनकू ब्राह्मणपना औ घटपना कहै है। सोही ब्राह्मणादिक मांही जाति है। ताके सजातीय विजातीय औ स्वगत ऐसे तीन भेद हैं। अथवा जैसे सत्वादिक तीन गुन की वा रूपादिक चौबीस गुणन की गुणत्वजाति है, तैसे परब्रह्म की कोई भी जाति नहीं है। जहां जाति है वहां द्वैतता सिद्ध होवै है। "ब्रह्म तौ अद्वैत है" ऐसे श्रुति कहै है यातें ब्रह्म की कोई जाति कही जावै नहीं। तातें तिसकी कैसी जाति कहैं? ॥—सुन्दरदासजी कहैं हैं कि जो मुमुक्षु पुरुष नित्त कहिये निरन्तर दीर्घकाल पर्यन्त। पराई कहिये सर्व तें पर श्रेष्ठ ब्रह्मस्वरूप की तात करैं, कहियें श्रवणादि अभ्यास द्वारा तत्पर होय के चिन्ता कू करैं। अथवा अपने स्वरूप तें अन्य समष्टि व्यष्टिरूप स्थूल सूक्ष्म औ कारण प्रपंच की सदा असत जड़ दु:खादिरूप चिन्ता कू करैं। सोही पुरुष ब्रह्म औ आत्मा की एकता के निश्चय (ज्ञान) रूप अर्थ कूं लहै। अथवा जन्म मरणादि बन्ध की निवृत्तिरूप औ परमानन्द की प्राप्तिरूप अर्थ (मोक्ष) कू लहै कहिये प्राप्त होवै ॥ ११ ॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जी की साखी—"रजनी मैं दीसै दिवस, दिन मैं दीसै राति। सुंदर दीपक जलि गयौ रही बिचारी बाति"। १७। तथा—"पर निंदा निश दिन करै, सुंदर मुक्ति हि जाइ"। २४।—दादूजी का पद ४०६—"दीपक जले बाति बिन तेल" (अन्तरा ५ वां)।—तथा—"तहं अनहद बाजै अद्भुत खेल" (अंतरा ५ वां ही)।—कबीरजी का शब्द—"मोतिया बरसत रावरे देसवा दिन-राती। मुरली सबद सुनि मन आनन्द भयो, जोति बरै बिनु बाती"। शब्दावली। (भेदबानी। १० में)।—तथा—"बिन दीपक बरै अखंड जोत। पापपुन्न नहिं लागै छोत। चंद सूर नहिं आदि अंत। तह कबीर खेलै बसंत"। (शब्दावली। होली १९)।—तथा—"बिन दीपक उजियार, अगम घर देखिये"। (श० मंगल ४) तथा—"दीपक बिन ज्योति ज्योति बिन दीपक, हद बिन अनाहद सबद गाया"। (क० ग्र० ।पद १५८ से)।—गोरषनाथजी—"बिन बैसंदर जोति बलत है, गुरपरसादैं दीठी"। (गो० दा० १९६ से)।—तथा—"अखंड दीपक बलै बिन बाती। जहां जोगेसुर थापना थापी। जा

उनयौ मेघ घटा चहुं दिश तें वर्षन लागौ अखंडित धार।
बूड़ो मेरु नदी सब सूकी झर लागौ निश दिन इकसार॥
कांसा पर्यौ बीजली ऊपर फौयो सब कुटंब संहार।
सुंदर अर्थ अनूपम याकौ पंडित होइ सु करै विचार॥ १२॥

दीपक के पुन्य न पापं। श्रवणासीस नहीं है हाथं। जो दीपक सोइ देखसी, यों कथत श्री गोरषनाथं। ५। (गो० दयाबोध। ५।) :—

ह० लि० १ टीका:—उनयो=उमग्यो। मेघ=मन। घटा=मनसा। धार=भजन। मेरु=अहकार। नदी=नवद्वार। झर=नांव। कासा=काया। बीजली=मनसा। कुटंब=इन्द्रियां। अनूपम=उत्तम। १२।

ह० लि० २ री टीका:—मेघरूपी मन को प्रेम उमग्यो। घटा नाम की तिगति ता उमंड चली। चहुंदिसतें, चहूं अतःकरणंते। ताकरि अखंड भजनरूपाधार रखन लागो। जब झर लाग्यो नाम रात-दिन अखड भजन की झरी लागी। तब र नाम अति ऊंचो अहकार, बूडि गयो नाम भजन जल में बूडि गयो, धोगयो। दी नाम नदी की नांई अखंड प्रवाहरूप नवद्वारां का जो विषय तिन के प्रवाह की दी सूकि गई नाम भजन के प्रताप ते निवृत्त होइ गई। कांसा काया शुभ-कर्म क्रिया-में वा आपका पुरुषार्थ करि बीजली जो मनसा तापरि पर्यो नाम मनसा को जीती। ाका जीतवा करि निर्वासनिक हुवो। तासौं सकल इन्द्रियां की वृत्ति कौ संहार नास गेयो नाम सर्व निवृत्ति हुई। याको अर्थ अनूपम नाम श्रेष्ठ है। जो कोई पंडित वेकी होवैगो सोई विचारैगो अर्थ को पावैगो अरु धारैगो॥ १२॥

पीताम्बरी टीका:—"ब्रह्मानन्द समुद्र में मग्न भया हुवा जगत में विचरनेवाला ो आत्मज्ञानी है। ताकू ही इहां मेघ कह्या है। सो आनंदरूप जलकरि उनयो (उमग्यो) कहिये भर्यो है। जाकी स्वरूपाकारतारूप बादल की घटा छाई रही है। औ जो चैतन्यरूप आकाश में शरीररूप पर्वत की शिखरपर स्थिति है। सो परि-पूर्ण ब्रह्मभावरूप चहुंदिशि में वर्ष्यो कहिये वरसने लाग्यो। औ तेलकी धारा की न्यांई निरंतर प्रवाहवाली जो अखंडित आनंदयुक्त अनेक वृत्ति है। सोई मानों जल की अनेक

धर है। तिनकार वर्णन लग्यो, कहिये व्यापक ब्रह्म को अनुभव करने लग्यो ॥—अहङ्कारादि जो जगत है ताकूं यहां मेरु कहे है। सो बूड्यो, कहिये तीनकाल में अभाव निश्चयवृत्तिरूप बाध को विषय भयो। औ बाध्य बाधित विषयाकार होनेवाली जो मन की अनेक वृत्तिआं हैं सोई मानो सब नदी हैं। सो सूकी कहिये विषयन में अभिनिवेशभूत वासनारूप जल तें रहित भई। ताको निशदिन (रात्रिदिवस) तिन नदीन के उर कहिये बीच में, प्रथम वृत्ति के अंत, औ द्वितीयवृत्ति के आदिरूप के मध्यावस्था में केवल स्वरूपाकार होनेरूप इकतार (प्रवाह) लग्यो ॥—ज्ञान हुवे पीछे जो परवैराग्य होवै है साई मानो वांसा हैं। सो सूक्ष्म राजसी औ तामसी स्वभाववाली चचल बुद्धिरूप बिजली ऊपर पड़्यो। तिसने रागद्वेषलोभादि आसुरी सपदारूप सब कुटुंब को सहार कीनो, कहिये नाश कियो ॥—सुंदरदासजी कहैं हैं को, या (कथन) को जो अर्थ है, सो अनुपम कहिये सर्वोत्कृष्ट होने तैं उपमा रहित है। तातैं जो पुरुष पंडित कहिये स्वरूपाकार अत करणवाला ज्ञानी होय सु याके अर्थ का विचार करै। और पुरुष विचार करी शकै नहीं ॥ १२ ॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जाकी साखी—"सुंदर बरिषा अति भई, सूकि गये नदि नार। मेर बूडि जल में रह्यौ, भर लागौ इकसार। १८। वांसा परयौ पराकिर्दै, बिजली ऊपरि आइ। घर कौ सब टाबर मुवौ, सुंदर कह्यौ न जाइ"। १९। तथा—"सुंदर बरिषा अति भई, सूकि गई सब साप। नीब फल्यौ बहुभांति करि, लागे दाख्यौं दाष"। ४५। दादूजी की साखी—"ऐसा अचिरज देखिया बिन बादल बरिषै मेह"। ११४। अग ४॥—कबीरजी का पद—"बिन जल बूंद परत जहँ भारी, नहि मीठा नहिं खारा।··· बिन बादर जहँ बिजुरी चमकै, बिन सूरज उजियारा"। (शब्दावली। ७। पग भेद बानी में।)—तथा—"गगनघटा घहरानी साधो। पूरब दिशि से उठी बदरिया, रिमझिम बरसत पानी। आपन आपन मेंढ सम्हारो, बह्यो जात यह पानी॥ मन के बैल सुरति हरवाहा, जोत खेत निरबानी। दुबिधा दूब छोल कर बाहर, बोवो नाम का धानी॥ चाल्रे भार कूट घर लावे, सोई कुसल किसानी। पांच सखी मिलि कीन्ह रसोईयां, एक से एक सयानी। दोनों थार बराबर परसे, जेंवै मुनि अरु ज्ञानी॥ कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह पद है निरबानी। जो या पद को

बाड़ी मांहि मालो निपज्यौ हाली मांहि निपज्यौ खेत।
हंसहि उलटि स्याम रङ्ग लागौ भ्रमर उलटि करि हूवौ सेत॥
शशिहर उलटि राहु कौं ग्रास्यौ सूर उलटि करि ग्रास्यौ केत।
सुन्दर सुगरा कौं तजि भाग्यौ निगुरा सेती बांध्यौ हेत॥ १३॥

परचा पावै, ताको नाम विज्ञानी'' ॥ (शब्दावली। भेदवानी १४।)—गोरखनाथजी का पद—''अगनि बिन जलिया, अंबर बिन जलहर भरिया''। (गो० पद २० में से)। तथा—'नाथ बोलै अम्रत वांणी, बरसैगी कमलिया भीजैगा पांणी''। (गो० पद ३९ में)।

ह० लि० १ टीका:—बाड़ी=काया। माली=जीव। हाली=जीव। खेत=काया। हंस=जीव। स्यामरग=रामरंग। भंवर=मन। शशिहर=मन। राहु=गुण। ग्रास्यो=ज्ञान। (पायो)। सूर=ज्ञान, दूजो पौन। केत=कर्म। सुगरा=ससार। निगुरा=ब्रह्म॥ १२॥

ह० लि० २ टीका:—बाड़ी काया क्षेत्ररूप ता मांहि मालीरूप क्षेत्रज्ञ जो जीव सो निपज्यो समरण साधन कर स्व-स्वरूप को प्राप्त हुवो। हाली जीव क्षेत्रज्ञरूप ताको चेतन सत्ता करकैं खेत नाम क्षेत्ररूप शरीर सो निपज्यो नाम साधन सिद्धि कौं प्राप्त हुवो। हंस जो जीव सो माया रग में मगन होय रह्यो हो ताकू गुरु सत उपदेश करि कैं अब उलटि कै स्यामरग लाग्यो-स्याम जो अपना स्वामी अथवा घनस्याम मूर्ति श्रीरामजी ताको रग लाग्यो। भ्रमर नाम काम-कर्म-कालिमायुक्त जो मन सो सेत नाम भगवत भजन सुमरन करि ऊजल हूवो। संकल्प आत्मक जो मन सोई है शशि-हर नाम चद्रमा तानैं राहु नाम आपकौं मलीन को करता जो तामसादि गुण तानैं ग्रास्यो नाम निवृत्ति कीया राव शुद्ध हूवो। सदा प्रकाशमान सोई सूर तानैं कर्म-कामनारूप केत सो दूर निवारन कर्यो केवल ज्ञान ही ज्ञान प्रकाशमान रह्यौ। सुगुरा संसार जो अन्य आधीन वर्तै ताकौं त्यागि करि भाग्यो नाम अत्यन्त विचार्यो, अरु निगुरा नाम जाकै ऊपरि कोई भी नहीं सो ब्रह्म-स्वयं प्रकाश स्वाधीन तासौं स्नेह बांध्यो॥ १३॥

पीताम्बरी टीका:—यह जो सृष्टि है सोई मानों बाड़ी है। ता बाड़ी मद्धे चेतन परमात्मारूप माली निपज्यो। कहिये अज्ञान दशा के पक्ष में जीवभावकूं प्राप्त करिके जगत में अपने जन्मादिक् मानि रख्यो है। अथवा सो चेतन परमात्मा है ज्ञानकाल में विचार-द्वारा सर्वजगत में परिपूर्ण प्रतीत भयो ॥—अज्ञानदशा के पक्ष में मनरूप काष्ट के हल करि शुभाशुभ कर्मरूप बीज बोवने के वास्ते प्रवृत्तिरूप खेती कूं करनेवाला जो क्षेत्रज्ञ साक्षी चेतन है सोई मानो हलका खेडनेवाला हाली (कृषिकार) है। ता मांही शरीररूप खेत (क्षेत्र) निपज्यो कहिये नानाप्रकार के अनुकूल औ प्रतिकूल जो विषय हैं सो सब मानों तामें अन्य के वृक्ष हैं तिससे जो सुख-दुःखरूप फल उत्पन्न होवै है। सोई मानों अनाज के कन हैं। ऐसा जो क्षेत्र है सो "मैं कर्ता भोक्ता हूं" इत्यादि भ्रम करि उत्पन्न भयो। अथवा ज्ञानदशाके पक्ष में अपनी उपाधि भूत जो मन है सोई मानों हल है तिससे ही प्रवृत्ति औ निवृत्तिरूप खेती होवै है। तिसका प्रकाशक जो आत्मा है सोई मानों कृषिकार है। तामें क्षेत्र की न्याईं सर्वजगत का आधार जो परमेश्वर है सो अभिन्न होय के प्रतीत भयो ॥—चिदाभास-रूप जो जीव है सोई मानों हंस ही है। कहते कि हंस पक्षी का श्वेतरंग होवै है। तैसे इहां जा विषय में अरुचि है अथवा जा जगत के व्यवहार की प्राप्ति में उपराम है सो यद्यपि विवेक दृष्टि से त्याज्य है तथापि अविवेक दृष्टि सो नीक लगै है। तहै सोई मानो जीवरूप हंस का श्वेतरंग है। सो उलटि के कहिये विषयन में वैराग्य औ जगत के व्यवहार की प्राप्ति में उपरति (हुई) जो अज्ञानी की दृष्टि में श्यामरंग है सो लग्यो कहिये वैराग्य औ उपरतियुक्त भयो ॥—मनरूप जो भ्रमर है सो उलटि करि कहिये निष्कामकर्म औ उपासना द्वारा मल-विक्षेप दोषरूप श्यामताई छांडिकै शुद्धरूप औ एकाग्रतारूप श्वेत हुवो ॥—ज्ञान के प्रकाशरूप जो मन है सोई मानो शशिहर (चंद्र) है। तामें अज्ञानरूप राहु कूं उलटि ग्रस्यो कहिये नाश किये। ज्ञानरूप सो मानों सूर (सूर्य) है तिसने प्रतिदिन उलटि कहिये [illegible] [illegible] के मध्य भी [illegible] [illegible] [illegible] के नियम से अभ्यास होवै है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होवै है। सोई मानों केतु (केतु) है। [illegible] [illegible] कहिये [illegible] [illegible] ॥—[illegible] [illegible]

अग्नि मथन करि लकरी काढी सो वह लकरी प्रान अधार।
पानी मथि करि घीव निकार्‌यौ सो घृत पइये बारंबार॥
दूध दही की इच्छा भागी जाको मथत सकल संसार।
सुन्दर अब तौ भये सुखारे चिंता रही न एक लगार॥ १४॥

की जो सगुणवस्तु है सोई इहां सुगरा है। ताकू पूर्वोक्त ज्ञानी तजिके भाग्यो कहिये दूर रह्यो। औ जो निर्गुणवस्तु है सोई मानो निगुरा है ता सेती ताने हेत बांध्यो कहिये ऐक्यभावरूप प्रेम कियो॥ १३॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जोकी साखी—"सुंदर माली नीपज्यौ, फल अरु फूल समेत। डाली के कोठा भरे, सूके बाड़ी खेत। २०। भ्रमर सु तौ उज्जल भयौ हस भयौ फिरि स्याम। को जानै केते भये सुन्दर उलटे काम"। २१।—दादूजी का पद—"मोहनमाली सहज समानां···। काया बाड़ी मांहिं माली···ता माली की अकथ कहांणी"। ३७१। हरिदासजी निरंजनी—"सींचत बाड़ी सब कुमलावै। काटत बहु फल लागा"। ५। (योग मूल सुख-योग)।—कबीरजी का शब्द—"चेला रहा सो चुन-चुन खाया, गुरू निरंतर खेला।···सुगरा होय सो भर-भर पीवैं, नुगरा जाय पियासा" (शब्दावली। भेदबानी। २६ में से।)—तथा पद—"उलटी गंग समुद्रहि सोखै, ससिहर सूर गरासै। नव ग्रिह मार रागिया बैठे, जल में ब्यब प्रकासै"। (क० ग्र०। पद १६२ से)।—गोरषनाथजी—"गगनमंडल में औंधा कूवा, तहां अमृत का बासा। सुगरा होइ सो भरि-भरि पीवै, निगुरा मरै पियासा"। (गो० शब्दी २३।)।—गोरषनाथजी—"अमावसि के घरि झिल-मिलि चन्दा, पून्यू के घरि सूरं। नाद के घरि ब्यद गरजै, बाजत अनहद तूर"। (गो० शब्दी। ५५।)।—तथा—"पेड़ बिहूना अमिला मोर्‌या, प्यड बिहूना माली"। (गो० श० १९५ से)।—तथा—"उलटै चद्र राहु कौं ग्रहै, सूरज उलटि केतु कू ग्रहै। ससिहार सूरज कौं ग्रहै, थिर रहै तत्त भाण जोगेसुर कहै"। (गो० आत्मबोध)।—तथा—"उलटि जंतर धरै सिषर आसण करै, कोटि सर छूटति घाव नांहीं।···मैंण के दांतूं लोह धरि पीसिवा"। (गो० ग्या० चौ०)।—

ह० लि० १ टीका—अग्नि=विरह अग्नि। लकरी=लय। पानी=प्रेम। घीव=ज्ञान। दूध-दही=कर्मकाण्ड। वा खाटामीठा भोग॥ १४॥

ह० लि० २ री टीका:—विरहरूप जो अग्नि ताको जो अतिगति उदै करना साई मथन। ता करि उदै भई जो भगवत के विषै लयवृत्ति सोई लकरी काढी नाम लै सिद्ध करी जो बालै है सो प्राण नाम जीव कौं अति आनन्द की दाता आधाररूप है।—पानी जो प्रेम जासौं अंतस्करण द्रवीभूत होय जाय सो पानी ताको अत्यन्तपणों सोई मथणों ता करि उत्पन्न हुवो ज्ञान सर्वसिरोमणी घीव वा घी कौं बारबार खाइजै है नाम वा ज्ञानरस ही में अखंडलीन रहै है।—दूध जो शुभाशुभ-कर्म, दही नाम तिन कर्मन सूं उत्पन्न हुवा खाटा-खारा सुख-दुखादि भोग तिनकी इच्छा भोगी, जा दही कौं सर्वसंसार मथत नाम भोगै है।—अब तो निहकाम होय सर्वप्रकार की कामनारूप चिंता गई सर्वप्रकार करि सुखी भये ॥ १४ ॥

पीताम्बरी टीका:—अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत ये तीन जो ताप हैं तिन करि सर्व अज्ञजीव जलै हैं सो जलावनेवालो यह देहादि सृष्टि है सोई मानौं अग्नि है। ताकौं मथन कहिये "यह सब जगत मिथ्या है" इत्यादि निश्चय तें विवेचन करि लकरी काढी कहिये जैसे अग्नि का आधार काष्ट है तैसे इस सृष्टिरूप अग्नि का आधार संवित् (चेतन) है। सोई मानौं लकरी है ताकूं यथार्थ जानी सोई मानौ काढी है। सो वह लकरी प्राण का आधार है कहिये प्राणादि सर्व प्रपंच का अधिष्ठान चेतन है।—२- यह असार नाम-रूपात्मक जो जगत् है सोई मानौं जल है ताकूं मथनकरि कहिये विवेचनकरि अस्ति भाति औ प्रियरूप ब्रह्मानन्द ही मानौं घीउ निकास्यो। अथवा मनरूप जो जल है ताकूं मथनकरि कहिये साधन-चतुष्टय संपन्न करि ब्रह्मानन्दरूप मोक्ष ही मानो घीउ निकास्यो। अथवा सत् शास्त्र ही मानौं पानी है ताकूं मथनकरि कहिये विचारकरि ज्ञानरूप माखन द्वारा ब्रह्मानन्दरूपी घीउ निकास्या कहिये प्रगट कियो। सो घृत बारबार खायो कहिये विचार-दशा में अपनो आप जानि के अनुभव कियो।—३- जाकूं सकल संसार मथत है संसारीजीव चाहकरि खोजन्ते हैं ऐसे जो परलोक के भोग हैं सोई मानौ दूध है। औ इस लोक के जे भोग हैं सोई मानौ दही हैं तिनकी इच्छा भागी कहिये भग ह्वै गई।—४- सुंदरदासजी कहैं हैं कि अब तो हम सुखारे कहिये परम आनंदित भये। औ इस प्रकार कहिये किंचिन्मात्र भी चिंता न रही अर्थात् सर्वजन्मादि अनर्थ तें छूटे ॥ १४ ॥

पत्र मांहि झोली गहि राखै योगी भिक्षा मांगन जाइ।
जागै जगत सोवई गोरष ऐसा शब्द सुनावै आइ॥
भिक्षा फुरै बहुत करि ताकौं सो वह भिक्षा चेलहि पाइ।
सुन्दर योगी युग युग जीवै ता अवधू की दूरि बलाइ॥ १५॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—काठी नाम भिन्न करली विवेक-बुद्धि के व्यापार से। "प्राणो वै ब्रह्म"—ब्रह्म प्राणस्वरूप है। आधार और आधेय का भाव यहां लेना। "घी सो घोट रह्यो घट भीतर"—ऐसे ब्रह्मानन्द घृत को निरंतर अनुभव करै। दूध जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी संसाररूपी गाय से दूधरूपी कर्मफल निकाल उसके इच्छा का जावन देकर विकृत कर विरत करदिया सो मायारूप संसार उसके विकारों सहित त्यागा गया, जिस संसार के कार्यों में संसारी-जीव निरंतर लिप्त रहते हैं। असंप्रज्ञात समाधि वा अखंड ब्रह्मानंद की प्राप्ति ही में चिंता का अभाव और सुखारे होने का भाव है।—सु० दा० जीकी साखी—"अग्नि मथनकरि नीकरी लकरी सहज सुभाइ। पानी मथि घृत काढियै सो घृत सुंदर पाइ"। २२।—कबीरजी का शब्द—"सुन्न सिखर पर गइया ब्यायी, धरती छीर जमाया। माखन रहा सो संतन खाया, छाछ जगत भरमाया"। (शब्दावली। भेदबानी। २६ में)।—तथा पद—"अवधू कामधेन गहि बांधीरे। भांडा भंजन करै सबहिन का, कछू न सूझै आंधीरे॥ जौ ब्यावै तौ दूध न देई, ग्याभण अमृत सरवै। कौली घाल्यां बीडर चालै, ज्यूं घेरौं त्यूं दरवै। तिहि धेन थैं इन्छा पूगी, पाकडि खूंटै बांधीरे। ग्वाडा माहैं आनन्द उपनौं, खूंटै दोऊ फांधीरे। साई माई सास पुनि साई, साई याकी नारी। कहै कबीर परम पद पाया, संतो लेहु बिचारी॥ (क० ग्र०। पद १५२।)।—गोरखनाथजी का पद—'एक जु रडिया लडती आई"—(गो० पद ३९ में से)।

ह० लि० १ टीका.—पत्र=हृदो। झोली=गुणां की झकझोल। गहिराखै=रोकै। जोगी=जीव। भिख्या=ब्रह्म दर्शन। जागै=प्रवृत्ति में रहै। सोवई=समाधि में सोवै। गोरख=संत। भिक्षा फुरै=ब्रह्मदर्शन की चाह होवै। चेला=इंद्रिय॥ १५॥

ह० लि० २ टीका—पत्र नाम जो शुद्ध हृदो, तामें झोली नाम कर्मन की

नानाप्रकार की मक्रमोली गुणों की वा, सो राखी नाम रोकी। योगी जो जाव सो भिक्षा नाम ब्रह्मदर्शन माँगन जाय, नाम वाह्य-वृत्ति छोड़ अंतरनिष्ठ होणों होइ जावणों। योगी जब भिक्षा कौं जाय तब-तब गोरख ऐसो शब्द करै या रीति है परंपरा सौं। अरु या जीव जोगी को यह शब्द 'जागै जगत सोवै गोरख' याको अर्थ यह जो संसार है सो प्रवृत्ति मार्ग में जागै है। नाम अत्यन्त सावधान होयके वर्ते है। अरु गोरख योगी है सो जगत मार्ग तरफ अचेत होयकरि ब्रह्मानन्द समाधि में सुख सोवै है सदाही ब्रह्मानन्द समाधि में लीन रहै है।—ता जीव योगी कौं वा ब्रह्मदर्शनरूप भिक्षा बहुत पूरै नाम बहुत परिपूर्ण प्राप्ति होवै है।—योगी की भिक्षा कौं चेला खाहि या रीति होवै है अरु योगी की भिक्षा चेला ने खाय चेला नाम इन्द्रियां की वृत्ति सो ब्रह्म-दर्शन जब हुवा तब उन वृत्तियां को अभाव होय गयो।—सो वो जीव योगी ब्रह्मानंद स्वरूप कौं पाय जन्ममरण रहित होय करि सदा चिरजीव होय कै सुखी हुवो। अवधूत नाम सर्वगुण इंद्रिय विकार रहित ता योगी की बलाय नाम आधिव्याधि कर्म-कालरूप विघ्न दूरि गया सर्व निवृत्ति होय गया ॥ १५ ॥

पीताम्बरी टीका - साभास अंतःकरण सहित आत्मरूप जो ज्ञानी जीव है सोई मानों योगी है। औ हृदयरूप पात्र है ता माँहि बुद्धिरूप झोली कूं गहि कहिये एकाग्रकरि राखै कहिये अंतर्मुख करै। औ निजानंद आविर्भाव है सोई मानों भिक्षा है सो विचाररूप गमन करि माँगन जात है कहिये स्वरूपाकार होवै है।—२। अन्य संसारी जीवन का जो समूह है ताकूं यहां जगत कहिये हैं सो जागै कहिये कछुक कर्तव्य मानिके तामैं प्रवृत्ति करै है। औ गो कहिये इन्द्रिय हैं ताकूं साक्षिता करि रख कहिये प्रकाशनेवाला जो आत्मस्वरूप है ताकू यहां गोरख कहैं हैं सो सोवई कहिये सर्व कर्तव्य रहित असंग ब्रह्मरूप होने तैं स्वमहिमा में ज्यूं का त्यूं विराजै है। औ जो शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि है तामैं भासके "अहंब्रह्मास्मि" ऐसा शब्द सुनवै है कहिये स्वरूप में स्थिति करने के वास्तै बहिर्मुखनकूं तिस वाक्यार्थ का अभ्यास करावै है।—३। त्रिपुटीभानरहित अखंडब्रह्माकार अंतःकरण की वृत्ति की जो स्थिति (निर्विकल्प समाधि) है। सो इहां भिक्षा कही है। ताकूं कहिये ता वृत्ति की स्थिति के अर्थ पूर्वोक्त शरीररूप गुरु (पर्यटन 'करि' का) बहुत फिरै है कहिये

निर्दय होइ तिरै पशु घातक दयावंत बूडै भव मांहि।
लोभी लगै सबनि कौं प्यारौ निर्लोभी कौ ठाहर नांहि॥
मिथ्यावादी मिलै ब्रह्म कौं सत्य कहै ते जमपुर जांहि।
सुन्दर धूप मांहि सीतलता जलन रहै जे बैठें छांहि॥ १६॥

तिसके अभ्यास की प्रबलतापूर्वक पुनः पुनः प्रवर्ते है। सो वहि भिक्षा मनरूप चेले ने खाइ। सो प्रकार यह है:—जब मन की वृत्ति स्थिरता में लगै है तब सो एकाग्र होवै है। औ ब्रह्मानंद—अनुभव-क्षण में तिस वृत्ति कूं अपने में लय करि लेवै है। भाव यह है:—निर्विकल्प समाधि-काल में वृत्ति की प्रतीति होवै नहीं।—४.सुंदरदासजी कहैं हैं कि ऐसा जो योगी है सो जीवभाव कू छोडिके अमर आत्मारूप होने तें युग-युग कहिये तीनूं काल में जीवै है। कहिये अविनाशी ब्रह्मरूप सें अवस्थित होवै है। औ ता ब्रह्मभूत अवधूत योगी को बलाइ कहिये जन्मादि अनर्थरूप आधिव्याधि दूर कहिये निवृत्त भई है॥ १५॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सुं० दा० जीकी साखी—पत्र मांहि झोली धरै जोगी मांगै भीष। सोवै गोरष यौं कहै सुंदर गुरु की सीष। २३।—दादूजी का पद—"जागत सूते सोवत सूते"…। ३०७।—गोरषनाथजी—"मांछिंद्रहपूता जोग जुगता, जागै गौरष जुग सूता"। (गोरषनाथजीका छंद।)।

ह० लि० १ टीका:—निर्दय=सूरवीर। पशु=इन्द्रियां। पशुघातक=इंद्रियजीत। दयावंत=इन्द्रिय पालक। लोभी=भजन का लोभी। मिथ्यावादी=जगत। धूप=इन्द्रिय कसणी। छांहि=इन्द्रिय भोग॥ १६॥

ह० लि० २ टीका:—निर्दय नाम अति कठोर सूरवीर होय करि, जो अपण विषयरूपी चारा में विचर रही इंद्रियवृत्ति पशु-पशु धमू ?—पशु भी तृप्ति कोई मानै नहीं। तिनां को घातिक नाम जीति मारि करि दूरि निवारै सो या संसार समुद्र कौं तिरै।—अरु दयावत होय इन्द्रियरूप पशुन कौं विषयभोग भक्ष देकै पालै सो या भव में बूडै।—लोभी भजन को अति काठो होयकै लागै अनेक दुःख सकट विघ्न आय पड़ै तौभी छोड़ै नहीं सो सबकौं प्यारो लागै। प्यारा तीनौं लोक में जाके हिरदै नाम।

जाके भजन का लोभ हुता नाहीं तासौं कहूं भी ठाहर ठिकाणा सुख नांहीं।—मिथ्या-वादी नाम जगत मिथ्या मिथ्या यों बोलै अराड यौंही जाणै सो ब्रह्मकौं मिलै। और जो व्यवहार सौं अध्यास बांधि जगत कौं सत्य कहै सो यमपुर जांय।—धूप नाम इन्द्रियों को दमणो देकै जीतणों तामे जन्मांतर पर्यंत सीतलता पावर सुखी रहै।—छांहि जो इन्द्रियां का विषयभोग तिनां को सुख मानि करि भोगणां सोई छाया बैठणां उनका फल जन्मांतर में जरबो करै नाम दुःखी हो रहै॥ १६॥

पीताम्बरी टीका—जो पुरुष निर्दय कहिये अडिग-मनवाला होइ और इन्द्रिय-समूह वा राग-द्वेषादिकन के समूहरूप पशुन का घातक कहिये जीतनेवारा होइ। अथवा जो पुरुष सर्व देहादिक अनात्मवस्तु-समूहरूप पशु का घातक कहिये ज्ञानद्वारा मिथ्यापने का निश्चय करनेवाला। वा तीनकाल-अभाव का निश्चय करनेवाला होवै। सो पुरुष जन्मादि अनर्थरूप संसार-सागर कूं तरै है। कहिये उल्घन करै है।—जो पुरुष दयावंत कहिये इन्द्रियन कूं निग्रह करने में वा रागादिक जीतने में वा सकल अनात्मा के बाध करने में सिथिल (असमर्थ) होवै है सो पुरुष भव-सागर मांहि बूड़े कहिये जन्मादि अनर्थनकूं पावै है।—जो पुरुष ब्रह्मानन्द लाभ में लोभी कहिये तिसी के परायण अभ्यासी होवै सो पुरुष सतन को प्यारो कहिये परमेश्वर की न्याईं पूजनीय लगै। जो पुरुष निर्लोभी कहिये उक्त लोभी तें विपरीत होवै ताकूं ब्रह्मानन्दरूप ठाहर कहिये स्थान नाहिं मिलै। अर्थात् ताकूं परमानन्द की प्राप्ति होवै नहीं।—माया अविद्या औ तिनका कार्य जो स्थूल सूक्ष्म है ताकूं मिथ्या (असत्) कथन का जो वादी होवै सो ब्रह्मकूं मिलै कहिये प्राप्त होवै। औ जो मायादिकन कूं सत्य कहै ते यमपुर जाहिं कहिये नरकादि दुःखन का अनुभव करै हैं।—सुंदरदासजी कहै हैं कि श्रवणादि साधन के अभ्यासरूप धूप मांहि। वा ज्ञानरूप प्रकाश मे शीतलता कहिये शांति होवै है। जो पुरुष श्रवणादि साधन के अनभ्यासरूप छांहि कहिये छाया में अथवा मूलाऽज्ञानरूप अप्रकाशस्वरूप छाया में बैठे कहिये आलसी होय के स्थित होवै सो पुरुष त्रिविध-ताप-रूप अग्नि में जरत रहै कहिये जलता ही रहै॥ १६॥

सुन्दरानन्दी टीका—सु० दा० जीकी साखी—"जोई व्है अति निर्दई करै पशु का घात। सुंदर साईं ढढरै और बहे सब जात। २६"।— कबीर पद—"धूप

माइ बाप तजि धी उमदानी हरपत चली षसम के पास।
वहू बिचारी वड वषतावरि जाके कहे चलत है सास॥
भाई परौ भलौ हितकारी सब कुटंब कौ कीयौ नास।
ऐसी बिधि घर वस्यौ हमारौ कहि समुंझावै सुन्दरदास॥ १७॥

दाक तें छांह तकाई मति तरवर सच पाऊं। तरवर माहिं ज्वाला निकसै, तौ क्या लेइ बुझाऊं। जे वन जलै त जलकूं धावै मति जल सीतल होई। जलही मांहि अगनि जे निकसै, और न दूजा कोई" —(क० ग्र०। पद ११२ में)।

(दोनों हस्तलिखित टीकाओं के मीलान से यह निश्चय हो गया कि इनमें भेद नहीं है। एक तो संक्षिप्त है और दूसरी विस्तृत है। इसलिए अब आगे से दोनों को मिलाकर एक जगह करदी गई है।)

ह० लि० १-२ टीका:—माय, माया ताको जो ममतास अरु बाप न म वप शरीर तामें सुखन को अध्यास तिन सबन को छांडिकै जो याही शरीर में उपजी जो शुद्ध-बुद्धी सो उमदानी सो हरषयुक्त हुई थकी सो खसम नाम सर्वदा प्रतिपालनकर्त्ता परमात्मा पूर्णब्रह्म-पति ताकै संगि चली नाम ताही में लीन हुई।—वहूबुद्धि बड़ी सभागणी सुलक्षणी शुभगुणयुक्त ता बुद्धि की प्रेरी सास नाम सुरति है सो चालै है ब्रह्मस्वरूप में लीन होवै है।—या बुद्धि को सहाईभूत जो ब्रह्मभाव वातें वाका सरल कुटुंव नाम जो इन्द्रियों की वृत्ति तिनको नाश करयो नाम सर्व दूरि निवारन करी। जो कुटुंब को नाश हुवा घर उजड़ै (परन्तु) यो घर वस्यो ये ही विपर्यय। या प्रकार घर वस्यो। घर ब्रह्म तामें हमारो वास सिद्धि हुवो॥ १७॥

पीताम्बरी टीका.—इहां अविद्या कूं माद (माता) कहैं हैं। औ जीव कूं बाप (पिता) कहैं हैं। ताकूं तजि (त्याग करिके) कहिये अविद्या औ जीव का बाध करिके धी (तिनकी पुत्री) कहिये जो संस्कारवाली बुद्धि की वृत्ति है। सो उमदानी (मदोन्मत्त भई) कहिये ध्येयाकार होने लगी। औ प्रत्यक् अभिन्न जो परमात्मा है सोई मानौ खसम (पति) है। ताके पास कहिये तदाकार होनेकूं हरषत चली अर्थात् परमात्माकूं अभिमुख भई।—विवेक-रहित जो बुद्धि है सोई मानौ सास (सासू)

है। काहेतें तिसीतें विवेक की उत्पत्ति हुई है तातें सो तिसकी माता है। विवेकयुक्त बुद्धि की वृत्ति है। सोई मानौ तिस विवेक की बहू (स्त्री) है। सो बिचारी कहिये शांतिवाली है। औ बडि बख्तावरि कहिये स्वाधीन है। पराधीन नहीं है। यातें पूर्वोक्त सासू का कह्या नहीं मानैं है। किन्तु जाके कहे वे सास चलती है। अर्थात् विवेकयुक्त बुद्धि की वृत्ति में अविवेकता का प्रवेश होवै नहीं।—पूर्वोक्त विवेक कू सहायता करनेवाला जो तत्वज्ञान है। सोई मानौ भाई (भ्राता) है सो खरो कहिये निश्चित है। भलो कहिये श्रेष्ठ है। औ हितकारी कहिये मुक्तिरूप कल्याण कू करनेवालो है। तिसने अविद्या को औ ताके कार्य बुद्धि वा बुद्धिवृत्ति औ देहादिरूप सब कुटुंब को नास कीयो। कहिये बाध कियो है।—सुंदरदासजी कहि समुझावैं हैं कि। एसी बिधि कहिये इस प्रकार करि हमारो स्व-स्वरूप-रूपी घर बस्यो। अर्थात सतरूप करि अव शेष रह्यो ॥ १७ ॥

सुन्दरानन्दी टीका—सु० दा० जीकी साखी—सुंदर समुझावै बहू सुनि है मेरी सास। माइ बाप तजि धी चली अपने पिय के पास। २७।— हरिदासजी निरंजनी— "सास बहू के पागे लागैं"। २।—(योग मूल सुख भोग)।—कबीरजी का पद—"माई मैं दोनों कुल उजियारी। बारह खसम नेहर में खाये, सोरह खाये ससुरारी। सासु ननद मिलि पटिया बांधल, भसुरा परलो गारी। जारो मांग मैं तासु नारि की, सरिवर रची हमारी। जनां पांच कोखिया में राखौं, अरु रारौं दुइचारी। पारपरोसिनि करौं कलेवा सगहि बुधि महतारी। सहजैं बपुरी सेन बिछायो, सूतो पांउ पसारी।—(बीजक शब्द ६२)।—तथा—"साँइ के संग सासुर आई"। संग न सूती स्वाद न जान्यौं, गयो जोवन सुपने की नांइ। जनां चारि मिलि लगन सुधाइ, जनां पांच मिलि मंडप छाई। सखी सहेली मंगल गावैं, दुख-सुख माथै हरदि चढ़ाइ। नानारूप परी मन भांवरि, गाँठि जोरि भई पति की आई। अरघे दै दै चली सुवासिन चौकहि रांड भई संग सांइ। भयो बियाह चली बिन दुल्हा, बाट जात समधी समुझाई। कहैं कबीर हम गवनैं जैबै, तरब कत लै तूर बजाइ॥ (शब्दावली। १२)। तथा पद—"जेठी धीय सासरै पठऊ, ज्यौं बहुरिन आवै फेरी। लहुरी धीय सबै कुल खायो, तब ढिंग बैठन पाई। कहै कबीर भाग बापुरो को, किलि किलि सबै चुकाई"।

परधन हरै करै पर निंदा पर धी कौं राखै घर मांहिं।
मांस षाइ मदिरा पुनि पीवै ताहि मुक्ति की संशय नांहिं॥
अकर्म ग्रहै कर्म सब त्यागै ताकी संगति पाप नसांहिं।
ऐसी कहै सु संत कहावै सुंदर और उपजि मरि जांहिं॥ १८॥

(क० ग्रं०। पद २२) ।—तथा पद—"सेजैं रहौं नैन नहिं देखौं, यहु दुख कासूं कहूं री॥ सासु की दूखी ससुर की प्यारी, जेठ कै तरस डरौं री। ननद सहेली गरब गहेली, देवर के बिरह जरौं री" ॥ (क० ग्रं०। पद २३० से) ।—तथा पद—"अवधू ऐसा ग्यान विचारी। नां हूं परणीं नां हू क्वारी, पूत जन्यौं यौ हारी। काली मूंड को एक न छांड्यौ, अजहूं अखन कंवारी" ॥ (उक्त। पद २३१॥)

ह० लि० १, २ टीकाः—परधन नाम परायो धन। पर जो विवेकी संत तिन को धन जो ज्ञान ताकौं सतन का उपदेश करिके हृदा में धारण करै। परनिंदा नाम अनात्म देहादि ताकी निंदा, विनाशवंत है जड है मलीन है यौं निंदा करै तो आसक्ति निवृत्त होय।—पर नाम विवेकी सत तिनकी धी कहिये जो निर्मल शुद्ध-बुद्धि ता बुद्धि कौं अपना पर जो घट तामें राखै।—मांस नाम पदार्थों की ममता ताकौं खाय नाम जीतै दूरि निवारै। अरु मदिरा नाम मोह जासौं बावलो बेसुध होजाय ताकौं ज्यूं-त्यूं पुरुषार्थ करि पीवै उपजण देवै नहीं। ऐसा पुरुषार्थ जो करै ता पुरुष के मुक्ति को संशय नहीं वह मुक्तिरूप ही है।—अकर्म नाम निरहंकारता वा ब्रह्मस्वरूप। कर्म नाम साहंकारता वा ब्रह्म व्यतिरिक्त संसार देहादि सो ता कर्म कौं त्यागि के वा अकर्म को ग्रहण करै ऐसा पुरुष की सगति करयां सर्व पाप दूरि होवै।—जो ऐसा कार्य नहीं करते हैं उनका जन्म लेना वृथा है। ऐसा करते हैं वेही संत-महात्मा कहे जाने के योग्य हैं॥ १८॥

पीताम्बरी टीकाः—पर कहिये जो संत-महात्मा पुरुष हैं तिनके ज्ञान वैराग्यादिक शुभगुणयुक्तरूप धन कूं हरै कहिये ग्रहण करिके अपने चित्तरूप भंडार में राखै। पर कहिये जो अहंकारादि जो जगत्‌रूप अनर्थ हैं तिनकी निंदा करै कहिये तिनके असत् जड औ दुःखतादिक-स्वरूप का कथन करै। पर कहिये जो सत् पुरुष हैं तिनकी

ज्ञानयुक्त जो श्रेष्ट बुद्धि है। अथवा जो ब्रह्माकार बुद्धि है सोई मानो तिन (सुस्यन) की तिय (स्त्री) है। ताकू हृदयरूप घरमांहि राखै कहिये स्थित करैं।—जैसे शरीर में मास सपूर्ण रहै है तैसे ब्रह्म सर्वात्मा है औ सर्वत्र परिपूर्ण है। निजस्वरूप का जो आनद है सोई मानो मास है। ताकू खाय कहिये अनुभव करै। परिपूर्ण स्वरूपानद कू सहायता करनेवाला जो ज्ञान-विचारादिक है ताकू ही इहां मदिरा कहैं हैं। सो पुनि कहिये फिरि पीवै। कहिये स्मरण करै। जाक अमल म मदिरा मदाध की न्याई देह की भी स्मृति रहै नहीं। ऐसे उक्त परधन जो हरैं हैं परनिंदा करैं हैं परकी स्त्री कू (धी कू) घर में राखै है। मास खावै है। औ मदिरा पवै है। ताहि मुक्ति को सशय नांहि। कहिये सो मोक्षरूप ही है।—देहेंद्रियादि करि लौकिक व वैदिक कर्म करै। परन्तु "मैं आत्मा अकर्त्ता हू" इस निश्चयरूप अकर्म ताको गहै कहिये ग्रहण करैं है। अथवा जो अक्रिय ब्रह्म है ताकू गहै कहिये "सोई मैं हू" ऐसे निश्चयरूप अकर्म ताको ग्रहण करै है। औ मैं "पापी हू पुन्यवान हू" इस प्रकार के कर्म के अभिमान कू छोडै। अथवा माया का कार्य जो देहादि जगत् हैं ताकू दृढ मिथ्या निश्चय करै हैं। सोई मानो सब कर्म त्यागै है। उक्त प्रकार करि जिसने अकर्मता का ग्रहण औ सब कर्म का त्याग किया है। ताकी सगत करि पाप नमांहि कहिये नाश होवै है।—सुदरदासजी कहैं हैं कि जो ज्ञानी पुरुष ऐसी रहणी करैं सु सर्वजन करि वा शास्त्र करि सत कहावै। औ जो और अज्ञानी पुरुष हैं बारबार उपजि के मरजांहि। कहिये जन्मधरिके मरण कू पावैं हैं॥ १८॥

सुन्दरानन्दी टीका —सु० दा० जीकी साखी—परधी लेकरि घर धरै परधन हरि-हरि पाइ। पर-निंदा निस दिन करै सुंदर मुक्तिहि जाइ। २४।—मांस भखै मदिरा पिवै वह तौ अगम अगाध। जौ एसी करनी करै सुदर स ई साध। २५।—धोरनीर पद—"सुइ पीवै ब्राह्मण मतवाला"—(कबीर ग्र थावली में पद १०)—मारवनाथजी का पद—"म्हारो रे बैरागी जोगी, अहिनिस भोगी रे। जोगणि सग न छोडै रे"। (गो० पद ६)।

बढई चरपा भलौ संवार्यौ फिरनै लाग्यौ नीकी भांति।
बहु सास कौं कहि समुझावै तू मेरै ढिङ्ग बैठी काति॥
नैन्हौं तार न टूटै कबहूं पूनी घटै दिवस नहिं राति।
सुंदर विधि सौं बुनै जुलाहा पासा निपजै ऊंची जाति॥ १६।

ह० लि० १, २ टीकाः—बढई नाम जो गुरु। गुरु बढई क्यू ? जो घाट घढ़िदे जासूं बढ़ई। "भाई रे भानि घड़ै गुरु मेरा" इति। चरखा जिज्ञासी का चित्त सो भलो सवार्यो नाम उपदेश देकर शुद्ध कीयो। सो नीकी भांति भले प्रकार करि फिरनैं लागो नाम बाह्य वृत्ति कौं छोडि करि अंतर्निष्ट हुओ।—बहु बुद्धि सास सुरति ताक्रौं यों कह समझावै-हे सुरति तूं मेरे ढिगि हृदा भीतरि बैठिकरि निश्चल होइकरि काति नाम सुमरनरूपी आपनो कृत्य करि।—सो ऐसा काति जो अत्यन्त साधन सौं महासूक्ष्म सुमरन ताको तार जो अखड वेग सो टूटै नहीं सदा एकरस रहै। तार पूर्णी के आसिरै होवै है जो पूणी को अत आवै तो तार को भी अत आवै। इहां सुमरनरूपी तार की पूर्णी प्रीति है सो वा प्रीतिरूपा पूणी घटण पावै नहीं नाम अखड एकरस निदूखणी लगी रहै।—ता शुद्ध सुमरनरूपी सूत कौं जीव जुलाहा वुणै नाम निष्कामता सौं परमेश्वर मैं अपण करै तब खासा जाति अतिश्रेष्ठ भक्तिरूप वस्त्र निपजै, वा भक्ति कैसीक है, अति ऊंची, अति उत्तमा फलानुसधान-रहिता॥ १९॥

पीताम्बरी टीकाः—सर्वज्ञ औ सर्वशक्तिमान जो ईश्वर है ताकू ही इहां बढई कहिये सुतार कहैं हैं। काहेते कि जैसे सुतार काष्ठ विषै अनेक-भांति के आकार करै हैं तातैं सो तिन आकारन का कर्ता है। जो कार्य का कर्ता होवै सो ता कार्य कू औ ताके उपादान कू जानिके करै है। इहा रहटिया कार्य है औ काष्ठ उपादान है तिन दोनौं को सुतार जानै है। तैसे ईश्वररूप सुतार माया के विषे अनेक रचना करै है तातैं सो तिस रचना का कर्ता है। औ तिस रचनारूप कार्य कू औ ताके उपादान माया कू जानै है यातैं सर्वज्ञ है। औ सर्व रचना करने मैं अद्भुत सामर्थ्यवाला होने तै सर्वशक्तिमान है। तिस ईश्वर ने मनुष्य शरीररूप कार्य उत्पन्न किया है सोई मानो चरखा कहिये रहटिया है। औंर सर्व शरीरन तैं मनुष्य शरीर भलो सवार्यो

कहिये उत्तम बनायो है। सो नीकी भांति कहिये अच्छी तरह से फिरने लग्यो। सो ऐसेः—पूर्वजन्म के शुभकर्मन तें अंतःकरण में उत्तम संस्कार हुवे हैं। तिनतें सत्संगादिक की प्राप्ति हुई है। औ सत्संगादि करि ज्ञान के साधनों में प्रवृत्ति भई है। तातें पुन' र सोई अभ्यास लग्यो है।—तिस अभ्यासवाली जो बुद्धि है सो विवेकरूप पुत्र कूं जनै है। ता पुत्र की परिपक्व अवस्था हुवे तें ताका अद्वैत श्रुति के साथ सम्बन्ध करै है। सोई मानौ बहू कहिये पुत्र की पत्नी है। सो पूर्वोक्त अभ्यासयुक्त बुद्धिरूप अपनी सास कौं ऐसे कहि समुझावै है:—"तू मेरे ढिग (पास) बैठी कात"। कहिये लक्ष्य में स्थित होयके स्व-रूप का अनुसंधान कर।—स्वरूप के अनुसंधानरूप जो स्मरण है। ताको प्रवाह ही मानौ तार है सो क्वहू न टूटै कहिये ता स्मरण का कदै भी भग होवै नहीं। औ पूनी (रुई की पूनी) जो स्वरूपाकार वृत्ति है सो रात-दिन घटै नहीं कहिये अतराय-सहित होवै नहीं कहिये एकरस रहै है।—सुंदरदासजी कहैं हैं कि विधि सू कहिये श्रवण मनन औ निदिध्यासनादिक ज्ञान के साधनों करि स्वरूप के साक्षात्काररूप जुलाहा कहिये कपड़ा बुनै। तब सो खासा निपजै कहिये सर्व अनर्थ की निवृत्ति औ परमानंद की प्राप्तिरूप शोभादायक होवै। याकू ही मुक्ति कहैं हैं। सो मुक्ति दो प्रकार की है—एक जीवन्मुक्ति। दूसरी विदेहमुक्ति। शरीर सहित कूं बंध-भ्रम का जो अभाव होवै है सो जीवन्मुक्ति कहिये है। औ ज्ञान तें अज्ञान की निवृत्ति होयके प्रारब्ध-भोग तें अनतर स्थूलसूक्ष्म शरीराकार अज्ञान का जो चेतन में लय होवै है सो विदेहमुक्ति कहिये है। तिनमें विदेह-मुक्ति तो ज्ञानी कूं अवश्य होवै है। तैसे ही भ्रम के नाश-क्षण में जीवन्मुक्ति भी संभव है। परन्तु जो शरीर के प्रारब्ध के अधिक भोग के हेतु होवैं तौ प्रवृत्ति के बलतैं जीवन्मुक्ति का आनद प्राप्त होवै नहीं। सा भागन की न्यूनता तें निवृत्ति के बल करि जीवन्मुक्ति के आनन्दरूप ऊंची जाति कहिये उत्कृष्ट प्रकार का बन्या है ॥ १९ ॥

सुन्दरानन्दी टीका—सु० दा० जीकी साखी—बढई कारीगर मिस्त्री चरषा गढ्यौ बनाइ। सुदर बहू सतेवरी उलटो दियौ फिराइ। २८।—हरिदासजी निरजनी की साखी—"सूत जुलाहा बणिया"। ३। (योग मूल पु० यो०।) —कबीरजी का पद—"गज नौ गज दस गज उन इसकी पुरिया एक बनाई।"भीनी पुरिया काम

घर घर फिरै कुमारी कन्या जनें जनें सौं करती संग।
वेस्या सु तौ भई पतिवरता एक पुरुष कै लागी अंग॥
कलियुग माँहि सतयुग थाप्या पापी उदौ धर्म को भंग।
सुंदर कहै सु अर्थ हि पावै जौ नीकै करि तजै अनंग॥ २०॥

न आवै जुलहा चला रिसाई"। (बीजक पद १५)।—तथा —"जा चरखा मरिजय बढ़ैया नां मरौ मैं कातौं सूत हजार चरखला नां जरै। बाबा ब्याह कराइदे अच्छा वर हित काह्। अच्छा वर जो नां मिलै तुम ही मोहि बियाह॥ प्रथमे नगर पहुचते परिगो शोक सताप। एक अचंभी देखौ हमने बेटी ब्याहै बाप॥ समधी के घर लमधी आया आये बहू के भाय। गौड़ चुल्ही ने दैरहे चरखा दियौ दिढ़ाय॥ देवलोक मरि-जाहिंगे एक न मरै बढ़ाय। यह मन-रंजन कारने चरखा दियौ दिढ़ाय॥ कहै कबीर संतौ सुनौ चरखा लखै न कोइ। जाको चरखा लखिपरौ आवागमन न होइ" ॥ (बीजक। शब्द ६८।)।—तथा शब्द—"चरखा नहीं निगोड़ा चलना॥ पांच तत्त का बना है चरखा, तीन भुवन में गलता। माल टूट तीन भया टुकड़ा टकवा होय गया टेढ़ा। मांजत-मांजत हार गया है, धागा नहीं निकलता। मिन बढ़ैया दूर बसतु है, किसके घर दे आया। ठोकत-ठोकत हार गया है, तौभी नहीं सम्हलता। कहै कबीर सुनौं भाई साधो, जले बिना नहिं छुटता" ॥ (शब्दावली भाग २। भेद का २७।)।—तथा पद—"पाड बुणै कोली में बैठी, मैं खूटा मैं गाडी। ताणै बाणै पड़ी अनवासी, सूत कहै बुणि गाढ़ो"। (कबीर ग्रंथावली में पद १० से)।—गोरषनाथजी का पद—"रहट बहन घालवा, सूलै कांटा भागा"। (गो० पद ५ में से)।—तथा—"बहू ब्याई नै सासू जाई"। (और देखो वि० सवैया १७ भी)। (गो० पद ३९ में से)।

इ० छि० १-२ टीका.—कवारी कन्या नाम (सतगुरु के) दृढ़ उपदेश बिना जिज्ञासी की कची जो बुद्धि सो घर-घर फिरै नाम अनेक सत शास्त्रां की सभा सगति तामें जणें-जणें सों नाम अनेक मतमतांतरां सौं लागती फिरै।—वेस्या नाम पदार्थों में बिपरीती फिरै ऐसी जो व्यभिचारिणी बुद्धि तानैं पति जो आपको प्रेरक पालक स्वामी ऐसा जो परमेश्वरजी ताको वृत्त धारण करयो नाम वृत्तिनिरंतरि निश्चल होय

एक पुरुष परमात्मा में ही लागी ।—कलियुग नाम मलीन कर्मों में लीन एमी जो काया तामें सतयुगरूप ज्ञान-ध्यान-सत्यधर्म थाप्यो नाम थिर कियो। तामें पापी नाम इंद्रियों को मारनेवाला इन्द्रियजीत ताका उदै नाम वह सदा सुखी रहै। अरु धर्म नाम (साधारण) इन्द्रियों को पोषण ताको भग नाम नाश (सो इससे हुए) सदा सुखी रहै।—सुन्दरदासजी कहै हैं—या का अर्थ कों सो पावै जो नीकै नाम मनसा-वाचा-कर्मणा भले प्रकार करि अनग नम काम कों तजैं नाम त्यागै ॥ २० ॥

पीताम्बरी टीका – आत्मजिज्ञासा-वाली जो बुद्धि है सोई मानो कुमारी कन्या (कुमारिका) है। सो अनेक सत्पुरुषों अथवा ज्ञान के अष्टसाधनरूप अनेक जने-जने स सग कहिये प्रीति करती घर घर फिरै है कहिये अनेक शास्त्रन में अथवा तीन शरीरन में तीन अवस्थाओं में औ पंचकोशन में विचार करने कूं प्रवर्ते है।—जो ब्रह्माकार बुद्धि की वृत्ति है सोई मानो वेस्या है। जैसे वेस्या व्यभिचारिनी होवै है यातैं एक पुरुष के आश्रय होवै नहीं। तैसे वृत्ति भी अस्थिर होवै है। तातैं एक विषय के आकार रहै नहीं। ऐसे अज्ञानकाल में यद्यपि वृत्ति का चांचल्य देखिये है। तथापि ज्ञान हुये पीछे सो वृत्ति एकाग्र होवै है। जैसे वेस्या कूं भी किसी एक पुरुष के ऊपर प्यार होइ जावै है तो और सब पुरुषन का आश्रय छोड़िके तिसी के साथ लगी रहै है। तैसे वृत्ति भी जब ब्रह्माकार होवै है तब विषयन में प्रवृत्त नहीं होवै किंतु एक स्वरूप में ही स्थित होवै है। ऐसे वेस्या का औ वृत्ति का सादृश्य होने तैं वृत्ति कूं वेस्या कही है। फिर जैसे वेस्या किसी एक पुरुष के वश होवै है तब ताका पातिव्रत भी सिद्ध होवै है। तैसे ही वृत्ति भी जब ब्रह्माकार होवै है तब ताकी एकाग्रता भी सिद्ध होवै है।—इस हेतु तैं ही मूल में सो तो पतिव्रता भई औ एक पुरुष के अंग लागी ऐसे कह्या है।—रजोगुण औ तमोगुण। की वृत्तिरूप मलिनधर्मवाला जो मन है सोई मानौं कलियुग है। काहेतैं कि कलियुग मे मलीनता की वृद्धि होवै है। तैसे ही मलीनता-युक्त मन होने तैं कलियुग का औ मन का सादृश्य कह्या है। ता मांही विवेक, वैराग्य, क्षमा, धैर्य, उदारता आदि वृत्तिरूप श्रेष्ठधर्म-रूप ही मानौ सतयुग थाप्यो। काहेतैं कि सतयुग में श्रेष्ठ धर्मन की वृद्धि होवै है तातैं श्रेष्ठ धर्म-रूप ही सतयुग कह्या है। तामे पापी का उदय होवै है। काहे तैं कि जो नाश-

विप्र रसोई करनै लागौ चौका भीतरि बैठौ आइ।
लकरी माँहि चूल्हा दीयौ रोटी ऊपर तवा चढाइ।!
पिचरी माँहि हंडिया राँधी सालन आक धतूरा पाइ।
सुंदर जीमत अति सुख पायौ सबकै भोजन कियौ अघाइ ॥ २१ ॥

करनेवाला होवै है सो पापी कहिये है। सर्व अविद्या का औ ताके कार्य का नाश करने-वाला। ज्ञान है तातैं ताकूं ही पापी कहैं हैं। ता ज्ञानरूप पापी की पूर्वोक्त श्रेष्ठधर्म-रूप सतयुग में वृद्धि होवै है। औ धर्म को भंग होवै है काहेतें कि जातें रक्षा होवै सो धर्म कहिये है। अविद्या औ ताका रक्षक अविवेक है। ताका तिस सतयुग में नाश होवै है।—सुंदरदासजी कहते हैं कि जो पुरुष नीके करि (अच्छी तरह से) अनग (कामदेव) कूं भजै (नोट—पीताम्बरजी ने तजै की जगह भजै ऐसा पाठ वैपर्यय के चमत्कार बढ़ाने को किया) सो याका अर्थ पावै। याका भाव यह है:— जाका अंग नहीं है ताकूं अनग कहै हैं। ऐसे कामदेव की न्याईं निरवयव जो ब्रह्म है ताकूं भजै कहिये जो निर्गुण उपासना करै सो अच्छी तरह सें मोक्षरूप अर्थ कूं पावै ॥ २० ॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सुं० दा० जीकी साखी—सुंदर सबही सौं मिली कन्या अगम कुमारि। वेस्या फिरि पतिव्रत लियौ भई सुहागिन नारि। २९।—कलियुग में सतजुग कियौ सुंदर उलटी गंग। पापी भये सु ऊबरे धर्मी हूये भंग। ३०।—कबीरजी का पद—"कुबिजा पुरुष गले इक लागी, पूजि न मनकी साधा। करत विचार जन्म गो खीसा, ई तन रहल असाधा"। (बीजक शब्द ५८ में)।—तथा—"एक सुहागिन जगत पियारी, सकल जत जीव की नारी। खसम मरै वा नारि न रोवै, उस रखवाला औरै होवै।—(क० ग्रं० पद ३७०।)।

ह० लि० १—२ टीका:—विप्र जो (वेदादि का ज्ञान प्राप्त) जीव सो परम शुद्ध हो सर्व कर्म काल को मारि अपने हित अपरस सौं जब रसोई करनैं लागो नाम भाव-भक्ति करनै को लाग्यो तब चौका जो शुद्ध निर्विकार किया अंतःकरण चतुष्टय तामें आरूढ़ै बैठ्यो नाम निश्चल हुयो।—लकरी नाम सै तामें चूल्हा नाम चित्त दीयौ

नाम लगायो निश्चल कीयो। रोटी जो रटणि ता ऊपर तामें तत्त्वज्ञान का तवा चढ्यो परमेश्वरजी सौं रटणि लागी तब तत्त्वज्ञान प्राप्त हुवो। खिचरी जो भक्ति और ज्ञान की मिश्रता तामें हंडिया नाम काया सो रांधी नाम ता भक्ति-ज्ञान में लीनकरि शुद्ध करी। अरु ता खिचरी को साथि सालन नाम साग सो आक धतूरारूप, पचना जिनका अतिकठिन, सो काम-क्रोधादि सो सब खाया नाम सर्व जीतकरि निवृत्त किया।— जीमत नाम इनको जीतितां अरु ज्ञानभक्ति की प्राप्ति होतां अति बड़ो सुख पायो नाम बहुत आनंद हुवो। अबकै या मनुष्यजन्म में आय अघाय नाम तृप्त होकरि भोजन कियो नाम भक्तिज्ञान सौं कार्य सिद्ध कीयो नाम भगवत् की प्राप्ति हुई ॥ २१ ॥

पीताम्बरी टीका—जो शुद्ध अंतःकरणवाला जिज्ञासु जीव है सोई मानों विप्र (ब्राह्मण) है। सो मोक्ष-सम्पादनरूप रसोई करने लाग्यो। तब विवेकादि चारिसाधनरूप चौका के भीतर आइके बैठो। कहिये साधन-सम्पन्न भयो।—नानाप्रकार के जो अनेक कर्म हैं सोई मानों अनेक लकरियां हैं। ता माहिं ब्रह्मोपदेशरूपी चूल्हा दीयो। तिसमें ज्ञानरूप अग्नि करि कर्मरूप लकरियां जलाय डाली। तब प्रारब्ध फल की भोग्यतारूप रोटी के ऊपर कर्मवशात् होने के निश्चयरूप तवा कूं चढाइ दियो। अर्थात् जब ब्रह्मोपदेशजन्य ज्ञानतैं सब कर्मन का नाश होवै है तब तिस ज्ञानी का ऐसा निश्चय होवै है—"मैं अकर्त्ता हूं अभोक्ता हूं। जो शेष प्रारब्ध कर्म रहे हैं सो जौलौं भोगन का आयतन शरीर है तौलौं यथावत् भोग देहु। ताकी चिंता मेरे कूं कर्त्तव्य नहीं"।—वैराग्यरूप जल, बोधरूप चावल और उपरामरूप मूग। इन तीनूं की मिश्रतारूप खिचरी है। ता मांही हंडिया कहिये भासन विषै दीखता सत्यता की भ्रांति औ प्रतीति आदि धर्मयुक्त समष्टि, व्यष्टि, स्थूल, सूक्ष्म प्रपंचरूप जो माया है सो रांधी कहिये बाधित करी। औ अनेक रागद्वेषादि दुर्वासनारूप जो महा-दुःख कटुक—आक औ धतूरा हैं तिनका सालन (शाक) बनाइ के खाइ कहिये भोग के।—सुन्दरदासजी कहैं हैं कि कार्य-सहित अज्ञान की निवृत्तिरूप खाई, वासना की निवृत्तिरूप शाक सहित जीमत कहिये अनुभव करिके अति सुख पायो कहिये परमा-नन्द की प्राप्ति भई। औ अबकै कहिये इस मनुष्यशरीर में ही ईश्वर, श्रुति, गुरु की [illegible] इन तीनं की कृपा से ज्ञान पाइके अघाइ कहिये मगर के [illegible]

तृष्णा करि रहिततारूप तृप्ति कूं पायके जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनन्द का जो अनुभव है तद्रूप भोजन कियो। याका भाव यह है:—पूर्व अज्ञानकाल में अनेकदेह प्राप्त हुवे थे तिनमें विषयानद का अनुभव तो बहुत किया है परन्तु स्वरूपानन्द का अनुभव कदै भी हुवा नहीं है। काहेतें कि तिस काल में मूला अज्ञानरूप प्रतिबन्ध था। औ पश्चात् विदेह-मोक्ष में भी सर्वदुःखन की निवृत्ति पूर्वक निरावण, परिपूर्ण आनंदस्वरूप करि अवस्थित होवै है। परन्तु अस्तिव्यवहार की हेतु जो वृत्ति है ताका अभाव होने तें जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनन्द का अनुभव नहीं होवै है। यातें ज्ञानयुक्त देह में ही जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनन्दरूप विद्यानन्द का अनुभव होने कू शक्य है। तातें सुखेच्छु विद्वान् करि विषयानंद कूं त्यागि के ब्रह्म-विचार द्वारा पूर्वोक्त आनन्द का अनुभव अवश्य कर्तव्य है। यद्यपि सुषुप्त्यादि में भी आनन्द तो है। तथापि सो निरावरण, परिपूर्ण औ सवृत्तिक नहीं है, तातें विलक्षण सुख का हेतु नहीं है। जो निरावरण, परिपूर्ण औ सवृत्तिक होवै सो विलक्षण आनन्द कहिये है। इस लक्षण की यह पदकृति है:—सुषुप्ति में जो आनन्द है सो आवरण रहित है। औ विषय में जो आनद है सो निरावरण तो है तथापि विषय की प्राप्तिक्षण में जब अंतरमुख वृत्ति होवै है तब तामें स्वरूपानन्द का प्रतिबिंब पड़ै है यातें परिपूर्ण नहीं किन्तु एकदेश-वृत्ति होनेतें परिच्छिन्न है। तैसे ही पूर्णानद तो अज्ञानी का स्वरूप भी है, तथापि सो निरावरण औ अभिमुख वृत्ति सहित नहीं। औ जो विदेहमुक्ति में निरावरण पूर्णानंद है सो सवृत्तिक नहीं किंतु अवृत्तिक है। यातें निरावरण, परिपूर्ण औ सवृत्तिक आनन्दरूप विलक्षणानन्द का लक्षण किये से कहू भी अतिव्याप्ति आदि दोष नहीं है ॥ २१ ॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सुं० दा० जीकी साखी—"विप्र रसोई करत है चौकै काढीकार। लकरी मैं चूल्हा दियौ सुंदर लगी न बार। ३१।—रोटी ऊपर पोइकै तवा चढ़ायौ आंनि। खिचरी माहैं हंडिका सुंदर रांधी जांनि। ३२।—गोरषनाथजी का पद—"मगरी ऊपरि चूल्हौ धूंधावै, पोवंणहारी कूं रोटी पावै"। (गो० पद ३९ में से)

बैल उलटि नाइक कौं लाद्यौ वस्तु मांहिं भरि गौंनि अपार।
भली भांति कौ सौदा कीयौ आइ दिसंतर या संसार॥
नाइकनी पुनि हरषत डोलै मोहि मिल्यौ नीकौ भरतार।
पूजी जाइ साह कौं सौंपी सुंदर सिरतैं उतर्‍यौ भार॥ २२॥

ह० लि० १-२ टीका:—बैल भारवाहक जो अज्ञान-अवस्था में अहंकर्तृत्वपणा को अभिमानी सर्वकर्मन को अधिकारी बणि रह्यो-सोजीव। तानें नायक नाम जो अज्ञान-अवस्था में मुखिया बणि रह्यो जो मन ताकौं लाद्यो नाम विवेक कौं पायकरि कर्तृत्वादिक का सर्व भार मनहीं के ऊपरि नाख्यो। 'मन उन्मेष जगत भयो बिन उन्मेष नसाइ" इति।—ऐसो निरभिमानी शुद्ध जीव तानैं वस्तु नाम परमेश्वर में भव धारण कियो ता भावरूपी वस्तु में अपार गुण हैं शमदम सपति ज्ञान वाही सों सर्व सिद्धि होवै है।—ससाररूपी दिसंतर देश नाम मनुष्य जन्म ताकौं पायकरि भलै-भाति का सौदा नाम परमेश्वरजी में भावभक्ति धारणारूप अति-श्रेष्ठ सौदा कीयो। नायकनी मनसारूप अंतःकरण की वृत्ति सो हर्षायमान हुई शुभकार्यों में वर्तै है। मो कौं नीको नाम अतिश्रेष्ठ शुद्ध जो मन सो भर्त्तार मिल्यो नाम (मैंने) पायो। पूजी नाम सर्व सौंज तन-मन प्राण सो साह परमेश्वरजी ताकौं सौंपी समर्पण करी। तब सर्वभार जन्म-मरण कर्मफल सुख-दुःख शाक चिंता सर्व दूरि हुवा सुखी भया, यों भार उतर्‍यो॥ २२॥

पीताम्बरी टीका:— साभास अंतःकरण-विशिष्ट चेतनरूप जो जीव है सोई मानौं बैल (बलीवर्द) है। काहेतें कि कर्तृत्व, भोक्तृत्व, राग, द्वेष इत्यादिक जो अंतःकरण के धर्म हैं तैसे ही प्राण, इंद्रिय औ देह के जो धर्म हैं तिसरूप भार कूं अज्ञानकाल में उठाता था। यातें ताकूं बैल कह्या। तिसने उलटि के कहिये विचारद्वारा निजस्वरूप कूं जानिके पूर्व अविवेक काल में तादात्म्य-अध्यास करि जीव कूं अपने वश करिके वर्तावनेहारा जो स्थूल सूक्ष्म संघात है सोई मानौं नायक है। ताकूं लाद्यो कहिये अज्ञानकाल में अध्यास करि अंतःकरण, प्राण औ इन्द्रियन के धर्म जो जीवने अपने मान लिये थे सो ज्ञानकाल में यथायोग्य संघात के जानि लिये।—सर्व

का अधिष्ठान जो ब्रह्म है सोई मानौं वस्तु है, ता माहिं अपार (अगणित) गुण भरि, कहिये अपने-अपने जाति, सम्बन्ध औ किया आदिक धर्मरूप जो पदार्थ हैं सो जिनमें भरे हैं, औ जो अहंकारादि अनात्मरूप कपड़े की थनी है । सोई मानो थैलियां हैं, सो पूर्वोक्त ब्रह्मरूप वस्तु में, जैसे साक्षी में स्वप्न के पदार्थ अध्यस्त हैं तैसे अध्यस्त जानै । या संसार ही मानो दिसतर है । काहेतें कि यह जो संसाररूप देश है सो ब्रह्मरूप देशसे भिन्न है तातें देशांतर कह्या है । यामें आयके भलीभांति की सौदा कीयौ । सो सौदा यह है:--जब ज्ञान की प्राप्ति होवै है तब सर्व-अनर्थ की निवृत्ति औ परमानंद की प्राप्ति होवै है याकूं ही मुक्ति वा मोक्ष कहै हैं, सोई मानौं एक व्यापार है । तिसके निमित्त तें, सर्व अनात्मरूप धनका त्याग किया औ परमानन्दरूप माल अपना करि लिया ।--दृढ निश्चय स्वरूप जो बुद्धि है सोई मानौं नायकनी है सा पुनि हरषत डोलै कहिये फिरि आनन्द कूं प्राप्त भई, औ मुखसे कहने लगी कि मोहिनीको (श्रेष्ठ) भरतार (पति) मिल्यौ । इहां वेदांत-सिद्धांतरूप पति कह्यो है सो निश्चय स्वरूप बुद्धि कूं प्राप्त भयो । मूल में जो पुनि शब्द है ताका अर्थ यह है:--निश्चयस्वरूप बुद्धिरूप जो नायकनी है सो प्रथम जब द्वैत-सिद्धांत के आधीन भई थी तब तिसी पतिकरि आनंदित होइ रही थी । ताकूं जब (अब) अद्वैत-सिद्धांत-रूप पति की प्राप्ति भई तब पूर्व पति का त्याग करिके फिरि आनन्दवान भई । तिस अद्वैत-सिद्धांत-रूप साह (सांई=पति) कूं, तिसके पास जाइके अनतवासना-रूप पूंजी सौंप दीनी । जातें जाका जीवन होवै सो ताको पूंजी कहिये है । अनत-कर्मन की वासना बिना बुद्धि की स्थिति होवै नहीं तातें सो बुद्धि की पूंजी कहिये जीवन है । सो ही अद्वैत-सिद्धांत-रूप ज्ञान की प्राप्ति भये तें बुद्धि सर्व वासना का त्याग करै है । काहेतें कि ज्ञान करि सर्व कर्मनका नाश होवै है । कर्मन का नाश भये ते तज्जन्य वासना का भी नाश होवै है । सोई मानौं सौंपना है । पति कूं अपनी पूंजी देने का कारण दिखावै हैं--जौलौं बुद्धि में अनन्त वासना भरी थी तौलौं सो अपने चिदाभासरूप शिर पर बड़ो बोझो थो । सो भार सिरतें उतर्या । कहिये चिदाभासरूप जीव कूं अपने स्वरूप के ज्ञानद्वारा सर्व वासना तें मुक्त कियो । ऐसे सुन्दरदासजी कहै हैं ॥ २२ ॥

बनिक एक बनिजी कौं आयौ पर तावरा भारी भैंठि।
भली वस्तु कछु लीनी दीनी पँचि गठरिया बांधी ऐंठि॥
सौदा कियौ चल्यौ पुनि घर कौं लेखा कियौ बरीतर बैठि।
सुंदर साहु पुसी अति हूवा वैल गया पूंजी मैं पैठि॥ २३॥

सुन्दरानन्दी टीका —सु० दा० जीकी साखी—"न इक लायौ उलटि करि बैल बिचारै आइ। गौंन भरी लै वस्तु मैं सुन्दर हरिपुर जाइ। २५।—कबीरजी का पद—"बैलहि डारि गूनि घरि आई, कुत्ता कू लै गई बिलाई।" (कबीर ग्रन्थावली पद ११ से)।—तथा—"मेरे जैसे बनिज सौं कवन काज, मूल घटै सिरि बधै ब्याज। नाइक एक बनिज रे पांच, बैल पचीस कौ संग साथ। नव बहियां दस गौनि आहि, कसनि बहत्तर लागे ताहि। सात सूत मिलि बनिज कीन्ह, कर्म पयादो संग लीन्ह। तीन जगाती करत रारि, चल्यौ है बनिजरा बनिज झारि। बनिज खुटानौं पूंजा टूटि, षाडू दह दिसि गयौ फूटि। कहै कबीर यहु जनम बाद। सहजि समानूं रहौ लाद'। (क० ग्र० । पद ३८३।) [नोट—इस पद को आगे के सवैया २३ से भी मिलावैं]—गोरषनाथजी का पद—' गाड़ि लै पड़वा बाधि लै पूटा, चलैगा दमामा बाजैगा ऊटा" । (गा० पद ३९)।—

ह० लि० १—२ टीका—बनिक व्यापारीरूप जो जीव सो या संसाररूपी दिशान्तर में सुकृत भक्ति बनिजी कौ आयो तामैं प्राचीन मलिन-वमन का फलहानि जा नाम क्रोधादिक सोई तावड़ो नाम धूप तपै भारी भैंठि नाम अतिगति (भैंर भट) तपै अर्थात कछू शुभ कारिज में अवसाण आवण दे नहीं।—तथापि जिहि तिहि प्रकार पुरुषार्थ करिकैं भली वस्तु कछु लीनी-दीनी लीनी नांव लीया भजन कीया; दीनी भी शुभ उपदेश दीया। यौं करि शुभगुण भक्तिरूप गठड़िया पोट ऐंठि नाम काठे हृदा मे दृढ़ वरिकैं बांधी नाम सौंज को ठगाई नहीं।—सोदा नाम भजन ध्यान शुभगुणां कौ कीयो घर परमेस्वरजी तामें चल्यो भक्तिभाव करिकैं। बरी नाम वटवृक्ष सो अति विस्ताररूपा बुद्धि ताके नीचे नाम बुद्धि में थिर होय करि लेखा नाम विचार कीयो भगवत् में चित्त लगायो।—सुन्दरदासजी कहै हैं कि तब साहु जी जब

(या बात सों) बहुत खुशी हुआ कि बैल जो वपु शरीर सो पूजी जो परमेश्वरजी तामें पैठि गयो नाम पायो गयो। अर्थ यह जो परमेश्वरजी की प्राप्ति में जन्म मरण सर्व गया। इत्यर्थ ॥ २३ ॥

पीताम्बरी टीका.—जीवरूप ही मानों एक वनिक है सो इस संसाररूप प्रदेश में नाना प्रकार के कर्म-फलन के भोगरूप वनिजी करने कौं आयो कहिये मनुष्य देह धारण कियो। तिस प्रदेश में त्रिविध तापरूप तावरा (धूप) परै था ताके बल तैं भारी मैठ कहिये अतिशय तपने लग्यो।—साधन सहित जो ज्ञानरूप वस्तु है सो भली कहिये अत्युत्तम है। सो सद्गुरु औ सत्शास्त्ररूप अन्य व्यापारिन तें लीनी अर्थात ज्ञान पाया। इहां कछु शब्द का अर्थ ऐसे हैं:—उक्त सद्गुरु औ सत्-शास्त्र-रूप अन्य व्यापारीन तें जो ज्ञानरूप वस्तु लीजिये हैं सो तिन द्वारा तत्त्व मस्यादि महावाक्यजन्य उपदेश करि अनुभव मात्र करिये है, कछु और वस्तु की न्याई इस वस्तु का ग्रहण नहीं है। काहेतें कि आकारवाले पदार्थ का सम्यक्ता तें स्थूल शरीर करि ग्रहण होवै है। औ निराकार पदार्थ का तो सूक्ष्म शरीर करि तिसके अनुभव मात्र का ग्रहण होवै है। तातें सो कछु कहिये थोड़ा कह्या है। तैसे ही कछु वस्तु दीनी, सो वस्तु यह है:—तन-मन औ धनरूपी मानों द्रव्य है। तिस द्रव्यरूप कछु वस्तु सद्गुरु औ सत् शास्त्ररूप व्यापारीन कू दीनी, अर्थात् तन मन औ धन का अर्पन किया। इहां कछु शब्द का ऊपर की न्याई ही अर्थ है। काहेतें कि वास्तव करि तन-मन औ धन अर्पन नहीं होवै है किन्तु यह मिथ्या वस्तु होनेतें ताके अर्पन का व्यवहार होवै है। तातें कछु कह्या है।—उक्त वस्तु लेके ताकी षट् प्रमाणरूपी रस्सी करि खैंचि गठरिया बांधी। कहिये अबाधित अर्थ के विषय करनेवाला जो स्मृति से भिन्न ज्ञान (प्रमा) है ताका निश्चय किया। मूल में जो ऐंठि शब्द है ताका अर्थ यह है:—ऐंठि कहिये अच्छी तरह से विचार करिके प्रमाज्ञान का अंगीकार किया है। औ मूल में जो गठरिया शब्द है सो बहुवाचक है तातें तिस वस्तु की अनेक गठरियां कही चाहिये सो कहैं हैं:—प्रमा के कारण जो षट्-प्रमाण हैं सोई मानों षट्-बन्धन हैं। तिनमें एक एक प्रमाणरूप बन्धन करि एक एक गठी बांधी गई। कहेतें—जैसे "घटादि" जो हैं सो एक प्रत्यक्ष प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै हैं।

कणाद' औ सुगतमत के अनुसारी प्रत्यक्ष औ अनुमान इन दो प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै हैं। सांख्य-शास्त्र का कर्त्ता "कपिल" प्रत्यक्ष अनुमान औ शब्द इन तीन प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै है। न्याय शास्त्र का कर्त्ता जो "गौतम" है सो प्रत्यक्ष, अनुमान, शाब्दी औ उपमान इन चारि प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै है। पूर्व-मीमांसा का एकदेशी जो "भट्ट" का शिष्य "प्रभाकर" है सो प्रत्यक्ष, अनुमान, शाब्दी, उपमान औ अर्थापत्ति इन पांच प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै है। औ पूर्व मीमांसक जो "भट्ट" है सो प्रत्यक्ष, अनुमान, शाब्दी, उपमान, अर्थापत्ति औ अनुपलब्धि इन षट् प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै है। तैसे पूर्व मीमांसक भट्ट की न्याई जो षट्-प्रमाण करि प्रमा की सिद्धता है। सो वेदान्त शास्त्र में भी अंगीकार करी है। ऐसे एक एक प्रमाण करि जो प्रमा की सिद्धता है सोई मानों भिन्न गठरियां हैं।—उक्त ज्ञानरूप वस्तु का जीवरूप व्यापारी ने मोक्षरूप लाभ होने के वास्तै उक्त रीति सें सौदा किया। तब पुनि कहिये फेरि अपने पूर्वस्थानरूप घर कू चल्यो अर्थात् सच्चिदानन्द लक्षणवाला जो ब्रह्म-स्वरूप है ताका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करने लाग्यो। औ वारि कहिये जो ब्रह्मानन्दरूप पानी है ताके तर कहिये निममत्वरूप तले में बैठ के लेखा कियो। सो लेखा यह है.—श्रवण, मनन औ निदिध्यासन करि जब परमानन्दरूप मोक्ष होवै है, तब वह ज्ञानी वचार करै है कि पूर्वोक्त वस्तु का जो मैंने लेन देन किया, सो न तौ लेन है न कछु देन है। मैं जो तन, मन, धनरूप वस्तु दीनी तामें कछु वस्तुता नहीं है। तैसें ही जो ज्ञानरूप वस्तु लीनी सो मेरे सें कछु अन्य नहीं थी। तातें विचार किये तें न कछु दिया है न कछु लिया है।—सुन्दरदासजी कहै हैं कि साहु जो पूर्वोक्त जीवरूप बनिया है सो अति सुखी कहिये निरतिशय आनन्दवान हुवा। काहेतें कि देहादिक भार का उठानेवाला जो अहंकाररूप बैल था सो आत्मधनरूप पूंजी में पैठ गया। अर्थात् शरीरत्रय (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) के अभिमानरूप अनर्थ की निवृत्ति भई ॥ २३ ॥

सुन्दरानन्दी टीका—सुन्दरदासजी ने इस पर साषी नहीं कही।—गोरष-नाथजी का वचन—"तहां बणिज कराई, बिण हट्टाई, माणिक लाधो ममाई। को राजाई, भेदों भाई, बाणिक पुत्रा बिणजंता"। (गो० छन्द १६)

पहराइत घर मुस्यौ साहू कौ रक्षा करनैं लागौ चोर।
कोतवाल काठौ करि बाध्यौ छूटे नहीं साझ अरु भोर॥
राजा गाव छोडि करि भाग्यौ हूवौ सकल जगत मैं सोर
परजा सुखी भई नगरी म सुन्दर कोई जुल्म न जोर॥ २४॥

ह० लि० १—२ टीका —पहराइत जो आपका कार्य में सदा जागता तत्पर रहै अलसै नहीं एसा जो काम क्रोध इन्द्रिय इत्यादि जिना नैं साहू नाम जीव ताको घर मुस्या सर्व शुभ गुणां को नाश करि दियो। अर चोर जो परमेश्वरजी को नाम—"नारायणा नाम नरो नराणां प्रसिद्ध चौर कथित पृथिव्याम्" इति भारते—सो रक्षा करण लागा शुभगुणां की।—कोतवाल नाम अज्ञान काल में सर्व काम को कर्त्ता मन ताकों काठो करि पकड्यो निश्चल करयो, सो चोर (परमेश्वर) कोतवाल (मन) को निश्चल रहै ऐसो कियो विकारां मे वाकी प्रवृत्ति होय सकै नहीं।—तब राजा नाम रजोगुण हा सो गाव नाम हृदा वा काया ताकां छोड़ि करि भाग्यो नाम निवृत्ति हुवो। इतना बात हुई जब बनी तब वा पुरुष को सपूर्ण ससार मे सोर हुवो नाम ता पुरुष को सर्व ससार मं जस प्रवर्त्त हुवो।—प्रजा नाम दैवी-सपदा का गुण, क्षमा दयाशील सताष, ये सर्व ही वा हृदा वा कायरूपी नगरी म सदा सुख सौं बसै हैं, जुल्म न जोर, किसी प्रकार की उपाधि नहीं सदाकाल शान्तवृत्ति आनन्द रहै है॥ २४॥

पी० टीका—जीवरूप शाह कहिये साहूकार है। ता शाहके अत करणरूप घरम पहराइत (पहरा करन वाला) जो प्रवृत्ति का परिवार काम क्रोधादिक सिपाही हैं। वे आत्म-धन की चोरी करन के वास्तैं घुसे। काहेतें जौलौं अज्ञानजन्य कामक्रोधादिक अत करण म रहे हैं तौलौं वहो चौकी करनेवाले सिपाई आत्मवस्तु और किसी कू लेने देवै नहीं है किन्तु आप तिस अत करणरूप गृह मं पैठिके वे आत्मधन अपने स्वाधीन करि ताकू आवरणरूप पेटी में छिपाइ देवै हैं। औ शील-क्षमादिक जो निवृत्ति का परिवार है सोई मानों चोर है। काहतें, वे आत्मवस्तु कू उक्त चाकीवालों सें ले करिके अपने स्वाधीन रखने कू चाहवे हैं।। सो आत्मधनयुक्त

अंत करणरूप गृहकी रक्षा करने लागे, अर्थात् पूर्वोक्त दुर्गुण कू अंतःकरण तैं निकासिके आत्मा कूं अज्ञानकृत आवारणतैं रहित करने लागे।—इस बातकी जीवरूप साहूकार कू खबर होते ही, सो अहंकार-रूप कोटवाल के पास फिरियाद करने कू गयो औ कहने लग्यो कि मेरे धन की रक्षा करनेवाले जो काम-क्रोधादिक हैं वे सब मिलिके मेरे घर में चोरी करने लगे, औ जो शीलक्षमादिक इस धन की चोरी करनेवाले हैं सो रक्षा करने लगे। तिन दोनों पक्षन में अति कलह हुवा है सो कैसे निवृत्त होवैगा? औ तिस कलह की शांति के वास्तै मेरे कू क्या कर्त्तव्य है? सो कृपा करिके कहिये। तब वो कोटवाल बोला कि—शील-क्षमादिक चोरन कू निकासि देहु औ कामक्रोधादिक पहरादितन की रक्षा करहु। काहेतें, शील-क्षमादिकन के स्वाधीन जो आत्मधन होवैगा तो इस धन करि नानाप्रकार के विषयसुख तेरे से भोग्या नहीं जावैगा, औ यह धन कामक्रोधादिकन के स्वाधीन रहैगा तौ वे सब विषयसुख भोगे जावैंगे। यह बात सुनिके वो जीवरूप साहूकार किसी साधुरूप वकील कू पूछने लग्यं कि अब मेरे कू क्या कर्त्तव्य है? तब वे साधु निष्पक्षपात बुद्धि करिके कहने ल कि कामक्रोधादिकन कू अपने घरतें निकासि देहु औ शीलक्षमादिकन का अंगीका करहु, क्यूंकि वे तेरे शत्रु हैं औ ये तेरे मित्र हैं। वे तेरी पुंजी का नाश करैं औ ये तेरी पूंजी की रक्षा करैंगे। औ अहंकाररूप कोटवाल है सो कामक्रोधा दिकन का पक्ष करै है काहेतैं कि तिनकी उत्पत्ति अहंकार तें हुई है। तातें पक्षपा करनेवाला जो कोटवाल है ताकू ही शिक्षा करनी चाहिये। यह बात सुनने ह साहूकार क्रोधायमान होयके तिस मिथ्या अहंकार-रूप कोटवाल कू सत्यतारू काठौ करि बाध्यौ, कहिये काष्ट के बंधन में डाल दियो, औ ताके ऊपर सतसंग पहरा-करनेवाला ऐसा मजबूत जमादार रक्खा कि वो तहां से साम अरु भोर (संध्या औ प्रातःकाल) आदि किसी समय में छूटै नहीं।—यह बात सुनिके देहादि संघात के अभिमान-रूप गाम (नगरी) कूं छोडिके मूलाज्ञानरूप राजा भाग्यो ताको सकल जगत में सोर हुवो। काहेतें कि वो अज्ञान फिर कितहू देखने में आयो नहीं।—ऐसे उक्त प्रकार करि चोरन की न्याई धन चोरने कू पहरादित घरमें घुसे औ धनकी चोरी करनेवाले रक्षा करने लगे। औ गाम का कोटवाल साहूकार के हाथ तें बंधन कूं

राजा फिरै विपति कौ मार्‌यौ घर घर टुकरा मांगै भीष।
पाइ पयादौ निशि दिन डोलै घोरा चालि सकै नहिं यीष॥
आक अरंड की लकरी चूंषै छाडै बहुत रस भरे ईष।
सुंदर कोउ जगत में विरलौ या मूरष कौं लावै सीष॥ २५॥

पाया। सो बात सुनिके तहां का राजा गांव छोड़िके भाग गया। तब तिस नगरी में सब श्रेष्ठगुणरूप परजा सुखी भई। सुन्दरदासजी कहैं हैं कि न कोई जुलम हुवा। न किसी का किसीपर जोर चल्या॥ २४॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सुन्दरदासजी की साखी—"पहराइत घरकौं मुसैं साह न जानैं कोइ। चोर आइ रक्षा करैं सुन्दर तब सुख होइ"। २३।—"कोतवाल कौं पकरि के काठी राख्यो जूरि। राजा भाग्यो गांव तजि सुन्दर सुख भरपूरि"। २४।—हरिदासजी निरंजनी—'साह चोर के मन्दिर पैठा। साह प्रहै तजि भागा।"। ५। (योगमूल) कबीरजी का पद—"को अस करै नगर कोतवलिया। मांस फैलाय गीध रखवलिया। मूस भो नाव मजर कडहरिया। सोवै दादुर सर्प पहरिया"। (बीजक पद ९५ से)।—गोरखनाथजी का पद—"दूकिलै कूकर भूसिलै चोर, काढै धणी पुकारै ढोर"। (गो० पद० ३९ से)

ह० लि० १-२ टीका:—राजा नाम जीव वा मन, सो विपत्ति नाम अनेक प्रकार की तृष्णारूप आपदा ताको मार्‌यो फिरै नाम चंचल हुवो रहै, घर-घर नवद्वार तिनां का विषय सुख तिनां को टुकरो किंचित्-मात्र जो अंश ताकी प्राप्ति होवै सोई टुकरो ताकौं मांगतो डोलै, फिरै नवद्वारा में जहां-तहां फिरै।—पाय पयादो नाम आपकी आपकौं संभाल नहीं रहै ऐसो तरह भोगां में अति आतुर चंचल होयके फिरै है। अरु वाको घोरा नाम शरीर जो शक्ति-हीन होय गयो तासौं एक पगमात्र चल्यो जाय नहीं तो पण मन तो अति चचल ही रहै।—आक अरंड तुल्या…लोक-परलोक में दुःखदायीरूप जो विषय विकार इन्द्रियां का भोग क्रोध-मोहादिक तिनही कौ अंगीकार करै यों या मन को स्वभाव है। अरु जो महा अमृतरूप या लोक परलोक में सुखदाई मिष्टरस-भर्‌या ईख तुल्य जो भगवत भजन ध्यानादि तिन कौं न

लेवै ऐसो मलीन या मन को स्वभाव है।—ऐसो मूरख जो यह मन महा अज्ञान को सीख देकरि शुद्ध करै ऐसा ऐसा पुरुष जगत में निरला है, ऐसे मनकों जीतनों अति कठिन है, जब भगवत् कृपा होय तब मन शुद्ध होय, तामें भगवत् कृपा के अर्थ भजन ध्यान अवश्य करनों, यही उपाय है अवर नहीं ॥ २५ ॥

पीताम्बरी टीका - चेतन के प्रतिबिंब-युक्त जो मन है ताकों यहा राजा कहे हैं। सो आशा तृष्णा अभिलाषा औ कामनादि भेद करि भिन्न २ इच्छारूप विपत्ति (दुःख) को मार्यो चौदहभुवनरूप भिन्न २ ग्रहन में, अथवा दश-इन्द्रिय-रूप प्रति ग्रह में, अथवा राज्यादि पदवी-रूप घर-घर में फिरै कहिये भटकै है। औ परिच्छिन्न विषयभोग-रूप टुकरा की भीख मांगै है।—शुभ औ अशुभ जो मनोभाव हैं सोई मानों दो पाँव हैं तिनके अनुसार नानाप्रकार की वृत्तिरूप गति करि निशि (स्वप्न में) दिन (जाग्रत में) पाइ पियादो डोलै है। अर्थात् स्थूल शरीररूप घोडा की सहायता नहीं मिलै है। काहेतैं कि मन में जो नानाप्रकार के संकल्पविकल्प-रूप भाव उपजत होवै हैं। सो यद्यपि पूर्व-कर्मानुसार होवै है तथापि सो सर्व फलके देनेवाले नहीं होवै हैं। मनोरथ मात्र होवै हैं। जैसे किसी भिक्षुक के मन में ऐसा भाव होवै है कि 'नगरी का अधर्मी राजा मर जावै औ ताका राज्य मेरे कूं प्राप्त होवै तो मैं धर्मन्याय करू'। यामें राजा के मरने की जो इच्छा है सो अशुभ है औ धर्मन्याय की इच्छा है सो शुभ है, परन्तु सो दोन्यू होने कूं अशक्य है। जो क्रिया का होना है सो फल-रूप है। सुखदुःख के भोग कूं कर्म का फल कहैं हैं। सो कर्मफलरूप भोग यद्यपि शरीर करि होवै है तथापि कर्मफल देनेवाले मनोरथन तें सो भोग होवै है। फल-रहित मनोरथन तें भोगरूप क्रिया होवै नहीं। औ मन में तो जाग्रत औ स्वप्न इन दोनू अवस्था में अंतराय-रहित अनंत संकल्प-विकल्प होवै है। सो सब शरीर की क्रिया के हेतु नहीं हैं। ऐसे ज्ञान बिना भटकत ही फिरता है। औ उक्त स्थूल शरीररूपी जो घोरा है सो निष्फल मनोरथन के बल करिक्रियारूप चौप (चाल) चालि नहीं सकै है। अर्थात् मन की न्याई शरीर की गति नहीं होवै है।—पूर्वोक्त नानामनोरथ-जन्य जो वासना है सो "फलदायक नहीं होने तें रस-रहित हैं तातें ही तिनकूं आक औ अरंड की ल्हकरियां कही हैं। सो चूगैं है कहिये मनोराज्य करै है। औ ईश्वर के उपज

पानी जरै पुकारै निश दिन ताकौं अग्नि बुझावै आइ।
हूं शीतल तू तप्त भयौ क्यौं बारंबार कहै समुझाइ।
मेरी लपट तोहि जौ लागै तौ तू भी शीतल ह्वै जाइ।
कबहूं जरनि फेरि नहिं उपजै सुंदर सुख मैं रहै समाइ ॥ २६ ॥

नादि ज्ञान के साधनरूप बहुत रसभरे ईष (गडा) कू छांडै है कहिये त्यागै है।— सुंदरदासजी कहै है कि इस जगत में ऐसो कोऊ विरलो सत्पुरुष है जो या अज्ञानीरूप गूएँ कों सीप (शिक्षा) लावै। अर्थ यह है:—पूर्वोक्त अस्थिर मनवाले कूं बोध होना कठिन है, याहेतें कि चंचलमनवाले कूं उपासनादिकम तें साधनद्वारा ज्ञान होने का संभव है। ताकू साधन बिना ज्ञान होवै नहीं। ऐसे जान के जो सत्पुरुष प्रथम साधन करावै औ पीछे बोध करै। ऐसा अद्भुत कृत्य ब्रह्मनिष्ठ औ श्रोत्रिय सें होवै है औरसे होवै नहीं, सो मिलना कठिन है। तातैं ऐसे अज्ञानी कू बोध करनेवाला विरला कह्या है ॥ २५ ॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सुं० दा० जीकी साखी—सुंदर राजा बिपति सौं घर-घर मांगै भीष। पाय पयादौ उठि चलै घोरा भरै न बीष। ३६।—इस पर जो ऊपर दोनों टीकाएं दी हुई हैं उनमें इसका अभिप्राय अच्छे प्रकार खोलकर दिया हुआ है। रजोगुण में जीव लिप्त रहै तब ही मोह-माया, विषयसंग, तृष्णा आदिक का बल अधिक रहता है। "रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्' (इत्यादि) (गीता में)।—लौकिक में भी 'राजेश्वरी स नरकेश्वरी' ऐसी कहावत है। (नोट-छंद के तीसरे पद में 'बहुतर-सभरे' ऐसा पद विच्छेद से उच्चारण यति सहित होता है।) ॥

ह० लि० १—२ टीका:—पानी नाम प्रेम सो अंत:करण में अंतर्गत प्रकासै उदय होय प्रेम की जो अतिगति होणी वाही को नाम विरह वा विरह की तरली में रात-दिन अखंड पुकारै नाम आतुर होयकरि, तब वा प्रेमरूपी पाणी के वेग कों अग्नि बुझावै जो वा प्रेम तरली में ज्ञानरूपी अग्नि प्रगट होय नाम स्वरूप प्राप्त करिकै वा विरह अग्नि को निवारै।—वा ज्ञान प्रेम सौं कहै हूतो शीतल अइ तू तपत भयो,

प्रेम तो सदा सुखरूप है तथापि लगनि में तपत रहै है तातैं बारबार ज्ञान प्रेम कों समझावै सो कहै है।—मेरी लपट तोहि लागै नाम जो ज्ञान उदय होय तो प्रेम भी शांतिरूप होय जाय, आदि में प्रेम अरु प्रेम तैं ज्ञान, ज्ञान के उदय से सर्व शांत शीतल होय जाय।—फेर प्राप्ति के अनन्तर जन्म-मरण संसार-सम्बन्धी कोई प्रकार की जरनि नाम ताप उपजै नहीं सदा ब्रह्मानन्द सुख में समाय रहै ॥ २६ ॥

पीताम्बरी टीका—अंतःकरण जो है सो स्वभाव तैं ही स्वच्छ है, यातैं ताकूं यहां पानी कह्या है। सो अंतःकरण संसार के त्रिविध ताप तैं जरै है, तातैं निशदिन कहिये निरंतर "मैं दुःखी, कंगाल, संसारीजीव हूं" ऐसे पुकारै है। अर्थात अंतर में निश्चय करि जहां तहां कथन करै है। ताकूं कहिये तपायमान अंतःकरण जल कूं ज्ञानरूप अग्नि बुझावै आइ, कहिये तिन त्रिविध तापन कूं बाध करिके शांत करै है।—औ सो ज्ञानरूप अग्नि पूर्वोक्त अंतःकरणरूप जल कूं बारबार समुझाइ के कहै है कि मेरी उत्पत्ति तुमतैं हुई है, सो मैं तो शीतल शांत हूं, तू क्यौं तप्त भयौ है ? भाव यह है—प्रथम जब मंद ज्ञान होवै है तब विचार उत्पन्न होवै है, सो ज्ञान तिस विचार करि वहिर्मुखन कूं बोध करै है।—यह जो संसार है सो मिथ्या है, औ तामें जो तीन ताप हैं सो भी मिथ्या हैं। औ सर्वत्र परिपूर्ण जो ब्रह्म है सो सत्य है सोई मेरा रूप हाने तैं मेरे विषे संसार औ ताके तीनताप जेवरी में सर्प, शक्ति में रजत औ मरुस्थल में जल की न्याईं मिथ्या प्रतीत होवै हैं। ऐसी संशय विपरीत-भावना-रहित मेरी दृढता-रूप लपट, श्रवण-मनन निदिध्यासनादि करि जौ तोहि लगै तौ तू भी (अंतःकरण भी) पूर्वोक्त त्रिविधतापजन्य विक्षेप को नाश करि शीतल (शांत) व्है जाइ।—सुंदरदासजी कहै हैं कि एक बेर जो ज्ञानाऽग्नि करि अन्तःकरण-रूप जलकी तपत निवृत्त भई कि फेरि सो जरनी (तपत) कबहू नहिं उपजै, अर्थात ज्ञान हुवे पीछे अपने निजस्वरूप आत्मा सें विमुख होवै नहीं। काहेतें कि अन्तःकरण ब्रह्म सुख में समाइ रहै है ॥ २६ ॥

सुन्दरानन्दी टीका—यहां विपर्यय प्रत्यक्ष यह है कि पानी जो स्वभाव शीतल होता है जलता (तप्त) कहा गया और अग्नि को शीतल कहा गया जो स्वभाव से तप्त और जलानेवाला है। जलानेवाली वस्तु कैसे शीतल करै ? और जल

खसम पर्‌यो जोरू के पीछै क्यौं न मानैं भौंडी रांड।
जित तित फिरै भटकती यौंही तैं तौ किये जगत मैं भांड॥
तौ हू भूष न भागी तेरी तूं गिलि बैठी सारी मांड।
सुंदर कहै सीष सुनि मेरी अब तू घर घर फिरवौ छांड॥ २७॥

तो अग्नि को बुझाकर ताप मिटा देता है सो उलटा अग्निद्वारा कैसे ताप निवारित किया जाय? । परन्तु शास्त्रों में ज्ञान को अग्नि कहा है क्योंकि ज्ञान के प्रताप से अज्ञान नाश होता है सो ही मानों उसका जलना है और अज्ञान को अन्धकार और ज्ञान को प्रकाश भी शास्त्रों में उसही कारण से कहा है कि प्रकाश (तेज) अग्नि-सूर्यादि से निकलता है। यहां प्रमाण यह है। "ज्ञानाग्निदग्ध कर्माणं" (गीता । ४ । १९) "तमस्त्वज्ञानज विद्धि" (गीता । १४ । ८)—ज्ञान की अग्नि से जिसके (पुन्य और पाप) कर्म दग्ध (नाश) हो गये। तम वा तमोगुण अज्ञान से उत्पन्न होता है और यह ज्ञान का विरोधी है।—सुं० दा० जीकी साखी—पानी फिरै पुकारतौ उपजी जरनि अपार। पावक आयौ पूछने सुन्दर बाकी सार। ३७।—जौ तूं मेरी सीयलै तौ तू षीतल होइ। फिरि मोही सौं मिलि रहै सुंदर दुख न कोइ। ३८।—कबीरजी का पद—"पानी मांहिं अगनि को अंकुर, मिलिन बुझावत पानी"। (बीजक (पद) शब्द ५८ में)।—गोरषनाथजी का पद—"अनिल कहै मैं प्यासा मूवा, अनाज कहै मैं भूषा। पावक कहै मैं जाड़ै मूवा, कपड़ा कहै मैं नागा"। (गो० पद ३६।)—

ह० लि० १—२ टीका—खसम जो मन सो जोरू नाम मनसा ताके पीछे पर्‌यो नाम सीख देवैं लागो खिजिकैं रीस करिकैं, भौंडी नाम बुरी विषय विकारां कारि मलीन।—जहां तहां यौंही नाम वृथा ही विषय विकार रूप सकल्पां में भाजती फिरै, तैं तो मनैं भी जगत भांड कियो, याको यह अर्थ है जो सूक्ष्म वासनारूप जो सकल्प हैं सो मन में उदय होयकैं प्रगटैं सो मनही को वाको दूषण आवै।—सारी मांड नाम सर्व पदार्थां को तृष्णाद्वारि से गिलि बैठी नाम खाय बैठी, तेरी ओरू भी भूख भागी नहीं नाम तृप्ति हुई नहीं अब तो तृष्णा को दूरि कर।—तासौं मन कहै

है हे मनसा अब तो तृष्णा कौं छाड़िकरि निश्चल होहु अरु घरिघरि फिरणौं छांड़ि दे। घरि-घरि नाम स्वर्ग मृत्यु पाताल लोकों में अथवा चौरासी जोनि जन्मा में अथवा ससारी जनों का घर-घर में अथवा नवद्वारों का विषयविकारों में, इन स्थानों में, सर्वथा फिरिनौं छांड़ि दे, ज्यू सर्व सुख कौं प्राप्त होय ॥ २७ ॥

पीताम्बरी टीका।—चिदाभास—सहित अन्तःकरण-रूप जो जीव है ताकू ही यहां ममम कह्या है। सो बुद्धिरूप जोरू के पीछे परयो। ता जोरू ने शुभाशुभ कर्मन के बलकरि अनंत चौरासीलक्ष योनि में भटकायो। औ तिन योनिजन्य अनतयातना (पीड़ा) सहन कराई। ऐसे अगणित दुःख सहन करते हुवे कदाचित् काकतालीय न्यायवत् शुभाशुभ कर्मन करि मनुष्य शरीर की प्राप्ति हुई, तामें किसी उत्तम सस्कार के लिये सत्सगादिकन की प्राप्ति भई। तिस क्षण में बुद्धि की अवस्था यत्किंचित् फिरी। तब ताकू सो जीव कहने लगा कि तैंने मेरी बहुत दुर्दशा करी, अब मेरे तें एसा दुःख सहन नहीं हावै है। तातें अब तूं ज्ञान में प्रवृत्त होय कै अन्तर्कर्मन की वासना का त्याग करहु तातें मेरा जन्ममरण निवृत्त होवै। इत्यादिक वाक्यन करि विचारपूर्वक आर्त्तजन अपनी बुद्धि कू बहुत कहि समुझावै है। परन्तु वासना के बसि भई भौंडो (भ्रष्ट) राड (रंडा) कह्यो नहीं मानै है। अर्थात् निरंतर सत्सग में प्रवृत्त होय के ज्ञानवान नहीं होवै है। काहेतें कि ज्ञान की प्रतिबंधक जो अशुभकर्म-जन्य वासना है सो तिस शरीर में ज्ञान की प्राप्ति का असम्भव होने तें बुद्धि कू सत्सगादिकन में प्रवृत्ति करावने नहीं देवै हैं।—औ नित-तित कहिये जिस तिस विषय में यहो भटकती फिरै है जैसे व्यभिचारिणी स्त्री कामातुर भई हुई सदा निपट के अर्थ जहां तहां भटकती फिरै है औ तासा ही निरंतर ध्यान लग्या रहै है। सो जौलौं पति ताके आधीन हावै तौलौं सो कृत्य निर्भयता तें हवै है। परन्तु जब पति कू तिस बात की कछु खबरि होवै है तथापि वासना के बल तैं सो व्यसन शीघ्र छूटै नहीं है। सो देखिके ताका पति बहुत युक्तियों करि समुझावै है। परन्तु सो जब समुझे नहीं तब कोपायमान होयके कहै कि रांड तैं तौ मेरे कू जगत में भांड (फजीहत) कियो है। तैसे जीवरूप ममम भी अपनी बुद्धिरूप बहू कू व्यभिचारिनी देखिके कोप्यायमान हायके कहे है कि इस जगत मे तैंने मेरे है

पंथी मांहि पंथ चलि आयौ सो वह पंथ लख्यौ नहिं जाइ।
वाही पंथ चल्यौ उठि पंथी निर्भय देश पहूंच्यौ आइ॥
तहां दुकाऊ परै नहिं कबहूं सदा सुभिक्ष रह्यौ ठहराइ।
सुन्दर दुखी न कोऊ दीसै अक्षय सुख में रहै समाइ॥ २८॥

ऐसा फजीहत क्या है कि जानें मेरी परिपूर्णतारूप प्रतिष्ठा-अद्वैतरूप नाम-औ अखंडानंदरूप धन आदिकन का अभाव की न्याईं होई गया है।—ऐसे मेरी प्रभुतारूपी सारी मांड (बडाई) तूं मिल बैठी। तौहू तेरी तृष्णारूप भूख न भागी (नाश नहीं भई)। अर्थात् ब्रह्म तैं जीव किया तौभी तेरी तृप्ति भई नहीं है। अब क्या पत्थर की न्याईं जड करने कूं चाहती है? ऐसे अति तीक्ष्ण वचन कहै है।—सुन्दरदासजी कहैं हैं कि हे बुद्धि! अब मेरी सीख (शिक्षा) सुनि के, कहिये इस मनुष्य जन्म विषे ज्ञान कूं पायके अब तू अनेक विषयरूप वा अनेक योनिरूप घर-घर में फिरबो छांड। अर्थात् ज्ञान हुवे पीछे विषयवासना के अभाव हुवे जन्म मरण की निवृत्ति होवै है। ऐसें कह्या॥ २७॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सुन्दरदासजी ने इसपर साखी नहीं कही है। वेदांत-रहस्य और अध्यात्म-परक तात्पर्य उक्त टीकाओं में स्पष्ट किया सो बहुत अन्शों में यथार्थ प्रदर्शित हुआ है। योग-साधन के रहस्य में इसका अर्थ इस प्रकार होता है कि—खसम जो नियामक स्वामी आत्मा जोरू (स्त्री भाववाली) मनोवृत्ति पर एकाग्रता करने के निमित्त (उसपर) ऐसा अपना अधिकार जमाता है। योग का परम ध्येय चित्तवृत्तियों को निरोध (रोक) कर एकाग्र अन्तर्मुखी कर देना है जिससे निरंतर, गुरु के उपदेशानुसार, साधन द्वारा, अन्तरात्मा का साक्षात्कार अर्थात् अपरोक्षानुभव हो जाय।—गोरखनाथजी का पद—"गगरी कांपै पाणीहारी, गवरी कंपै गौरा। घरको गुसाईं कौतिग चांहै, काहे न चांपै जौरा (गोरख पद ३६ में से) (इस में अवांतर भाषा विपर्य्यय से वही आत्मा का प्रभुत्व और जौरा जो जोरावर मनोवृत्तिरूपी स्त्री को आधीन करने की बात कही है।) तथा—"तल गगरी ऊपर पणिहारि, ऊजड़ खेड़ा नगरी मंझारि-" (गो० पद ३९ में से)।—

६० लि० १—२ टीका:—पंथी संत मुमुक्षु तामें पंथ नाम परमात्मा की प्राप्ति

की कर्त्ता भक्ति ज्ञान सो आपका सुत या साधना करि वा मुमुक्षु, संत कौ प्राप्त हुवो।
सो जो वो ज्ञान है सो अति सूक्ष्म स्वरूप है ताको लखणों समझणों अति कठिन है।—
सो गुरु सत शास्त्र उपदेश करि वा ज्ञान मार्ग कों दृढ निश्चै धारिकै वो मुमुक्षु,
संतरूपी पथी वाही ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग में चल्या, या प्रकार परमात्मा कौं प्राप्त हुवे।
ता ब्रह्मदेश में दुकाल परै नहीं नाम किसी वात की ऊंणता रहै नहीं तहां ब्रह्मदेश में
सुभिक्ष नाम सदा ही सर्व प्रकार की पूर्णता रहे। "रसवर्ज रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा
निवर्त्तते"। इति। वा ब्रह्मदेश कौं जो प्राप्त हुआ तिनां के किसी के भी किसी
प्रकार को दुख नहीं रहै है, वे सदा ही अक्षय नाम अविनाशी सुख में लीन रहै
हैं॥ २८॥

पीताम्बरी टीका मोक्षरूप प्रदेश के ज्ञानरूप मार्ग में गमन करनेवाला जो
मुमुक्षु जीव है ताकूं इहां पथी कहे हैं। ता माहिं ज्ञानरूप पथ (मार्ग) वर्णि
आयो। अर्थात् गुरु शास्त्रादि अंतरि साधन-द्वारा अंतःकरण की चामत्कृत्य(?)
करि प्रगट भयो। सो वह पथ लख्यो नहिं जाइ। इहां यह रहस्य है—जैसे बिजली
की गति, मन की गति औ पक्षी की गति विलक्षण पुरुष करि जानी जावै है। यातें
लक्ष्य है। जल में जो छोटी मच्छरी होवै है ताकी यद्यपि और कोई जाति हाडै
नहीं तातैं अलक्ष्य कहिये है। तथापि मच्छरी रूपधारी योगी करि जानी जावै है
यातें लक्ष्य है। योगी की गति यद्यपि औरन से जानी जावै नहीं तथापि सो अन्य
योगी करि जानी जावै है। तातैं सो दुर्लक्ष्य है। तैसे ज्ञानी की गति विचक्षण नर करि
वा योगी करि, वा अन्य ज्ञानी करि साक्षात् जानी जावै नहीं। यातें यह अलक्ष्य है।
तातैं ज्ञानी की गति (पंथ) रूप ज्ञान लखने में आवै नहीं।—उक्त मुमुक्षु जीवरूप
जो पंथी है सो उठि कहिये अज्ञानरूप पूर्वावस्थान तें उठिके वाही ज्ञानरूप पथ में
चल्यो। अर्थात ज्ञानी होय विचरने लग्यो। ऐसे विचरते २ जब दोय कर्मन का क्षय
होयगया तब विदेहमोक्षरूप जो निर्भय देश है तहां आइ पहूच्यो, अर्थात् ब्रह्म तें
अभिन्न भयो।—तहां कबहू जन्म-मरणादि दुःखरूप दुकाल परै नहिं। काहेतें कि
सदा ही परमानंदरूप सुभिक्ष (सुकाल) टहराइ रह्यो है।—सुंदरदासजी कहै हैं कि
तिस विदेह-मुक्तिरूप स्थिति में कोऊ दुखी न दीसै। काहेतें कि जो जो पुरुष इन

एक अहेरी वन में आयौ खेलन लागौ भली सिकार।
कर में धनुष कमरि में तरकस सावज घेरे वारंवार॥
मार्‌यौ सिंघ व्याघ्र पुनि मार्‌यौ मारी बहुरि मृगनि की डार।
ऐसें सकल मारि घर ल्यायौ सुन्दर राजहिं कियौ जुहार॥ २९॥

रूप मार्ग करि विदेह मुक्त भये हैं वे सर्व उपाधि रहित ब्रह्मरूप होयके स्थित हैं। सो ब्रह्मस्वरूप अक्षयसुखरूप होने तें तहां दुःख का लेश भी नहीं है, ता में समाइ रहे हैं॥ २८॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जीकी साखी—"पंथी मांहिं पंथ चलि आयौ आकसमात। सुंदर वाही पंथ मंहि उठि चाल्यौ परभात। ३९" —"चलत-चलत पहुंच्यौ तहां जहां आपनौं भौन। सुन्दर निश्चल व्है रह्यौ फिरि आवै कहि कौंन। ४०" —गोरषनाथजी—"पंथ बिन चलिबा अग्नि बिन जलिबा, अनिल तिषा बिन हटिया। ससबेद श्री गोरषनाथ कथिया, बूझिले पंडित पढ़िया। (गो० शब्दी २२)। तथा-"चलै बटाऊ वासी का बाट, सोवै डोकरिया चौरै घाट"। गो० पद ३९ में से)।-

ह० लि० १-२ टीकाः—अहेरी नाम संत सो संसाररूपी वन में आयो प्रगट हुवो सो वा वन में भली जो श्रेष्ठ शिकार खेलन लागो सोई कहे हैं। कर नाम अंत करण तामें धनुष नाम ध्यान कमर नाम आपकी कठिनता संजमता अति सूरवीरपणों तामें तरक्स नाम घणी तर्क-विवेक सों धारण कियो जो आपको निश्चो दृढभाव तामें नाम-रटणा आदि बाँण परिपूर्ण हैं तिना करि सावज नाम शिकार खेलण जोग्य जो पशु तिनरूपी सर्व विकार तिनां को घेरन लाग्यो अर्थात् बाह्यवृत्ति मेटि सबको वश्य करनें लाग्यो।—तिन में मुख्य सावज सिंघ व्याघ्र नाम क्रोध-काम आदिक मार्‌या नाम *जीति बस कीया, और बहु मृगन की डार नाम सर्व इन्द्रियां का समूह सो मार्‌यो नाम* इन्द्रियां की वृत्ति जीती।—ऐसे सर्व कों मारिके नाम स्ववसि करिके घर नाम हृदो तामें ल्यायो नाम सर्व वृत्ति अंतर्निष्ट करी। या प्रकार की शिकार खेलि सर्व कार्य सिद्ध करि आया तब राजारामजी तिनको जुहार कियो नाम जाय हाजिर हुवा अर्थात् सर्व विकार जीत्या यातें परमात्मा की प्राप्ति हुई॥ २९॥

पीताम्बरी टीका:—एक उत्तम संस्कार-युक्त अधिकारी पुरुष अहेरी (शिकारी) संसाररूप वन में आयो। कहिये कर्मवश तें नरदेह कूं प्राप्त भयो। सो बंधनिवृत्तिरूप भलो (अच्छी) शिकार खेलन लाग्यो।—ता शिकारी ने अंतःकरण की वृत्तिरूप कर (हाथ) में गुरुमुख द्वारा श्रवण किये हुवे महावाक्य के अर्थरूप धनुष धारण करिके। औ हृदयरूप कमरि में अनेक युक्ति औ विचाररूप बाणयुक्त अन्तःकरणरूप तरकस (भाथा) बाँधिके। बारंबार श्रवणादि सहकारी-द्वारा। सावज (मारनेलायक जानवर) घेरे कहिये रोके।—ज्ञानरूप युद्धकरि मूला-अज्ञानरूप सिंह मार्यो। पुनि काम-क्रोधादि बहुरि मृगन की डार (पंक्ति) मारी कहिये बाधित कीनी।—सुंदरदासजी कहै हैं कि ऐसे सकल प्रपंचरूप शिकार कूं मारि (बाध करिके) घर लायो। कहिये पूर्व अज्ञानदशा में अधिष्ठान ब्रह्म तें भिन्न प्रपंच कूं मानतो थो। सो अब बाधितानुवृत्ति करि अधिष्ठान में कल्पित अनुभव करने लग्यो। औ ब्रह्मरूप राजहि (राजा कूं) जुहार कियो। कहिये अपनो आप करि जान्यो। तातें मुक्तिरूप मौज मिली ॥ २१ ॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सुन्दरदासजी की साखी—"बन में एक अहेरिये दीन्ही अग्नि लगाइ। सुंदर उलटे धनुष सर सावज मारे आइ ।४१" ।—"मार्यौ सिंघ महाबली मार्यौ व्याघ्र कराल। सुंदर सबही घेरि करि मारी मृग की डाल। ४२" ।—दादूजी की साखी १२०—"दादू कर बिन सर बिन कमान बिन मारै खैंचि कसीस। लगै चोट सरीर मैं नख सिख सालै सीस" ।—कबीरजी का शब्द "जिया मत मार मुआ मत खइयो। मांस बिना मत अइयो रे ॥ परली पार इक बेल का बिरवा, वाके पर नहीं है रे। होत पात चुगजात मिरगवा, मृग के सीस नहीं है रे ॥ धनुष बान ले चढ़ पारधी, धनुआके परच नहीं है रे। सरसर बान तकातक मारै, मिरगा के घाव नहीं है रे ॥ दर बिन खुर बिन चरन चोंच बिन, उड़न पख नहिं जाके रे। जो कोई इस मार लियावै, रक्त मांस नहिं ताके रे ॥ कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह पद अति दुहेला रे। जो इस पद को अर्थ बतावै, सोई गुरु हम चेला रे" ॥ (शब्दावली भाग २। १५।) ।—गोरखनाथजी—"एक लप सींगनि दुई लप बांन, बेध्या मीन गगन अस्थांन। बेध्या मीन ससि के साथ। सत-सत भाषत (श्री) गोरखनाथ" (गो० शब्दी। १७४।) ।—

शुक के वचन अमृत मय ऐसें कोकिल धार रहे मन मांहिं।
सारी सुनें भागवत कबहों सारस तौऊ पावे नांहि॥
हंस चुगें मुक्ताफल अर्थहिं सुन्दर मांनसरोवर न्हांहि।
काक कवीश्वर विपई जेते ते सब दौरि करंकहिं जांहि॥ ३०॥

ह० लि० १-२ टीका:—या में विपर्यय अलंकार नहीं है या में हीरावेदि अलंकार है जो उनही अक्षरां में अर्थ भी सिद्ध होय अरु किसी का नाम भी सिद्ध होता जाय। इहां शुक जो है सो सूवा को भी कहैं और अर्थ इह जो शुक नाम शुकदेवजी ताका वचन भागवतरूपी बड़ा श्रेष्ठ अमृतरूपी है सो वै सिद्धांत वचनां को धलि नाम संसार में कौन है ऐसा जो मन में धारन करैं अर्थात् धारण करना अति कठिन है अरु यामें कोकिल नाम पक्षी का भी सिद्ध होवै है।—सारी नाम सपूर्ण भागवत सुनें इह भी अर्थ है अरु सारो पक्षी (मैना) को भी नाम है। सारस नाम सपूर्ण सिद्धांत पावणों कठिन है अरु सारस पक्षी को भी नाम सिद्ध होवै है।—हस नाम हंसरूपी सत अरु हस पक्षी को भी नाम है। अर्थ की प्राप्ति को जो सुख सोई मानसरोवर तामें आनंद की प्राप्ति करि मगन रहे है।—काकरूपी जो रस ग्रंथन का कवि अरु काक पक्षी को भी नाम है॥

पीताम्बरी टीका:—यह विपर्यय आदि जो मेरी काव्य है ताका तात्पर्य यद्यपि (विज्ञान) वेदांत-सिद्धांत में है तातें वेदांतिन कू तौ अति प्रिय लगैंगे। तथापि और कवि (चतुर) यथार्थ अर्थ जानने में समर्थ नहीं होने ते यथा बुद्धि यामें प्रवृत होवैंगे। सो दिखावैं हैं:—(इहां से तीन सवैये में विपर्यय नहीं है॥)—कोई कवि तो शुक (पोपट) के न्याईं होवैं है। जैसे शुक पक्षी जितना शब्द सीखै है उतना ही बोलै है। अधिक बोलि सकै नहीं। तैसे यह कवि पढ़े हुवे विषय का वर्णन करै। अधिक युक्ति करि कहि सकै नहीं। परन्तु सो श्रेष्ठ है, काहेते श्रद्धायुक्त जितना सीखै है उतना दृढ़ ग्रहण करिके सोई कथन करै है। तामें संशय औ विपर्यय कछु नहीं होवै। ऐसे ताके वचन भी अमृतमय लगै हैं। इस कथन तें श्रद्धावान् पुरुष के स्वभाव का सूचन किया॥—कोई कवि तो कोकिल की न्याईं होवै है। जैसे कोकिल

पक्षी किसी अर्थवाला शब्द बोलै नहीं। औ किसी से सीखै भी नहीं। परन्तु ताका शब्द स्वाभाविक ही ऐसा लगै है कि मानों सुनते ही रहिये। कदे तृप्ति होवै नहीं। तातैं यह कवि बिनाही पढ़ैं स्वाभाविक ऐसा विषय कथन करै है कि सो किसेसे विरुद्ध होवै नहीं। यद्यपि युक्ति औ प्रमाणादि करि रहित होवै है। तथापि ईश्वरादिक विषय होने तैं ताका कोई द्वेष वा निषेध करै नहीं। तातैं सो भी प्रथम कवि की न्याईं श्रेष्ठ ही है। ऐसे मनमांहि धारि रहे। इस कथन तैं निष्पक्षपात-स्वभाववाले पुरुष का सूचन किया ॥—कोई कवि तौ सारो (एक जात के पक्षी) की न्याईं होवै है। जैसे सारो पक्षी कछु बोलै नहीं है परन्तु श्रेष्ठ गायनादि नाद कूं सुनै है तिस नाद में मृगन की न्याईं तल्लीन होइ जावै है औ मधुरनाद सुनने के वास्तै ही विचरता रहै हैं। ताकूं ऐसा नाद कबहूक सुनने में आवै है। तिस नादजन्य रहस्य का विस्मरण कबहू होवै नहीं। तैसे यह कवि बहुत वक्ता तो होवै नहीं है परन्तु श्रेष्ठ भगवत् कथादिकन कूं सुनै है। तिस भगवत्‌कथा में तल्लीन होई जावै है। औ सो मधुर कथा सुनने के वास्तै ही विचरता रहै है। ताकूं ऐसी भागवत् (भगवत् सम्बन्धी) कथा कबहूक सुनने में आवै। तिस कथा के रहस्य कूं कबहू भूलै नहीं। इस कथन तैं रहस्याभिलाषी भाविक पुरुष के स्वभाव का सूचन किया ॥—कोई कवि सारस पक्षी की न्याईं होवै है। जैसे सारस पक्षी जो है सो और सब पक्षीन तैं श्रेष्ठ औ चतुर है। याकी बानी अति मधुर होवै है। परन्तु तिस कथन की वासना अन्तर में रहै नहीं। तैसे यह कवि और सब कवीन तैं श्रेष्ठ औ चतुर है। परन्तु तिन विषयन की अन्तर में वासना रहै नहीं। अर्थात् ज्ञानी होवै है सो तौ कछु शंका औ तर्कादिक उपजै नाहि। इस कथन तैं ज्ञानी के स्वभाव का सूचन किया ॥—कोई कवि तो हंस की न्याईं होवै है। जैसे हंस पक्षी जो है सो भी सारस की न्याईं और सबपक्षीन तैं श्रेष्ठ औ चतुर है। याकी बानी अति मधुर होवै है। स्मरण-शक्ति भी उत्तम होवै है। ताकी चंचू में और एक ऐसा गुन होवै है कि जल में मिल्या हुया दूध जल तैं भिन्न करिके पान करि लेवै है। औ निरंतर मान-सरोवर में बास करिके ता माँहि ते मुक्ता-फलन कूं चुगै है। तैसे यह कवि जो है सो भी उक्त (सारस्वत) कवि की न्याईं श्रेष्ठ औ चतुर है। याका बोलना अति नम्र होवै है। सूचना किया विषय विस्मरण होवै

रौं। ताकी बुद्धि में और एक ऐसा गुन होवै है कि सारासार विवेक करि सार वस्तु
ा ग्रहण करै औ असार का त्याग करै है। औ निरंतर सत्संग में वास करिके
न-शास्त्र के सुंदर अर्थहि (कूं) धारण करै है। इस कथन ते मुमुक्षु पुरुष के
वभाव का सूचन किया है॥—कोई कवि तो काक की न्याई होवै है। जैसे काक
क्षी जो है सो और सब पक्षीन तें अधम होवै है। निरंतर बकता ही रहै है। वाका
वर अति कटुक होवै है सो सुनि के क्रोध उत्पन्न होवै है। काहू कूं भी अच्छा
ागै नहीं है। ऐसे जैसे होवै सो सब दौरि करंकहि कहिये कांक नामके वृक्ष के
ऊपर जाहि के स्थित होवै हैं। तैसे यह कवि जो है सो और सब कविन तें अधम
ोवै है। यद्यपि अनेक विषयन करि निरंतर बकता ही रहै है तथापि सो-सो श्रेष्ठ
विषयन तें रहित होने तें विरस है। सो सुनिके उत्तम पुरुष कूं क्रोध उत्पन्न होवै
है। कोई सत्पुरुष सराहै नहीं। सो यद्यपि बड़ा चपल औ चचल बक्ता होने तें विषयी
पुरुषन कू तो अति नीके लागै है औ विषयी पुरुष याकूं कवीश्वर कहै है। तथापि
सो कवि नहीं है किंतु कुकवि है। इस कथन तें विषयी द्वेषी औ दोषदर्शी पुरुषन
के स्वभाव का सूचन किया है॥—इस कथन का भाव यह है—यह विपर्यय आदिक
जो मेरी काव्य है सो बाँचिके सुनिके वा पढिके अर्थ ग्रहण करनेवाला कोई कवि
(चतुर) निकलैगा। सब कविन तें याका अर्थ नहीं होवैगा। जैसे जो शुक की न्याई
कवि है सो श्रद्धावान होने तें जितना गुरुमुखद्वारा पढ़ैगा तितना ही ग्रहण करि
लेवैगा। कोकिला की न्याई जो कवि है सो पक्षपात रहित होने तें न अपेक्षा करैगा
न तो उपेक्षा करैगा। सारो की न्याई जो कवि है सो तौ रहस्याभिलाषी होने तें यह
सुनते ही यामें लीन होइ जायगा। सारस की न्याई जो कवि है सो ज्ञानी होने तें
सम्यक् प्रकार तें अंगीकार करिके अंतर में वासना-रहित रहैगा। हस की न्याई जो
कवि है सो मुमुक्षु होने तें विवेक बुद्धि करि सारासार विचार करैगा। औ जो काक
की न्याई कवि है सो विषयी औ द्वेषी होने तें शीघ्र ही दोष कू ग्रहण करैगा॥३०॥

सुन्दरानन्दी टीका—इस छंद में विपर्यय वाक्य के अभाव से विशेष टीका
अपेक्षित नहीं है॥ ३०॥

नष्ट होंहि द्विज भ्रष्ट क्रिया करि कष्ट किये नहिं पावै ठौर।
महिमा सकल गई तिनि केरी रहत पगन तर सब सिर मौर ॥
जित तित फिरहिं नहीं कछु आदर तिनकौं कोउन घालै कौर।
सुन्दरदास कहै समुझावै ऐसी कोऊ करौ मति और ॥ ३१ ॥

ह० लि० १— २ टीका—अब आगे शुद्ध क्या अर्थ है अध्यात्मपक्ष में। अति उत्तम जीव सोई द्विज जो यो जीव द्विज है सो कष्ट-क्रिया न म वेदोक्त शुद्ध क्रिया आचरण धारण कर्‌या विना भ्रष्ट होय जाय ता शुद्ध-क्रिया विना अर्थात् मननतें ही वहिर्मुख क्रिया कर्‌या तैं ठौर नाम सुख नहीं पावै अर्थात् ता क्रिया विना नीच जोनी को अधिकारी हाय अर्थात् सुखी नहीं होय।—ता क्रिया विना ताको सर्व प्रभाव गयो अरु ता प्रभाव विना सर्व-शिरोमणि है तो पाणि सर्वाधीन सर्व काम-क्रोधादि विकार सुख-दुःखां के आधीन रहै है।—सर्वत्र सर्वलोकां में सर्वजोनी में वा सर्व घरां में जहां-तहां फिरै ता पाणि कोई स्थान में आदर नहीं पावै धर्म रहित पणां सां अरु तिनको कोई भी कछु मांग्यो दे नहीं कौर नाम कोवका मात्र भी नहीं देवै।—ऐसी नाम शरणां धर्म को त्याग कोई भी मतिकरो शुभ-धर्म का त्याग में सर्व दुःख है धारण में सर्व सुख है ॥ ३१ ॥

पीताम्बरी टीका—जीवरूपी मानो द्विज कहिये जो ब्राह्मण है। सो अपने स्वरूप के विस्मरण-रूप भ्रष्टक्रिया करि नष्ट होय। कहिये अपने सर्वाधिष्ठानपने कूं छांडिके संसारी (जीव) भाव कूं प्राप्त होवै है। सो पीछे अनेक बहिरंग-साधनरूप कष्ट कूं किये भी ठौर कहिये "मैं कर्त्ताभोक्ता संसारी हूं" इस भावकूं छोडिके ब्रह्मस्वरूप करि स्थिति कूं पावै नहीं।—तिनकेरी कहिये जीवरूप ब्राह्मण की परमेश्वर-रूप करि ब्रह्मादिक की स्तुति औ पूजा की विषयता-रूप जो पूर्व महिमा थी। सो सकल गई। काहेतें, वास्तव परमात्मा होने तें सब शिरमौर कहिये सर्व का शिरोमणि-रूप है। सो पगन तर रहत कहिये सर्वदेव आदिकन के पाद के तले दीन की न्याईं दूंकड़ होइके स्थित भयो है।—जित तित कहिये चौरासी-रूप योनि-रूप पराये (पंचभूतन) के सदन में फिरै है। परन्तु कहूं भी स्वस्वरूपस्थिति-जन्य स्वानन्दता-रूप कछु आदर
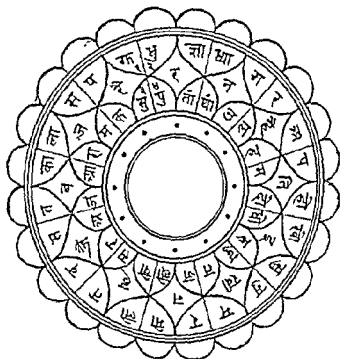
Engraved & printed by — *Gaya Art Press, Cal*

(१४) कंकण बन्ध दूसरा २

डुमिला छन्द

गुर ज्ञान गहै अति होइ सुखी, मन मोह तजै सब काज सरै ।
धुर ध्यान रहै पति सोइ मुनी, रन छोह बजै तब लाज परै ॥
सुर तान उहै हति होइ रुनी, तन छोह सजै अब आज मरै ।
पुर थान लहै मति धोइ दुखी, जन बोह रजै जब राज करै ॥१४॥

—o—

[इसके पढ़ने की विधि सामने पृष्ठ पर देखें]

कंकण बन्ध (२)

पढ़ने की विधिः—

जैसी कंकण-बंध प्रथम के पढ़ने की विधि है वैसी ही इसकी है। उसही को संक्षेप से देते हैं। छन्द के प्रत्येक चरण में बारह शब्द दो २ अक्षरों के हैं। चारों चरणों के किसी भी संख्या के शब्दों में दूसरा अक्षर एक ही है। कंकण में की ऊपर नीचे बड़ी छोटी सब पखड़ियों (पत्तियों) के दो २ टुकड़े हैं पिछले दो और पहिले दो यों चार २ टुकड़ो से एक २ चौकोर सा घर घिरा हुआ है। प्रत्येक ऐसे चौकोर घर का अक्षर चार बेर पढ़ा जाता है। चारों चरणों के प्रथम शब्दों के प्रथम (आद्य) अक्षर—गु-धु-सु-पु पखड़ियों के टुकड़ों में पास २ हैं। इन पर चरणों के प्रथम अक्षर होने से १-२-३-४ के अंक लगा दिये हैं। उक्त चारों आद्य अक्षर क्रम से इनके आगे पासवाले चौकोर घर के र अक्षर के साथ पढ़े जायगे। इसही प्रकार आगे के शब्द क्रमश छन्द वार पढ़े जायगे।- (१) प्रथम चरण में गु प्रथमाक्षर को चौकोर घर के र अक्षर के साथ पढ़ें। इसी तरह आगे ग्यारह शब्द इस प्रथम चरण के पढ़ें। (२) २ रे चरण में धु अक्षर के साथ उसही र अक्षर को साथ पढ़कर आगे के ११ शब्दों को भी उसही तरह पढ़ें। (३) ३ रे चरण में सु प्रथम अक्षर को उसही र के साथ पढ़कर आगे के शब्द पढ़ें। (४) ४ थे में पु को र के साथ और आगे वैसे ही॥

—:x:—

शास्त्र वेद पुरान पढै किनि पुनि व्याकरन पढै जे कोइ।
संध्या करै गहै पट कर्म हि गुन अरु काल विचारै सोइ॥
रासि काम तबही धनि आवै मन मैं सब तजि रापै दोइ।
सुन्दरदास कहै सुनि पंडित राम नाम बिन मुक्त न होइ॥ ३२॥

॥ इति विपर्यय शब्द को अंग॥ २२॥

मिलै नहीं। औ तिनकूं कोउ इष्टदेवादिक भी स्वकर्मरूप ग्रास बिना कौर कहिये एक कवल भी घालै कहिये माग्यो न देवै।—सुंदरदासजी कहिके समुझावै हैं कि—ऐसी कहिये स्वरूप के विस्मरण-रूप भ्रष्ट क्रिया और कोऊ पुरुष भी मति करो। किन्तु विचार आदिके जिस किस प्रकार करि सदा स्वरूप में ही रत रहो॥ ३१॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—इसमें विपर्यय शब्द न होने से अन्य टीका टिप्पण अपेक्षा नहीं रखता। जो विद्वानों की ऊपर टीका दी है अलम् है॥ ३१॥

ह० लि० १-२ टीकाः—शास्त्र न्याय मीमांसादि ६। वेद ऋग्यजुरादि ४। पुराण भागवतादि १८। व्याकरण पाणिन्यादि ९। इन सबन को जे कोई पढ़ै।—संध्या नित्य नियम। षट्कर्म वर्णाश्रमों का भिन्न भिन्न कर्म हैं तथा ब्राह्मणों का यजन अध्यापनादि। गुने सत्वादि गुण। कालभूतादि। इन सबन को बिचारे नाम यथायोग्य शुभ-कर्मन कौं करै।—सर्व शुभकर्म कर्यां यथायोग्य सर्व ही फल देवै हैं परि साक्षात्कार कार्य तो तबही सिद्ध होवैगो जब सर्व तज अरु रा मो दोय अक्षर अखंड हृदय में धारैगो तब।—रामनाम सर्व को सिद्धांत शिरोमणि है जीवन्मुक्ति कल्याण सुख को कर्त्ता यही है सो याही को निश्चै करि निरंतर अखंड धारणों राखो॥ ३२॥ राम नाम बिन मुक्ति नहीं होइ। अत्र प्रमाणं। (१) तपतु तापैः प्रपततु पर्वतात् दटतु तीर्थानि पठतु चागमान्। यजतु यागैर्विवदतु योगैर्हरिं बिना नैव मृतिं तरति। इति भागवते। (२) आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः। इद-मेव समुत्पन्नं ध्येयो नारायणो हरिः। इति भारते व्यासः। (३) किं तात वेदागम-शास्त्र विस्तरैं स्तीर्थै रनेकै रपि किं प्रयोजनम्। यद्यात्मनो वांछसि मोक्षकारणं गोविंद

गोविंद इदं स्फुटं रट। इति विष्णुरहस्ये प्रल्हाद वाक्यं। (४) अनन्य चेताः सततं यो माम् स्मरति नित्यशः तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः। १। समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। ये भजंति तु माम् भक्त्या मयिते तेषु चाप्यहं। इति भगवद्गीतायां श्रीकृष्णवचनम्॥ इति विपर्यय अंगकी टीका सम्पूर्ण ॥३२॥२२॥

पीताम्बरी टीकाः—"अब इस अंग की समाप्ति में पूर्वोक्त ज्ञान विषे जो असमर्थ होय ताकूं परमेश्वर की उपासना-रूप साधन कर्तव्य है। ऐसे दिखावते हुये अपनी (दादूजी की) संप्रदाय के इष्ट जो राम (चंन्द्र) हैं। ताके स्मरणपूर्वक गोप्य अर्थ करि शिरोमणि सिद्धांत कूं दिखावै हैं:—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा औ वेदांत-ये जो षट्शास्त्र हैं रु कहिये अरु ऋग, यजु, साम औ अथर्वण ये चारि जो वेद हैं। ब्रह्म, पद्म, वैष्णव, शैव, भागवत, नारदीय, मार्कंडेय, आग्नेय, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, लैंग, वाराह, स्कंध, वामन, कौर्म्य, मात्स्य, गारुड, औ ब्रह्मांड ये जो अष्टादश पुराण हैं तिनकूं कोई पुरुष किन कहिये क्यूं न पढ़े! पुनि पाणिनी आदिक जो नव व्याकरण हैं तिनकूं ले कोई पढ़ै।—प्रातःकाल, मध्यान्हकाल औ सायंकाल तीन समय में संध्या गायत्री कूं करै। औ स्नान, जप, होम आदिक षट्कर्महि गहै कहिये जो आचरै। सोइ देश, काल, कर्म आगम औ आहारादिक की सात्विकता राजसता औ तामसता में उपयोगी सत्वादि गुनन कूं अरु काल कहिये काल-करि उपलक्षित देशादिक कूं। अथवा शांत, घोर औ मूलवृत्तिरूप गुण औ कर्म में उपयोगी औ अनुपयोगी शुभाशुभ काल कूं जो विचारै।—यद्यपि यह पूर्वोक्त आचार भी श्रेष्ठ है औ परंपरा करि ज्ञान द्वारा मोक्ष का कारण है तथापि सो साक्षात् मोक्ष का वा ज्ञान का साधन नहीं होने तैं, तिस तैं पूर्ण कार्य होवै नहीं। औ सीरा कहिये अतिशय करि श्रेष्ट काम तबै बनि आवै कहिये सिद्ध होवै जब मन में सब पूर्वोक्त साधन आग्रह तजि कहिये छोड़िके "राम" इन दोइ अक्षरन कूं हृदय में राखै कहिये तदाकार होयके रहै। यह मोक्ष-साधन की प्राप्ति का निकट द्वार है।—सुन्दरदासजी कहैं हैं कि हे पंडित! सुन! सर्व शास्त्र का सिद्धांत यह है:—राम नाम बिनु मुक्ति न होइ। याका गोप्य अर्थ यह है:—ब्रह्म औ आत्मा की एकता के जाननेवाले योगी तदाकार वृत्ति करि जिस सत्य आनंद चिदात्मा विषै रमते हैं। सो चिद्रूप पर-

अथ अपने भाव को अंग ॥ २३ ॥

इन्दव

एकहि आपुनौ भाव जहां तहां बुद्धि के योग तें विभ्रम भासै।
जौ यह क्रूर तौ क्रूर उहां पुनि याके पिजैं तें उहां पुनि पासै॥
जौ यह साधु तौ साधु उहां पुनि याके हंसे तें उहां पुनि हासै।
जैसौ ई आपु करै मुख सुंदर तैसो ई दर्पन मांहि प्रकासै॥ १॥

मनहर

जैसें स्वान कांच के सदन मध्य देषि और
भूंकि भूंकि मरत करत अभिमान जू।

ब्रह्म राम कहिये है। तिस राम के नाम कहिये प्रसिद्धि अर्थे यह जो साक्षात्कार तिस विना मुक्ति होवै नहीं। यातें राम के साक्षात्कार अर्थ कूं भजै ॥ ॥ ३२" ॥

सुन्दरानन्दी टीका:—जो अर्थ उक्त टीकाओं मे दिया है सो अपने २ स्थान में उपयुक्त और सगत है। इसमें विपर्यय शब्द नहीं है। इस कारण अन्य टीका टिप्पण की कुछ आवश्यकता नहीं है ॥ ३२ ॥ इस २२ वें अंग की टीका को स्वयम् ग्रन्थकर्त्ता के विशिष्ट वचन पर समाप्त करते हैं:—"सुंदर सब उलटी कही, समुझैं संत सुजांन। और न जानैं बापुरे, भरे बहुत अज्ञांन" । साखी ५० ॥

॥ इति विपर्यय शब्द के अंग २२ की सुन्दरानन्दी टीका समाप्त ॥ २२ ॥

---

(१) आपनो भाव=आत्मानुभव की प्राप्ति के समय ज्ञेय ज्ञाता एक हो जाते हैं अथवा भ्रमज्ञान निवृत्त होता है तब 'युष्मद' और 'अस्मद' में कुछ भेद नहीं रहता है। आत्मा से भिन्न अन्य कोई पदार्थ नहीं। 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म नेह नानास्तिकिंचन'—यह सब जगत् का पसारा निश्चय करके ब्रह्म है और जो नानारूप सृष्टि में भासते हैं सो अन्य कुछ नहीं हैं आत्मा का ही विकास मात्र हैं।

जैसैं गज फटिक शिला सौं अरि तोरै दंत
जैसैं सिंघ कूप मांहि उझकि भुलान जू॥
जैसैं कोऊ फेरी पात फिरत देषै जगत
तैसैं ही सुन्दर सब तेरौ ई अज्ञान जू।
आप ही कौ भ्रम सु तौ दूसरौ दिषाई देत
आप कौं बिचारैं कोऊ दूसरौ न आंन जू॥ २॥

नीच ऊंच बुरौ भलौ सज्जन दुर्जन पुनि
पंडित मूरष शत्रु मित्र रंक राव है।
मान अपमान पुन्य पाप सुख दुख दोऊ
स्वरग नरक बंध मोक्ष हू कौ चाव है॥
देवता असुर भूत प्रेत कीट कुञ्जर ऊ
पशु अरु पक्षी स्वान सूकर बिलाव है।
सुन्दर कहत यह एकई अनेक रूप
जोई कछु देषिये सु आपनौ ई भाव है॥ ३॥

याही कै जगत काम याही कै जगत क्रोध
याही कै जगत लोभ याही मोह माता है।
याकौ याही बैरी होत याकौ याही मित्र होत
याकौ याही सुख देत याही दुख दाता है॥
याही ब्रह्मा याही रुद्र याही विष्णु देषियत
याही देव दैत्य यक्ष सकल संघाता है।
याही कौ प्रभाव सु तौ याही कौं दिषाई देत
सुन्दर कहत याही आतमा बिख्याता है॥ ४॥

---

(२) अरि=अङ्कुश (दांत को)।

(४) जगत=जागता है, उत्पन्न होता है। संघाता=संघात, समूह—"संघातश्चेतना धृतिः" (गीता)। विख्याता=विख्यात, प्रमाणित।

याही कौ तौ भाव याकौं शंक उपजावत है
याही कौ तौ भाव याहि निःशंक करतु है ।
याही कौ तौ भाव याकौं भूत प्रेत होइ लागौ
याही कौ तौ भाव याकी कुमति हरतु है ॥
याही कौ तौ भाव याकौं वायु कौ बघूरा करै
याही कौ तौ भाव याहि थिर कैं धरतु है ।
याही कौ तौ भाव याकौं धार में बहाइ देत
सुन्दर याही कौ भाव याहि लै तरतु है ॥ ५ ॥

आपु ही कौ भाव सु तौ आपु कौं प्रगट होत
आपु ही आरोप करि आपु मन लायौ है ।
देवी अन्य देव कोऊ भाव कै उपासै ताहि
कहै मैं तौ पुत्र धन इन ही तें पायौ है ॥
जैसैं स्वान हाड कौं चचौरि करि मानै मोद
आपु ही कौ मुख फोरि लोहू चाटि पायौ है ।
तैसैं ही सुन्दर यह आपु ही चेतनि आहि
आपुने अज्ञान करि और सौं बंधायौ है ॥ ६ ॥

इन्दव

नीचै तें नीचै रु ऊंचे तें ऊपरि आगै तें आगै है पीछै तें पीछौ ।
दूरि तें दूर नजीक तें नीरैहि आडे सें आडौ है तीछे तें तीछौ ॥
बाहिर भीतर भीतर बाहिर ज्यौं कोउ जानै त्यौंही करि ईछौ ।
जैसौ ही आपुनौ भाव है सुन्दर तैसौ हि है दग पोलि कै बीछौ ॥ ७ ॥
आपुनै.भाव.नें.सूर.सौ.रोसत. आपुनै.भाव.नें.चन्द्र.सौ.भासै.।.
आपुनै भाव सें तार अनन्त जु आपुने भाव तें विद्युलता सै ॥

---

(५) थिर कैं=थिर (स्थिर) करके ।

(७) ईछौ='ईक्षतु' का अपभ्रंश=देखै । बीछौ=सं० 'वीक्षतु' का अपभ्रंश=देखै

आपुने भाव तें नूर है तेज है आपुने भाव तें जोति प्रकासै ।
तैसौ हि ताहि दिपावत सुन्दर जैसौ हि होत है जाहि कौ आसै ॥ ८ ॥
आपुने भाव तें सेवक साहिब आपुने भाव सबै कोउ ध्यावै ।
आपुने भाव तें अन्य उपासत आपुने भाव तें भक्तहु गावै ॥
आपुने भाव तें दुष्ट संघारत आपुने भाव तें बाहर आवै ।
जैसौ हि आपुनौ भाव है सुन्दर ताहि कौं तैसौ हि होइ दिपावै ॥ ६ ॥
आपुने भाव तें दूर बतावत आपुने भाव नजीक बषांन्यौं ।
आपुने भाव तें दूध पिवायौ जु आपुने भाव तें बीठल जांन्यौं ॥
आपुने भाव तें चारि भुजा पुनि आपुने भाव तें सींग सौ मांन्यौं ।
सुन्दर आपुने भाव कौ कारन आपुहि पूरन ब्रह्म पिछान्यौं ॥ १० ॥
आपुने भाव तें होइ उदास जु आपुने भाव तें प्रेम सौं रोवै ।
आपुने भाव मिल्यौ पुनि जानत आपुने भाव तें अन्तर जोवै ॥
आपुने भाव रहै नित जागत आपुने भाव समाधि मैं सोवै ।
सुन्दर जैसौ ई भाव है आपुनौ तैसौ ई आपु तहां तहां होवै ॥ ११ ॥
आपुने भाव तें भूलि पर्‌यौ भ्रम देह स्वरूप भयौ अभिमानी ।
आपुने भाव तें चंचलता अति आपुने भाव तें बुद्धि थिरानी ॥
आपुने भाव तें आप बिसारत आपुने भाव तें आतमज्ञानी ।
सुन्दर जैसौ हि भाव है आपुनौ तैसौ हि होइ गयौ यह प्रानी ॥ १२ ॥

॥ इति अपने भाव कौ अंग ॥ २३ ॥

---

(८) तार=तारे । विद्युल्ता=बिजली का समूह । आसै=आसपास, निकट, समान । वा आश्रय । वा आशय ।

(१०) बीठलजान्यौं=भक्त की कथा से संबंध है जिसके आग्रह से भगवान ने प्रत्यक्ष दूध पिया था ।

(११) जोवै=देखै ।

(१२) बुद्धि थिरानी=बुद्धि स्थिर हुई वा की । स्थितप्रज्ञ हुआ ।

अथ स्वरूप विस्मरण को अंग ॥ २४ ॥

इन्दव

जा घट की उनहार है जैसो हि ता घट चेतनि तैसो हि दीसै।
हाथी की देह में हाथी सौ मानत चींटी की देह में चींटी कीरी सै ॥
सिंघ की देह में सिंघ सौ मानत कीस की देह में मानत कीसै।
जैसि उपाधि भई जहां सुन्दर तैसौ हि होइ रह्यौ नखसीसै ॥ १ ।
जैसैं हि पावक काठ के योग तें काठ सौ होइ रह्यौ इक ठौरा।
दीरघ काठ में दीरघ लागत चौरेसे काठ में लागत चौरा ॥
आपुनौ रूप प्रकाश करै जब जारि करै तब और को औरा।
तैसैं हि सुन्दर चेतनि आपु सु आपु कौं नांहिं न जानत बौरा ॥ २ ।

मनहर (प्रश्न)

अजर अमर अविगत अविनाशी अज
कहत सकल जन श्रुति अवगाहे तें।
निर्गुन निर्मल अति शुद्ध निरबन्ध नित
ऐसोउ कहत और ग्रन्थनि के थाहे तें॥

(अंग २४)—(१) चींटी कीरी सै=यहां चींटी कीरी (कीड़ी) ऐसा पढ़ें, अथवा चींटी की रीसैं-ऐसा भी पढ़ सकते हैं। परन्तु रीसैं से अर्थ की पूर्ण संगति न होगी। नखसीसै=खास, विशिष्ट।

(२) बौरा=बावला, वा बावला हो गया। अर्थात् अपने स्वस्वरूप को भूल-गया और जो पुद्गल धार लिया उसही को आपा मान लिया—अध्यास से भ्रमज्ञान में प्रविष्ट हो गया।

(३) और (४)—३ रे छंद में प्रश्न करता है और ४ में उसका उत्तर देता है—कि चेतन ब्रह्म सर्वज्ञ निर्विकार निर्भ्रान्त है फिर उसही को स्वस्वभाव की

व्यापक अखण्ड एक रस परिपूरन है
सुन्दर सकल रमि रह्यौ ब्रह्म ताहे तें।
सहज सदा उदोत याही तें अचम्भा होत
"आपुही कौं आपु भूलि गयौ सु तौ काहे तें" ॥ ३ ॥

जैसें मीन मांस कौं निगलि जात लोभ लागि
लोह कौ कंटक नहीं जानत उमाहे तें।
जैसें कपि गागरि में मूठी बांधि रापै सठ
छाडि नहीं देत सु तौ स्वाद ही के वाहे तें॥
जैसें बक नालियर चूंच मारि लटकत
सुन्दर सहत दुख देषि याही लाहे तें।
देह कौ संयोग पाइ इन्द्रिनि कै वसि पर्यौ
"आपुही कौं आपु भूलि गयौ सुख चाहे तें" ॥ ४।

इन्दव

ज्यौं कोउ मद्य पिये अति छाकत नांहि कछू सुधि है भ्रम ऐसौ।
ज्यौं कोउ पाइ रहै ठग मूरि हि जानै नहीं कछु कारन तैसौ॥
ज्यौं कोउ वालक शंकउ पावत कंपि उठै अरु मानत भैसौ।
तैसें हि सुन्दर आपुकौं भूलि सु देषहु चेतनि मानत कैसौ॥ ५॥

विस्मृति किस कारण से होगई। तो उसका उत्तर देते हैं कि—यह जीवात्मा देह में प्रवेशकर इन्द्रियों के सुख में मग्न होकर निजरूप को भूल गया, उस इन्द्रिय सुख से यह दशा हुई। (३)—ताहे तें=तिस हित (संलग्नता वा कारण) से। (४) लाहे तें=लभ से, लोभ से। आगे के छदों में भी जो वर्णन है वह भी मानों इसही प्रश्न के उत्तर में है।

(५) ठग मूरि=ठग की दी हुई (जहर लगी) मूली या कंद। उसका असर होने पर ठगा जाय। शंकउ=शंका या भय की कल्पना से कुछ का कुछ मान ले। बचों को हाऊ, हावू आदि कह डराते हैं।

ज्यौं कोउ कूप मैं झांकि अलापत वैसी हि भांति सु कूप अलापै।
ज्यौं जल हालत है लगि पौंन कहै भ्रम तें प्रतिबिंब हि कांपै॥
देह के प्रान के जे मन के कृत मांनत है सब मोहि कौं व्यापै।
सुन्दर पेच पर्‌यौ अतिसै करि "भूलि गयौ भ्रम तें भ्रमि आपै"॥ ६॥
ज्यौं द्विज कोउक छाडि महातम शूद्र भयौ करि आपु कौं मांन्यौं।
ज्यौं कोउ भूपति सोवत सेज सु रंक भयौ सुपने मंहि जान्यौं॥
ज्यौं कोउ रूप की रासि अतित कुरूप कहै भ्रम भैंचक आंन्यौं।
तैसें हि सुन्दर देह सौं ह्वै करि या भ्रम आपुहि आपु भुलांन्यौं॥ ७॥
एकहि व्यापक वस्तु निरंतर विश्व नहीं यह ब्रह्म बिलासै।
ज्यौं नट मंत्रनि सौं दिठ बांधत है कछु औरई औरई भासै॥
ज्यौं रजनी मंहि बूझि परै नहिं जौं लगि सूरज नांहि प्रकासै।
त्यौं यह आपुहि आपु न जानत सुन्दर ह्वै रह्यौ सुन्दरदासै॥ ८॥

मनहर

इन्द्रिनि कौ प्रेरि पुनि इन्द्रिनि के पीछै पर्‌यौ
आपुनि अविद्या करि आपु तनु गह्यौ है।
जोई जोई देह कौं संकट कछु परै आइ
सोई सोई मानें आपु यातें दुख सह्यौ है॥
भ्रमत भ्रमत कहुं भ्रम कौ न आवै वोर
चिरकाल बीत्यौ पै स्वरूप कौं न लह्यौ है।

---

(६) देह के कृत्य मोहि कौं व्यापै—आत्मा को देह से पृथक् न समझ कर देह को ही आप मान लेता है। यही तो अध्यास है। (७) महातम=ब्राह्मणपने का माहात्म्य, गौरव, बड़प्पन। अतित=अत्यंत। भैंचक=अचंभा।

(८) विश्व नहीं ...सुंदरदासजी इस सृष्टि को ब्रह्म का एक विलास वा लीला, खेल-तमाशा मानते हैं। सृष्टि का समवायि वा निमित्त कारण वही है। अपने आपही में इसका पसारा करता है और आपही में लय कर लेता है।

सुन्दर कहत देषौ भ्रम की प्रबलताई
"भूतनि मैं भूत मिलि भूत सौ ह्वै रह्यौ है" ॥ ९ ॥

जैसैं शुक नलिका न छाडि देत चुंगल तें
जानै काहू औरै मोहि बांधि लटकायौ है।
जैसैं कपि गुंजनि कौ ढेर करि मानै आगि
आगै धरि तापै कछू शीत न गमायौ है॥
जैसैं कोऊ दिशा भूलि जात हु तौ पूरव कौं
उलटि अपूठौ फेरि पच्छिम कौं आयौ है।
तैसें हि सुन्दर सब आपु ही कों भ्रम भयौ
"आपु ही कौं भूलि करि आपु ही बंधायौ है" ॥ १० ॥

जैसैं कोऊ कामिनी के हिये पर चूंपै बाल
सुपने मैं कहै मेरौ पुत्र काहू हयौ है।
जैसैं कोऊ पुरुष कैं कण्ठ विषै हुती मनि
ढूंढत फिरत कछु ऐसौ भ्रम भयौ है॥
जैसैं कोऊ वायु करि बावरौ बकत डोलै
औरकी औरई कहै सुधि भूलि गयौ है।
तैसें ही सुन्दर निज रूप कौं बिसारि देत
"ऐसौ भ्रम आपु ही कौं आपु करि लयौ है" ॥ ११ ॥

---

(९) शकट=सकट, कष्ट। स्वरूप को न लह्यो है=वेदांत मत से ज्ञान के उदय से भ्रमका नाश होते ही स्वस्वरूप अनुभव होते ही ब्रह्मत्व की अवस्था प्राप्त हो जाती है।

(१०) कपि-गुंजन···—कहते हैं कि वन में बदर चिरमठी का ढेर लगा लेते हैं और उनको अग्नि समझकर उनसे शीत की निवृत्ति मानते हैं, लालरंग आग का सा देखकर। दिशा भूलि जात— चित्त भ्रम से दिशा-भूल हो जाता है। पूर्व को पश्चिम, उत्तर को दक्षिण समझ बैठता है।

(११) हयो है=हर्यो है, हरणकर ले गया है।

दीन हीन छीन सौ ह्वै जात छिन छिन मांहि
देह के संजोग पराधीन सौ रहतु है।
शीत लगै घाम लगै भूप लगै प्यास लगै
शोक मोह मांनि अति पेद कौं लहतु है॥
अन्ध भयौ पंगु भयौ मूक हौं वधिर भयौ
ऐसी मांनि मांनि भ्रम नदी में वहतु है।
सुन्दर अधिक मोहि याही तें अचम्भौ आहि
"भूलि कैं स्वरूप कौं अनाथ सौ कहतु है" ॥ १२ ॥
जैसें कोऊ सुपने में कहै मैं तौ ऊंट भयौ
जागि करि देषै वहै मनुष स्वरूप है।
जैसें कोऊ राजा पुनि सोइ कै भिषारी होइ
आंषि उघरे तें महा भूपति कौ भूप है॥
जैसें कोऊ भैंचक सौ कहै मेरौ सिर कहां
भैंचक गये तें जानै सिर तौ तद्रूप है।
तैसें हि सुन्दर यह भ्रम करि भूलौ आपु
"भ्रम कै गये तें यह आतमा अनूप है" ॥ १३ ॥
जैसें काहू पोसती की पाग परी भूमि पर
हाथ लैकै कहै एक पाग मैं तौ पाई है।
जैसें शेषचिली हू मनोरथनि कीयौ घर
कहै मेरौ घर गयौ गागरि गिराई है॥
जैसें काहू भूत लग्यौ बकत है आकवाक
सुधि सब दूरि भई औरै मति आई है।

---

(१२) देह के संजोग—आश्चर्य यही है कि आत्मा चेतन है परन्तु असंग है और शरीर जड़ है। फिर सुख दुःखादिकों का अनुभव कौन करता है। जीवात्मा देह ही को अपना स्वरूप मान लेता है यही तो अज्ञान वा भ्रम का फल है।

(१३) भूलौ=भूल्यो, भूल गया।

तैसे हि सुन्दर यह भ्रम करि भूलौ आपु
"भ्रम के गये तें यह आतमा सदाई है" ॥ १४ ॥

आपु ही चेतन्य यह इन्द्रिनि चेतन्य करि
आपु ही मगन होइ आनन्द बढायौ है।
जैसैं नर शीत काल सोवत निहाली बोढि
आपु ही तपत करि आपु सुख पायौ है॥
जैसैं बाल लकरी को घोरा करि डांकि चढै
आपु असवार होइ आपु ही कुदायौ है।
तैसें ही सुन्दर यह जड़ कौ संयोग पाइ
"पर सुख मानि मानि आपु ही भुलायौ है" ॥ १५ ॥

कहूं भूल्यौ कामरत कहूं भूल्यौ साधि जत
कहूं भूल्यौ गृह मध्य कहूं वनवासी है।
कहूं भूल्यौ नीच जानि कहूं भूल्यौ ऊंच मानि
कहूं भूल्यौ मोह बांधि कहूं तौ उदासी है॥
कहूं भूल्यौ मौंन धरि कहूं बकवाद करि
कहूं भूल्यौ मक्के आइ कहूं भूल्यौ कासी है।

---

(१४) शेपचिल्ली—लाहोर में इस नाम का फकीर हुआ बताते हैं। यहां उस कहानी से प्रयोजन है जो मजदूर तेल का घड़ा सिर पर लें विचारता है कि इसके उत्तरोत्तर लाभ से मैं सम्पन्न हो जाऊंगा। फिर विवाह करूंगा, पुत्र पौत्रादि होंगे। बुढ़ापे में पौत्र भोजन को बुलाने को आवैगा तब मैं गर्दन हिलाऊंगा। उस गर्दन का हिलना था कि घड़ा गिरकर फूट गया। मालिक ने कहा घड़ा फूट गया, इस मजदूर ने कहा मेरा घर ही गिर पड़ा।

(१५) निहाली=तोशक, सौड़, मिरजई। डांकि चढै=कूदकर उसपर यों मानो चढ़े हो घोड़े पर। जड़ कौ संयोग पाइ=वेदांत मत में जड़ और चेतन का भेद समझना ही मुख्य है और इस ही को विवेक कहते हैं। शरीरादि सब जड़ हैं, आत्मा

सुन्दर कहत अहंकार ही तें भूल्यौ आप
एक आवै रोज अरु दूजै बडी हांसी है ॥ १६ ॥

मैं बहुत सुख पायो मैं बहुत दुख पायो
मैं अनन्त पुन्य कीये मेरे पोतै पाप है।
मैं कुलीन विद्यावन्त पण्डित प्रवीन महा
मैं तौ मूढ अकुलीन हीन मेरौ बाप है॥
मैं हौं राजा मेरी आंन फिरै चहुं चक्र माहिं
मैं तौ रंक द्रव्यहीन मोहि तौ सन्ताप है॥
सुन्दर कहत अहंकार ही तें जीव भयौ
अहंकार गये यह एक ब्रह्म आप है॥ १७ ॥

देह ई सुपुष्ट लगै देह ही दूबरी लगै
देह ही कौं शीत लगै देह ही कौं तावरौ।
देह ही कौं तीर लगै देह कौं तुपक लगै
देह कौं कृपान लगै देह ही कौं घावरौ॥
देह ही स्वरूप लगै देह ही कुरूप लगै
देह ही जोबन लगै देह वृद्ध डावरौ।
देह ही सौं बांधि हेत आपु विषै मांनि लेत
सुन्दर कहत ऐसौ बुद्धि हीन बावरौ॥ १८ ॥

ही चेतन है। जड़ में चेतन की भ्रांति हो मिथ्या ज्ञान है सो ही बंधन का कारण है।

(१६) एक आवै हांसी वा रोज=हाय आत्मा को ऐसा अज्ञान क्यों यही रोना। उधर यही अज्ञान हास्यास्पद है।

(१७) अहंकार—यहां उस अज्ञान वा भ्रम का कारण अहंकार कहा है। अहकार महत्तत्व से है। यही सब सृष्टि का मूल आदि तत्व है। यहां अस्मिता से भी प्रयोजन है—मैं ऐसा, मैं यू···इत्यादि।

(१८) आपु विषै मानिलेत—देह जड़ है उसमें क्रिया नहीं। चेतन अकर्त्ता है

इन्दव

आपु हि चेतनि ब्रह्म अखंडित सो भ्रम तें कछु अन्य परेपै।
ढूढत ताहि फिरै जित ही तित साधत योग बनावत भेषै॥
औरउ कष्ट करै अतिसै करि प्रत्यक्ष आतम तत्त्व न पेषै।
सुन्दर भूलि गयौ निज रूप हि "है कर कंकण दर्पण देषै" ॥ १९॥

सूत्र गरे महि मेलि भयौ द्विज ब्राह्मण ह्वै करि ब्रह्म न जान्यौं।
क्षत्रिय ह्वै करि क्षत्र धर्‍यौ सिर है गय पैदल सौं मन मान्यौं॥
वैश्य भयौ वपु की वय देषत झूठ प्रपंच वनिज्य हि ठान्यौं।
शूद्र भयौ मिलि शूद्र शरीर हि सुन्दर आपु नहीं पहिचान्यौं॥ २०

ज्यौं रवि कौ रवि ढूंढत है कछु तप्ति मिलै तनु शीत गवाऊं।
ज्यौं शशि कौं शशि चाहत है पुनि शीतल ह्वै करि तप्ति बुझाऊं॥
ज्यौं कोउ सानि भयें नर टेरत है घर में अपने घर जाऊं।
त्यौं यह सुन्दर भूलि स्वरूप हि "ब्रह्म कहै कब ब्रह्म हि पाऊं" ॥ २१

आपु न देषत है अपनौ मुख दर्पन काट लग्यौ अति थूला।
ज्यौं दृग देषन तें रहिजात भयौ जब ही पुनरी परि फूला॥
छाइ अज्ञान रह्यौ अति अन्तर जानि सकै नहिं आतम मूला।
सुन्दर यौं उपज्यौ मन कै मल "ज्ञान बिना निज रूप हि भूला" ॥ २२॥

उसमें भी क्रिया नहीं। इनके सम्बन्ध की ग्रंथी में अहंकार बनता है उसही से अज्ञान प्रगट कर यह उलटा-पलटी कर देता है।

(१९) निज अज्ञान का इन छन्दों (१९-२०-२१ आदिक २६ तक) में कैसा अच्छा वर्णन भ्रम और अज्ञान का किया है कि योगवाशिष्ट आदि ग्रन्थों में ढूंढे ही मिलै॥

(२०) है गय=हय—घोड़ा। गय—गयंद, हाथी।—

(२१) सानि—सनक, बेरागन। पाठांतर "जौं सनिपात भयें"।

(२२) काट=जंग, मैट (प्राचीन काल में दर्पण फौलाद के होते थे उनपर जं

दीन हुवौ बिललात फिरै नित इन्द्रिनि कै धस छीलक छोलै।
सिंह नहीं अपनौ बल जानत जंबुक ज्यौं जितही तित डोलै॥
चेतनता बिसराइ निरन्तर ह्वै जडता भ्रम गांठि न पोलै।
सुन्दर भूलि गयौ निज रूप हि देह स्वरूप भयौ मुख बोलै॥ २३॥

मैं सुखिया सुख सेज सुखासन है गय भूमि महा रजधांनीं।
हौं दुखिया दिन रैंनि भरौं दुख मोहि बिपत्ति परी नहीं छांनीं॥
हौं अति उत्तम जाति बडौ कुल हौं अति नीच क्रिया कुल हांनीं।
सुन्दर चेतनता न संभारत देह स्वरूप भयौ अभिमांनीं॥ २४॥

गर्भ विषै उतपत्ति भई पुनि जन्म लियौ शिशु शुद्धि न जांनीं।
बाल कुमार किशोर युवादिक वृद्ध भयें अति बुद्धि नसांनीं॥
जैसि हि भांति भई वपु की गति तैसौ हि होइ रह्यौ यह प्रांनीं।
सुन्दर चेतनता न सम्भारत देह स्वरूप भयौ अभिमांनीं॥ २५॥

ज्यौं कोउ त्याग करै अपनौ घर बाहर जाइकै भेष बनावै।
मूड मुंडाइ कै कान फराइ बिभूति लगाइ जटाउ बधावै॥
जैसोइ स्वांग करै वपु कौं पुनि तैसोइ मांनि तिसौ ह्वै जावै।
त्यौं यह सुन्दर आपु न जानत भूलि स्वरूप हि और कहावै॥ २६॥

॥ इति स्वरूप विस्मरण को अंग ॥ २४ ॥

ह दाग लगाने से साफ नहीं रहते, सैकल होनेपर साफ होते) फूला=आंख की पूतरी र छिनका दाग।

| (२३) छीलक छोलै=मुहाविरा—वृथा काम करै।

(२५) नसांनी=नष्ट हो गई।

(२६) तिसौ=तैसा।

अथ सांख्य को अंग ॥ २५ ॥

मनहर

क्षिति जल पावक पवन नभ मिलि करि
शब्द रु सपरस रूप रस गन्ध जू।
श्रोत्र त्वक चक्षु घ्राण रसना रस को ज्ञान
वाक्य पाणि पाद पायु उपस्थ हि बन्ध जू॥
मन बुद्धि चित्त अहंकार ये चौबीस तत्व
पंच विस जीव तत्व करत है धंध जू।
षड विंस कौ है ब्रह्म सुन्दर सु निहकर्म
व्यापक अखंड एक रस निरसंध जू॥ १

श्रोत्र दिक् त्वक् वायु लोचन प्रकासै रवि
नासिका अस्वनी जिह्वा वरण बखानिये।
वाक अग्नि हस्त इंद्र चरण उपेन्द्र बल
मेढ्र प्रजापति गुदा मित्र हू कौं ठानिये॥

अंग २५ वां सांख्य—इसही का उत्तर ज्ञान-समुद्र ग्रन्थ में 'सांख्ययोग' ४ था उपदेश में वर्णन है। इसकी व्याख्या आगे करते हैं।

(१) सांख मत से—५ महाभूत + ५ कर्मेन्द्रियें + ५ ज्ञानेन्द्रियें + १ मन + ५ तन्मात्राएं + १ अहंकार + १ महत्तत्व + १ प्रकृति + १ पुरुष=२४+१=२५ हैं। सांख्य-कारिका ३ री में ये आये हैं—"मूल प्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयस्सप्त। षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्नविकृतिः पुरुष" ॥ ३ ॥

अर्थात्—मूल प्रकृति १ + महत् आदि ७ (महत्तत्व, अहंकार, शब्दस्पर्श रूप रस गंध ये ५ तन्मात्राएं) + १६ पदार्थ (५ ज्ञानेंद्रियां + ५ कर्मेंद्रियां + मन+५ महाभूत)+१ पुरुष=२५ हुए। और "सांख्यसूत्र" में प्रथम अध्याय के ६० सूत्र में—"सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् । महतोऽहंकारो

मन चन्द्र बुद्धि विधि चित्त वासुदेव आहि
अहंकार रुद्र कौ प्रभाव करि मांनियें।
जाकी सत्ता पाइ सब देवता प्रकासत हैं
सुन्दर सु आतमा हि न्यारौ करि जानिये ॥ २ ॥

इन्दव

श्रोत्र सुनै दृग देषत हैं रसना रस घ्राण सुगन्ध पियारौ।
कोमलता त्वक् जानत है पुनि बोलत है मुख शब्द उचारौ॥
पानि ग्रहै पद गौन करै मल मूत्र तजै उभऊ अध द्वारौ।
जाके प्रकाश प्रकाशत हैं सब सुन्दर सोइ रहै घट न्यारौ॥ ३ ॥

बुद्धि भ्रमै मन चित्त भ्रमै अहंकार भ्रमै कहा जानत नांहीं।
श्रोत्र भ्रमै त्वक् घ्राण भ्रमै रसना दृग देषि दशौं दिश जांहीं॥
वाक् भ्रमै कर पाद भ्रमै गुद द्वार उपस्थ भ्रमै कहुं कांहीं।
तेरे भ्रमाये भ्रमै सबही गुन सुन्दर तू क्यौं भ्रमै इन मांहीं॥ ४ ॥

बुद्धि कौ बुद्धि रु चित्त कौ चित्त अहं कौ अहं मन कौ मन वोई।
नैंन कौ नैंन है बैंन कौ बैंन है कान को कान त्वचा त्वक होई॥
घ्राण कौ घ्राण है जीभ कौ जीभ है हाथ कौ हात पगौं पग वोई।
सीस कौ सीस है प्राण कौ प्राण है जीव कौ जीव है सुन्दर सोई॥५॥

मनहर (प्रश्न)

कैसैं के जगत यह रच्यौ है जगत गुरु
मो सौं कहौ प्रथम ही कौन तत्व कीनौं है।
प्रकृति कि पुरुष कि मह तत्व अहंकार
किधौं उपजाये सत रज तम तीनौं है॥

अहङ्कारात्यं च तन्मात्राण्युभयमिन्द्रिय । तन्मात्रेभ्यःस्थूलभूतानि । पुरुषः । इति पंचविंशतिर्गणः" ॥ ६० ॥ ऐसा आया है। परन्तु सुन्दरदास जी श्रीमद्भागवत्त पुराण मेंकथित सांख्य के अनुसार तथा वेदांत की छाया से जीव (पुरुष) सहित

किधौं व्योम वायु तेज आपु कै अवनि कौन
किधौं पंच विषय पसार करि लीनौं है।
किधौं दश इन्द्री किधौं अन्तहकरण कौन
सुन्दर कहत किधौं सकल विहीनौ है॥ ६॥

(उत्तर)

ब्रह्म तें पुरुष अरु प्रकृति प्रगट भई
प्रकृति तें महतत्व पुनि अहंकार है।
अहंकार हूं तें तीन गुन सत्व रज तम
तम हूं तें महाभूत विषय पसार है॥
रज हूं तें इन्द्री दश पृथक-पृथक भई
सत्व हूं तें मन आदि देवता विचार है।
ऐसें अनुक्रम करि शिष्य सौं कहत गुरु
सुन्दर सकल यह मिथ्या भ्रम जार है॥ ७॥

(प्रश्न)

मेरौ रूप भूमि है कि मेरौ रूप आपु है कि
मेरौ रूप तेज है कि मेरौ रूप पौन है।
मेरौ रूप व्योम है कि मेरौ रूप इन्द्री है कि
अंतहकरण है कि वैठौ है कि गौन है॥

---

२५ सच कहते हैं जिनमें अत करण चतुष्टय भी है। और २६ वां तत्व ब्रह्म को कहा है।—पचभि पचभिब्रह्मन्-चतुर्भिर्दशभिस्तथा। एतच्चतुर्विंशतिक गणं प्रा ग्रानिक विदु ॥ (भा० ३। २६। ११)। अंतकरण चतुष्टय माना है।

(६ और ७) शिष्य के प्रश्न के उत्तर में गुरु ने उत्तर दिया है। इसमें ब्रह्म को आदि कारण पुरुष और प्रकृति का बनाया है। यह बात सांख्य के ग्रन्थों से नहीं पाई जाती है। यह साधारण वेदांत का मत है। सांख्य में तो प्रकृति (प्रधान) को आदि कारण माना है। पुरुष चेतन असंग कहा गया है। पुरुष (जीव) असंख्य

मेरौ रूप निगुण कि अहंकार महतत्व
प्रकृति पुरुष किधौं बोलै है कि मौन है।
मेरौ रूप थूल है कि शून्य आहि मेरौ रूप
सुन्दर पूछत गुरु मेरौ रूप कौन है॥ ८॥

(उत्तर)

तू तौ कछु भूमि नांहि आपु तेज वायु नांहि
व्योम पंच विषै नांहि सौ तौ भ्रम कूप है।
तू तौ कछु इन्द्री अरु अंतहकरण नांहि
तीनौं गुण ऊ तू नांहि सोऊ छांह धूप है॥
तू तौ अहंकार नांहि पुनि महतत्व नांहि
प्रकृति पुरुष नांहि तूं तौ सु अनूप है।
सुन्दर बिचारि ऐसैं शिष्य सौं कहत गुरु
"नांहि नांहि करतें रहै सु तेरौ रूप है"॥ ९॥

माना है। सुन्दरदासजी का कथन गीता और भागवत से पुष्ट होता है, परतु सांख्य से नहीं होता॥

अहंकार से तीनों गुणों की उत्पत्ति कही सो सांख्य के मतानुसार नहीं है। सांख्य में तो प्रकृति ही में तीनों गुणों को माना है। अहंकार से मन और दशों इन्द्रियां तथा पांच तन्मात्राएं इस तरह ये १६ उत्पन्न होती हैं। (कारिका २४)। अहंकार में तीनों गुण विद्यमान अवश्य ही रहते हैं। गुणों की न्यूनाधिकता ही से भिन्न-भिन्न सृष्टि होती है॥

(९) सांख्य सूत्र १ अ० सूत्र १३८—१३९—१४०—१४१ आदि का यह भावार्थ है। नांहि नांहि—श्रुति के नेति नेति का अनुवाद है। 'शरीरादि व्यतिरिक्तः पुमान्।" "संहतपरार्थत्वात्"। "त्रिगुणादि विपर्ययात्"। "अधिष्ठानाच्चेति"।—स्थूल शरीर से लेकर प्रकृति पर्यन्त सबसे पुरुष (आत्मा) भिन्न है। संहतवस्तु (जो अनेक पदार्थों से बने उस) का अन्य ही भोक्ता होता है। आत्मा संहत पदार्थ

तेरौ तौ स्वरूप है अनूप चिदानंद घन
देह तौ मलीन जड़ या विवेक कीजिये।
तू तौ निहसंग निराकार अविनाशी अज
देह तौ विनाशवंत ताहि नहिं धीजिये॥
तू तौ षट ऊरमी रहत सदा एक रस
देह के विकार सब देह सिर दीजिये।
सुन्दर कहत यौं विचारि आपु भिन्न जानि
पर की उपाधि कहा आप पैंचि लीजिये॥ १०॥

देह ई नरक रूप दुख कौन वारपार
देह ई जु स्वर्ग रूप झूठौ सुख मान्यौं है।
देह ई कौ बंध मोक्ष देह ई अप्रोक्ष प्रोक्ष
देह ई के क्रिया कर्म शुभाशुभ ठांन्यौं है॥
देह ही में और देह एसी ह्वै विलास करै
ताहि कौं समुझि बिन आतमा बषान्यौं है।
दोऊ देह तें अलिप्त दोऊ कौ प्रकाश करै
सुन्दर चेतन्य रूप न्यारौ करि जान्यौं है॥ ११।

नहीं है। अत आत्मा अन्यों का भोक्ता है। पुरुष में सुख दुःख मोहादिक नहीं है
सब गुणों में हैं अतः पुरुष प्रकृति और प्रकृतिजन्य पदार्थों से भिन्न है। पुरु
अधिष्ठाता प्रेरक है इस कारण से यह आत्मा अधिष्ठेय प्रेरित से भिन्न है जैं
राजा प्रजा से और सारथि रथ और घोड़ों से भिन्न है। पुरुष चेतन है और इस
को ज्ञान होता है इन्द्रियादि जड़ हैं। अत जड़ पदार्थों से पुरुष (आत्मा) भि
है।

(१०) षट ऊर्मी=छह ऊर्मियां (दुःख) ये हैं—शीत, ऊष्ण, क्षुधा, तृष
क्षोभ और मोह।

(११) देह में और देह—स्थूल देह में सूक्ष्म शरीर। इनका प्रकाश क
इनसे भिन्न पुरुष (आत्मा) है। (देखो सांख्य कारिका ३९—४० और ५२)।

देह हलै देह चलै देह ही सौं देह मिलै
देह पाइ देह पीवै देह ई भरत है।
देह ही हिंवारे गरै देह ही पावक जरै
देह रन मांहि झूझै देह ही परत है॥
देह ही अनेक कर्म करत विविध भांति
चम्बक की सत्ता पाइ लोह ज्यौं फिरत है।
आतमा चैतन्यरूप व्यापक साक्षी अनूप
सुन्दर कहत सु तौ जन्मै न मरत है॥ १२॥

देह कौ न देह कछु देह कौ ममत्व छाडि
देह तौ दमामौ दीयें देह देह जात है।
घट तौ घटत घरी घरी घट नास होत
घट के गये तें घट की न फेरि वात है॥
पिंड पिंड मांहि पुनि पिंड कौं उपावत है
पिंड पिंड पात पुनि पिंड ही कौ पात है।
सुन्दर न होइ जासौं सुन्दर कहत जग
सुन्दर चेतन्य रूप सुन्दर विख्यात है॥ १३॥*

---

(१२) चंबक=चंबुक, मिकनातीसी पत्थर जो लोहे को खैंचता है। यह हे का भी बनता है। यहां चेतन आत्मा से प्रयोजन है। देह जड़ है परन्तु चेतन मा की सत्ता वा आभास से क्रियावान होती है। तब अनेक चेष्टाएं करती है। न की सत्ता से पृथक् हो तब जड़ ही रह जाती है जैसे मृतक शरीर।

(१३) न देह=मत दे, अर्थात इस जड़ शरीर के अर्थ कुछ मत कर, आत्मा अर्थ कर। दमामो=नक्कारा, अर्थात् धड़ा-धड़ डंके की चोट रूपांतरित होकर लती जाती है, स्थिर नहीं है। पिंड=शरीर, पुद्गल, देह। सुन्दर=परम पवित्र त्मा। इस देह का नाम 'सुन्दर' रक्खा है सो इससे कुछ प्रेम मत कर। वास्तव में न्दर जो आत्मा है उस चेतन पुरुष उसका साक्षात्कार कर। *यह चित्रकाव्य भी है।

(प्रश्नोत्तर)

देह यह किन कौ है देह पंच भूतनि कौ
पंच भूत कौन तें हैं तामसाहंकार तें।
अहंकार कौन तें है जासौं महतत्व कहैं
महतत्व कौन तें है प्रकृति मंझार तें॥
प्रकृति हू कौन तें है पुरुष है जाकौ नाम
पुरुष सो कौन तें है ब्रह्म निराधार तें।
ब्रह्म अब जान्यौ हम जान्यौ है तौ निश्चै करि
निश्चै हम कीयौ है तौ चुप मुख द्वार तें॥ १४॥

एक घट मांहि तौ सुगन्ध जल भरि राख्यौ
एक घट मांहि तौ दुर्गन्ध जल भर्यौ है।
एक घट माहि पुनि गंगोदिक राख्यौ आनि
एक घट माहि आनि मदिराऊ कर्यौ है॥
एक घृत एक तेल एक मांहि लघुनीति
सबही मैं सविता कौ प्रतिबिंब पर्यौ है।
तैसें हिं सुन्दर ऊंच नीच मध्य एक ब्रह्म
देह भेद देषि भिन्न भिन्न नाम धर्यौ है॥ १५॥

भूमि परै अप अप हू कै परै पावक है
पावक कै परै पुनि वायु हू वहतु है।
वायु परै व्योम व्योम हू कै परै इन्द्री दश
इन्द्रिन कै परै अन्तःकरण रहतु है॥

---

(१४) इस सवैये में वही मत अपना सुन्दरदासजी ने प्रतिपादन किया है जो ऊपर ७ वें सवैये में वर्णित है। सांख्य शास्त्र में 'ब्रह्म' शब्द 'बुद्धि' का पर्यायवाची आया है। प्रकृति को अनादि कहा है। चुप मुखद्वार तें=ब्रह्म साक्षात्कार होता है तो वह वर्णन में नहीं आ सकता। वह गूंगे का गुड़ है॥

(१५) गुण कर्म स्वभाव के भेद से शरीरों के भेद हैं। लघुनीति=मूत्र।

अन्तहकरण परैं तीनौं गुन अहंकार
अहंकार परैं महतत्व कौं लहतु है।
महतत्व परैं मूल माया माया परैं ब्रह्म
ताहि तें परातपर सुन्दर कहतु है॥ १६॥

भूमि तौ विलीन गन्ध गन्ध हू बिलीन आप
आप हू विलीन रस रस तेज पातु है।
तेज रूप रूप वायु वायु हू सपर्श लीन
सो सपर्श व्योम शब्द तम हि विलात है॥
इन्द्री दश रज मन देवता बिलीन सत्व
तीन गुन अहं महत्तत्व गिलि जात है।
महतत्व प्रकृति प्रकृति हू पुरुष लीन
सुन्दर पुरुष जाइ ब्रह्म में समात है॥ १७॥

आतमा अचल शुद्ध एक रस रहै सदा
देह विवहारनि में देह ही सौं जानिये।
जैसें शशि मण्डल अभंग नहिं भंग होइ
कला आवै जाहि घटि बढि सौं बषानिये॥
जैसें द्रुम सु थिर नदी के तटि देषियत
नदी के प्रवाह मांहि चलतौ सौ मांनिये।
तैसें आतमा अतीत देह कौं प्रकाशक है
सुन्दर कहत यौं बिचारि भ्रम भांनिये॥ १८॥

---

(१६) इस छंद में सुन्दरदासजी ने 'परात्पर' की सिद्धि बहुत चतुराई और सफाई से की है। पर का अर्थ श्रेष्ठ और उत्तम का भी है।

(१७) परात्पर की परंपरा की तरह यह लय का तारतम्य बहुत अच्छा दरसाया गया है।

(१८) चन्द्रमा की कला सूर्य के तेज, अपनी गति और पृथ्वी की गति से

आतमा शरीर दोऊ एकमेक देपियत
जब लग अन्तहकरण मैं अज्ञान है।
जैसैं अन्धियारी रैंन घर मैं अन्धेरौ होइ
आंखिनि कौ तेज ज्यौं कौ त्यौं ही विद्यमान है
जदपि अन्धेरे मांहि नैंन कौं न सूझै कछु
तदपि अन्धेरै सौं अलिपत बर्षान है।
सुन्दर कहत तौं लौं एकमेक जानत है
जौं लौं नहिं प्रगट प्रकाश ज्ञान भान है ॥ १९ ॥

देह जड देवल मैं आतमा चेतन्य देव
याहि कौं समुझि करि यासौं मन लाइये।
देवल कौ विनसत वार नहिं लागै कछु
देव तौ सदा अभंग देवल मैं पाइये॥
देव की सकति करि देवल की पूजा होइ
भोजन विविध भांति भोग हू लगाइये।
देवल तें न्यारौ देव देवल मैं देपियत
सुन्दर विराजमान और कहां जाइये ॥ २० ॥

प्रीति सी न पाती कोऊ प्रेम से न फूल और
चित्त सौ न चन्दन सनेह सौ न सेहरा।

घटती बढ़ती है। आत्मा अखंड और अक्षर है वह देह के संसर्ग से देहाभिमान का अध्यास पाती है। टटि=तट पर।

(१९) ज्ञानरूपी सूर्य का प्रकाश होने से अविवेकरूपी अधकार मिट जाता है। जड़ देह को चेतन आत्मा समझ लेना पूर्ण अविवेक है, ज्ञान के उदय से यह जाता रहता है॥

(२०) देवल ते न्यारो=देव तो चेतन है देह (देवल) जड़ है, इससे भिन्न है। परन्तु सर्व व्यापी होने से जड़ में भी व्यापक है। इससे देवल में भी है और बाहर वा न्यारा भी है।

ह्रदै सौ न आसन सहज सौ न सिंघासन
भावसौ न सौंज और शून्य सौ न गेहरा ॥
सील सौ सनान नांहि ध्यान सौ न धूप और
ज्ञान सौ न दीपक अज्ञान तम के हरा ।
मन सौ न माला कोऊ सोहं सौ न जाप और
"आतमा सौ देव नांहि देह सौ न देहरा" ॥ २१ ॥

स्वासो स्वास राति दिन सोहं सोहं होइ जाप
याहि माला बार बार दिढ कैं धरतु है।
देह परै इन्द्री परै अन्तहकरण परै
एक ही अखण्ड जाप ताप कौं हरतु है ॥
काठ की रुद्राक्ष की रु सूत हू की माला और
इनकै फिराये कौन कारिज सरतु है।
सुन्दर कहत तातें आतमा चेतनि रूप
"आपुकौ भजन सु तौ आपु ही करतु है" ॥ २२ ॥

क्षीर नीर मिलि दोऊ एकठे ई होइ रहे
नीर छांडि हंस जैसें क्षीर कौं गहतु है।
कंचन में और धात मिलि करि बांन पर्यौ
शुद्ध करि कंचन सुनार ज्यौं लहतु है ॥
पावक हू दार मध्य दार ही सौ होइ रह्यौ
मथि करि काढै वाहो दार कौं दहतु है।

---

(२१) यह छंद सुन्दरदासजी को आगरेवाले कवि बनारसीदासजी ने भेजा था। इसका उत्तर सुन्दरदासजी ने भेजा सो 'साधु' के अंग २० में सवैया १५ वां—धूलि जैसो धन⋯भेजा था।

(२२) बाह्य साधनों से मुक्ति नहीं होती। सांख्य मत में पुरुष (आत्मा) का प्रकृति से विच्छिन्न होना ही मोक्ष है, अन्य प्रकार की कोई मोक्ष मानी नहीं है।

तैसें ही सुन्दर मिल्यौ आतमा अनातमा जू
भिन्न भिन्न करिये सु तौ सांख्य कह्यु है ॥ २३ ॥

अन्न-मय कोश सु तौ पिंड है प्रगट यह
प्रान-मय कोश पंच वायु हू बषांनिये ।
मनो-मय कोश पंच कर्म इन्द्रिय प्रसिद्धि
पंच ज्ञान इन्द्रिय विज्ञान कोश जानिये ॥
जाग्रत स्वपन विषै कहिये चत्वार कोश
सुषुप्ति मांहि कोश आनन्दमय मांनिये ।
पंच कोश आतम कौ जीव नाम कहियतु है
सुन्दर शंकर भाष्य साष्य यह आनिये ॥ २४ ॥

जाग्रत अवस्था जैसें सदन मैं बैठियत
तहां कछु होइ ताहि भली भांति देषिये ।
स्वपन अवस्था जैसें वोबरे मैं वैठे जाइ
रहैं रहैं उहांऊ की वस्तु सब लेषिये ।
सुषुपति भौंहरे मैं वैठे तें न सूझि परै
महा अंध घोर तहां कछुव न पेषिये ।
व्योम अनसूत घर वोबरे भौंहरे मांहि
सुन्दर साक्षी स्वरूप तुरिया विशेषिये ॥ २५ ॥

---

(२३) बांन=मिश्रित धातु ।

(२४) पंचकोशों का वर्णन करते हुए शांकरभाष्य का प्रमाण दिया है जो शारीरक सूत्र पर है ।

(२५) जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीन अवस्थाओं का निरूपण दृष्टांतों से किया है । सदन=भवन, घर । वोबरा=मट्टी की कोठली । तीनों अवस्थाओं में मन और बुद्धि का संकोच वा अभाव सा रहता है परन्तु आत्मा सब में एकरस प्रकाशरूप विद्यमान रहती है ।

जाग्रत कै विषै जीव नैंननि मैं देषियत
बिबिधि ब्यौहार सब इन्द्रिनि ग्रहत है।
स्वपने हूं मांहि पुनि वैसै ही ब्यौहार होत,
नैंननि तै आइ करि कंठ मैं रहतु है॥
सुषुपति हृदै मैं बिलीन होइ जात जब
जाग्रत स्वपन की तौ सुधि न लहत है।
तीनि हूं अवस्था कौ साक्षी जब जानै आपु
तुरिया स्वरूप वह सुन्दर कहत है॥ २६॥

इन्दव

जाग्रत रूप लियें सब तत्वनि इन्द्रिय द्वार करै व्यवहारौ।
स्वप्न शरीर भ्रमै नव तत्व की मानत है सुख दुःख अपारौ॥
लीन सबै गुन होत सुषोपति जानै नहीं कछु घोर अंधारौ।
तीनौं कौ साक्षि रहै तुरियातत सुन्दर सोइ स्वरूप हमारौ॥ २७॥
भूमि तें सूक्षम आपु कौं जानहु आपु तें सूक्षम तेज कौ अंगा।
तेज तें सूक्षम वायु बहै नित वायु तें सूक्षम ब्योम उतंगा॥
ब्योम तें सूक्षम है गुन तीन तिन्हूं तें अहं महतत्व प्रसंगा।
ताहु तें सूक्षम मूल प्रकृत्ति जु मूल तें सुन्दर ब्रह्म अभंगा॥ २८॥
ब्रह्म निरंतर व्यापक अग्नि अरूप अखंडित है सब मांहीं।
ईश्वर पावक रासि प्रचंड जु संग उपाधि लिये वर तांहीं॥
जीव अनन्त मसाल चिराक सु दीप पतंग अनेक दिपांहीं।
सुन्दर द्वैत उपाधि मिटै जब ईश्वर जीव जुदै कछु नांहीं॥ २९॥

---

(२६) यह मत भी वेदांत ही का है। सांख्य में न्यूनाधिक तीनों अवस्थाओं का निर्देश है परन्तु तुरीया अवस्था यह वेदांत की ही परिभाषा प्रायः देखी जाती है। सांख्य में पुरुष ही नाम बहुत करके आता है।

(२८) अभंगा=अखंड, निर्विकार (आत्मा वा पुरुष)।

(२९) इस छन्द में वर्णित मत वेदांत का है सांख्य का नहीं है। सांख्य में

ज्यौं नर पावक लोह तपावत पावक लोह मिले सु दिवांहीं।
चोट अनेक परै घन की सिर लोह यथै कछु पावक नांहीं ॥
पावक लीन भयौ अपनै घर शीतल लोह भयौ तब तांहीं।
त्यौं यह आतम देह निरंतर सुन्दर भिन्न रहै मिलि मांहीं ॥ ३० ॥
आतम चेतनि शुद्ध निरंतर भिन्न रहै कहुं लिप्त न होई।
है जड चेतन अंतहकर्ण सु शुद्ध अशुद्ध लियें गुन दोई ॥
देह अशुद्ध मलीन महा जड हालि न चालि सकै पुनि वोई।
सुन्दर तीनि विभाग किये विन भूलि परै भ्रम तें सब कोई ॥ ३१ ॥

सवइया

ब्रह्म अरूप अरूपी पावक व्यापक जुगल न दीसत रंग।
देह दार तें प्रगट देपियत अंतःकरण अग्नि द्वय अंग ॥
तेज प्रकाश कल्पना सौं लगि जौं लगि रहै उपाधि प्रसंग।
जहं के तहां लीन पुनि होई सुन्दर दोऊ सदा अभंग ॥ ३२ ॥
देह सराव तेल पुनि मारुत बाती अंतःकरण विचार।
प्रगट जोति यह चेतनि दीसै जातैं भयौ सकल उजियार ॥
व्यापक अग्नि मथन करि जोये दीपक बहुत भांति विस्तार।
सुन्दर अद्भुत रचना तेरी तू ही एक अनेक प्रकार ॥ ३३ ॥

पुरुष (आत्मा) अनन्त वा बहुत्व करके माने हैं। प्रत्येक शरीर में भिन्न पुरुष है। वेदांत मत में एक अद्वितीय आत्मा ही उपाधि के भेद से शरीरों में भिन्न २ भासती है।

(३०) अग्नि (पावक) दृष्टांत दोनों मतों में दिया जाता है। परन्तु वेदांत मत से सर्व में एक ही आत्मा उपाधि भेद से है और सांख्य मत से भिन्न भिन्न शरीरों में भिन्न भिन्न पुरुष हैं।

(३१) शुद्ध=सतोगुण प्रधान। अशुद्ध=तमोगुण प्रधान।

(३२) दार=लकड़ी। लकड़ी की मंथनी की रगड़ से आग प्रगट होती है।

(३३) सराव=दीपक जलाने की सराई।

तिल में तेल दूध में घृत है दार मांहि पावक पहिचांनि।
पुहुप मांहि ज्यौं प्रगट वासना इक्षु मांहि रस कहत वषांनि ॥
पोसत मांहि अफीम निरंतर वनस्पती में सहत प्रवांनि।
सुन्दर भिन्न मिल्यौ पुनि दीसत देह मांहि यौं आतम जांनि ॥ ३४ ॥
जाग्रत स्वप्न सुषोपति तीनौं अंतःकरण अवस्था पावै।
प्राण चलै जाग्रत अरु स्वपनै सुषुपति मैं पुनि अह निसि धावै ॥
प्राण गये तें रहै न कोऊ सक्ल देष तें थाट बिलावै।
सुन्दर आतम तत्व निरंतर सौ तौ कतहूं जाइ न आवै ॥ ३५ ॥
पन्द्रह तत्व स्थूल कुंभ में सूक्ष्म लिंग भर्यौ ज्यौं तोय।
उहां जीव उहां आभा दीसै ब्रह्म इन्दु प्रतिबिंबे दोइ ॥
घट फूटें जल गयौ बिलै ह्वै अंतहकरण कहै नहिं कोइ।
तव प्रतिबिंब मिलै शशि बिंबहिं सुन्दर जीव ब्रह्ममय होइ ॥ ३६ ॥

मनहर

जैसें व्योम कुम्भ कै बाहिर अरु भीतर हू
कोऊ नर कुम्भ कौं हजार कोस लै गयौ।
ज्यौं ही व्योम इहां त्यौं ही उहां पुनि है अखंड
इहां न बिछोह न तौ उहां मिलाप है भयौ ॥
कुम्भ तौ नयौ न पुरानौ होइ कै बिनसि जाइ
व्योम तौ न ह्वै पुरानौ न तौ कछु ह्वै नयौ।
तैसें ही सुन्दर देह आवै रहै नाश होइ
आतमा अचल अविनाशी है अनामयौ ॥ ३७ ॥*
देह कै संयोग ही तें शीत लगै घाम लगै
देह कै संयोग ही तें क्षुधा तृषा पौंन कौं।

---

(३५) प्राण=जीवत्व जो चेतन आत्मा का प्रकृति में आभास मात्र है। इसी को आगे के ३६ वें सवैये में प्रतिबिंब मात्र कहा है। घट का जल मानों लिंग (सूक्ष्म) शरीर है उसमें चांद का प्रतिबिंब जीव है।

देह कै संयोग ही तैं कटुक मधुर स्वाद
देह कै संयोग कहै खाटो खारो लौन कौं॥
देह कै संयोग कहै सुख तें अनेक बात
देह कै संयोग ही पकरि रहै मौंन कौं।
सुन्दर देह कै संग सुख मांनै दुख मांनै
देह कौ संयोग गयौ सुख दुख कौन कौं॥ ३८॥*

आपु की प्रसंसा सुनि आपु ही खुसाल होइ
आपु ही की निंदा सुनि आपु मुरझाइ है।
आपु ही कौं सुख मांनि आपु सुख पावत है
आपु ही कौ दुख मानि आपु दुख पाइ है॥
आपु ही की रक्षा करै आपु ही की घात करै
आपु ही हत्यारो होइ गंगा जाइ न्हाइ है।
सुन्दर कहत ऐसैं देह ही कौं आपु मांनि
निज रूप भूलि कै करत हाइ हाइ है॥ ३९॥*

॥ इति सांख्य ज्ञान कौ अंग ॥ २५ ॥

---

* ये तीनों छन्द (३७, ३८, ३९) मूल (क) वा (ख) पुस्तक फतहपुर-वाली में नहीं हैं, उसमें ३६ तक ही हैं। छपी हुई पुस्तकों वा स्फुट काव्य में है।

(३७) (३८) (३९) आत्मा में कर्त्तापन का अभिमान दरसता है, सो इसका कारण सांख्य मत से, "उपराग" है। "उपराग" नाम आत्मा का जो चित् है अर्थात् प्रकृति वा बुद्धि (महत्) तत्व में प्रतिबिंब पड़ने से वा सान्निध्य से जो कर्तृत्व का रंग भासना है सो ही है।—"उपरागात्कर्तृत्वं चित्सान्निध्यात् ?") सांख्य सूत्र ॥ १ ॥ १६२ ॥ यही बात वेदांत के अध्यास से समझी जाती है। इतर का इतर में—आत्मा का अनात्मा में और अनात्मा का आत्मा में आरोप किया जाय यही अध्यास है। चित् के प्रकाश से जड़ प्रकृति काम करती है, तो अहंता के

अथ विचार को अंग ॥ २६ ॥

मनहर

प्रथम श्रवण करि चित्त एकाग्रम धरि
गुरु सन्त आगम कहैं सु उर धारिये।
दुतिय मनन बारंबार ही बिचारि देपै
जोई कछु सुनें ताहि फेरि कैं संभारिये ॥
त्रितिय ताहि प्रकार निद्ध्यास नीकैं करै
निहसंग विचरत अपुनपौ तारिये।
सो साक्षातकार याही साधन करत होइ
सुन्दर कहत द्वैत बुद्धि कौं निवारिये॥ १॥

देपै तौ विचार करि सुनै तौ विचार करि
बोलै तौ विचार करि करै तौ विचार है।
षाइ तौ विचार करि पीवै तौ बिचार करि
सोवै तौ विचार करि तौ ही तौ उवार है॥
बैठै तौ विचार करि उठै तौ विचार करि
चलै तौ बिचार करि सोई मत सार है।
देइ तौ बिचार करि लेइ तौ बिचार करि
सुन्दर विचार करि याही निरधार है॥ २॥

ाव से आत्मा करता भास जाता है। वास्तव में आत्मा अकर्त्ता है।
नामयो=अनामय=निर्लेप, शुद्ध, निर्गुण।

(१) इस छन्द में वेदांत को प्रक्रिया के साधनचतुष्टय—श्रवण, मनन, निदि-
ासन समादि षद्-सम्पत्ति—को सक्षेप में कहा है। चौथा साक्षात्कार नाम देकर
क्षेप किया है।

एक ही विचार करि सुख दुख सम जानै
एक ही विचार करि मल सब धोइ है।
एक ही विचार करि ससार समुद्र तिरै
एक ही विचार करि पारंगत होइ है॥
एक ही विचार करि बुद्धि नाना भाव तजै
एक ही विचार करि दूसरौ न कोइ है।
एक ही विचार करि सुन्दर संदेह मिटै
एक ही विचार करि एक ब्रह्म जोइ है॥ ३॥

इन्दव

रूप कौ नास भयौ कछु देषिय रूप तौ रूप हि मांहि समावै।
रूप के मध्य अरूप अखंडित सौ तौ कहूं कछु जाइ न आवै॥
बीचि अज्ञान भयौ मन तत्व कौ बेद पुरान सबै कोउ गावै।
सोउ विचार करै जब सुन्दर सोधत ताहि कहू नहिं पावै॥ ४॥
भूमि सु तौ नहिं गंध कौ छाडत नीर सु तौ रस तें नहिं न्यारौ।
तेज सु तौ मिलि रूप रह्यौ पुनि वायु सपर्स सदा सु पियारौ॥

(३) "जोइ है"—इसके दो अर्थ मानते हैं—१—जो ब्रह्म है उसे। २—ब्रह्म का प्रत्यक्ष देखै।

(४) "रूप तो रूपहि मांहि"=जगत् सारा नाम रूपात्मक है। रूप है। [illegible] किसी पदार्थ को मिट कर तत्व रूप में विकृत होता है। यही रूप का रूप में समाना या बदलना है। रूप नाशमान है, वस्तु (वास्तव तत्व) नाशमान नहीं है। मध्य च=पंचभूत (पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश), मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। ताहि कहू नहीं पावै—साधारण विचार से आत्म साक्षात्कार नहीं होता है। [illegible] साधन, भगवत् कृपा तथा गुरु कृपा और भाग्य से ही आत्मा का साक्षात्कार होता है। यही बात कई जगह पहिले इस ग्रन्थ में आई है।

व्योम रु शब्द जुदे नहिं होत सु ऐसैं हि अन्तःकरण विचारौ ।
ये नव तत्व मिले इन तत्वनि सुन्दर भिन्न स्वरूप हमारौ ॥ ५ ॥
क्षीण सपुष्ट शरीर कौ धर्म जु शीत हू ऊष्ण जरा मृति ठानैं ।
भूप तृषा गुन प्रान कौं व्यापत शोक रु मोह उभै मन आनैं ॥
बुद्धि विचार करै निस वासर चित्त चितै सु अहं अभिमानैं ।
सर्व कौ प्रेरक सर्व कौ साक्षिय सुन्दर आपु कौ न्यारौ हि जानैं ॥ ६ ॥
एकहि कूप के नीर तें सींचत ईक्ष अफीम हि अंब अनारा ।
होत उहै जल स्वाद अनेकनि मिष्ट कटूक खटा अरु खारा ॥
त्यौं हि उपाधि संयोग तें आतम दीसत आहि मिल्यौ सौ विकारा ।
काढि लिये जु विचार विवस्वत सुन्दर शुद्ध स्वरूप है न्यारा ॥ ७ ॥
रूप परा कौं न जानि परै कछु ऊठत है जिहिं मूल तें छांनीं ।
नाभि विषै मिलि सप्त स्वरन्नि पुरुष्प संयोग परयंति बषानीं ॥
नाद संयोग हृदै पुनि कंठ जु मध्यमा याहि बिचार तें जानीं ।
अक्षर भेद लियें मुख द्वार सु बोलत सुन्दर वैषरी वांनीं ॥ ८ ॥
ज्यौं कोउ रोग भयौ नर कै घर वैद कहै यह वायु विकारा ।
कोउ कहै ग्रह आइ लगे सब पुन्य कियें कछु होइ उवारा ॥
कोउ कहै इहिं चूक परी कछु देवनि दोष कियौ निरधारा ।
तैसैं हि सुन्दर तत्वनि के मत भिन्न हिं भिन्न कहै जु विचारा ॥ ९ ॥

---

(५) "इन तत्वनि"=इन नव तत्वों से हमारा (आत्मा का) स्वरूप भिन्न (पृथक्) है।

(६) निर्गुण ब्रह्म का लक्षण कहा है।

(७) विवस्वत=सूर्य। आत्मा उपाधि-रहित हो तब वही आत्मा ही है। जैसे सूर्य के आगे से बद्ल आदि दूर हो जाने से शुद्ध प्रकाशमान दिखाई देता है।

(८) चार प्रकार की वाणियां—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी—तुरिय, कारण, सूक्ष्म और स्थूल शरीरों में क्रमशः वर्त्तती है।

जे विपई तम पूरि रहे तिनि कौं रजनी महि बादर छायौ।
कोउ मुमुक्षु किये गुरुदेव तिन्हैं भय शुक्र जु शब्द सुनायौ॥
बादल दूरि भये इन्द के पुनि तारनि सौं रजु सर्प दिपायौ।
सुन्दर सूर प्रकाशत ही भ्रम दूरि भयौ रजु कौ रजु पायौ॥ १०॥

कर्म सुभासुभ की रजनी पुनि अर्द्ध तमोमय अर्द्ध उजारी।
भक्ति सु सौ यह है अरुणोदय अंत निसा दिनसंधि विचारी॥
ज्ञान सु भान सदोदित वासर वेद पुरान कहैं जु पुकारी।
सुन्दर तीन प्रभाव बपानत यौं निहचै संमुझै विधि सारी॥ ११॥

मनहर

देह ई कौं आपु मानि देह ई सौ होइ रह्यौ
जडता अज्ञान तम शूद्र सोई जांनिये।
इन्द्रिनि के व्यापारनि अत्यन्त निपुनि बुद्धि
तमो रज दुहुं करि वैश्य हू प्रमांनिये॥
अंतहकरण मांहि अहंकार बुद्धि जाके
रजोगुण बर्द्धमान क्षत्री पहिचांनिये।
सत्व गुण बुद्धि एक आतमा विचार जाके
सुन्दर कहत वह ब्राह्मन बपांनिये॥ १२॥

---

(१०) ज्ञान की क्रमिक दशा वा अवस्था और उपाधि की न्यूनाधिक्यता है ऐसा होता है।

(११) यह छन्द स्वामी जी का अत्यन्त प्रसिद्ध और सार भरा है। इसमें त्रिकाण्ड प्रकरण—कर्म, भक्ति (उपासना) और ज्ञान- को बहुत सुन्दरता से वर्णन किया है। प्रभाव=अवस्था, प्रकरण वा कक्षा।

(१२) गुणों के पचीकरण से ज्ञान (वा ज्ञानी) की चार अवस्थाएं (श्रेणियां) कही हैं।

आतमा के विषै देह आइ करि नाश होइ
आतमा अखंड सदा एकई रहतु है।
जैसें सांप कंचुकी कों लियें रहै कोऊ दिन
जीरन उतारि करि नूतन गहतु है॥
जैसें द्रुम हू कै पत्र फूल फल आइ होत
तिन के गये तें द्रुम औरउ लहतु है।
जैसें व्योम मांहि अभ्र होइ कें विलाइ जात
ऐसौ सौ विचार कछु सुन्दर कहतु है॥ १३॥

परी की डरी सौं अंक लिपि कें विचारियत
लिषत लिषत वहै डरी घसि जात है।
ऐसौ समुझयौ है जब संमुझि परी है तब
जोई कछु सही भयौ सोई ठहरात है॥
दार ही सौं दार मथि पावक प्रगट भयौ
वह दार जारि पुनि पावक समात है।
तैसें ही सुन्दर बुद्धि ब्रह्म कौ विचार करि
करत करत वह बुद्धि हू विलात है॥ १४॥

आपु कौं संमुझि देषि आपु ही सकल मांहि
आपु ही मैं सकल जगत देषियतु है।

---

(१३) आत्मा समुद्र समान विशाल और महान है। देह बुदबुदा सा है।

(१४) यह उदाहरण स्वामीजी ने बहुत उच्चकोटि का दिया है। और इसमें दार्शनिक मर्म भला भरा है। इस पर जिज्ञासु को बहुत ही गहरा विचार रखना चाहिए। परात्पर ब्रह्म के लिये "योबुद्धे परतस्तुसः"। जो बुद्धि से परे है सोही वह (परमात्मा) है। अर्थात् बुद्धि उसके खोजने में मर मिटती है तब वह मिलता है। बुद्धि (अहंकार वृत्ति) मिटने पर ही आत्मा का प्रकाश मिलता है।

जैसें व्योम व्यापक अखंड परिपूरन है
बादल अनेक नाना रूप लेखियतु है ॥
जैसें भूमि घट जल तरंग पावक दीप
वायु में बबूरा यौं ही विश्व रेखियतु है।
ऐसें ही विचारत विचार हू विलीन होइ
सुन्दर ही सुन्दर रहत पेखियतु है॥ १५

देह कौ संयोग पाइ जीव ऐसौ नाम भयौ
घट के संयोग घटाकाश ज्यौं कहायौ है।
ईश्वर हू सकल बिराट में बिराजमान
मठ के संयोग मठाकाश नाम पायौ है॥
महाकाश मांहि सब घट मठ देखियत
बाहिर भीतर एक गगन समायौ है।
तैसें ही सुन्दर ब्रह्म ईश्वर अनेक जीव
त्रिविधि उपाधि भेद ग्रन्थनि में गायौ है॥ १६

प्राण

देह दुख पावै किधौं इन्द्री दुख पावै किधौं
प्रान दुख पावै जब लहै न अहार कौं।
मन दुख पावै किधौं बुद्धि दुख पावै किधौं
चित्त दुख पावै किधौं दुख अहंकार कौं॥

---

(१५) रेखियतु है=रेखांकित होता है=रूपधारी हो जाता है। शब्द में से रूप निकलता है।

(१६) वेदांत मत की यह प्रसिद्ध कोटि है—घटाकाश मठाकाश और महाकाश। ये ब्रह्म, ईश्वर और जीव को समझाने के दृष्टांत हैं कि उपाधि के भेद से इनका भेद प्रतीत होता है। वास्तव में घटाकाश और मठाकाश भी महाकाश (के अंतर्गत) भेद या विभागमात्र हैं।

गुण दुख पावै किधौं सून दुख पावै किधौं
प्रकृति दुख पावै कि पुरुष अधार कौं।
सुन्दर पूछत कछु जानि न परत तातें
कौन दुख पावै गुरु कहौ या विचार कौं १७॥

उत्तर

देह कौं तौ दुख नांहि देह पंचभूतनि की
इन्द्रिनि कौं दुख नांहि दुख नाहि प्रान कौं।
मन हू कौं दुख नाहि बुद्धि हू कौं दुख नाहि
चित्त हू कौं दुख नाहिं नाहिं अभिमान कौं॥
गुणनि कौं दुख नाहि सून हू कौं दुख नाहि
प्रकृति कौं दुख नाहि दुख न पुमान कौं।
सुन्दर विचारि ऐसें शिष्य सौं कहत गुरु
दुख एक देपियत बीच के अज्ञान कौं॥ १८॥

पृथवी भाजन अग कनक कटक पुनि
जल हू तरंग दोऊ देपि कै बपानिये।
कारण कारज ये तौ प्रगट ही थूल रूप
ताही तें नजर माहि देपि करि आनिये॥
पावक पवन व्योम ये तौ नहिं देपियत
दीपक बघूरा अभ्र प्रत्यक्ष प्रमानिये।
आतमा अरूप अति सूक्षम तें सूक्षम है
सुन्दर कारण तातें देह में न जानिये॥ १९॥

(१७-१८) सतरहवें छन्द में शिष्य का प्रश्न है। और अठारहवें में गुरु ने उत्तर देकर समझाया है।

(१९) कटक=कड़ा, वलिया। सोने का बनता है। सोना कारण और कड़ा कार्य्य है। 'कारण तातें देह में न जानिये"=आत्मा अणोरणीय अयंत सूक्ष्म है, स्थूल न होने से देह में इन्द्रिय और बुद्धि आदिकों से प्रत्यक्ष नहीं होता है।

जैन मत उहै जिनराज कौं न भूलि जाइ
दान तप शील साची भावना तैं तरिये ।
मन वच काय शुद्ध सब सौं दयालु रहै
दोष बुद्धि दूरि करि दया उर धरिये ॥
जोध नाम तन जन मन कौ निरोध होइ
बोध कौं विचारि सोध आतमा कौ करिये ।
सुन्दर कहत ऐसैं जीवत ही मुक्त होय
मुये तें मुक्ति कहैं तिनि कौं परिहरिये ॥ २० ॥

योगी जागै योग साधि भोगी जागै भोग रत
रोगी जागै दुख मांहि रोग की उपाधि मैं ।
चोर जागै चोरी कौं पाहरू जागै रापिने कौं
निरधन जागै धन पाइबे की व्याधि मैं ॥
दिवाली की राति जागै मन्त्र वादी मन्त्र जपि
क्यो ही मेरौ मन्त्र फुरै देषौं मन्त्र साधि मैं ।
त्रिविधि उपाइ करि जागत जगत सब
सोवै सुख सुन्दर सहज की समाधि मैं ॥ २१ ॥*

योगी तू कहावै तौ तू याहि योग कौ विचारि
आतमा कौं जोरि परमातमा ही जांनिये ।
न्यासी तूं कहावै तौ तू देह कौ सन्यास करि
बाहर भींतर एक ब्रह्म पहिचानिये ॥

---

(२०) जीवन्मुक्ति (जैनशासन के सहारे) बताई है। परिहरिये=त्यागिये । छोड़िये ।

* २१ छन्द से लगा कर २७ तक ७ छन्द मूल (क) पुस्तक में नहीं हैं (ख) पुस्तक में हैं । सम्भवत एक पत्र ही लिखने में रह गया होगा । अन्तिम छन्द उस पुस्तक का २१ वां और इसका २८ वां "देह धारि देषिय तौ ..." दोनों में है ॥

जगम कहावै तौ तू एक शिव ही कौं देषि
थावर जगम सब द्वैत भ्रम मानिये ॥
जेनी तू कहावै तौ तू दोप बुद्धि दूरि करि
सुन्दर कहत जिनराज उर आनिये ॥ २२ ॥
जती तू कहावै तौ तू एक या जतन करि
याही जत नीकौ एक आतमा को हेरिये ।
तपसी कहावै तौ तू एक याही तप साधि
याही तप नीकौ मन इन्द्रीन कौ घेरिये ॥
भक्त तू कहावै तौ तू चित्त एक ठौर आनि
स्वासो स्वास सोहं जाप याही माला फेरिये ॥
सजमी कहावै तौ तूं एक या सजम करि
सुन्दर कहत देह आतमा निवेरिये ॥ २३ ॥
ब्राह्मण कहावै तौ तू ब्रह्म कौ विचार करि
सत रज तम तीनौ ताग तोरि डारिये ।
पडित कहावै तौ तू याही एक पाठ पढि
अत वेद मैं कह्यौ सु वाही कौ विचारिये ।
ज्योतिषी कहावै तौ तू ज्योति कौ प्रकाश करि
अन्तहकरण अन्धकार कौ निवारिये ॥
आगमी कहावै तौ तू अगमठौर कौ जानि
सुन्दर कहत याही अनुभव धारिये ॥ २४ ॥
ब्राह्मण कहावै तौ तू आपु ही को ब्रह्म जानि
अति ही पवित्र सुख सागर मैं न्हाइये ।

---

(२४) ताग=तागा=गुण (सत, रज, तम तीनों गुण हैं । गुण तागे या धागे को भी कहते है) अन्त वेद मैं=वेदांत में ।

क्षत्री तूं कहावै तौ तूं प्रजा प्रतिपाल करि
सीस पर एक ज्ञान क्षत्र को फिराइये ॥
वैश्य तूं कहावै तौ तूं एकही व्यापार जानि
आतमा कौ लाभ होइ अनायास पाइये।
शूद्र तूं कहावै तौ तूं शूद्र देह त्याग करि
सुन्दर कहत निज रूप में समाइये ॥ २५ ॥

ब्रह्मचारी होइ तौ तू वेद कौ विचार देपि
ताही कौ समझि जोई कह्यो वेद अंत है।
गृही तू कहावै तौ तू सुमति त्रिया कौं व्याहि
जाके ज्ञान पुत्र होइ उही भाग्यवंत है॥
वानप्रस्थ होइ तौ तू काया वन वास करि
कर्म कंद मूल पाहि फल हू अनंत है।
संन्यासी कहावै तौ तू तीन्यों लोक न्यास करि
सुन्दर परमहंस होइ या सिधत है ॥ २६

रामानन्दी होइ तौ तूं तुच्छानंद त्याग करि
राम नाम भजि रामानन्द ही कौं ध्याइये।
निंबादनो होइ तौ तूं कामना कटुक त्यागि
अमृत कौ पान करि अधिक अघाइये ॥
मध्वाचारी होइ तौ तूं मधुर मत कौं विचारि
मधुर मधुर धुनि हृदै मध्य गाइये।
विष्णुस्वामी होइ तौ तूं व्यापक विष्णु कौं जानि
सुन्दर विष्णु कौं भजि विष्णु में समाइये ॥ २७ ॥

---

(२५) क्षत्र=यहां छत्र से अभिप्राय है।

(२६) "काया वन बासि करि"=काया को विषयों रूपी वृक्षों वा जीव-जन्तुओं से उजाड़ कर के बन बना दे। और कर्म को खाजा, अर्थात् निर्मूल कर दे, नष्ट कर दे।

(२७) निंबादत्ति=निंबादित्य मार्ग का=निंबार्काचार्य का अनुगामी। यहां निंब

देह वोर देषिये तौ देह पंच भूतनि की
ब्रह्मा अरु कीट लग देह ई प्रधान है।
प्रान वोर देषिये तौ प्रान सब ही कौ एक
क्षुधा पुनि तृषा दोऊ व्यापत समान है॥
मन वोर देषिये तौ मन कौ स्वभाव एक
संकल्प विकल्प करि सदा ई अज्ञान है।
आतमा विचार कीयें आतमा ई दीसै एक
सुन्दर कहत कोऊ दूसरौ न आन है॥ २८॥

॥ इति विचार को अंग ॥ २६ ॥

॥ अथ ब्रह्म निःकलंक को अंग ॥२७॥

मनहर

एक कोऊ दाता गाइ ब्राह्मण कौं देत दान
एक कोऊ दया हीन मारत निशंक है।
एक कोऊ तपस्वी तपस्या माँहि सावधान
एक कोऊ कामी क्रीड़ै कामिनी कै अंक है॥
एक कोऊ रूपवंत अधिक विराजमान
एक कोऊ कोढी कोढ चूवत करंक है।

से उत्प्रेक्षा की है। नींब कड़वा होता है। और निम्बार्क स्वामी ने साधु के दान के हेतु से सूर्य को नींब के वृक्ष पर दिखा दिया था। इसही से यह कै नाम प्रसिद्ध हो चला। निब से श्लेषार्थ लिया है। विष्णु-स्वामी—एक ाय वैष्णवों की, राधिका को भी मानते हैं। विष्णु-स्वामी दक्षिण में एक प्रसिद्ध हुए हैं।

आरसी में प्रतिबिंब सब ही कौं देषियत
सुन्दर कहत ऐसैं ब्रह्म नि:कलंक है ॥ १ ॥

रवि कै प्रकाश तैं प्रकाश होत नेत्रनि कौ
सब कोऊ सुभासुभ कर्म कौं करत है।
कोऊ यज्ञ दान जप तप जम नेम ब्रत
कोऊ इन्द्री वसि करि ध्यान कौं धरत है ॥
कोऊ परदारा परधन कौं तकत जाइ
कोऊ हिंसा करि कैं उदर कौं भरत हैं।
सुन्दर कहत ब्रह्म साक्षी रूप एकरस
वाही मैं उपजि करि वाही मैं मरत है ॥ २ ॥

जैसैं जल जंतु जल ही मैं उतपन्न होंहि
जल ही मैं विचरत जल के आधार हैं।
जल ही मैं क्रीडत विविधि विवहार होत
काम क्रोध लोभ मोह जल मैं संहार है ॥
जल कौं न लागै कछु जीवन कै राग दोष
उन ही के क्रिया कर्म उन ही की लार हैं।
तैसैं ही सुन्दर यह ब्रह्म मैं जगत सब
ब्रह्म कौं न लागै कछु जगत विकार हैं ॥ ३ ॥

(१) यह दर्पण का दृष्टांत वेदांतादि में प्रसिद्ध है। कोई भी अपना मुख मैं देखै परन्तु दर्पण को कोई दोष वा मल उसमें नहीं आता है। जैसे वह निर्मल है वैसे ही ब्रह्म निर्मल निर्लेप है।

(२) यह सूर्य का दूसरा दृष्टांत है। यह भी उतना ही प्रसिद्ध है। सूर्य सबको प्रकाशित करता है कर्मदायी है सबको कर्म में प्रेरित करता है। परन्तु सूर्य में कोई दोष नहीं व्यापता है। यह प्रकाशक जगत का चक्षु है वैसे ही परमात्मा (ब्रह्म) है। कल्क=पाप वा मरा हुआ शरीर।

(३) लार=साथ, लैर।

स्वेदज जरायुज अंडज उद्भिज्ज पुनि
चारि पांनि तिन के चौरासी लक्ष जंत हैं।
जलचर थलचर व्योमचर भिन्न भिन्न
देह पंच भूतन की उपजि पपंत हैं॥
शीत घाम पवन गगन में चलत आइ
गगन अलिप्त जामें मेघ हू अनंत हैं।
तैसें ही सुन्दर यह सृष्टि एक ब्रह्म मांहि
ब्रह्म निःकलंक सदा जानत महंत हैं॥ ४॥

॥ इति ब्रह्म निःकलंक को अंग ॥ २७ ॥

॥ अथ आत्मानुभव को अंग ॥ २८ ॥

इन्दव

है दिल में दिलदार सही अंखियां उलटी करि ताहि चितइये।
आब में खाक में बाद में आतस जान में सुन्दर जानि जनइये॥
नूर में नूर है तेज में तेज है ज्योति में ज्योति मिलें मिलि जइये।
क्या कहिये कहतें न बनै कछु जो कहिये कहतें ही लजइये॥ १॥
जासौं कहूं सब में वह एक तौ सो कहै कैसो है आंखि दिखइये।
जो कहूं रूप न रेख तिसै कछु तौ सब झूठ कै मांनें कहइये॥

(४) पपत=खपजाते, नष्ट हो जाते। महंत=जो महान ज्ञानी हैं सो।
आत्मानुभव अंग। (१) दिलदार=प्यारा। चितइये=देखिये, निहारिये। आब=पानी, खाक=पृथ्वी। बाद=हवा। आतस=आतिश, अग्नि, तेज। गीता आदिमें भगवान की विभूतियों का वर्णन याद पड़ता है।

जौ कहू सुन्दर नैननि मांझि तौ नैन‍ बैन गये पुनि हइये।
क्या कहिये कहतें न बनै कछु जो कहिये कहतें ही लजइये॥ २॥
होत विनोद जु तौ अभिअन्तर सो सुख आपु में आपुही पइये।
बाहिर कों उमग्यौ पुनि आवत कंठ तें सुन्दर फेरि पठइये॥
स्वाद निनेरें निनेर्‌यौ न जात मनों गुर गूंगे हि ज्यौं नित पइये।
क्या कहिये कहतें न बनै कछु जो कहिये कहतें ही लजइये॥ ३॥
व्योम सो सोम्य अनंत अखंडित आदि न अन्त सु मध्य कहा है।
को परिमान करै परिपूरन द्वैत अद्वैत कछू न जहां है॥
कारण कारय भेद नहीं कछु आपु में आपु हि आपु तहा है।
सुन्दर दीसत सुन्दर मांहि सु सुन्दरता कहि कौन उहा है॥ ४॥

(प्रश्नोत्तर)

एक कि दोइ न एक न दोइ उहीं कि इहीं न उहीं न इहीं है।
शून्य कि थूल न शून्य न थूल जहीं कि तहीं न जहीं न तहीं है॥
मूल कि डाल न मूल न डाल वहीं कि महीं न वहीं न महीं है।
जीव कि ब्रह्म न जीव न ब्रह्म तौ है कि नहीं कछु है न नहीं है॥ ५॥
एक कहू तौ अनेक सौ दीसत एक अनेक नहीं कछु ऐसौ।
आदि कहू तिहि अन्त हू आवत आदि न अंत न मध्य सु कैसौ॥

---

(२) हइये=है ही। रह जाता है।

(३) पठइये=उलटा भेजिये।

(४) सोम्य=शांत, गंभीर।

(५) महीं=अंदर प्रविष्ट। वा बारीक (मिहीन)। है न नहीं है=नासदीप सूक्त ऋग्वेद सा भाव है। अर्थात यह कहते बनता है कि नहीं है, और यह कहैं कि है तो बताना असंभव है। इसलिये है और नहीं के बीच में है। वा दोनों ही कहा जाना या न कहा जाना कुछ बनता ही नहीं।

गोपि कहूं तौ अगोपि कहा यह गोपि अगोपि न ऊभौ न बैसौ ।
जोइ कहूं सोइ है नहिं सुन्दर है तौ सही परि जैसे कौ तैसौ ॥ ६ ॥

मनहर

एक के कहै जौ कोऊ एक ही प्रकाशत है
दोइ के कहैं जौ कोऊ दूसरौ ऊ देषिये ।
अनेक कहै जौ कोऊ अनेक आभासै ताहि
जाके जैसौ भाव ताकौं तैसौ ई विशेषिये ॥
वचन विलास कोऊ कैसैं ही बषानि कहौ
व्योम माहिं चित्र कहूं कैसैं करि लेषिये ।
अनुभौ किये तें एक दोइ न अनेक कछु
सुन्दर कहत ज्यौं है त्यौं हि ताहि पेषिये ॥ ७ ॥

वचन ई वेद विधि वचन ई शास्त्र पुनि
वचन ई स्मृति अरु वचन पुरान जू ।
वचन ई और ग्रन्थ वचन ई व्याकरन
वचन ई काव्य छन्द नाटक बषांन जू ॥
वचन ई संसकृत वचन ई पराकृत
वचन ई भाषा सब जगत में जांन जू ।
वचन के परै है सु वचन में आवै नांहि
सुन्दर कहत यह अनुभौ प्रमांन जू ॥ ८ ॥

---

(६) गोपि=गोप्य, छिपा हुआ, अप्रत्यक्ष । बैसो=बैठा हुआ, स्थिर । ऊभौ=खड़ा हुआ, अस्थिर । "नेति नेति" का सा वर्णन है ।

(७) व्योम माहिं चित्र=आकाश में तसवीर का बनाना । ख पुष्पवत् ।

(८) वचन के परै="यतो वाचा निवर्त्तते"—जिसको वाणी नहीं पहुंच सकती । जो कहने या प्रवचन से जाना नहीं जा सकै । "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः"—यह आत्मा व्याख्यान से समझी नहीं जा सकती है ।

इन्द्री नहिं जानि सकै अल्प ज्ञान इन्द्रीन कौ
प्रान हू न जानि सकै स्वास आवै जाइ है।
मन हूं न जानि सकै संकल्प विकल्प करै
बुद्धि हूं न जानि सकै सुन्यौं सु बताइ है॥
चित्त अहंकार पुनि एऊ नहिं जांनि सकै
शब्द हू न जानि सकै अनुमान पाइ है।
सुन्दर कहत ताहि कोऊ नहिं जानि सकै
"दीवा करि देखिये सु ऐसी नहिं लाइ है" ॥ ६ ॥

इन्दव

ो न जानत चक्षु न जानत जानत नांहि जु सूंघत घ्रानैं।
हि सपर्श तुचा न सकै पुनि जानत नाहि न जीभ बखानैं॥
। मन जानत बुद्धि न जानत चित्त अहं कहि क्यौं पहिचानैं।
ब्द हु सुन्दर जांनि सकै नहिं "आतमा आपु कौं आपु ही जानैं"॥१०॥
र के तेज तें सूरज दीसत चन्द के तेज तें चन्द उजासै।
रे के तेज तें तारे उ दीसत बिज्जुल तेज तें बिज्जु चकासै॥

---

(९) इन्द्रिय (चक्षुरादि पंच ज्ञानेन्द्रिय) स्थूल पदार्थों को जान सकती हैं। आत्मा अति सूक्ष्म है। इनके अधिकार में नहीं। प्रण—यहां पच-महाप्राणों से अभिप्राय है। उनकी भी इतनी शक्ति कहां कि अनत तेजोमय का अनुभव करें। मन—सकल्प विकल्पात्मक, चचल, अस्थिर इसही कारण अशक्त हैं। बुद्धि—बुद्धि से परे है इस से जाना नहीं जा सकता। चित, अहकार-ये दोनों भी स्वल्पशक्ति के होने से अनुभव करने मे असमर्थ हैं। दीवा=दीपक। लाइ=लाय, महा ज्वलत अग्नि। वह स्वयम् प्रकाश ज्योतिःस्वरूप है। "न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः" उसको सूर्य चन्द्रमा और अग्नि के तेज भी दिखा नहीं सकते हैं।

(१०) यह ९ वें छन्द की व्याख्या ही में समझिए।

दीप के तेज तें दीपक दीसत हीरे के तेज तें हीरो उभासै।
तैसें हि सुन्दर आतम जानहुं आपु के तेज तें आपु प्रकासै॥ ११॥
कोउ कहै यह सृष्टि सुभाव तें कोउ कहै यह कर्म तें स्रष्टी।
कोउ कहै यह काल उपावत कोउ कहै यह ईस्वर तिष्टी॥
कोउ कहै यह ऐसै हि होत है क्यों करि मांनिये बात अनिष्टी।
सुन्दर एक किये अनुभौ बिनु जांनि सकै नहिं बाहिज द्रष्टी॥ १२॥
कोउ तौ मोक्ष अकास बतावत को कहै मोक्ष पताल के मांहीं।
कोउ तौ मोक्ष कहै पृथवी पर कोउ कहै कहुं और कहां हीं॥
कोउ बतावत मोक्ष शिला पर को कहै मोक्ष मिटें पर छांहीं।
सुन्दर आतम के अनुभौ बिन और कहूं कोउ मोक्ष हि नांहीं॥ १३॥
मूये तें मोक्ष कहैं सब पंडित मूये तें मोक्ष कहै पुनि जैंना।
मूये तें मोक्ष कहैं ऋषि तापस मूये तें मोक्ष कहैं शिव सैंना॥
मूये तें मोक्ष मलेछ कहैं तेउ धोपैं हि धोपैं बपानत बैंना॥
सुन्दर आतम कौ अनुभौ सोइ जीवत मोक्ष सदा सुख चैंना॥ १४॥
जाग्रत तौ नहिं मेरै विषै कछु स्वप्न सु तौ नहिं मेरै विषै है।
नाहिं सुषोपति मेरै विषै पुनि विश्व हु तैजस प्राज्ञ पषै है॥

---

(११) यह भी "दीवा करि देषिये सु ऐसी नहि लाद है" इस वाक्य की ही व्याख्या समझैं।

(१२) तिष्टी=स्थापित की, निर्मित की। अनिष्टी=ऐसे ही होना अस्वभाविक है। कोई कारण अवश्य ही मानना पड़ैगा। बस वही कारण ब्रह्म है। कारण का न मानना अनिष्ट है, बुद्धि ग्राह्य नहीं है। बाहिज दृष्टि=बाह्य दृष्टि, बहिर्मुख बुद्धि, भौतिक बुद्धि, अतर्मुख हुये बिना ज्ञान हो नहीं सकती।

(१४) शिव सैंना=शैवमत में जो रहस्य कहा है। वाममार्ग से भी अभिप्राय हो सकता है। मलेच्छ=मुसल्मान। कयामत के दिन इनके यहां इन्साफ होकर जिनको नजात मिलनी है मिलैगी। आत्मानुभव=यही एक अवस्था विशेष है सो ही मोक्ष वा मुक्ति जगत् है।

मेरै विषै तुरिया नहिं दीसत याहि तें मेरौ स्वरूप अपै है।
दूर तें दूर परै तें परै अति सुन्दर कोउ न मोहि छपै है॥ १५॥

मनहर

कोउ तौ कहत ब्रह्म नाभि के कंवल मध्य
कोउ तौ कहत ब्रह्म हृदै मैं प्रकास है।
कोउ तौ कहत कंठ नासिका के अग्रभाग
कोउ तौ कहत ब्रह्म भ्रकुटी मैं वास है॥
कोउ तौ कहत ब्रह्म दशयें द्वार के बीच
कोउ तौ कहत भौंर गुफा मैं निवास है।
पिंड तें ब्रह्मंड लें निरंतर विराजै ब्रह्म
सुन्दर अखंड जैसैं व्यापक आकास है॥ १६॥

पांव जिनि गह्यौ सु तौ कहत है ऊपर सौ
पूंछ जिनि गही तिन लाव सौ सुनायौ है।
सूंडि जिनि गही तिन दगली की बांह कह्यौ
दन्त जिनि गह्यौ तिनि मूसर दिषायौ है॥
कान जिनि गह्यौ तिनि सूप सौ बनाइ कह्यौ
पीठि जिनि गही तिनि विटोरा बतायौ है।
जैसौ है सु तैसौ ताहि सुन्दर सयांपो जांनै
"आंधरनि हाथी देषि झगरा मचायौ है" ॥ १७॥

---

(१५) यही छन्द और इसका वर्णन ऊपर "ज्ञानसमुद्र" के पंचम उल्लास में ८ वां छन्द और तत्सम्बन्धी छन्द हैं। "जाग्रत तो नहि...... ।

(१६) नाभि के कवल=नाभिचक्र। दशयें द्वार=ब्रह्मरंध्र। भौंर गुफा=नादानुसंधान क्रिया में भ्रमर गुफा का वर्णन है। पिंड ब्रह्मांड ते निरंतर=शरीरों में और समग्र सृष्टि में व्यापक है, कहीं विशिष्ट स्थिति नहीं। (१७) उपर=ऊखली, लकड़ी की बनी हुई वा पत्थरकी खड़ी। दगली=अंगरखा। सूप=छाज, छाजला। विटोरा=ऊपलों (छाणों) के चुने समूहको ऊपर से लीप देते हैं। पिरावंडा।

न्याय शास्त्र कहत है प्रगट ईश्वर वाद
मीमांसक शास्त्र महिं कर्मवाद कह्यौ है।
वैशेषिक शास्त्र पुनि कालवादी है प्रसिद्ध
पातंजलि शास्त्र महिं योगवाद लह्यौ है॥
सांख्य शास्त्र मांहि पुनि प्रकृति पुरुष वाद
वेदांत शास्त्र तिनहिं ब्रह्मवाद गह्यौ है।
सुन्दर कहत षट् शास्त्र मांहि भयौ वाद
जाके अनुभव ज्ञान वाद में न बह्यौ है॥ १८॥
प्रज्ञानमानन्द ब्रह्म ऐसें ऋग्वेद कहत
अहं ब्रह्म अस्मि इति युयुर्वेद यौं कहै।
तत्वमसि इति साम वेद यौं बखानत है
अयमात्मा हि ब्रह्म वेद अथर्व्वन लहै॥
एक एक बचन में तीन पद हैं प्रसिद्ध
तिन कौ बिचार करि अर्थ तत्व कौं गहै।
चारि वेद भिन्न भिन्न सब कौ सिद्धांत एक
सुन्दर समुझि करि चुपचाप ह्वै रहै॥ १९॥

---

(१८) छहों शास्त्रों में भिन्न—भिन्न वाद (मत) हैं। परन्तु जिसको आत्मानुभव हो गया उसको किसी के मत से प्रयोजन नहीं शब्द (बचन) और अनुभव (सिद्धि की प्राप्ति) में यही भेद है। कहनी और करणी का भेद जो है सो ही यहां अभिप्राय है।

(१९) ये चार महावाक्य उपनिषदों में आये हैं। ये उपनिषद तत्तत् वेदों के साथ हैं। महावाक्यविवेक पचदश्यादि से। प्रथम तैत्तिरीय में २।१।—दूसरा बृहदारण्यक में १।४।१०।—तीसरा छांदोग्य ६।८।३। में—चौथा मांडूक्योपनिषद् ।२। में है। इस प्रकार चारों वेदों के चार उपनिषदों में ये महावाक्य हैं। सो स्वामीजो ने सम्भवतः "पचदशी" ग्रन्थ के महावाक्यविवेक में भो आप देखा है सो ही लिखा

इन्द्रिनि कौ भोग जब चाहैं तब आइ रहै
नाशवंत तातैं तुच्छानन्द यौं सुनायौ है।
देवलोक इन्द्रलोक विधिलोक शिवलोक
वैकुंठ के सुख लौं गणितानन्द गायौ है ॥
अक्षय अखंड एकरस परिपूरन है
वाही तें पूरनानन्द अनुभौं तें पायौ है।
याही के अंतरभूत आनन्द जहां लौं और
सुन्दर समुद्र मांहि सर्व जल आयौ है ॥ २० ॥

एक तौ माया विसाल जगत प्रपंच यह
च्यारि पांनि भेद पाइ द्वैत भासि रह्यौ है।
दूसरौ विषै विलास इन्द्रिनि कौ विषै पंच
शब्द हू सपर्श रूप रस गंध गह्यौ है ॥
तीजौ वाइक विलास सु तौ सब वेद मांहि
वरनि कैं जहांलग वचन तें कह्यौ है।
चौथौ ब्रह्म कौ विलास तिहूं कौ अभाव जहां
सुन्दर कहत वह अनुभौ तें लह्यौ है ॥ २१ ॥

है। एक वाक्य तीन पद है—तथा "तत्वमसि" में तत्+त्वम्+असि। यह+तू+है। है शब्द वह को तू के साथ मिला कर एक करता है। अर्थात् यह जीव है सो ब्रह्म है। यों जीव ब्रह्म की एकता को प्रतिपादन किया। ऐसे शेष तीन महावाक्य भी जानना।

(२०) इन्द्रियों का आनंद चाहे जब होकर शीघ्र नष्ट हो जाता है। इसी से तुच्छ है। और इन्द्रलोकादि का भोग परिमित समय तक रहता है भोग पूर्ण हो जाने के उपरांत मर्त्यलोक में आकर जन्म लेना पड़ता है। परन्तु आत्मानन्द की प्राप्ति हो जाती है तब वह पूर्ण आनन्द है फिर नष्ट नहीं होता है। इस ही वास्ते ब्रह्मा-नन्द ही सब आनन्दों से परम श्रेष्ठ है।

(२१) विलास=आनन्द का भोग, व्यवसाय। माया विलास=विषयानन्द के सहगामी है।

जीवत ही देवलोक जीवत ही इन्द्रलोक
जीवत ही जन तप सत्यलोक आयौ है।
जीवत ही विधिलोक जीवत ही शिवलोक
जीवत वैकुंठलोक जो अकुंठ गायौ है॥
जीवत ही मोक्षशिला जीवत ही भिस्ति मांहिं
जीवत ही निकट परमपद पायौ है।
आतम कौ अनुभव जिनि कौं जीवत भयौ
सुन्दर कहत तिनि संसय मिटायौ है॥ २२॥

इच्छा ही न प्रकृति न महतत्त्व अहंकार
त्रिगुण न व्योम आदि शब्दादि कोइ है।
श्रवणादि वचनादि देवता न मन आदि
सूक्षम न थूल पुनि एक ही न दोइ है॥
स्वेदज न अण्डज जरायुज न उद्भिज
पशु ही न पक्षी ही न पुरुष ही न जोइ है।
सुन्दर कहत ब्रह्म ज्यौं कौ त्यौं ही देषियत
न तौ कछु भयौ अब है न कछु होइ है॥ २३॥

क्षिति भ्रम जल भ्रम पावक पवन भ्रम
व्योम भ्रम तिन कौ शरीर भ्रम मांनिये।

---

(२२) इस छन्द में जीवन्मुक्ति का वर्णन और उसकी श्रेष्ठता कही है जो आत्मा के अनुभव से प्राप्त होती है। अकुंठ=विशाल, स्वतन्त्र। मोक्षशिला=जैन धर्म के अनुसार उनके तीर्थंकरों को जिस स्थान में निर्वाण वा कैवल्य मिलता है वही मोक्षशिला कही है। भिस्ति=बहिश्त, स्वर्ग (मुसल्मानी धर्म में यह नाम है)।

(२३) "न तो कछु भयो......"। जगत् का पसारा, जिस माया का, ब्रह्म के आभास या सकाश से है, वह माया मिथ्या है। वह तीन काल ही में नहीं वर्त्तती है। केवल ब्रह्म ही तीनों काल में व्यापता रहता है।

इन्द्री दश तेऊ भ्रम अन्तहकरण भ्रम
तिन हूं के देवता सु भ्रम तें वषांनिये ॥
सत्व रज तम भ्रम पुनि अहंकार भ्रम
महतत्व प्रकृति पुरुष भ्रम भानिये।
जोई कछु कहिये सु सुन्दर सकल भ्रम
अनुभौ किये तें एक आतमा ही जानिये ॥ २४ ॥

भूमि हू विलीन होइ आपु हू विलीन होइ
तेज हू विलीन होइ वायु जो वहतु है।
व्यौम हू विलीन होइ त्रिगुण विलीन होइ
शब्द हूं विलीन होइ अहं जो कहतु है ॥
महतत्व लीन होइ प्रकृति विलीन होइ
पुरुष विलीन होइ देह जौ गहतु है।
सुन्दर सकल जो जो कहिये सु लीन होइ
आतमा के अनुभव आतमा रहतु है ॥ २५ ॥

---

(२४) यहां ससार के सब पदार्थों को भ्रम कहा है। अर्थात् अध्यास मात्र है। अविद्या से उत्पन्न मिथ्या दिखावा ही है।

(२५) "पुरुष विलीन होई..."। यहां पुरुष शब्द से जीव समझना। जीव ब्रह्म की एकता होने पर जीवदशा ब्रह्म में लीन हो जाती है और केवल ब्रह्म ही रह जाता है। "द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च । क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते। उत्तमःपुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृत."। गीता। यहां तीन पुरुष कहे उनमें पहिला पुरुष माया। दूसरा पुरुष जीव। और तीसरा परात्पर परमात्मा (ब्रह्म)। "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः"। यह जीव परमात्मा का एकांशरूप से समझा जाय जब भी अंश जो (जीव) है सो अंशी (ब्रह्म) में लीन ही होता है। उस परमात्मारूप महासागर में जीव एक जलकण समान है। जीव का ब्रह्म से भेद माया के संसर्ग मात्र ही से है। माया का संसर्ग मिटते ही जीव और ब्रह्म वस्तुतः एक ही हैं। यहां ऐसी ही समझ बताई गई है।

माया की अपेक्षा ब्रह्म रात्रि की अपेक्षा दिन
जड की अपेक्षा करि चेतन्य वर्षांनिये।
अज्ञान अपेक्षा ज्ञान बंध की अपेक्षा मोक्ष
द्वैत की अपेक्षा सु तौ अद्वैत प्रवांनिये॥
दुख की अपेक्षा सुख पाप की अपेक्षा पुन्य
झूठ की अपेक्षा ताहि सत्य करि मांनिये।
सुन्दर सकल यह वचन विलास भ्रम
वचन अवचन रहित सोई जानिये॥ २६॥

आतमा कहत गुरु शुद्ध निरवन्य नित्य
सत्य करि मानै सु तौ शब्द हू प्रमांण है।
जैसें व्योम व्यापक अखण्ड परिपूरन है
व्योम उपमा तें उपमान सो प्रमांण है॥
जाकी सत्ता पाइ सब इन्द्रिय चेतन्य होइ
याहि अनुमान अनुमान हू प्रमांण है।
अनुभव जानै तब सकल सन्देह मिटै
सुन्दर कहत यह प्रत्यक्ष प्रमांण है॥ २७॥

---

(२६) माया और ब्रह्म के परस्पर के भेद को उदाहरणों से कहा है। प=चेतन। प्रवांनिये=प्रमाणिये।

(२७) यहां चार प्रमाण बताये हैं:—(१) शब्द प्रमाण। सो वेद वाक्य वा वाक्य जैसे "सत्यंज्ञानमनन्त ब्रह्म"। (२) उपमान प्रमाण जैसे 'खं ब्रह्म' अथवा, काशस्थितो नित्य— इत्यादि। (३) अनुमान प्रमाण। जैसे "मनो वै ब्रह्म"। मन नहीं है तो भी ऐसा कहने से यह प्रयोजन है कि ब्रह्म का मन अनुमान है। (४) प्रत्यक्ष प्रमाण जैसे "अहं ब्रह्मास्मि" इसमें ब्रह्म साक्षात्कार प्रत्यक्ष वेदांत में (५) अर्थापत्ति—जिसके बिना जो न हो। जैसे ब्रह्म के बिना प्रकृति (टि नहीं हो सकती। और (६) अनुपलब्धि-एक पदार्थ में दूसरे के अभाव की

एक घर दोइ घर तीन घर चारि घर
पंच घर तजै तब छठौ घर पाइ है।
एक एक घर कै आधार एक एक घर
एक घर निराधार आपु ही दिपाइ है॥
सु तौ घर साक्षी रूप घर घर मैं अनूप
ताहू घर मध्य कोऊ दिन ठहराइ है।
ताकै परै साक्षि न असाक्षि न सुन्दर कछु
वचन अतीत कहूं आइ है न जाइ है॥ २८॥
एक तौ श्रवन ज्ञान पावक ज्यौं देपियत
माया जल वरसत वेगि वुझि जात है।
एक है मनन ज्ञान विज्जुल ज्यौं घन मध्य
माया जल वरषत ता मैं न वुझात है॥

प्रतीति (भाव की अप्रतीति) होय—जैसे ब्रह्म में अविद्या की अनुपलब्धि है। "वेदांत परिभाषा" तथा विचार सागर और "वृत्ति प्रभाकरादि" में इन छहों प्रमाणों का अच्छा प्रतिपादन है।

(२८) यहां "घर" शब्द देकर उत्तरोत्तर शारीरिक ज्ञान वा ज्ञान-स्थिति और आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से बताया है। पहला घर शरीर। दूसरा इन्द्रियां। तीसरा मन। चौथा बुद्धि। पांचवा चित्त। छठा अहङ्कार। सातवा जीवात्मा। आठवां परात्पर ब्रह्म जो वचनातीत, रूपातीत, ध्यानातीत है। अथवा ज्ञान की सात भूमिकाएं और इनसे परे परब्रह्म। अथवा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोष जो एक दूसर में (कदि के छिलके की तरह) धरे हुये हैं। इन पांचों के भीतर ही भीतर साक्षी चेतन कूटस्थ परमात्मा है। 'पंचदशी' ग्रन्थ में (पच-कोषविवेक में) निरूपण है। तदनुसार ही स्वामीजो ने कहा है। और 'विचार-सागर' में पचम तरंग में अच्छा कथन किया है। और आत्मा का पचकोष से पृथक् कहा है—"पंचकोष ते आतम न्यारो......।"

एक निदिध्यास ज्ञान वडवा अनल सम
प्रगट समुद्र मांहि माया जल पात है।
आतमानुभव ज्ञान प्रलय अगनि जैसें
सुन्दर कहत द्वैत प्रपंच विलात है॥ २६ ॥

चकमक ठोके तें चमतकार होत कछु
ऐसौ है श्रवन ज्ञान तब ही लौं जानिये।
कफ मन लागै जब प्रगटै पावक ज्ञान
सिलगत जाइ वह मनन बषानिये॥
वर्द्धमान भये काठ कर्मनि जरावत है
वह निदिध्यास ज्ञान ग्रन्थनि मैं गानिये।
सकल प्रपंच यह जारि कैं समाइ जात
सुन्दर कहत वह अनुभौ प्रमानिये॥ ३० ॥

(२९) वाडवा अनल=वाडवाग्नि, जो समुद्र के पेंदे में रहती है, और समुद्र जल को तपाती और सोसती है। "ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणं...(गीता)। ज्ञान की प्राप्ति होते ही शुभाशुभ कर्मों का नाश हो जाता है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन तीनों ज्ञान को बढ़ानेवाले साधन हैं। इनके अनंतर या इनके बल से आत्मा का साक्षात्कार हो जाने से फिर कर्म उत्पन्न नहीं हो पाते। "क्षीयते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे"। विज्जुल=विद्युत, बिजली। माया जल=मायारूपी जल, अथवा जल जो माया (प्रकृति) का एक तत्व है।

(३०) कफमन=यह शब्द हिन्दी वा अन्य किसी भाषा का नहीं प्रतीत होता है। मूल पुस्तकों और पुराणी छपी हुई में यही पाठ है। हिन्दी के किसी भी कोश में या उर्दू फारसी के कोशों में यह शब्द नहीं मिला। अतः इसकी लिखावट पर विचार किया तो यही अनुमान उपयुक्त हुआ कि आदि में ग्रन्थकार ने 'कपासन' लिखा होगा तब 'पा' का 'फ' हो गया लिखने में और 'स' का 'म' हो गया लिखने ही में क्योंकि ऐसा बन जाना सहज ही है। पहाड़ी भाषा में चकमाक से जिन पत्तों की

भोजन की बात सुनि मन मैं मुदित होत
मुख मैं न परै जौं लौं मेलिये न ग्रास है।
सकल सामग्री आनि पाक कौं करन लाग्यौ
मनन करत कब जीऊं यह आस है॥
पाक जब भयौ तब भोजन करन बैठौ
मुख में मेलत जाइ उहै निदिध्यास है।
भोजन पूरन करि तृपत भयौ है जब
सुन्दर साक्षातकार अनुभौ प्रकास है॥ ३१

श्रवन करत जब सब सौं उदास होइ
चित्त एकाग्रम आनि गुरु मुख सुनिये।
बैठि कै एकंत ठौर अन्तहकरन मांहि
मनन करत फेरि उहै ज्ञान गुनिये॥
ब्रह्म कौं परोक्ष जानि कहत है अहं ब्रह्म
सोहं सोहं होइ सदा निदिध्यास धुनिये॥
इहै अनुभव इहै कहिये साक्षातकार
सुन्दर पालै तें गलि पानी होई सुनिये॥ ३२

बनी रहे पर आग झड़ती है उसको 'कास' या 'बघा' कहते हैं। और 'कास एक भेद रुई या कपास का भी है। इसको बदूक के साथ रस्सी के आकार की तो 'जमगी' भी कहते हैं। तब अर्थ होता है—कास रूपी बुद्धि पर मन रू चकमाक भाड़ने से आग की चिनगारी पड़े तब ज्ञानरूपी अग्नि सुलगने लग जाय किसी किसी मुद्रित पुस्तक में 'कफ मांहि' ऐसा पाठ भी दिया है और कफ का अ "वेलवेडियर प्रेस की छपी पुस्तक में 'योम्ना' दिया है सो नितान्त अनुचित क्योंकि 'कफ' का ऐसा अर्थ कभी नहीं होता।

(३१) चारों ज्ञान के साधनों को भोजन की चारों अवस्थाओं से उपमा दे कितना सुन्दर हुआ है।

(३२) एकाग्रम=एकाग्र, इधर उधर न डुलै। धुनिये=उसकी धुन में लगे

जब ही जिज्ञास होइ चित्त एक ठौर आनि
मृग ज्यौं सुनत नाद श्रवन सो कहिये।
जैसैं स्वाति बून्द हूं कौं चातक रटत पुनि
ऐसें ही मनन करै कब बून्द लहिये ॥
जैसैं रात्रि हूं चकोर चन्द्रमा को धरै ध्यान
ऐसें जानि निदिध्यास दृढ़ करि गहिये।
सुन्दर साक्षातकार कीट जैसैं होइ भृंग
उहै अनुभव उहै स्वस्वरूप रहिये ॥ ३३ ॥

काहू कौं पूछत रंक धन कैसै पाइयत
कान दैकैं सुनत श्रवन सोई जानिये।
उन कह्यौ धन हम देख्यौ है फलांनी ठौर
मनन करत भयौ कब घरि आनिये ॥
फेरि जब कह्यौ धन गड्यौ तेरे घर मांहि
खोदन लग्यौ है तब निदिध्यास ठानिये।

हो जाइये। पाला=बर्फ, जो वस्तुतः पानी ही है, उष्णता (अग्नि) ज्ञानाग्नि से पिघल कर फिर पानी ही हो जाता है। उपाधि से पानी और पाला पृथक् थे, वैसे ही जगत् और ब्रह्म, वा जीव और परमात्मा उपाधि से चिदाभास मात्र से न्यारे न्यारे प्रतीत होते हैं, वास्तव में एक हैं। यह ज्ञान होना ही आत्मा का अनुभव कहाता है। श्रवणादि साधन चतुष्टय ज्ञान के अंतरंग साधन हैं। इनका 'विचार सागर' के प्रथम-तरंग में अच्छा विवेचन है।

(३३) जिज्ञास=जिज्ञासा, जानने की इच्छा, ज्ञान प्राप्ति की लालसा। अथवा जिज्ञासु अधिकारी बन कर। कीट जैसे भृंग—स्ट से भौंरा। इस पर पूर्व में ही टिप्पणी दी गई है। यहां जीव से ब्रह्म होने से अभिप्राय है।

धन निकस्यौ है जब दद्रि गयौ है तब
सुन्दर साक्षातकार नृपति बर्षानिये ॥ ३४ ॥*

॥ इति आत्मानुभव कौ अंग ॥ २८ ॥

॥ अथ ज्ञानी कौ अंग ॥ २९ ॥

इन्दव

जाकै हृदै मंहि ज्ञान प्रकाशत ताकौ सुभाव रहै नहिं छांनौ ।
नैंन मैं बैन मैं सैन मैं जानिये ऊठत बैठत है अलसांनौ ॥
ज्यौं कछु भक्ष किये उदगारत कैसैं हुं राषि सकै न अघांनौ ।
सुन्दरदास प्रसिद्धि दिषावत धान कौ खेत पयार तें जांनौ ॥ १ ॥
ज्ञान प्रकाश भयौ जिनकै उर वे घट क्यूं हि छिपे न रहैंगे ।
भोडल मांहि दुरै नहिं दीपक यद्यपि वे मुख मौंन गहैंगे ॥
ज्यूं घनसार हि गोप्य छिपावत तौहि सुगन्धि सु तज्ञ लहैंगे ।
सुन्दर और कहा कोउ जानत बूठे की बात बटाऊ कहैंगे ॥ २ ॥†

---

(३४) घरि=घर में, अपने अधिकार वा कब्जे में । इस छन्द में धन प्राप्ति, ज्ञान (अद्वैत ज्ञान) की प्राप्ति के लिये जो दृष्टांत दिया है यह अत्यत सुन्दर और समीचीन है ।

* छन्द ३४ के आगे (क) पुस्तक में ३५ वां छन्द "देह यह किन को है देह पचभूतनि कौ..." इत्यादि है । सो पहिले अंग २५ छन्द १४ आ चुका है ।

† यह छन्द २ (क) पुस्तक में नहीं है (ख) आदि पुस्तकों में है ।

(१) प्रसिद्धि=प्रगट । पयार=पयाल, पराल, डठल । अलसानौं=सुस्ताने के समय ।

(२) घनसार=सुगंधि द्रव्य । कपूर । तज्ञ=उसके जाननेवाले । बूठे की=रस्ते चला गया उसकी, परदेश गया उसकी । बटाऊ=रस्ते चलनेवाला ।

बोलत चालत बैठत ऊठत पीवत पातहु सूंघत स्वासै।
ऊपर तौ व्यवहार करै सब भीतर स्वप्न समान सौ भासै॥
लै करि तीर पताल कौं सांधत मारत है पुनि फेरि अकासै।
सुन्दर देह क्रिया सब देपत कोउ न पावत ज्ञानी कौ आसै॥ ३॥

बैठै तौ बैठै चलै तौ चलै पुनि पीछै तौ पीछै हि आगै तौ आगै।
बोलै तौ बोलै न बोलै तौ मौंन हि सोवै तौ सोवै रु जागै तौ जागै॥
पाइ तौ पाइ नहीं तौ नहीं जु मढै तौ मढै अरु त्यागै तौ त्यागै।
सुन्दर ज्ञानी की ऐसी दसा यह जानै नहिं कछु राग विरागै॥ ४॥

देपत है पै कछू नहिं देपत बोलत है नहिं बोल बपांनै।
सूंघत है नहिं सूघत घ्रांण सुनै सब है न सुनै यह मांनै॥
भक्ष करै अरु नांहि भपै कछु भेटत है नहिं भेटत प्रांनै।
लेत है देत है देत न लेत है सुन्दर ज्ञानी की ज्ञानी हि जांनै॥ ५॥

काज अकाज भलौ न बुरौ कछु उत्तम मध्यम दृष्टि न आवै।
कायक वाचक मानस कर्म सु आपु विषै न तिन्है ठहरावै॥
हौं करि हौं न कियौ न करौं अब यौं मन इन्द्रिनि कौ बरतावै।
दीसत है व्यवहार विषै नित सुन्दर ज्ञानी की कोउ न पावै॥ ६॥

देपत ब्रह्म सुनें पुनि ब्रह्म हि बोलत है सोउ ब्रह्म हि वांनी।
भूमि हु नीर हु तेज हु वायु हु व्योम हु ब्रह्म जहां लगि प्रांनी॥
आदि हु अन्त हु मध्य हु ब्रह्म हि है सब ब्रह्म इहै मति ठांनी।
सुन्दर ज्ञे अरु ज्ञान हु ब्रह्म सु आपु हु ब्रह्म हि जानत ज्ञांनी॥ ७॥

---

(३) पातहु=खावत। आसै=आशय।

(६) "नैवकिंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित"—तत्वज्ञानी योगी मैं करता हुआ भी कुछ नहीं करता ऐसा मानता है—(गीता)। गीतादि शास्त्रों में अनेक स्थलों पर विदेह-मुक्ति और ज्ञानी के लक्षण कहे हैं। "ब्रह्मण्याधाय कर्म्माणि सङ्गंत्यक्त्वा करोति यः कर्मों को (करता हुआ) ब्रह्म में अर्पण करता है। ऐसा ज्ञानी कर्मों से लिप्त नहीं होता है।

ऊठत केवल बैठत केवल बोलत केवल बात कही है।
जागत केवल सोवत केवल जोवत केवल दृष्टि लही है॥
भूत हु केवल भावि हु केवल वर्त्तत केवल ब्रह्म सही है।
है सब ही अध ऊरध केवल सुन्दर केवल ज्ञान उही है॥ ८॥

केवल ज्ञान भयौ जिनि कै उर ते अध ऊरध लोक न जांही।
व्यापक ब्रह्म अखंड निरंतर वा बिन और कहूं कछु नांही॥
ज्यौं घट नाश भये घट व्योम सु लीन भयौ पुनि है नभ मांही।
त्यौं मुनि मुक्ति जहां वपु छाडत सुन्दर मोक्षशिला कहुं कांही॥ ९॥

आदि हुतौ नहिं अंतर है नहिं मध्य शरीर भयौ भ्रम धूपं।
भासत है कछु और कौ औरइ ज्यौं रजु मैं अहि सीप सु रूपं॥
देषि मरीचि उड्यौ विचि विभ्रम जानत नाहि उदै रवि धूपं।
सुन्दर ज्ञान प्रकाश भयौ जब एक अखंडित ब्रह्म अनूपं॥ १०॥

मनहर

जाही कै विवेक ज्ञान ताही कै कुसल भई
जाही वोर जाइ वाकौ ताही वोर सुख है।
जैसैं कोऊ पाइनि पैजार कौं चढाइ लेत
ताकौं तौ न कोउ काटे पोभरे कौ दुख है॥
भावै कोऊ निंदा करौ भावै तौ प्रसंसा करौ
वो तौ देषै आरसी मैं आपुनौ ई मुख है।
देह कौ व्यौहार सब मिथ्या करि जानत है
सुन्दर कहत एक आतमा कौ रुख है॥ ११॥

---

(९) जैनियों के मत में तीर्थंकरों आदिकों को मोक्ष की मोक्षशिलापर जा पहुंचने को मानते हैं। मोक्षशिला आत्मा की एक अवस्था विशेष है। शिला शब्द से स्थिरता का प्रयोजन बताया है। परन्तु सुन्दरदासजी ज्ञानी को तत्क्षण मोक्ष वा जीवन्मुक्ति ही को मानते हैं।

(११) पैजार=जूते। पोभरे=छोटे खड्डे। 'कांटाखोबरा' ऐसा बोलचाल में

अंतहकरण जाकै तम गुण छाइ रह्यौ
जडता अज्ञान वाकै आलस मै त्रास है।
रज गुण कौ प्रभाव अंतहकरण जाकै
बिबिधि करम वाकै कामना कौ वास है॥
सत्व गुण अंतहकरण जाकै देपियत
क्रिया करि सुद्ध वाकै भक्ति कौ निवास है।
त्रिगुण अतीत साक्षी तुरिया स्वरूप जांनि
सुन्दर कहत वाकै ज्ञान कौ प्रकास है॥ १२॥

तमोगुणी बुद्धि सु तौ तवा कै समान जैसै
ताकै मध्य सूरज की रंच हूं न जोति है।
रजो गुणी बुद्धि जैसें आरसी कौ औंधौ वोर
ताकै मध्य सूरज कौ चछुक उदोत है॥
सतो गुणी बुद्धि जैसें आरसी की सूधी वोर
ताकै मध्य प्रतिबिंब सूरज कौ पोत है॥
त्रिगुण अतीत जैसें प्रतिबिंब मिटि जात
सुन्दर कहत एक सूरज ई होत है॥ १३॥

कहते हैं। खोबड़ा लगाना लकड़ी की नोंक बदन में घुस जाने को भी कहते हैं। उभना भी इसकी क्रिया है जिसका अर्थ घुसना है। रुख= मुख। लक्ष्य।

(१२) रजोगुण और तमोगुण का अभाव जिसमें है और सतोगुण ही की प्रधानता जिसकी आत्मा में है ऐसा ज्ञानी। तुरीया=चतुर्थी ब्राह्मी अवस्था। "ज्ञान यदा तदा विद्यात् विवृद्ध सत्त्वमित्युत" (गीता)। जब सतोगुण की बढ़वारी होती है तब ही ज्ञान का प्रकाश होता है।

(१३) आरसी को औंधी ओर=जब काच के दर्पणों का प्रचार नहीं था तब फौलादी आईने होते थे। उनके एक तरफ पर सैकल से अधिक चमक (पालिश) होती थी। दूसरी तरफ उतनी नहीं होती थी। उस में मुख नहीं वा कम दिखाई देता था। पोत=प्रोत—ओतप्रोत=पूर्ण।

सब सौं उदास होइ काढि मन भिन्न करै
ताकौं नाम कहियत परम वैराग है।
अंतहकरण हूं की वासना निवर्त्त होहि
ताकौं मुनि कहत हैं उहै बडो त्याग है॥
चित्त एक ईश्वर सौं नेंकहूं न न्यारौ होइ
उहै भक्ति कहियत उहै प्रेम माग है।
आपु ब्रह्म जगत कौं एक करि जानै जब
सुन्दर कहत वह ज्ञान भ्रम-भाग है॥ १४॥
कोऊ नृप फूलन की सेज पर सूतौ आइ
जब लग जाग्यौ तौ लौं अति सुख मान्यौं है।
नींद जब आई तब वाही कौ सुपन भयौ
जाइ पर्‌यौ नरक कै कुंड मैं यौं जान्यौं है॥
अति दुख पावै परि निकस्यौ न क्योंहि जाइ
जागि जब पर्‌यौ तब सुपन बषान्यौ है।
इह झूठ वह झूठ जाग्रत सुपन दोऊ
सुन्दर कहत ज्ञानी सब भ्रम भान्यौं है॥ १५॥
स्वपने मैं राजा होइ स्वपने मैं रंक होइ
स्वपने मैं सुख दुख सत्य करि जानै हैं।
स्वपने मैं बुद्धि हीन मूढ समुझै न कछु
स्वपने (मैं) पंडित बहु ग्रन्थनि बषानै है॥
स्वपने मैं कामी होइ इन्द्रिन कै वसि पर्‌यौ
स्वपने मैं जती होइ अहंकार आनै है।

---

(१४) माग=मार्ग। प्रेमपथ। भ्रम-भाग=भ्रम जिसमें से भाग गया है। निर्भ्रान्त। वह पुरुष ज्ञा-भ्रम-भाग वाला है, अर्थात् जिसका पूर्ण निर्भ्रान्त ज्ञान है।

(१५) वेदांत में परमार्थ दृष्टि से जगत् को स्वप्न समान माना है। अर्थात् मिथ्या। देखो "जगत मिथ्या को अंग" ३२।

स्वपने तें जाग्यौ जब समुझि परी है तब
सुन्दर कहत सब मिथ्या करि मानै हैं ॥ १६ ॥

विधि न निषेध कछु भेद न अभेद पुनि
क्रिया सौं करत दीसै यौंही नित प्रति है।
काहू कौं निकट रापै काहू कौं सौं दूरि भापै
काहू सौं नीरे न दूर ऐसी जाकी मति है॥
राग ही न दोष कोऊ शोक न उछाह दोऊ
ऐसी विधि रहै कहुं रति न विरति है।
बाहिर ब्यौहार ठांनै मन में स्वपन जांनै
सुन्दर ज्ञानी की कछु अद्‌भुत गति है ॥ १७ ॥

कामी है न जती है न सूम है न सती है न
राजा है न रंक है न तन है न मन है।
सोवै है न जागै है न पीछै है न आगै है न
ग्रहै है न त्यागै है न घर है न वन है॥
थिर है न डोलै है न मौन है न बोलै है न
बंधै है न पोलै है न स्वांमी है न जन है।
वैसौ कोऊ होइ जब वाकी गति जानै तब
सुन्दर कहत ज्ञानी शुद्ध ज्ञान-घन है ॥ १८ ॥

सुनत श्रवन मुख बोलत बचन मौन
सूंघत फूलन रूप देपत दृगन है।

---

(१८) जन=स्वजन, सेवक। ज्ञानघन=परिपूर्ण ज्ञान से भरा हुआ। यह विशेषण ब्रह्म का है। परिपूर्ण ज्ञानावस्था में ज्ञान का आनन्द भी पूर्ण ही हो जाता है। ज्ञानी ब्रह्मस्वरूप ही होता है। "ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्"—ज्ञानी तो मेरी ही आत्मा है अर्थात् मैं ही हूं यही मेरा सिद्धांत मत है—(गीता)। "ब्रह्मविद्‌ब्रह्मैव भवति" (श्रुति उपनिषद्) ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म ही हो जाता है। इस कारण ज्ञानी को ज्ञानघन कहना यथार्थ है।

त्वक् सप्रसन रस रसना प्रसन कर
महत असन , अरु चलत पगन है ॥
करत गवन पुनि वैठत भवन सेज
सोवत रवन तन वोढत नगन है।
जुजु कछु व्यवहार जानत सकल भ्रम
सुन्दर कहत ज्ञानी गगन मगन है ॥ १६ ॥
(कर्म न विकर्म करै भाव न अभाव धरै
सुभ हु असुभ परै यातें निधरक है।)
वसती न सून्य जाकै पाप ही न पुन्य ताकै
अधिक न न्यून वाकै स्वग न नरक है ॥
सुख दुख सम दोऊ नीच ही न ऊंच कोऊ
ऐसी विधि रहै सोउ मिल्यौ न फरक है।
एक ही न दोइ जानैं बंध मोक्ष भ्रम मानै
सुन्दर कहत ज्ञानी ज्ञान मैं गरक है ॥ २० ॥
अज्ञानी कौं दुख कौ समूह जग जानियत
ज्ञानी कौं जगत सव आनन्द स्वरूप है।

---

(१९) जु जु=जो जो भी। गगन मगन=आकाश समान व्यापक ब्रह्म में, डूबा हुआ है। इस छन्द का ज्ञान तथा २० वें छन्द का ज्ञान बहुत कुछ गीता अध्याय ५ श्लो० ७ से "योगयुक्तो विशुद्धात्मा इत्यादि से लगाकर श्लो० ११ "कायेन मनसा बुद्धया..." इत्यादि तक से मिलता है। परन्तु सुन्दरदासजी के विचार में आनन्दमग्नता का कथन विशेष है। गीता में योगयुक्तता प्रधान कही है।

(२०) सुभ हु असुभ परै=शुभाशुभ, बुरे भले, कर्मों से दूर रहता है, अर्थात् उनमें लिप्त नहीं होता है करता है तौ भी। बसती न सून्य=वह चाहै बसती (ग्राम वा शहर की बसापत) में रहै चाहै शून्य (निर्जन स्थान उजाड़) में रहै सब समान है। अथवा बस+तीन=त्रिगुण वाली माया उसके वश में है शून्य समान प्रभाव।

नैन हीन कों तो घर बाहिर न सूझै कछु
जहां जहां जाइ तहां तहां अंध कूप है ॥
जाकै चक्षु है प्रकाश अंधकार भयौ नाश
वाकौं जहां रहै तहां सूरज की धूप है ।
सुन्दर अज्ञानी ज्ञानी अन्तर बहुत आहि
याकै सदा राति वाकै दिवस अनूप है ॥ २१ ॥

ज्ञानी अरु अज्ञानी की क्रिया सब एकसी ही
अज्ञ आसा और ज्ञानी आस न निरास है ।
अज्ञ जोई जोई करै अहंकार बुद्धि धरै
ज्ञानी अहंकार बिनु करत उदास है ॥
अज्ञ सुख दुख दोऊ आपु विषै मांनि लेत
ज्ञानी सुख दुख कौ न जानै मेरै पास है ।
अज्ञ कौं जगत यह सकल संताप करै
सुन्दर ज्ञानी कौं सब ब्रह्म कौ बिलास है ॥ २२ ॥

ज्ञानी लोक संग्रह कौं करत व्यौहार विधि
अंतहकरण मैं सुपन की सी दौर है ।
देत उपदेश नाना भांति के बचन कहि
सब कोउ जानत सकल सिरमौर है ॥

---

(२१) सूरज की धूप है । यहां सूर्य के समान प्रकाश अभिप्रेत है ।

(२२) अज्ञ आसा=अज्ञानी आशा तृष्णा में लिप्त रहता है । उदास=उदासीन भाव, समभाव । न जानै मेरे पास है=ज्ञानी सुख और दुःख को "गुणा गुणेषु वर्त्तन्ते इति मत्वा न सज्जत" (गीता) प्रकृति के गुणों को व्यापार समझ कर उनको आप (आत्मा) से न्यारा भिन्न ही समझता रहता है : अर्थात् उनका प्रभाव कुछ भी पड़ता नहीं ।

हलन चलन पुनि देह सौं करावत है
ज्ञान मैं गरक नित लिये निज ठौर है।
सुन्दर कहत जैसैं दंत गजराज मुख
"पाइवे के और ई दिपाइवे के और है" ॥ २३ ॥

इन्द्रिनि कौ ज्ञान जाकै सु तौ पसु के समान
देह अभिमान पान पान ही सौं लीन है।
अंतहकरण ज्ञान कछुक बिचार जाकै
मनुप व्यौहार सुभ कर्मनि आधीन है॥
आतमा बिचार ज्ञान जाकै निस बासर है
सोई साधु सकल ही बात मैं प्रवीन है।
एक परमातमा कौ ज्ञान अनुभव जाकै
सुंदर कहत वह ज्ञानी भ्रम छीन है॥ २४ ॥

जाही ठौर रवि कौ उदोत भयौ ताही ठौर
अंधकार भागि गयौ गृह वन वास तें।
न तौ कछु बन तें उलटि आवै घर मांहि
न तौ बन चलि जाइ कनक अवास तें॥
जैसें पंपी पाप टूटि जाही ठौर पर्यौ आइ
ताही ठौर गिरि रह्यौ उडिवे की आस तें।
सुन्दर कहत मिटि जाइ सब दौर धूप
"धोपौ न रहत कोऊ ज्ञान के प्रकास तें" ॥ २५ ॥

---

(२३) लौक समद्द=संसार यात्रा, सम्पार का व्यवहार। "लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि" (गीता)। ज्ञानी संसार के सब आवश्यक कर्मों को अवश्यकर्ता है परन्तु भेद यही है कि "पद्मपत्रमिवाम्भसा" जल में कमल के पत्ते की तरह रहकर भी जल से लिपता नहीं है। दौर=दौड़, क्रिया, काम। ज्ञानी को जाग्रत भी तो स्वप्न समान भासता है।

(२५) ज्ञान का लक्षण कहते हैं। ज्ञान सूर्य प्रकाश समान है। स्थान के परि-

जैसें काहू देश जाइ भाषा कहै और सी ही
समुझै न कोऊ वासौं कहै का कहतु है ।
कोऊ दिन रहि करि वोली सीषै उन ही की
फेरि समुझावै तव सवको लहतु है ॥
तैसें ज्ञान कहैं तें सुनत विपरीति लागै
आप आपुनौ ई मत सब को गहतु है ।
उन ही के मत करि सुन्दर कहत ज्ञान
तबही तौं ज्ञान ठहराइ कैं रहतु है ॥ २६ ॥

एक ज्ञानी कर्मनि मैं ततपर देषियत
भक्ति कौ प्रभाव नाहिं ज्ञान में गरक है ।
एक ज्ञानी भकति कौ अत्यन्त प्रभाव लीये
ज्ञान माहिं निश्चै करि कर्म सौं तरक है ॥
एक ज्ञानी ज्ञान ही में ज्ञान कौ उचार करै
भक्ति अरु कर्म इनि दुहु ते फरक है ।
कर्म भक्ति ज्ञान तीनों वेद मैं बपानि कहे
सुन्दर बतायौ गुरु ताही मैं लरक है ॥ २७ ॥

वर्तन आदि की अपेक्षा नहीं । कनक अवास=स्वर्ण का महल । पपी=पक्षी, परेरू । टूटि=टूटी, टूट पड़ी ।

(२६) इस छन्द में स्व० सु० दा० जी ने मनुष्य में ज्ञान किस प्रकार आता है वा बढ़ता है इस बात का आध्यात्मिक वा मानसिक रहस्य का, मर्म का वा सिद्धांत निरूपण किया है। प्राप्ति अभ्यास अथवा साधन के आधीन है ।

(२७) छन्द पाद के अक्षर पूर्ति के लिए 'भक्ति" को 'भकति' लिखा गया है (एक ज्ञानी भकति कौ'—यहां)। तरक=अरबी तर्क शब्द=त्याग। वा स० तर्क, दलील, छानबीन, विवेक। फरक=अ० फर्क भिन्नता। लरक=तत्पर, अभ्यस्त। 'सुन्दर बतायो गुरु' इसका सम्बन्ध 'ज्ञानभक्ति कर्म' वेद के बताए से भी हो सकता

जैसैं पंषी पगनि सौं चलत अवनि आइ
　　　तैसैं ज्ञानी देह करि कर्मनि करत है।
जैसैं पंषी चूंच करि चुगत अहार पुनि
　　　तैसैं ज्ञानी उर में उपासना धरत है॥
जैसैं पंषी पंषनि सौं उडत गगन मांहि
　　　तैसैं ज्ञानी ज्ञान करि ब्रह्म में चरत है।
सुन्दर कहत ज्ञानी तीनौं भांति देषियत
　　　ऐसी विधि जानें सब संशय हरत है॥ २८॥

इन्दव

एक क्रिया करि किर्षि निपावत आदि रु अन्त ममत्व बंध्यौ है।
एक क्रिया करि पाक करै जब भोजन लौं कछु अन्न रंध्यौ है॥
एक क्रिया मल त्यागत है लघुनीति करै कहुं नांहि फंध्यौ है।
त्यौं यह जांनि क्रिया अरु संग्रह सुन्दर तीनि प्रकार संध्यौ है॥ २९॥
दोइ जने मिलि चौपरि षेलत सारि धरैं पुनि ढारत पासा।
जीवत हैं सु षुसी मन में अति हारत है सु भरै जु उसासा॥

है। अथवा सम्बन्ध नहीं भी हो सकता है और गुरु के बताए विशिष्ट वा विलक्षण रहस्य (सैन) भी अभिप्राय लिया जा सकता है। 'स्तरक' यह शब्द हिन्दी भाषा में अव्यवहृत प्रतीत होता है।

(२८) इस छन्द में ज्ञानी के लिये कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनों का उदाहरण पक्षी (पखेरू) से दिया है। स्वभावतः ज्ञानी आकाश में उडनेवाले पांखोंवाले के समान है, परन्तु संसार यात्रा और शरीर यात्रा करने को पृथ्वी पर आना और चुगना यह भी करता है। अर्थात् कर्म और पुनः भक्ति गौण हैं। प्रधान ज्ञान है।

(२९) जानि=जानकारी, ज्ञान। तीनि प्रकार=कर्म, भक्ति और ज्ञान। संध्यौ=मिला हुआ। किर्षि निपावत=खेती कर अन्न उत्पन्न करैं।

एक जनों दुहु वोर ही पेलन हारि न जीति करै जु तमासा।
तैसें अज्ञानी कै द्वैत भयौ भ्रम सुन्दर ज्ञानी कै एक प्रकासा ॥ ३० ॥

सवईया

जीव नरेश अविद्या निद्रा सुख सज्या सोयौ करि हेत।
कर्म पयास पुटपरी लाई तातें बहु विधि भयौ अचेत ॥
भक्ति प्रधान जगायौ कर गहि आलस भर्यौ जंभाई लेत।
सुन्दर अब निद्रा वस नाहीं ज्ञान जागरन सदा सचेत ॥ ३१ ॥
ज्ञानी कर्म करै नाना विधि अहंकार या तन कौ पोवै।
कर्मन कौ फल कछू न वंछै अन्तहकरन वासना धोवै ॥
ज्यौं कोई षेती कौं जोतै लै करि बीज भूंनि करि बोवै।
सुन्दर कहै सुनौ दृष्टान्त हि "नागौ न्हाइ सु कहा निचोवै" ॥ ३२* ॥

॥ इति ज्ञानी कौ अंग ॥ २९ ॥

अथ निरसंशै को अंग ॥ ३० ॥

मनहर

भावै देह छूटि जाहु काशी माँहि गंगातट
भावै देह छूटि जाहु क्षेत्र मगहर मैं।

---

(३०) अज्ञानी=जो आपस में खेलते हैं वे परस्पर स्पर्द्धा होने से द्वैतवाले अज्ञानी हैं। ज्ञानी=वह तमाशा देखनेवाला (भेद रहित होने से) ज्ञानी।

(३१) चार अवस्थाओं के उदाहरण—(१) विषयसुख (२) कर्म (३) भक्ति (उपासना) (४) ज्ञान। पुटपरी=(१) पगचंपी। अथवा (२) भग धतूरे का पुट दी हुई या मदिरा अफयूनदार।

* छन्द ३२ (क) पुस्तक में नहीं है (ख) आदि में है।

अंग ३० वां—निरसंशै=निःसंशय=संशय रहित।

भावै देह छूटि जाहु विप्र के सदन मध्य
भावै देह छूटि जाहु स्वपच के घर मैं॥
भावै देह छूटौ देश आरज अनारज मैं
भावै देह छूटि जाहु बन मैं नगर मैं।
सुन्दर ज्ञानी कै कछु संशै नहिं रह्यौ कोइ
स्वरग नरक सब भाजि गयौ भर मैं॥ १॥

भावै देह छूटि जाहु आज ही पलक मांहि
भावै देह रहौ चिरकाल जुग अन्त जू।
भावै देह छूटि जाहु ग्रीषम पावस रितु
सरद सिसिर सीत छूटत बसन्त जू॥
भावै दक्षनायन हू भावै उत्तरायन हूं
भावै देह सर्प सिंह बिज्जुली हनन्त जू॥
सुन्दर कहत एक आतमा अखण्ड जानि
याहि भांति निरसंशै भये सब सन्त जू॥ २॥

---

(१) मगहर=मगधदेश। यहां मरने से मुक्ति नहीं होती ऐसा कहीं २ लिखा है। भर=मरुस्थल वा भाड़। (देखो अर्थ आगे) काशीमांहि=काशीमरण से मुक्ति मानी गई है, ऐसे ही गंगाजल वा गंगातट पर मृत्यु से मोक्ष मानी गई है। भर=(यहां) भाड़ का अर्थ प्रतीत होता है। भर का अर्थ लड़ाई युद्ध का भी है। ग्रामीण मारवाड़ी में मरुस्थल निर्जल निर्जन स्थान को भी भर कहते हैं। जहां जाने से नाश वा अभाव हो जाय, उसी से प्रयोजन है।

(२) उत्तरायन=सूर्य जब उत्तरायण में आवै और मनुष्य की मृत्यु हो तो सद्गति मानी जाती है। सूर्य उत्तरायण में धनुराशि पर आने के प्रायः ९ दिन पीछे आ जाता है और उस दिन तारीख २२ दिसम्बर होती है। यह अयन शिशिर, वसंत और ग्रीष्म तीन ऋतुओं में छह महीने तक रहता है। ता० २१ जून तक रहता है। फिर सूर्य दक्षिणायन में आने लगता है। भीष्मजी उत्तरायण में सूर्य ---- तब ही मरे थे। इसका महात्म्य गीता अ० ८ श्लो० २४ में भी दिया है—

इन्दव

कै यह देह धरी वन पर्वत कै यह देह नदी में बहौ जू।
कै यह देह धरी धरती महिं कै यह देह कृशान दहौ जू॥
कै यह देह निरादर निंदहु कै यह देह सराहि कहौ जू।
सुन्दर संशय दूरि भयौ सब कै यह देह चलौ कि रहौ जू॥ ३॥
कै यह देह सदा सुख सम्पति कै यह देह बिपत्ति परौ जू।
कै यह देह निरोग रहौ नित कै यह देह हि रोग चरौ जू॥
कै यह देह हुतासन पैठहु कै यह देह हिंवारै गरौ जू।
सुन्दर संशय दूरि भयौ सब कै यह देह जिवौ कि मरौ जू॥ ४॥

॥ इति निरसंशै को अंग ॥ ३० ॥

॥ अथ प्रेमपराज्ञान ज्ञानी को अंग ॥ ३१ ॥

इन्दव

प्रीति की रीति नहीं कछु राषत जाति न पांति नहीं कुल गारौ।
प्रेम कै नेम कहूं नहिं दीसत लाज न कांनि लग्यौ सब पारौ॥
लीन भयौ हरि सौं अभिअंतर आठहुं जाम रहै मतवारौ।
सुन्दर कोउ न जांनि सकै यह "गोकुल गांव कौ पैंडो ही न्यारौ"॥ १॥

"अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्। तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदोजनाः" ॥ २४ सर्प, सिंह, बिजली, धुवां, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन आदि में मरने से या तो सद्गति नहीं हो या फिर जन्मै।

(३) कृशान=कृशानु=अग्नि। हुतासन=हुताशन=प्रबल अग्नि।

[अंग ३१] (१) कुल गारौ=कुल गारौ=कुलाम्नाय छोड़ने से जो निन्दा हो (उसकी कुछ परवाह नहीं) "अरु आवै कुलगारौ"। सूरदास अथवा—कुलरूपी कीच।

ज्ञान ।ग गुरुदेव कृपा करि दूरि कियौ भ्रम पोलि किवारौ।
और क्रिया कहि कौंन करै अब चित्त लग्यौ परब्रह्म पियारौ॥
पांव विना चलि कै तहिं ठाहर पंगु भयौ मन मित्त हमारौ।
सुन्दर कोउ न जांनि सकै यह "गोकुल गांव कौ पैंडौ हि न्यारौ"॥ २॥
एक अखंडित ज्यौं नभ व्यापक बाहिर भीतर है इकसारौ।
दृष्टि न मुष्टि न रूप न रेष न सेत न पीत न रक्त न कारौ॥
चक्रित होइ रहै अनुभौ बिन जौं लग नांहि न ज्ञान उज्यारौ।
सुन्दर कोउ न जांनि सकै यह "गोकुल गांव कौ पैंडौ हि न्यारौ"॥ ३॥
द्वंद्व विना बिचरै वसुधा परि जा घट आतम ज्ञान अपारौ।
काम न क्रोध न लोभ न मोह न राग न दोष न म्हारौ न थारौ॥
योग न भोग न त्याग न संग्रह देह दशा न ढक्यौ न उघारौ।
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह "गोकुल गांव कौ पैंडौ हि न्यारौ"॥ ४॥
लक्ष अलक्ष अदक्ष न दक्ष न पक्ष अपक्ष न तूल न भारौ।
झूठ न सांच अवाच न वाच न कंचन काच न दीन उदारौ॥
जान अजान न मान अमान न ज्ञान गुमान न जीत न हारौ।
सुन्दर कोउ न जांनि सकै यह "गोकुल गांव कौ पैंडौ हि न्यारौ"॥ ५॥

॥ इति प्रेमपराज्ञान ज्ञानी को अंग ॥ ३१ ॥

---

(३) पैंडौ=पैंडा=मार्ग, रीति। मुष्टि=मुट्ठी, मुट्ठी में, गुप्त। दृष्टि=दृष्ट, दृश्यमान, प्रगट। ज्ञान=तत्त्वज्ञान।

(४) म्हारौ=(राजस्थानी)—मेरा, अपना। थारौ=तुम्हारा, पराया। ढक्यौ=ढका हुआ। वस्त्र पहिने हुए।

(५) तूल=रुई (जैसा हल्का)। अवाच=वचनातीत, कहने में न आवै। अथवा वाच्य, कहने योग्य शिष्ट वाक्य।
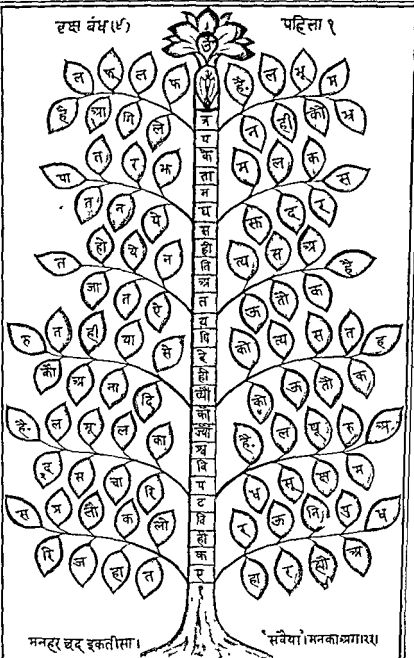
वृक्ष बंध(४)
पहिला १
मनहर छंद इकतीसा।
सवैया।मनका अग।२३।

वृक्षबन्ध (१)

मनहर छन्द

एक ही विटप विश्व ज्यौं को त्यौं ही देखियत
अति ही सघन ताके पत्र फल फूल है।
आगिले झरत पात नये नये होत जात
ऐसे याही तरु की अनादि काल मूल है॥
दस चारि लोक लौं प्रसरि जहां तहां रह्यो
अध पुनि उरध सूक्षम अरु थूल है।
कोउ तौ कहत सत्य कोउ तौ कहै असत्य
सुन्दर सकल मन ही कौ भ्रम भूल है॥ ६॥

पढ़ने की विधिः—

इस वृक्ष बध के छन्द को वृक्ष के तने की जड़ के ऊपर ए अक्षर से प्रारंभ करना चाहिये। ए अक्षर पर १ का अङ्क नीचे को लगा हुआ है। ऊपर पढ़ते जांय त्र तक पढ़ें, फिर बांई ओर को फ अक्षर से पत्तों में पढ़ें। प्रथम चरण है मे पूरा करें जहां पूर्ण-विराम का बिन्दु लगा है। प्रत्येक चरण के आदि के अक्षर के नीचे १-२-३-४ के अङ्क और अन्त के अक्षर पर पूर्ण विराम के बिन्दु (फुलस्टाप) लगा दिये गये हैं जिससे पढ़ने में सुविधा रहै। पत्तों के अक्षरों के पढ़ने में यह सावधानी रक्खी जाय कि टहनी के (पढ़ने में) सबसे पिछले पत्ते के अक्षर को पास की दूसरी टहनी के निकटवाले पत्ते के अक्षर से मिला कर पढ़ें। पत्तों के अक्षरों का क्रम लगातार कवि महात्मा ने ऐसा ही रक्खा है। दूसरा चरण छठे पत्ते के आ अक्षर से पढ़कर ३७ वें पत्ते (पांचवीं टहनी के ५ वें) में पूरा करें। इसही प्रकार ३ रे चरण को द से प्रारम्भ करके आठवीं टहनी के ९ मवें अक्षर में पूर्ण करें। और चौथे चरण को उस टहनी के आगे ९ वीं टहनी के प्रथम अक्षर को से प्रारम्भ करके १२ वीं टहनी के अन्तिम पत्ते के अक्षर में पूर्ण करें। चतुर रचनाकार ने टहनियों के पत्तों की गणना दोनों ओर के प्रथम तीन की (प्रथम कीट और आगे के दो २ की ७-७) २२-२२। और पिछले तीन की ९-९ यों २७ रक्खी है। यों तने की २६+ दोनों ओर ९८=१२४ हैं। इस युक्ति से चरणान्त अक्षर, वाम पार्श्व में टहनी के अन्त के पत्ते में और दाहिने में तने के पास के ऊपर के प्रथम पत्ते में आया है कहीं भी मध्य में नहीं आया है। इससे छन्द के पढ़ने और दर्शे में सुन्दरता आ गई है।

॥ अथ अद्वैतज्ञान को अंग ॥ ३२ ॥

इन्दव (प्रश्नोत्तर)।

हौ तुम कौन, हौ ब्रह्म अखंडित, देह में क्यौं, नहिं देह क नेरैं।
बोलत कैसें के, हौ नहिं बोलत, जानिये कैसें, अज्ञान है तेरैं ॥
दूर करौ भ्रम, निश्चय धारि कहौ गुरुदेव, कहौ नित टेरैं।
हौ तुम ऐसें हि, तू पुनि ऐसौ ई, दोइ भये, नहिं द्वैत है मेरैं ॥ १ ॥
हौं कछु और कि तू कछु और कि है कछु और किधौं कछु औरै।
हौं अरु तू यह है कछु सो पुनि बुद्धि विलास भयौ झक झौरै ॥
हौं नहिं तू नहिं है कछु सो नहिं बूझि बिना जित ही तित दौरै।
हौं पुनि तू पुनि है कछु सो पुनि सुन्दर व्यापि रह्यौ सब ठौरै ॥ २ ॥
उत्तम मध्यम और सुभासुभ भेद अभेद जहां लग जो है।
दीसत भिन्न तवो अरु दर्प्पन वस्तु विचारत एकई लो है ॥
जो सुनिये अरु दिष्टि परै पुनि वा बिन और कहौ अब को है।
सुन्दर सुन्दर व्यापि रह्यौ सब सुन्दर ही महिं सुन्दर सोहै ॥ ३ ॥
ज्यौं वन एक अनेक भये द्रुम नाम अनंतनि जाति हु न्यारी।
यापि तडाग रु कूप नदी सब हैं जल एक सौ देषौ निहारी ॥

[३२ वा अंग] (१) नेरैं=निकट। अनात्म देह में व्यापक होकर इससे भिन्न और फिर निकट। दोइ भये=हौं (मैं) और तू (तुम)—ऐसा कहने से द्वैत हो गया ऐसा सन्देह शिष्य ने किया। उसका ही परिहार कर समाधान गुरु करता है कि मेरे द्वैत नहीं है। अर्थात् "तत्वमसि" महावाक्य का स्मरण कर। और अगरे छन्द में विस्तार से निरूपण करता है गुरु।

(३) तवो=(लोहे का) तवा रोटी पकाने का। दर्पण=फोलाद का बना हुआ दर्पण। लो=लोहा। सोहै=सुहाना लगै।

पावक एक प्रकाश बहु विधि दीप चिराक मसाल हु बारी।
सुन्दर ब्रह्म विलास अखंडित खंडित भेद की बुद्धि सु टारी॥ ४॥
एक सरीर मैं अंग भये बहु एक धरा परि धाम अनेका।
एक शिला महिं कोरि किये सब चित्र बनाइ धरे ठिकठेका॥
एक समुद्र तरंग अनेकनि कैसैं क कीजिये भिन्न विवेका।
द्वैत कछू नहिं देषिये सुन्दर ब्रह्म अखंडित एक कौ एका॥ ५॥
ज्यौं मृतिका घट नीर तरंग हि तेज मसाल किये जु बहूता।
वायु बघूरनि गांठि परी बहु बादल ब्योम सु ब्योम जीमूता॥
बृक्ष सु बीज है बीज सु बृक्ष है पूत सु बाप है बाप सपूता।
वस्तु विचारत एक हि सुन्दर तांनै रु बांनै तौ देषिये सूता॥ ६॥
भूमि ह् चेतनि आपु हु चेतनि तेज हु चेतनि है जु प्रचंडा॥
वायु हु चेतनि ब्योम हु चेतनि शब्द हु चेतनि पिंड ब्रह्मंडा॥
है मन चेतनि बुद्धि हु चेतनि चित्त हु चेतनि आहि उडंडा।
जो कछु नाम धरै सोइ चेतनि चेतनि सुन्दर ब्रह्म अखंडा॥ ७॥
एक अखंडित ब्रह्म विराजत नाम जुदौ करि विश्व कहावै।
एक ई ग्रन्थ पुरान बषानत एक ई दत्त वसिष्ट सुनावै॥
एक ई अर्जुन उद्धव सौं कहि कृष्ण कृपा करि कैं समुझावै।
सुन्दर द्वैत कछू मति जानहुं एक ई व्यापक वेद बतावै॥ ८॥

---

(४) (५) (६)—इन तीनों छन्दों में विशेषतः समष्टि और व्यष्टि की युक्तियों से अखण्ड ब्रह्म का जगत् का पसारा नाना भेद रूपादि में दरसाया है। कार्य-कारणता सम्बन्ध (जैसे बीज-वृक्ष न्याय से) भी दिखाया है। ठिकठेका=ठीक ठीक। जीमूत=बादल।

(७) (८)—इन दो छन्दों में "सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन" इस श्रुति का प्रगटरूप से वर्णन है। संसार में जड़ वा अनात्म पदार्थ कोई नहीं है सब चैतन्य (चेतन—ब्रह्म) ही है। चेतन कारण है चेतन ही कार्य (जगत्) है। यह

मनहर (प्रश्नोत्तर)

शिष्य पूछे गुरुदेव गुरु कहै पूछ शिष्य
मेरे एक संशय है, पूछे क्यों न अब ही।
तुम कह्यौ एक ब्रह्म अब हूं मैं कहूं एक
एक तौ अनेक (ता) क्यों इह तौ भ्रम सब ही॥
भ्रम इह कौन कों है भ्रम ही कों भ्रम भयौ
भ्रम ही कों भ्रम कैसें तू न जानै कब ही।
कैसें करि जानों प्रभु गुरु कहै निश्चै धरि
निश्चय मैं धार्‌यौ अब एक ब्रह्म तब ही॥ ६॥
ब्रह्म है ठौर को ठौर दूसरौ न कोऊ और
वस्तु कौ विचार कीयें वस्तु पहिचानिये।
पंचतत्व तीन गुन बिस्तरे बिविधि भांति
नाम रूप जहां लगै मिथ्या माया मानिये॥
शेष नाग आदि दे कै वैकुण्ठ गोलोक पुनि
बचन बिलास सब भेद भ्रम भांनिये।

धात शंकर मत (विवर्त्तवाद) से एक अंश में प्रतिकूल भले ही पड़े परन्तु वास्तव में इसकी समर्थक श्रुतियां हैं। दत्त=दत्तात्रेय। दत्तात्रेय-संहिता में इस विश्व को ब्रह्म का विराट्स्वरूप मात्र कहा है। वशिष्ठ—वशिष्ठजी ने भी योगवाशिष्ठ में अनेक स्थानों में ऐसा ही कहा है। अर्जुन को गीता और अनुगीता में। उद्धव को भागवत में इस ही ब्रह्मज्ञान का उपदेश श्रीकृष्ण ने दिया है।

(९) शिष्य के नानात्वरूपी भ्रम को गुरु निवारण करता है कि यह सृष्टि भ्रम (मिथ्या-दृश्यमान सत्य और वास्तव असत्य—क्षर) है। जीव ईश्वर दशा उपाधियों सहित होने से नानापने का आभास होता है। कार्य-कारणता के भ्रम मिट जाने पर सच्चा और पूर्ण बोध हो जाता है। "कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते"। इस वचन से।

न तौ कोऊ उरमयौ न सुरझ्यौ कहौ सु कौंन
सुन्दर सकल यह "ऊवाबाई जानिये" ॥ १० ॥

प्रथम हि देह में तें बाहिर कौं चौंकि पर्यौ
इन्द्रिय व्यौपार मुख्य सत्य करि जान्यौ है।
कौंन ऊ संयोग पाइ सद्गुरु सौं भेट भई
उन उपदेश दे के भीतर कौं आन्यौ है॥
भीतर कैं आवत हि बुद्धि कौ प्रकास भयौ
ह्यां कौंन देह कौंन जगत किन मान्यौ है।
सुन्दर विचारत यौं उपज्यौ अद्वैत ज्ञान
आपु कौं अखंड ब्रह्म एक पहिचान्यौ है॥ ११ ॥

हंसाल

सकल संसार विस्तार करि वरनियौ स्वर्ग पाताल मृति पूरि भ्रम रह्यौ है।
एक तें गिनत गिनि जाइये सो लगें फेरि फरि एक कौं एक ही गह्यौ है॥
यह नहिं यह नहिं यह नहिं यह नहिं रहै अवशेष सो वेद हू कह्यौ है।
सुन्दर सही सौं विचारि के अपुनपौ "आपु मैं आपु कौं आपु ही लह्यौ है"॥१२॥

एक तू दोइ तू तीन तू चारि तू पंच तू तत्व मैं जगत कीयौ।
नाम अरु रूप है बहुत विधि विस्तर्यौ तुम बिना और कोऊ नाहिं बीयौ॥
राव तू रंक तू दानि तू दीन तू दोइ कर मेलि तैं दीयौ लीयौ।
सकल यह सृष्टि तुम माहि उपजै खपै कहत सुन्दर यहौ विपुल हीयौ॥१३॥

---

(१०) "ऊवाबाई"—यह ऊवाबाई शब्द "बावनी" ग्रन्थ के १५ वें छन्द में आया है। वहां टीका देखें। पोपांबाई की तरह एक यह "ऊवाबाई" भी हुई है।

(१३) बीयौ=दूजा, दूसरा। विपुल हीयौ=बहुत बड़ा हृदय। ईश्वर का महान् विशाल विचार है जिससे महान् विश्व हुआ। अथवा सुन्दरदासजी कहते हैं कि विराट विश्व का महान् विचार करते करते मेरा हृदय भी महान् हो जाता है।

मनहर

तोही मैं जगत यह तू ही है जगत मांहि
तौ मैं अरु जगत मैं भिन्नता कहां रही।
भूमि ही तें भाजन अनेक भांति नाम रूप
भाजन विचारि देषें उहै एक है मही॥
जल तें तरंग भई फेन बुद्बुदा अनेक
सो ऊ तौ बिचारें एक वहै जल है सही।
महा पुरुष जेतें है सब को सिद्धांत एक
सुन्दर खल्विदं ब्रह्म अन्त वेद है कही॥ १४॥

जैसें ईक्षुरस की मिठाई भांति भांति भई
फेरि करि गारै ईक्षुरस हि लहत हैं।
जैसें घृत थीजि कैं डरा सौ वंधि जात पुनि
फेरि पिघरे तें वह घृत ई रहत है॥
जैसें पानी जमि कै पषान हू सौ देपियत
सो पषान फेरि करि पानी है बहत है।
तैसें हि सुन्दर यह जगत है ब्रह्ममय
ब्रह्म सौं जगत मय वेद यौं कहत है॥ १५॥

जैसें काठ कोरि ता मैं पूतरी वनाइ राषी
जो विचार देषिये तौ उहै एक दार है।
जैसें माला सूत ही को मनिकाऊ सूत ही के
भीतर हू पोयौ पुनि सूत ही कौ तार है॥
जैसें एक समुद्र के जल ही कौं लौंन भयौ
सो ऊ तौ विचारे पुनि उहै जल पार है।

(१४) खल्विदं ब्रह्म="सर्वं खल्विदं ब्रह्म" श्रुतिवाक्य उपनिषद का है। यह सब सृष्टि जो भासती है सारी ब्रह्म है—ब्रह्मरूपा है।

(१५) ईक्षु=ईख, गन्ना, सांठा। थीजिके=जमकर, गाढ़ा होकर।

तैसैं हि सुन्दर यह जगत सु ब्रह्ममय
ब्रह्म सौ जगत मय याहि निरधार है ॥ १६ ॥

जैसैं एक लोह के हथ्यार नाना विधि कीये
आदि अन्त मध्य एक लोह ई बखानिये।
जैसैं एक कंचन के भूषन अनेक भये
आदि अन्त मध्य एक कंचन ई जानिये ॥
जैसैं एक मैंन के संवारे नर हाथी हय
आदि अन्त मध्य एक मैंन ही बपानिये।
तैसैं ही सुन्दर यह जगत सु ब्रह्ममय
ब्रह्म सौ जगत मय निश्चै करि मानिये ॥ १७ ॥

ब्रह्म मैं जगत यह ऐसी विधि देपियत
जैसो विधि देपियत फूलरी महीर मैं।
जैसी विधि गिलम दुलीचे मैं अनेक भांति
जैसी विधि देपियत चूनरी हू चीर मैं ॥
जैसी विधि कांगरे ऊ कोट पर देपियत
जैसी विधि देपियत बुदबुदा नीर मैं।
सुन्दर कहत लीक हाथ पर देपियत
जैसी विधि देपियत शीतला शरीर मैं ॥ १८ ॥

---

(१६) पूतरी=पुतली, मूर्त्ति। दार=दारु, काठ। (१७) मैंन=मैंण, मोम।

(१८) फूलरी महोर मे=महीर=मट्ठा। फूलरी=मक्खन की छोटी डलियां जो दही बिलोते में पड़ती हैं। अथवा महीरह=वृक्ष। फूलरी=फूल अथवा चीर या ओढने मे फूल बूटे। गिलम=बढ़िया मखमल से भी उत्तम बेल बूटदार कारीगरी के मुलाइम रेशमी कपड़े वा गालीचे जो बादशाहों वा अमीरों के लिए बनते थे—"गिलगिली गिलमैं हैं" (पद्माकर) दुलीचा=गालीचा। चूनरी=बधाई डोरे की से कपड़े की रंगाई में फूल से बनते हैं।

ब्रह्म अरु माया जैसैं शिव अरु शक्ति पुनि
पुरुष प्रकृति दोउ करि कैं सुनाये हैं।
पति अरु पतनी ईश्वर अरु ईश्वरी ऊ
नारायण लक्ष्मी द्वै वचन कहाये हैं॥
जैसैं कोऊ अर्द्ध नारी नाटेश्वर रूप धरै
एक बीज ही तें दोइ दालि नाम पाये हैं।
तैसैं हि सुन्दर वस्तु ज्यौं है त्यौं ही एक रस
उभय प्रकार होइ आपु ही दिपाये हैं॥ १९ ॥

इन्दव

ब्रह्म निरीह निरामय निर्गुन नित्य निरंजन और न भासै।
ब्रह्म अखंडित है अध ऊरध बाहिर भीतरि ब्रह्म प्रकासै॥
ब्रह्म हि सूक्षम थूल जहां लग ब्रह्म हि साहिब ब्रह्म हि दासै।
सुन्दर और कछू मति जानहुं ब्रह्म हि देपत ब्रह्म तमासै॥ २० ॥
ब्रह्म हि मांहि बिराजत ब्रह्म हिं ब्रह्म बिना जिनि और हि जानौं।
ब्रह्म हि कुंजर कीट हु ब्रह्म हि ब्रह्म हि रंक रु ब्रह्म हि रानौं॥
काल हु ब्रह्म स्वभाव हु ब्रह्म हि कर्म हु जीव हु ब्रह्म बषानौं।
सुन्दर ब्रह्म बिना कछु नाहि न ब्रह्म हि जानि सबै भ्रम भानौं॥ २१ ॥
आदि हुतौ सोइ अंतर है पुनि मध्य कहा कछु और कहावै।
कारण कारय नाम धरे जुग कारय कारण माहि समावै॥
कारय देपि भयौ बिचि बिभ्रम कारण देपि बिभ्रम्म बिलावै।
सुन्दर या निहचै अभिअंतर द्वैत गये फिरि द्वैत न आवै॥ २२ ॥

---

(१९) अर्धनारी नाटेश्वर=वामांग में पार्वती दाहिने अंग में शिव। ऐसी मूर्ति को अर्धनारीश्वर कहते हैं। नाट=स्वांग, नक्ल। शिव की ऐसी मूर्ति का नाम 'नाटेश्वर' दिया है।

(२०) निरीह=चेष्टारहित। तटस्थ। साक्षीमात्र। निरामय=निर्मल,

(२१) रानौ=राणा, बड़ा राजा। (२२) कारण देखि विभ्रम्म बिलावै=कारण

मनहर

द्वैत करि देखै जब द्वैत ही दिखाई देत
एक करि देखै तब उह एक अंग है।
सूरज कौं देखै जब सूरज प्रकाशि रह्यौ
किरण कौं देखै तौ किरण नाना रंग है॥
भ्रम जब भयौ तब माया ऐसौ नाम धर्‌यौ
भ्रम के गये तें एक ब्रह्म सरवंग है।
सुंदर कहत याकी दृष्टि ही कौ फेर भयौ
"ब्रह्म अरु माया कै तौ माथै नहिं शृंग है" ॥८

श्रोत्र कछु और नाहि नेत्र कछु और नाहि
नासा कछु और नांहि रसना न और है।
त्वक कछु और नाहि वाक कछु और नाहि
हाथ कछु और नाहि पावन की दौर है॥
मन कछु और नाहि बुद्धि कछु और नांहि
चित्त कछु और नांहि अहंकार तौर है।
सुन्दर कहत एक ब्रह्म बिन और नांहि
आपु ही मैं आपु व्यापि रह्यौ सब ठौर है॥२४॥

इन्दव

व्यापिन व्यापिक व्यापि हु व्यापक आतम एक अखंडित जानां।
ज्यौं पृथवी नहि व्यापिन व्यापक भांजन व्यापि हु व्यापक मांनों॥

जो ब्रह्म उसका साक्षात्कार होने से कार्य जो संसार लय हो जाता है अर्थात् मिट जाता है। "परं दृष्ट्वा निवर्त्तते"। यही मोक्ष है।

(२४) पावन की दौर है=पांव भी शरीर के अंग मात्र हैं। उनमें चलने दौड़ने की क्रिया विशेष है। अहंकार तौर है=अहंकार में तौरा वा त्यौरा अभिमान का स्वभाव वा लक्षण है।

कंचन व्यापि न व्यापक दीसत भूषन व्यापि हु व्यापक ठांनों।
सुन्दर कारण व्यापि न व्यापक कारय व्यापि हु व्यापक आनौं ॥२५॥*

॥ इति अद्वैतज्ञान को अंग ॥ ३२ ॥

॥ अथ जगन्मिथ्या को अंग ॥ ३३ ॥

मनहर

कियौ न विचार कछु भनक परी है कान
धार आई सुनि कै डरपि विष खायौ है।
जैसें कोऊ अनछतौ ऐसै ही बुलाइयत
बार बीति गई पर कोऊ नहिं आयौ है॥
वेद हि बरनि कें जगत तरु ठाढौ कियौ
अंत पुनि वेद जर मूल तें उठायौ है।
तैसें हि सुन्दर याकौ कोऊ एक पावै भेद
जगत कौ नाम सुनि जगत भुलायौ है॥ १॥

(२५) व्यापि=व्याप्य, जिसमें अन्य वस्तु व्यापै, बसै वा प्रवेश करै, सृष्टि, संसार। व्यापिक=व्यापक, ब्रह्म ईश्वर। यहां व्याप्य व्यापक भाव का विवरण है। विशेषता यही है कि कार्य्य (सृष्टि) को ही व्यापक वा व्याप्य दोनों कहा है। इसही का विवरण आगे के अंग "जगन्मिथ्या" के छन्द ४ में भी है।

* छन्द २४ और २५ दोनों (क) पुस्तक में इस अंग में नहीं हैं। २३ वें छन्द पर ही समाप्ति है। ये (ख) आदि पुस्तकों में मिले हैं।

[अंग ३३] (१) बार=बहुत समय। अनछतौ=जो वास्तव में है ही नहीं ऐसे पुरुष की कल्पना करके। जगत तरु=जगतरूपी वृक्ष। "अश्वत्थमेनम् सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्वा…" (गीता अ० १५) इस अश्वत्थ का वर्णन

ऐसौ ही अज्ञान कोऊ आइ कैं प्रगट भयौ
दिव्य दृष्टि दुरि गई देषै चम दृष्टि कौं।
जैसें एक आरसी सदा ई हाथ मांहि रहै
सामें हो न देषै फेरि फेरि देषै पृष्टि कौं॥
जैसें एक व्योम पुनि बादर सौं छाइ रह्यौ
व्योम नहिं देषत देषत बहु बृष्टि कौं।
तैसें एक ब्रह्म ई बिराजमान सुन्दर है
ब्रह्म कौं न देषै कोऊ देषै सब सृष्टि कौं॥ २॥
अनछतौ जगत अज्ञान तें प्रगट भयौ
जैसें कोऊ बालक बेताल देषि डर्यौ है।
जैसें कोऊ स्वपने मैं दाज्यौ है अधारै आइ
मुख तें न आवै बोल ऐसौ दुख पर्यौ है॥
जैसें अंधियारी रैंन जेवरी न जानैं ताहि
आपु ही तें सांप मानि भय अति कर्यौ है।
तैसें हि सुन्दर एक ज्ञान के प्रकास बिन
आपु दुख पाय पाय आपु पचि मर्यौ है॥ ३॥

ऋग्वेद, अथर्ववेद तैत्तिरीय ब्राह्मण, कठोपनिषद, महाभारत और पुराणों में भी है। गीता में कठोपनिषद के अनुसार है। यह वृक्ष संसाररूप है जिसकी जड़ माया अविद्या है। जो ज्ञान और प्रसंग से कट जाती है। (शंकरभाष्य और गीता रहस्य देखो)।

(२) दुरि=छिपगई। चम दृष्टि=चर्म दृष्टि, स्थूल दृष्टि। यहां उपाधि के कारण यथार्थ ज्ञान न होने से अभिप्राय है। (देखो वेदांत सार)। सूक्ष्म आध्यात्मिक दृष्टि वा ज्ञान से शुद्ध की हुई बुद्धि के बिना ब्रह्म नहीं अनुभवित हो सकता। स्थूल दृष्टि से मिथ्या यह जगत् ही सत्य दीखता है।

(३). अधारै=सूर्यास्त पीछे। अन्धेरे में।

मृतिका समाइ रही भाजन के रूप मांहि
मृतिका कौ नाम मिटि भाजन ई गह्यौ है।
कनक समाइ ज्यौं ही होइ रह्यौ आभूषन
कनक न कहै कोऊ आभूषन कह्यौ है॥
बीज ऊ समाइ करि वृक्ष होइ रह्यौ पुनि
वृक्ष ई कौ देषियत बीज नहीं लह्यौ है।
सुन्दर कहत यह यौंही करि जानौ सब
ब्रह्म ई जगत होइ ब्रह्म दुरि रह्यौ है॥४॥

कहत है देह मांहि जीव आइ मिलि रह्यौ
कहां देह कहां जीव वृथा चौंकि पर्‌यौ है।
बूडवे कं डर तें तिरन कौ उपाइ करै
ऐसैं नहिं जानै यह मृगजल भर्‌यौ है॥
जेवरे कौ सापु जैसें सीप विषै रूपौ जानि
और कौ और इ देषि यौंही भ्रम कर्‌यौ है।
सुन्दर कहत यह एक ई अखंड ब्रह्म
ताही कौं पलटि कैं जगत नाम धर्‌यौ है॥५॥

॥ इति जगन्मिथ्या को अंग ॥ २२ ॥

(४-५) १ से ५ तक वही एक विचार पृथक् उदाहरणों दृष्टांतो से दरसाया है। इनमें ईश्वर ही जगत्‌रूप होना कहा है। अर्थात् निमित्त और उपादान कारण भी वही है। भासमान जगत् माया का विवर्त्तरूप है वा मिथ्या है इन्द्रजाल, मृगतृष्णा (मरीचिका) के जल के समान, अथवा उपाधि के आरोप से रसी का सांप वा सीप की चांदी प्रतीत हो वैसे सत्य वस्तु ब्रह्म में असत्य वस्तु ससार भासता है। वास्तव में जगत् है नहीं। बेताल=भूत-प्रेत। कहां देह कहां जीव=मिथ्यात्व की वृत्ति को प्रश्न करके दरसाते हैं कि देह भ्रम वा मिथ्या है उसमें जीव (ब्रह्म या

॥ अथ आश्चर्य को अंग ॥ ३४ ॥

मनहर

बेद कौ बिचार सोई मुनि कै संननि मुख
आपु हू बिचार करि सोई धारियतु है।
योग की युगति जानि जग तैं उदास होइ
शून्य मैं समाधि लाइ मन मारियतु है॥
ऐसैं ऐसैं करत करत केते दिन बीते
सुन्दर कहत अज हूं बिचारियतु है।
कारौ ही न पीरौ न तौ तातौ ही न सीरौ कछु
हाथ न परत तातैं हाथ झारियतु है॥ १॥

मन कौ अगम अति बचन थकित होत
बुद्धि हू बिचार करि बहु पींडियतु है।
श्रवन न सुनै जाहि नैंन हू न देपै ताहि
रसना कौ रस सरबस छींडियतु है॥
त्वक कौ सपर्श नांहि घ्रांण को न त्रिपै होइ
पगनि हूं करि जित तित हींडियतु है।

आत्मा) का आना कैसा ? अर्थात् यह एक मिथ्या विचार मात्र है। ससार माया-जाल है। वस्तुतः कुछ नहीं है। फिर भी "संसारसागर" से डर कर इसमें डूबने से बचने के लिये अनेक उपाय मनुष्य किया करता है। सो अवस्तु की भ्रम भरी कल्पना मात्र होने से केवल वृथा विडम्बना ही है। ज्ञानरूपी प्रकाश से मिथ्या भ्रम का नाश हो कर वास्तविक सत्य वस्तु ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। तब आप ही जगत् का मिथ्या होना निश्चित होता है।

[अङ्ग ३४] (१) परमात्मा की प्राप्ति में मनुष्य के विचार की अशक्तता वर्णित है।

सुन्दर कहत अति सूक्षम स्वरूप कछु
हाथ न परत तातैं हाथ मींडियतु है॥ २॥
गुफा कौं संवारि तहं आसन उ मारि करि
प्रांण हूं कौं धारि धारि नाक सौंटियतु है।
इन्द्रिनि कौं घेरि करि मन हूं कौं फेरि करि
त्रिकुटी मैं हेरि हेरि हियौ छौंटियतु है॥
सब छूटकाइ पुनि शून्य मैं समाइ तहं
समाधि लगाइ करि आंपि मींटियतु है।
सुन्दर कहत हम और ऊ किये उपाय
हाथ न परत तातैं हाथ पीटियतु है॥ ३॥
बोलै ही न मौन धरै बैठै ही न गौन करै
जागै ही न सोवै सुतौ दूरि ही न नीरौ है।
आवै ही न जाइ न तौ थिर अकुलाइ पुनि
भूपौं ही न पाइ कछु तातौ ही न सीरौ है॥
लेत ही न देत कछु हेत न कुहेत पुनि
स्याम ही न सेत सु तौ रातौ ही न पीरौ है।
दूबरौ न मोटौ कछु लांबौ ही न छोटौ तातैं
सुन्दर कहै सु कहा काच ही न हीरौ है॥ ४॥

---

(२) पींडियतु=क्षीण होती है। छौंडियतु=बिखरता बखेरता है। हींडियतु=
डियतु=फिरता या भूमता है। मींडियतु=मलता है। हाथ मलना=अफसोस
ना। (यह मुहाविरा मक्खी के दोनों हाथ मारने से उपमा देते हैं।)

(३) सौंटियतु=साफ करता। छौंटियतु=फटोट कर शुद्ध करता। मींटियतु=
लगाता, मूदना। पीटियतु=एक हाक दूसरे पर मारता, परचात्ताप करता।
इतना उपाय किया जाता है। फिर भी ईश्वर प्राप्ति नहीं होती। तब अफसोस
ना है। यही आश्चर्य है।

(४) से (७)—इन सब ही छन्दों में ब्रह्म को अगाध अगम्य अचिन्तनीय

भूमि ही न आप न तौ तेज ही न ताप न तौ
वायु हू न व्योम न तौ पंच कौ पसारौ है।
हाथ ही न पाव न तौ नैंन बैंन भाव न तौ
रंक ही न राव न तौ वृद्ध ही न बारौ है॥
पिंड ही न प्रान न तौ जानि न अजान न तौ
बंध निरबान न तौ हरवौ न भारौ है।
द्वैत न अद्वैत न तौ भीत न अभीत तातैं
सुन्दर कह्यौ न जाइ मिल्यौ ही न न्यारौ है॥ ५॥

इन्दव

पाप न पुन्य न थूल न सून्य न बोल न मौन न सोवै न जागै।
एक न दोइ पुरुष्प न जोइ कहै कह्यौ कोइ न पीछै न आगै॥
वृद्ध न बाल न कर्म न काल न हृस्व बिसाल न जूझै न भागै।
बध न मोक्ष अप्रोक्ष न प्रोक्ष न सुन्दर है न असुन्दर लागै॥ ६॥
तत्व अतत्व कह्यौ नहिं जात जु शून्य अशून्य डरै न परै है।
जोति अजोति न जानि सकै कोउ आदि न अंत जिवै न मरै है॥
रूप अरूप कह्यौ नहिं दीसत भेद अभेद करै न हरै है।
शुद्ध असुद्ध कहै पुनि कौन जु सुन्दर बोलै न मौन धरै है॥ ७॥

शक्ति वा लीला का दिग्दर्शन है कि अल्पज्ञान जन की बुद्धि के विचार से परे है। काच ही न हीरौ—विवेक बुद्धि भी पूरी २ नहीं हो सकती है। अस्ति नास्ति, सत्य, असत्य, वास्तविकता वा अवास्तविकता के होने का विचार मनुष्य करता ही रहता है। और पार नहीं पाता है। पंच को पसारा=पचतत्व का पैलाव, सृष्टि निमाण। बारो=बालक। बध=बधा हुआ। निर्वान=मुक्त। हृस्व=छोटा। विसाल=बड़ा। जूझै=लड़ै, युद्ध करै। अप्रोक्ष=अपरोक्ष, प्रत्यक्ष। प्रोक्ष=परोक्ष। गुप्त। जिवै=भूतादि की तरह जीवसज्ञा का नहीं है। रूप अरूप=आकारवाला कहें तो बनता नहीं और निराकार कहें तो प्रत्यक्ष होता नहीं।

खोजत खोजत खोजि रहे अरु खोजत है पुनि खोजि है आनैं।
गावत गावत गाइ गये बहु गावत है अरु गाइ है गानैं॥
देखत देखत देखि थके सब दीसै नहीं कहुं ठौर ठिकानैं।
बूझत बूझत बूझि कै सुन्दर हेरत हेरत हेरि हिरानैं॥ ८॥

पिंड में है परि पिंड लिपै नहिं पिंड परै पुनि सोंहि रहावै।
श्रोत्र में है परि श्रोत्र सुनै नहिं दृष्टि में है परि दृष्टि न आवै॥
बुद्धि में है परि बुद्धि न जानत चित्त में है परि चित्त न पावै।
शब्द में है परि शब्द थक्यौ कहि शब्द हु सुन्दर दूरि बतावै॥ ९॥

भूमि हु तैसें हि आपु हुं तैसें हि तेज हु तैसें हि तैसें हि पौंना।
व्योम हु तैसें हि आहि अखंडित तैसें हि ब्रह्म रह्यौ भरि भौंना॥
देह संयोग वियोग भयौ जब आयौ सु कौंन गयौ तब कौंना।
जो कहिये तौ कहै न बनैं कछु सुन्दर जांनि गही मुख मौंना॥ १०॥

एक हि ब्रह्म रह्यौ भरपूर तौ दूसर कौंन बतावनि हारौ।
जौ कोउ जीव करै जु प्रमांन तौ जीव कहा कछु ब्रह्म तें न्यारौ॥
जो कहै जीव भयौ जगदीस तें तौ रवि मांहि कहां कौ अंधारौ।
सुन्दर मौंन गही यह जानि कै कौंन हु भांति न होत निघारौ॥ ११॥

जो हम खोज करैं अभिअन्तर तौ वह खोज करै हि विलावै।
जो हम बाहिर कौं उठि दौरत तौ कछु बाहिर हाथि न आवै॥

---

(८) हिरानैं=विस्मित हुए, हैरान हुए। (परन्तु मिला नहीं)।

(९) शब्द=शब्द प्रमाण, वेद वाक्य।

(१०) जांनि गही मुख मौंना=जिन्होंने ब्रह्म को जाना वे कुछ वर्णन ही नहीं कर सकते। जिनको खबर (ज्ञान) हुआ, वे बेखबर (अज्ञानी) से हुए रहते हैं। अथवा उनका पता ही नहीं पड़ता है।

(११) तौ रवि माहिं कहां को अन्धारो=आत्मा स्वयं प्रकाश है, ब्रह्म अकर्ता है, फिर जीव का जगदीश से उत्पन्न होना ऐसा पढ़ना नहीं बनता। जीव ब्रह्म तो एक ही हैं। निघारो=निर्धार, निर्णय।

जो हम काहु कौं पूछै हैं पुनि सोउ अगाध अगाध बतावै।
ताहि तें कोउ न जानि सकै तिहिं सुन्दर कौनसि ठौर रहावै॥ १२॥
नैंन न बैंन न सैंन न आस न बास न स्वास न प्यास न यातैं।
सीत न घाम न ठौर न ठाम न पुस न वाम न बाप न मातैं॥
रूप न रेप न शेप अशेष न स्वेत न पीत न स्याम न तातैं।
सुन्दर मौन गही सिध साधक कौन कहै उसकी मुख बातैं॥ १३॥
वेद थके कहि तन्त्र थके कहि ग्रन्थ थके निस वासर गातैं।
शेष थके शिव इन्द्र थके पुनि पोज कियौ बहुभाति विधातैं॥
पीर थके अरु मीर थके पुनि धीर थके बहु बोलि गिरातैं।
सुन्दर मौन गही सिध साधक कौन कहै उसकी मुख बातैं॥ १४॥
योगि थके कहि जैन थके ऋषि तापस थाकि रहे फल पातैं।
न्यासि थके बनबासी थके जु उदासि थके बहु फेर फिरातैं॥
सेप मसाइक और दलाइक थाकि रहे मन में मुसकातैं।
सुन्दर मौन गही सिध साधक कौन कहै उसकी मुख बातैं॥ १५॥

॥ इति आश्चर्य को अंग ॥ ३४ ॥

इति श्री स्वामी सुन्दरदास विरचित "सवैया" (अपर नाम "सुन्दरविलास") ग्रन्थ समाप्त ॥ सर्वछन्द संख्या ५६३ ॥

---

(१२) खोज उरै ही बिलावैं=हमारा ढुंढना ठेठ नहीं पहुंचता। षट्दर्शनकारों के मत का भेद इस ही से प्रगट है कि निश्चय बात एकने भी नहीं कही। जिनकी जहां तक पहुंच हो सकी उसही को सिद्धान्त बता कर अन्त कर दिया। अगाध अगाध= 'नेति नेति' वेद तक में कहा है। फिर मनुष्य की क्या चल है।

(१३) मातैं=माता से। तातैं=ताता, तम।

(१४) गातें=गाते २। विधातें=नाना विधियों से प्रकारों से। वा विधाता ब्रह्मा ने। पीर=मुसलमानी धर्म का गुरु। मीर=सय्यद जो पैगम्बर मुहम्मद के वंशज हैं। गिरा तें=वाणी से।

(१५) योगी=राजयोग के अभ्यास से ईश्वर प्रणिधान द्वारा योग का सिद्धान्त ईश्वर सिद्धि है। उसके कर्त्ता भी ईश्वर साक्षात्कार यथार्थ नहीं कर सकै वा कर सके तो कुछ कह ही नहीं सके। जैनी=जैनधर्म में ईश्वर इस आत्मा की सिद्धि प्राप्त करनेवाले सिद्ध को ही कहते हैं। पृथक ईश्वर जगत् का कर्त्ता नहीं मानते हैं। फल पातें=वन में कन्दमूल फलपत्र खाकर उग्र तपस्या करनेवाले भी नहीं कह सके। न्यासी=सन्यासी। त्यागी। उदासी=त्यागी साधु जो जगत् से उदासीन (विरक्त) हो चुका। सेष मसाइक=(फा० वा अ०) शेख—मुसलमानों के धर्मज्ञाता पण्डित। मशायख बहुवचन शेख का। उ लाइक=पाठान्तर 'मलाइक" (फरिश्ते) मन में मुसकातें=परमात्मा तत्व को तो जान लिया इससे मन में तो प्रसन्न हैं परन्तु वचनातीत होने से ईश्वर कुछ कहने में नहीं आता।—जान लेने पर वचन से कहने में नहीं आ सकता है यही आश्चर्य है॥ इति॥ सुन्दरदासजी के सवैया ग्रन्थ के ३४ वें अंग "आश्चर्य का अंग" सुन्दरानन्दी टीका सहित समाप्त हुआ॥ ३४॥

॥ इति कविवर महात्मा स्वामी सुन्दरदासजी विरचित "सवैया" ग्रन्थ

अथ साषी

॥ अथ गुरुदेव को अंग ॥ १ ॥

दोहा

दादू सद्गुरु बन्दिये सो मेरै सिर मौर।
सुन्दर बहिया जाय था पकरि लगाया ठौर ॥ १ ॥

दू सद्गुरु बन्दिये मन क्रम बिसवा बीस।
न्दर तिनकै चरण द्वै सदा रहौ मम सीस ॥ २ ॥

दादू सद्गुरु बन्दिये सब सुख आनन्द मूल।
सुन्दर पद रज परसतें निकसि गई सब सूल ॥ ३ ॥

दू सद्गुरु बन्दिये सकल सुखनि की रासि।
न्दर पद रज परसतें दुःख गये सब नासि ॥ ४ ॥

दादू सद्गुरु बन्दिये सकल सिरोमन राइ।
बार बार कर जोरि कैं सुन्दर बलि बलि जाइ ॥ ५ ॥

नोट—इस 'साषी" ग्रन्थ के अङ्गों को 'सवैया' ग्रन्थ के अङ्गों के साथ मिलाकर
ने से बहुत आनन्द रहैगा। "सवैया" ग्रन्थ के ३४ अङ्ग (अध्याय हैं) और
त 'साषी" ग्रन्थ के ३१ ही अङ्ग हैं। परन्तु प्राय सब अङ्गों के विचार आपस में
हुत स्थलों और प्रकरणों में मिलते जुलते हैं। इस कारण समझने और विचारने
, आपस के मीलान और साथ २ पढ़ने से, बहुत सुविधा रहैगी।

सुन्दर सद्गुरु वन्दिये नमस्कार प्रणपत्ति।
विघ्न बिल ह्वै जात हैं मन वच क्रम करि सत्ति॥ ६॥

सुन्दर सद्गुरु वन्दिये सोई वन्दन जोग।
औषध शब्द पिवाइ करि दूरि किया सब रोग॥ ७॥

सुन्दर सद्गुरु वन्दिये गहिये दृढ़ करि पांव।
मस्तक हस्त लगाइ जिनि किये रंक तें राव॥ ८॥

सुन्दर सद्गुरु वन्दिये जिनके गुन नहिं छेह।
श्रवन हुं शब्द सुनाइ करि दूरि किया सन्देह॥ ९

सुन्दर सद्गुरु वन्दिये निर्मल ज्ञान स्वरूप।
नैननि मैं अंजन किया देष्या तत्व अनूप॥ १०॥

सुन्दर सद्गुरु आपु तें किया अनुग्रह आइ।
मोह निशा मैं सोवते हमकौं लिया जगाइ॥ ११

सुन्दर सद्गुरु आपुनें गहे सीस के बाल।
बूडत जगत समुद्र मैं काढि लियो ततकाल॥ १२॥

सुन्दर सद्गुरु आपुनें मुक्त किये गृह कूप।
कर्म कालिमा दूरि करि कीये शुद्ध स्वरूप॥ १३॥

सुन्दर सद्गुरु आपुनें बन्धन काटे सर्व।
मुक्त भये संसार मैं विचरत हैं निहगर्व॥ १४॥

सुन्दर सद्गुरु आपुनें अलप षजीना पोल।
दुख दरिद्र जाते रहे दीया रत्न अमोल॥ १५॥

---

(६) प्रणपत्ति=प्रणिपात, दण्डवत। "प्रणत्ति" का अनुप्रास "सत्ति" के साथ होता तो अच्छा रहता।

(१३) गृहकूप=गृहस्थाश्रमरूपी कुए से निकाल दिया। कालिमा=कालुष्य, पाप।

(१५) खोल=खोलकर (अमूल रत्न (ज्ञान) दे दिया जिससे (अज्ञानरूपी) दरिद्र दूर हुआ)।

सद्गुरु आया मिहरि करि सुन्दर पाया पूरि।
शब्द सुनाया आपता भरम उडाया दूरि ॥ १६ ॥

सुन्दर सद्गुरु मिहरि करि निकट बताया राम।
जहां तहां भटकत फिरै काहे कौ बेकाम ॥ १७ ॥

शंक न आनै जगत की सद्गुरु शब्द बिचारि।
सुन्दर हरि रस सो पिवै मेल्है सीस उतारि ॥ १८ ॥

सद्गुरु शब्द सुनाइ करि दीया ज्ञान बिचार।
सुन्दर सूर प्रकासिया मेट्या सब अन्धियार ॥ १९ ॥

सद्गुरु कही मरंम की हिरदै बैसी आइ।
रीति सकल संसार की सुन्दर दई बहाइ ॥ २० ॥

सुन्दर सद्गुरु सो मिल्या जो दुर्ल्लभ जग मांहि।
प्रभू कृपा तें पाइये नहिंतर पइये नांहि ॥ २१ ॥

सुन्दर सद्गुरु तौ मिलै जो हरि देहि सुहाग।
मनसा बाचा कर्मना प्रगटै पूरन भाग ॥ २२ ॥

सुन्दर सद्गुरु सारिपा उपकारी नहिं कोइ।
देषै तीनों लोक मैं सरि भरि कछू न होइ ॥ २३ ॥

सुन्दर सद्गुरु पलक मैं मुक्त करत नहि बार।
जीव बुद्धि जाती रहै प्रगटै ब्रह्म बिचार ॥ २४ ॥

सुन्दर सद्गुरु पलक मैं दूरि करै अज्ञांन।
मन बच क्रम यज्ञास ह्वै शब्द सुनैं जो कांन ॥ २५ ॥

---

(१६) पूरि=पूरा, पूर्णरूप से।

(१७) जहां तहां=अन्य मतों के ज्ञाताओं या तीर्थादि में।

(१८) सीस उतारि=आपा मार कर।

(२१) नहींतर (२१०) नहीं तो।

(२२) सुहाग=सौभाग्य। (२५) यज्ञास=जिज्ञासु, ज्ञान की इच्छावाला पुरुष।

सुन्दर सद्गुरु के मिलैं भाजि गई सब भूप।
अमृत पान कराइ कै भरी अधूरी कूप ॥ २६ ॥

सुन्दर सद्गुरु जब मिल्या पडदा दिया उठाइ।
ब्रह्म घौंट माहिं सकल जग चित्राम दिषाइ ॥ २७ ॥

सुन्दर सद्गुरु सारिषा कोऊ नही उदार।
ज्ञान पजीना पोलिया सदा अटूट भँडार ॥ २८ ॥

वेद नृपति की वदि मैं आइ परे सब लोइ।
निगहबांन पंडित भये क्योंकरि निकसै कोइ ॥ २९ ॥

सद्गुरु भ्राता नृपति कै वेडी काटै आइ।
निगहवांन देषत रहैं सुन्दर देहि छुडाइ ॥ ३० ॥

सुन्दर सद्गुरु शब्द का ब्यौरि बताया भेद।
सुरझाया भ्रम जाल तें उरझाया था वेद ॥ ३१ ॥

वेद माँहि सब भेद हैं जाने विरला कोइ।
सुन्दर सो सद्गुरु बिना निरवारा नहि होइ ॥ ३२ ॥

सुन्दर सद्गुरु यौं कह्या शब्द सकल का मूल।
सुरझै एक विचार तें उरझै शब्दस्थूल ॥ ३३ ॥

---

(२६) कूप=कूप, कुक्षि। पेट की कोल।

(२७) घौंट=(रस की) अमृत की घूट पिला कर। अथवा ब्रह्म का रंग ऐसा अन्तह्करण में घोट दिया कि ससाररूपी इन्द्रजाल की वास्तविकता—मिथ्यात्व—स्पष्ट प्रत्यक्ष हो गई। ('घां सो घोट रह्यो घट भीतर"—)

(२९) बन्दि=कैद, बन्धन। कर्म उपासना के विधानों में जकड़ बन्द कर दिये गये। आचार्यों की रामदुहाई से उस बन्धन से मुक्त होना कठिन हो गया। उससे गुरुदेव ने खलास किया।

(३१) ब्यौरि=ब्यौरि, ब्यौरे वार, भलीभांति।

(३२) निरवारा=निर्वेरा, बचाव, छुटकारा।

(३३) शब्दस्थूल=स्थूल (व्यावहारिक, मोटे) ज्ञान से।

सुन्दर ताला शब्द का सद्गुरु पोल्या आइ।
भिन्न २ संमुझाय करि दीया अर्थ बताइ॥ ३४॥

गोरषधंधा वेद है वचन कडी वहु भांति।
सुन्दर उरभयौ जगत सब वर्णाश्रम की पांति॥ ३५॥

क्रिया कर्म बहु बिधि कहे वेद वचन विस्तार।
सुन्दर समुझै कौंन विधि उरझि रह्यौ संसार॥ ३६॥

कर्मकांड के वचन सुनि आंटी परी अनेक।
सुन्दर सुनै उपासना तब कछु होइ विवेक॥ ३७॥

सुन्दर सद्गुरु जब मिलै पेच बतावै आइ।
भिन्न भिन्न करि अर्थ कौं आंटी दे सुरझाइ॥ ३८॥

अंत वेद के वचन तें उपजै ज्ञान अनूप।
सुन्दर आंटी सुरझि कैं तब है ब्रह्म स्वरूप॥ ३९॥

गोरषधंधा लोह मैं कडी लोह ता मांहि।
सुन्दर जानै ब्रह्म मैं ब्रह्म जगत द्वै नांहि॥ ४०॥

सुन्दर सद्गुरु शब्द तें सारे सब विधि काज।
अपना करि निर्वाहिया बांह गहे की लाज॥ ४१॥

सुन्दर सद्गुरु शब्द सौं दीया तत्त्व बताइ।
सोवत जाग्या स्वप्न तें भ्रम सब गया विलाइ॥ ४२॥

सुन्दर जागे भाग सिर सद्गुरु भये दयाल।
दूरि किया विष मंत्र सौं थकत भया मन व्याल॥ ४३॥

सुन्दर सद्गुरु षमगि कै दीनी मौज अनूप।
जीव दशा तें पलटि करि कीये ज्ञान स्वरूप॥ ४४॥

सुन्दर सद्गुरु श्रम बिना दूरि किया संताप।
शीतलता हृदये भई ब्रह्म बिराजै आप॥ ४५॥

---

(३५) गोरषधन्धा=एक खिलौना वा उलझन का खेल जिसमें लोहे की खास तरकीब से कड़ियां पुई रहती हैं। उनको सुलझाना कठिन है। (४५) व्याल=सर्प।

परमातम सौं आतमा जुदे रहे बहु काल।
सुन्दर मेला करि दिया सद्गुरु मिले दलाल ॥ ४६ ॥

परमातम अरु आतमा उपज्या यह अविवेक।
सुन्दर भ्रम तें दोइ थे सद्गुरु कीये एक ॥ ४७

हम जांण्यां था आप थे दूरि परे है कोइ।
सुन्दर जब सद्गुरु मिल्या सोहं सोहं होइ ॥ ४८ ॥

स्वयं ब्रह्म सद्गुरु सदा अभी शिष्य बहु संति।
दान दियौ उपदेश जिनि दूरि कियौ भ्रम हंति ॥ ४९

राग द्वेप उपजै नहीं द्वैत भाव को त्याग।
मनसा वाचा कर्मना सुन्दर यहु वैराग ॥ ५० ॥

सदा अपंडित एक रस सोहं सोहं होइ।
सुन्दर याही भक्ति है बूझै विरला कोइ ॥ ५१

अहं भाव मिटि जात है तासौं कहिये ज्ञान।
वचन तहां पहुंचै नहीं सुन्दर सो विज्ञान ॥ ५२ ॥

पट सत सहश्र इकीस है मनका स्वासो स्वास।
माला फेरै राति दिन सोहं सुन्दरदास ॥ ५३ ॥

ज्ञान तिलक सोहं सदा भक्ति दई गुरु छाप।
व्यापक विष्णु उपासना सुन्दर अजपा जाप ॥ ५४ ॥

सुन्दर सूता जीव है जाग्या ब्रह्म स्वरूप।
जागन सोवन तें परे सद्गुरु कह्या अनूप ॥ ५५ ॥

मन को सर्प कहा है। इसका विषयरूपी विष गुरु के दिए ज्ञानरूपी गारुड़ी मन्त्र से उतर गया।

(५३) *मनका=माला के मणिये। प्रत्येक स्वास एक मणिका (मणिया)।* ६७०२१ स्वास दिन रात में लेते हैं। उनको माला के मणिके समझ प्रत्येक में सोऽहं का अजपा जाप जपै।

सुन्दर समुझे एक है अन समझै कौ द्वैत।
उभै रहित सद्गुरु कहै सो है वचनातीत ॥ ५६ ॥

बोलत बोलत चुप भया देषत मूदे नैंन।
सुन्दर पावै एक कौ यहु सद्गुरु की सैन ॥ ५७ ॥

मूरष पावै अर्थ कौं पंडित पावै नांहि।
सुन्दर उल्टी बात यह है सद्गुरु कै मांहि ॥ ५८ ॥

जो कोउ विद्या देत है सो विद्या गुरु होइ।
जीव ब्रह्म मेला करै सुन्दर सद्गुरु सोइ ॥ ५९ ॥

गुरु शिष्य हि उपदेश दे यह गुरु शिष व्यवहार।
शब्द सुनत ससय मिटै सुन्दर सद्गुरु सार ॥ ६० ॥

सुदर गुरु सु रसाइनी बहु विधि करय उपाय।
सद्गुरु पारस परसतें लोह हेम ह्वै जाय ॥ ६१ ॥

सुन्दर मसक्रति दार सौं गुरु मथि काढै आगि।
सद्गुरु चकमक ठोकतें तुरत उठै फफ जागि ॥ ६२ ॥

सुदर गुरु जल षोदि कैं नित उठि सींचै षेत।
सद्गुरु बरषै इन्द्र ज्यौं पलक मांहि सरसेत ॥ ६३ ॥

---

(५६) वचनातीत=अनिर्वचनीय, जो कहने में नहीं आ सकै। द्वैत=द्वैत, भेदज्ञान, जीव ब्रह्म की भिन्नता।

(५८) मूरष=ससार से विमुख। पण्डित=शब्दज्ञान में तो प्रवीण परन्तु दिव्यज्ञान से रहित। (विपर्यय है)

(६१) लोह, हेम=द्वैतभावरूपी जीव लोह है सो गुरु पारस से मिलकर स्वर्ण हो जाता है अद्वैत प्राप्त होता है।

(६२) मसक्रति=मशक्कत, उपाय। दार=दारु, काठ। अरणी (से आग उत्पन्न)। फफ=सूत का लच्छा जो आग से जल उठता है।

(६३) सरसेत=सर तालाब पानी से सराबोर हो जाता है।

सुंदर गुरु दीपक किये घर में को तम जाइ।
सद्गुरु सूर प्रकास तें सबै अंधेर विलाइ॥ ६४॥
सुन्दर शिष जिज्ञास ह्वै सनमुख देषै दृष्टि।
सद्गुरु हृदय उमंगि करि करै अमी की वृष्टि॥ ६५॥
सुन्दर शिष जिज्ञास ह्वै शब्द ग्रहै मन लाइ।
तासौं सद्गुरु तुरत ही ज्ञान कहै समुझाइ॥ ६६॥
सुन्दर शिष जिज्ञास है निश्चय आवै नांहि।
तौ सद्गुरु कहिबौ करौ ज्ञान न उपजै मांहि॥ ६७॥
सुन्दर शिष जिज्ञास है परि जो बुद्धि न होइ।
तौ सद्गुरु क्यौं पचिमरौ शब्द ग्रहै नहिं कोइ॥ ६८॥
जन सुन्दर निश्चय बिना क्यौं करि उपजै ज्ञान।
सद्गुरु दोष न दीजिये शिष्य मूढ मति जांन॥ ६९॥
सुन्दर सद्गुरु प्रगट है तिनकौ आशय गूढ।
जो कृत देषै देह के सो क्यौं पावै मूढ॥ ७०॥
सुन्दर सद्गुरु प्रगट है बोलै अंमृत बैंन।
सूरय कौं देषै नहीं मूंदि रहै जो नैंन॥ ७१॥
सुन्दर सद्गुरु प्रगट है जिनि कै ब्रह्म विचार।
मूरष औगुन काढिले देषि देह व्यवहार॥ ७२॥
सद्गुरु शुद्ध स्वरूप है शिष देषै गुन देह।
सुन्दर कारय क्यौं सरै कैसैं धरै सनेह॥ ७३॥
सुन्दर सद्गुरु ब्रह्ममय परि शिष पीचम दृष्टि।
घूगी चोर न देषई देषै दर्पन पृष्टि॥ ७४॥
सुन्दर सद्गुरु क्यौं द्रसै शिष की दृष्टि मलीन।
देषत है सब देह कृत पान पान मौं लीन॥ ७५॥

---

(६४) घर में कौ=घर के अन्दर का।
(७४) [illegible]। (७५) द्रसै=दृष्टि में आवे, प्रकाशित हो, प्रगट करे।

सुन्दर सूक्ष्म दृष्टि है तब सद्गुरु दरसाइ।
देषै देहस्थूल कौं यौं शिष गोता षाइ॥ ७६॥

सद्गुरु ही तें पाइये राम मिलन की बाट।
सुन्दर सब कौ कहत है कौडा बिना न हाट॥ ७७॥

सद्गुरु जाहि कृपा करै सो जानै सब भेव।
सुन्दर क्यौं करि पाइये एक बिना गुरुदेव॥ ७८॥

सुन्दर सद्गुरु प्रगट है जिनि कै ह्रदै प्रकास।
वे अलिप्त हैं देह सौं ज्यौं अलिप्त आकास॥ ७९॥

दूध मांहि ज्यौं जल मिलै रंगनि मैं ज्यौं नीर।
सद्गुरु हंस जुदा करै सुन्दर पाणी पीर॥ ८०॥

सुन्दर सद्गुरु के मिलें संसै हूवा छिन्न।
यौं निश्चय करि जानिया देह आतमा भिन्न॥ ८१॥

सुन्दर काढै सोधि करि सद्गुरु सोनी होइ।
शिष सुवर्ण निर्मल करै टांका रहै न कोइ॥ ८२॥

सुन्दर सद्गुरु वैद ज्यौं पर उपकार करेइ।
जैसौ ही रोगी मिलै तैसी औषध देइ॥ ८३॥

सद्गुरु देषै नाडि कौ दूरि करै सब ब्याधि।
सुन्दर ताकौं छोडि दे जाकै रोग असाधि॥ ८४॥

---

(७७) कौडा=कौड़ी, धन, रोक्ड़, पूंजी।

(८१) देह आतमा भिन्न=देह जड़ है, आत्मा चेतन है। आत्म अनात्म का विवेक प्रधान साधन है।

(८२) टांका=मेल का धातु, खोटा मिलाव।

(८३) करेई=अवश्य करता है। (यह क्रिया विलक्षण प्रयुक्त है) (रा० रूप=अर्थ करै ही करै)।

(८४) नाडि=नाड़ी, नब्ज।

सद्गुरु साह गजेन्द्र है सुन्दर वस्तु अपार।
जोई आवै लैन कौं ताकौं तुरत तयार ॥ ८५ ॥
सद्गुरु ही तें अकलि है सद्गुरु ही तें बुद्धि।
सुन्दर सद्गुरु तें संमुझि सद्गुरु तें सब सुद्धि ॥ ८६ ॥
सद्गुरु ही तें ज्ञान है सद्गुरु ही तें ध्यान।
सुन्दर सद्गुरु तें लगै योग समाधि निदांन ॥ ८७ ॥
सद्गुरु महिमा कहन कौं रसना हुई न कोरि।
सुन्दर क्यों करि बरनिये जो बरनिये सु थोरि ॥ ८८ ॥
सद्गुरु महिमा अगम अति क्यौं करि कहौं बनाइ।
सुन्दर मुख तें सरस्वती कहत कहत थकि जाइ ॥८९॥
नभ मनि चिंता मनि कहैं हीरा मनि मनि लाल।
सकल सिरोमनि मुकुटमनि सद्गुरु प्रकट दयाल ॥ ९० ॥
सुर तरु पारस कामधुक कहियत नाव जिहाज।
सुन्दर इनतें डूबिये सद्गुरु सारै काज ॥ ९१ ॥
नां कछु हुवा न होइगा सद्गुरु सब सिरमौर।
सुन्दर देप्या सोधि सब तोलें तुलत न और ॥ ९२ ॥
सुन्दर सद्गुरु भक्तिमय भजनमई अभिराम।
सुखमय रसमय अमृतमय प्रेम मांहिं विश्राम ॥ ९३ ॥
सुन्दर सद्गुरु ब्रह्ममय नारायणमय ध्यान।
ईश्वरमय जगदीशमय गोविन्दमय गलतान ॥ ९४ ॥

---

(८६) सुद्धि=सुध बुध (ज्ञान)।

(८८) न कोरि=(यथा—"नई, न कोर") वा कोटि जिव्हा भी समर्थ नहीं। वा कोरि=कोई (भी)।

(९०) नभ मनि=सूर्य।

(९२) न कछु हुवा न होइगा=सद्गुरु समान अन्य कोई न तो हुआ न होगा। तोलें=तौलने से।

सुन्दर सद्गुरु ज्ञानमय चेतनिमय चिद्रूप।
निर्गुन नित्यानन्दमय तन्मय तत्व अनूप॥ ६५॥

सुन्दर सद्गुरु सूरमय उदित भये हैं ऐंन।
मनसा बाचा कर्मना पोलत सब के नैंन॥ ६६॥

सुंदर सद्गुरु शशिमयी सुधा श्रवै सुख द्वार।
पोष देत हैं सबनि कौं प्रगटे पर उपकार॥ ६७॥

सुन्दर सद्गुरु भिन्न हैं दीसत हैं घट मांहिं।
ज्यौं दर्पन प्रतिबिंब कौं लिपै छिपै कछु नांहिं॥ ६८॥

सुन्दर सद्गुरु भिन्न हैं दीसत घट मैं बास।
घट सौं सदा अलिप्त है ज्यौं अलिप्त आकास॥ ६९॥

सुन्दर सदगुरु करि कृपा दीया दीरघ दांन।
ह्रदै हमारै आइया निश्चय अद्वय ज्ञांन॥ १००॥

सुन्दर सद्गुरु आप तें अति ही भये प्रसन्न।
दूरि किया संदेह सब जीव ब्रह्म नहिं भिन्न॥ १०१॥

सुन्दर सद्गुरु हैं सही सुन्दर सिक्षा दीन्ह।
सुन्दर बचन सुनाइ कैं सुन्दर सुन्दर कीन्ह॥ १०२॥

॥ इति गुरुदेव को अंग ॥ १ ॥

---

(९७) पर उपकार=परोपकार के अर्थ।

(१०१) आपतें=अनायास ही। अपनी मौज ही से। मुझ शिष्य ने कोई प्रार्थना या सेवा भी नहीं की। ऐसे उदार हैं।

॥ अथ सुमरन को अंग ॥ २ ॥

दोहा

सुन्दर सद्गुरु यौं कह्या सकल सिरोमनि नांम ।
ताकौं निस दिन सुमरिये सुखसागर सुखधाम ॥ १ ॥
राम नाम श्रवनौ सुन्यौ रसना कियौ उचार ।
सुन्दर पीछै सुरति सौं हृदय प्रगट रंकार ॥ २ ॥
नांव निरंतर लीजिये अन्तर परै न कोइ ।
सुन्दर सुमरन सुरति सौं अंतर हरि हरि होई ॥ ३ ॥
हृदये मैं हरि सुमरिये अन्तरजांमी राइ ।
सुन्दर नीके जत्न सौं अपनौं वित्त छिपाइ ॥ ४ ॥
काहू कौं न दिपाइये राम नाम सी वस्त ।
सुन्दर बहुत कलाप करि आई तेरै हस्त ॥ ५ ॥
रंक हाथ हीरा छड्यौ ताकौ मोल न तोल ।
घर घर डोलै वेचतौ सुंदर याही भोल ॥ ६ ॥
राम नाम रटवौ करै निस दिन सुरति लगाइ ।
सुन्दर चालै गांव जिहिं तहां पहूंचै जाइ ॥ ७ ॥
राम नाम संतनि धर्‍यौ राम मिलन के काज ।
सुन्दर पल मैं पार ह्वै बैठै नाम जिहाज ॥ ८ ॥
राम नाम तिहुं लोक मैं भवसागर की नाव ।
सद्गुरु पेवट बांह दे सुंदर वेगो आव ॥ ९ ॥

[अङ्ग २ रा] (२) रङ्कार=रामनाम की निरन्तर ध्वनि। राम मन्त्र का अजपाजाप वा रटना।

(६) छड्यो=चढा। आया, प्राप्त हुआ। भोल=भोल्य, भूल।

राम नाम विन लैन कौं और वस्तु कहि कौंन।
सुंदर जप तप दान व्रत लागे पारे लौंन॥ १०॥
राम नाम मिश्री पियें दूरि जांहिं सब रोग।
सुंदर औषध कटुक सब जप तप साधन जोग॥ ११॥
नाम लिया तिन सब किया सुदर जप तप नेम।
तीरथ अटन सनान व्रत तुला बैठि दत्त हेम॥ १२॥
नाम बराबर तोलिया तुलै न कोऊ धर्म।
सुंदर ऐसै नाम का लहै न मूरष मर्म॥ १३॥
राम भजन परिश्रम विना करिये सहज सुभाइ।
सुन्दर कष्ट कलेस तजि मन की प्रीति लगाइ॥ १४॥
सब सुख हरि कै भजन मैं कष्ट कलेस न कोइ।
सुंदर देषै कष्ट कौं जगत दुषी तव होइ॥ १५॥
सुंदर सबही संत मिलि सार लियो हरि नाम।
तक्र तजी घृत काढि कैं और किया किहिं काम॥ १६॥
राम नाम पीयूष तजि विष पीवै मति हीन।
सुंदर डोलै भटकतं जन्म जन्म आगे दीन॥ १७॥
राम नाम कौं छाडि कै और भजै ते मूढ।
सुन्दर दुख पावै सदा जन्म जन्म वै हूढ॥ १८॥
राम नाम हीरा तजै कंकर पकरै हाथ।
सुंदर कबहु न कीजिये उन मूरष कौ साथ॥ १९॥
राम नाम भोजन करै राम नाम जल पान।
राम नाम सौं मिलि रहै सुदर राम समान॥ २०॥
राम नाम सोवत कहै जागैं हरि हरि होइ।
सुंदर बोलत ब्रह्म सुख ब्रह्म सरीसा सोइ॥ २१॥

(१२) दत=दान। (१८) हूढ=हूड़,—हठी, उजड्, अनाड़ी आदमी।
(२१) ब्रह्म सरीषा होइ=रामनाम के निरन्तर जप से वैसा ही हो जाय।

बैठत बनमाली कहै ऊठत अविगति नाथ।
चलतें चिंतामनि जपें सुन्दर सुमिरन साथ ॥ २२ ॥

नारायण सौं नेह अति सन्मुख सिरजनहार।
परब्रह्म सौं प्रीतडी सुंदर सुमिरन सार ॥ २३ ॥

राम नाम सौं रत भया हर्षत हरि के नाम।
गलित भया गोविंद सौं सुंदर आठौं याम ॥ २४ ॥

लीन भया विचरत फिरै छीन भया गुन देह।
हीन भई सब कल्पना सुंदर सुमिरन येह ॥ २५ ॥

भजन करत भय भागिया सुमिरन भागा सोच।
जाप करत जौंरा टल्या सुंदर सांची लोच ॥ २६ ॥

सुंदर महिमा नाम की क्यों करि बरनी जाइ।
सेस सहस मुख कहत हैं सो भी पार न पाइ ॥ २७ ॥

सुंदर महिमा नाम की कहत न आवै अंत।
शिव सनकादिक मुनि जनां थकित भये सब संत ॥ २८ ॥

राम भजन जाकै हृदै ताकै टोटा कौंन।
मूरतिवंती लक्ष्मी सुन्दर वाकै भौंन ॥ २९ ॥

"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति"—ब्रह्म का जाननेवाला ब्रह्मरूप हो जाता है। आगे साषी ४३ तथा ५६ को देखें। दादूवाणी। सुमिरण साषी ५०—"जीव ब्रह्म की लार"।

(२२) (२३) (२४) इनमें आद्यक्षरों से नामों के यमक दिये हैं।

(२५) सुमिरन का रहस्य कहा है। सत्यनिष्ठा, अन्तःकरण की तदाकारवृत्ति—"लौ" लगी रहै।

(२६) जौंरा=भयानक आक्रमण, जैसे मस्त भैंस वा भैंसा। लोच=कोमला-वृत्ति, सची चतुराई।

(२९) मूरतिवन्ती लक्ष्मी=साक्षात् लक्ष्मी वा सर्व ऋद्धि-सिद्धिवाला वैभव।

राम नाम जाकै हृदै सुन्दर वंदहि देव।
पहल डिगावै आइ कै पीछै लागै सेव॥ ३०॥

राम नाम जाकै हृदै ताकै कौंन अनाथ।
अष्ट सिद्धि नव निधि सदा सुन्दर वाकै साथ॥ ३१॥

राम नाम जाकै हृदै जगत षुसी सब होत।
सुन्दर निंदा करत जे तेई करैं डंडोत॥ ३२॥

राम नाम जाकै हृदै ताहि नवैं सब कोइ।
ज्यौं राजा की त्रास तें सुन्दर अति डर होइ॥ ३३॥

सुन्दर भजिये राम कौं तजिये माया मोह।
पारस कै परसे बिना दिन दिन छीजै लोह॥ ३४॥

सुन्दर हरि कै भजन तें संत भये सब पार।
भवसागर नवका बिना बूडत है संसार॥ ३५॥

सुन्दर हरि कै भजन तें निर्मल अंतहकर्ण।
सबही कौं अधिकार है उधरै चारौं वर्ण॥ ३६॥

सुन्दर भजन सबै करहु नारायण निरपेछ।
प्रीति परम गुरु लेत हैं अंतिज हो कि मलेछ॥ ३७॥

प्रीति सहित जे हरि भजैं तब हरि होंहि प्रसन्न।
सुन्दर स्वाद न प्रीति बिन भूष बिना ज्यौं अन्न॥ ३८॥

सुन्दर हरि प्यारा लग्या सोवत जाग्या जन्न।
प्रीति तजी संसार सौं न्यारा कीया मन्न॥ ३९॥

राम भजन तें रामजी मुदित होत मन मांहिं।
सुन्दर जाकै प्रीति अति ताकौं छाडै नांहिं॥ ४०॥

---

(३०) पहल डिगावै=परीक्षा करने को प्रथम उस भक्त को किंचित विघ्न देते हैं।

(३४) लोह—यहां काया से अभिप्राय है। पारस—रामनाम है।

राम भजन राम हि मिले तामैं फेर न सार।
सुन्दर भजैं सनेह सौं याकौं मिलन न बार॥ ४१॥

एक भजन तन सौं करै एक भजन मन होइ।
सुन्दर तन मन कै परै भजन अखंडित सोइ॥ ४२॥

भजत भजन ह्वै जात है जाहि भजै सो रूप।
फेरि भजन की रुचि रहै सुन्दर भजन अनूप॥ ४३॥

सुन्दर भजि भगवंत कौं उधरे संत अनेक।
सही कसौटी सीस पर तजी न अपनी टेक॥ ४४॥

भजन किये भगवंत बसि डोली जन की लार।
सुन्दर जैसैं गाय कौं बच्छा सौं अति प्यार॥ ४५॥

सुन्दर जन हरि कौं भजै हरिजन की आधीन।
पुत्र न जीवै मात बिन माता सुत सौं लीन॥ ४६॥

राम नाम शंकर कह्यौ गौरी कौं उपदेस।
सुन्दर ताही राम कौं सदा जपतु है सेस॥ ४७॥

राम नाम नारद कह्यौ सोई ध्रुव के ध्यान।
प्रगट भये प्रह्लाद पुनि सुन्दर भजि भगवान॥ ४८॥

राम नाम रंकै भज्यौ भज्यौ त्रिलोचन राम।
नामदेव भजि राम कौं सुन्दर सारे कांम॥ ४९॥

राम हि भज्यौ कबीरजी राम भज्यौ रैदास।
सोझा पीपा राम भजि सुन्दर हृदय प्रकास॥ ५०॥

सद्गुरु दादू राम भजि सदा रहै लैलीन।
सुन्दर याही समझि कैं राम भजन हित कीन॥ ५१॥

---

(४५) डोली=फिरे, साथ रहे।

(४९) रंके=राका बांका, भक्त हुए हैं। त्रिलोचन=भक्त हुआ है। नामदेव=प्रसिद्ध भक्त। (५०) सोझा, पीपा=प्रसिद्ध भक्त हुए हैं।

सुन्दर सुरति समेटि कैं सुमिरन सौं ल्यौलीन।
मन वच क्रम करि होत है हरि ताकै आधीन ॥ ५२ ॥

सुमिरन तें संसय मिटै सुमिरन मैं आनन्द।
सुन्दर सुमिरन कैं किये भागि जाहिं दुख द्वंद ॥ ५३ ॥

सुमिरन तें श्रीपति मिलै सुमिरन तें सुखसार।
सुमिरन तें परिश्रम बिना सुन्दर उतरै पार ॥ ५४ ॥

सुमिरन ही मैं शील है सुमिरन मैं संतोष।
सुमिरन ही तें पाइये सुन्दर जीवन-मोष ॥ ५५ ॥

जाही कौ सुमिरन करै ह्वै ताही कौ रूप।
सुमिरन कीयें ब्रह्म कैं सुन्दर ह्वै चिद्रूप ॥ ५६ ॥

॥ इति सुमिरन कौ अंग ॥ २ ॥

॥ अथ बिरह कौ अंग ॥ ३ ॥

दोहा

मारग जोवै बिरहनी चितवै पिय की वोर।
सुन्दर जियरै जक नहीं कल न परत निस भोर ॥ १ ॥

सुन्दर बिरहनि अति दुखी पीव मिलन की चाह।
निस दिन बैठो अनमनो नैननि नीर प्रवाह ॥ २ ॥

---

(५५) जीवन—मोष=जीवन मुक्ति।

[३ रा अङ्ग]—(१) निस भोर=दिन रात (भोर=प्रातःकाल, ब्राह्म्य मुहूर्त, दिन का प्रारम्भ)

(२) अनमनो=उनमनो, उदास।

सुन्दर पिय के कारणैं तलफै बारह मास।
निस दिन लै लागी रहै चातक की सी प्यास ॥ ३ ॥

सुन्दर व्याकुल विरहनी दीन भई बिल्लाइ।
दंत तिणां लीयें कहै रे पियं आप दिषाइ ॥ ४ ॥

विरहै मारी बान भरि भई और की और।
वैद बिथा पावै नहीं सुन्दर लगी सु ठौर ॥ ५ ॥

सुन्दर विरहनि मरि रही कहूं न पइये जीव।
अमृत पांन कराइ कै फेरि जिवावै पीव ॥ ६ ॥

सुन्दर नख सिख पर जरै छिन छिन दाझै देह।
विरह अग्नि तबही बुझै जब बरषै पिय मेह ॥ ७ ॥

विरह बघूरा लै गयौ चित्त हि कहूं उडाइ।
सुन्दर आवै ठौर तब पीय मिलै जब आइ ॥ ८ ॥

सुन्दर विरहनि दूबरी विरह देत तन त्रास।
अजा रहै ढिग सिंह कै कहौ चढै क्यौं मांस ॥ ९ ॥

सुन्दर विरहनि दुखभरी कहै दुख भरे बैन।
पिय कौ मारग देष तें अंसुवा आवत नैंन ॥ १० ॥

सुन्दर विरहनि कै निकट आई विरहनि कोइ।
दुखिया ही दुखिया मिली दहुंवनि दोनौ रोइ ॥ ११ ॥

---

(४) दन्त तिणा=दांतों में तिनका लेकर, अति दीन होकर।

(५) बान भरि=कमान में तीर लगाकर, खैंच कर तीर मारा। लगी सु ठौर= वह चोट (बाण की) ऐसी (सुन्दर, उत्तम) ठौर पर लगी है कि इलाजी से उसका इलाज नहीं हो सकता है। यह दर्द वह दर्द है जिसकी दवा ही नहीं। मर्ज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की।

(७) पर=पख (यहां विरहनि को पक्षी माना है जो पिया के लिए उड़ती है)। अथवा, परम्प्र, बहुत।

सुन्दर बिरहनि बंदि में बिरहै दीनी आइ।
हाथ हथकरी तौक गलि क्यौं करि निकस्यौ जाइ ॥ १२ ॥

सुन्दर बिरहनि बंदि में निस दिन करै पुकार।
पीय रहौ कहुं बैसि कै बंदि छुडावनहार ॥ १३ ॥

बिरहा बिरहनि सौं कहत सुन्दर अति अरि भाव।
जब लग तोहि न पिय मिलै तब लग घालौं घाव ॥ १४ ॥

बिरहा दुखदाई लग्यौ मारै ऐठि मरोरि।
सुंदर बिरहनि क्यौं जिवै सब तन लियौ निचोरि ॥ १५ ॥

सुन्दर बिरहनि कौ बिरह भूत लग्यौ है आइ।
पीय बिना उतरै नहीं सब जग पचि पचि जाइ ॥ १६ ॥

निस दिन बिरहा भूत लगि बिरहनि मारी गोडि।
सुन्दर पीय जबै मिलै तब ही भागै छोडि ॥ १७ ॥

सुन्दर बिरहनि अध जरी दुख कहै मुख रोइ।
जरि बरि कैं भस्मी भई धुवा न निकसै कोइ ॥ १८ ॥

सुन्दर काची बिरहनी मुख तैं करै पुकार।
मरि माहैं मठ ह्वै रहै बोलै नहीं लगार ॥ १९ ॥

ज्यौं ठगमूरी षाइ कै मुखहि न बोलै बैंन।
टुगर टुगर देष्या करै सुन्दर बिरहा ऐन ॥ २० ॥

---

(१२) बन्दि=कैद।

(१४) अरि भाव=शत्रु के भाव से।

(१७) गोडि=गोड़ियों से खूद कर (मारी) गोड़ा=घुटना पांवका।

(१९) मरि माहैं मठ ह्वै रहै=मर कर मठ होना मुहाविरा है। स्तब्ध वा सुन्न हो जाना।

(२०) टुगर, टुगर=टम टम, निमेष मारता हुआ। देष्या=देखा करै, देखता रहै।

हाकी बाकी रहि गई नां कछु पिवै न पाइ।
सुन्दर बिरहनि वह सही चित्र लिपी रहि जाइ ॥ २१ ॥

राम सनेही तजि गये प्रान हमारा लेइ।
सुन्दर बिरहनि बापुरी किसहि संदेसा देइ ॥ २२ ॥

भूष पियास न नींदड़ी बिरहनि अति बेहाल।
सुन्दर प्यारे पीव बिन क्यों करि निकसै साल ॥२३ ॥

बहुतक दिन बिछुरैं भये प्रीतम प्रान अधार।
सुंदर बिरहनि दरद सौं निस दिन करै पुकार ॥ २४ ॥

सुन्दर तलफै बिरहनी बिलख तुम्हारे नेह।
नैंन श्रवै घन नीर ज्यौं सूकि गई सब देह ॥ २५ ॥

सब कोई रलियां करै आयौ सरस बसंत।
सुन्दर बिरहनि अनमनी जाकै घर नहिं कंत ॥ २६ ॥

घर घर मंगल होत हैं बाजहिं ताल मृदंग।
सुनि सुनि बिरहनि पर जरै सुन्दर नख सिख अंग ॥२७॥

अपने अपने कंत सौं सब मिलि षेलहिं फाग।
सुन्दर बिरहनि देषि करि डसो बिरह कै नाग ॥ २८ ॥

चोवा चन्दन कुमकुमा उडत अबीर गुलाल।
सुन्दर बिरहनि कै हृदै उठत अग्नि की माल ॥ २९ ॥

पीय लुभाना सुनि सषी काहू सौं परदेस।
सुन्दर बिरहनि यौं कहै आया नहीं सन्देस ॥ ३० ॥

जा दिन तें मोहि तजि गये ता दिन तें जक नांहि।
सुन्दर निस दिन बिरह की हूक उठत उर मांहि ॥३१ ॥

---

(२३) साल=कसक, (साल निकलना=खटका, कसक मिट जाना)।
(२५) बिलख=रह रह कर, फूट फूट कर रोवै।
(२६) रलियां=रंग रलियां, आनन्द भर २ कर मौज करना।
(३०) परदेस=परदेश में। (३१) जक=चैन। हूक=ज्वाला का दुक, भभूका, हूला।

यार लगाई बल्लमा बिरहनि फिरै उदास।
सुन्दर गई बसंत ऋतु अब आयौ चौमास॥ ३२॥

दिस दिस तें बादल उठे बोलत चातक मोर।
सुन्दर चक्रित बिरहनी चित्त रहै नहिं ठौर॥ ३३॥

दामिनि चमकै चहुं दिसा बून्द लगत है बांन।
सुन्दर व्याकुल बिरहनी रहै क निकसै प्रांन॥ ३४॥

एक अन्धेरी रैनि है दूजै सूनौ भौंन।
सुन्दर रटै पपीहरा बिरहनि जीवै कौंन॥ ३५॥

पावस नृप चढि आइयौ साजि कटक मम गेह।
सुन्दर बिरहनि थरसली कंपि उठी सब देह॥ ३६॥

चलें हवाई दामिनी बाजै गरज निसांन।
सुंदर विरहनि क्यौं जिवै घर नहिं कंत सुजांन॥ ३७॥

बादल हस्ती देषिये सुन्दर पवन तुरंग।
दादुर मोर पपीहरा पाइक लीयें सङ्ग॥ ३८॥

घेर्यौ गढ दश हूं दिशा बिरहा अग्नि लगाइ।
सुन्दर ऐसै सङ्कट हिं जो पिय करै सहाइ॥ ३९॥

साईं तूं ही तू करौं क्यों ही दरस दिषाव।
सुंदर बिरहनि यौं कहै ज्यौं ही त्यौं ही आव॥ ४०॥

पीय पीय रसना रटै नैंना तलफै तोहि।
सुन्दर बिरहनि अति दुखी हाइ हाइ मिलि मोहि॥ ४१॥

जोवन मेरा जात है ज्यौं अंजुरी का नीर।
सुन्दर बिरहनि बापुरी क्यौं करि बन्धै धीर॥ ४२॥

---

(३६) थरसली=हिल गई, कपकपा गई।

(३८) पाइक=पैदल, नौकर चाकर।

(४२) बंधै=धारै, पकडै। धीर=धैर्य, धीरज।

जिस विधि पीव रिझाइये सो विध जानी नांहि।
जोबन जाइ उतावला सुन्दर यहु दुख मांहि ॥ ४३ ॥
किये सिंगार अनेक में नख सिख भूषन साजि।
सुन्दर पिय रीझै नहीं तौ सब कौनैं काजि ॥ ४४ ॥
सुन्दर विरहनि बहु तपी मिहरि कछूइक लेहु।
अवधि गई सब बीति कैं अब तौ दरसन देहु ॥ ४५ ॥
सुन्दर विरहनि यौं कहै जिनि तरसावौ मोहि।
प्रान हमारे जात हैं टेरि कहतु हौं तोहि ॥ ४६ ॥
ढोलन मेरा भावता वेगि मिलहु मुझ आइ।
सुन्दर व्याकुल विरहनी तलफि तलफि जिय जाइ ॥४७॥
लालन मेरा लाडिला रूप बहुत तुझ मांहि।
सुन्दर राखै नैंन मैं पलक उघारै नांहि ॥ ४८ ॥
सुन्दर बिगसै विरहनी मन मैं भया उछाह।
फूल बिछाऊं सेजरी आज पधारें नाह ॥ ४९ ॥
सुन्या सन्देसा पीव का मन में भया अनंद।
सुन्दर पाया परम सुख भाजि गया दुख दंद ॥ ५० ॥
दया करहु अब रामजी आवौ मेरै भौंन।
सुन्दर भागै दुःख सब विरह जाइ करि गौंन ॥ ५१ ॥
अब तुम प्रगटहु रामजी ह्वै हमारै आइ।
सुन्दर सुख सन्तोष ह्वै आनँद अंग न माइ ॥ ५२ ॥

॥ इति विरह कौ अंग ॥ ३ ॥

---

(४३) विध=विधि। (४५) मिहरि=दया। (४७) ढोलन=ढोला, प्यारा। "ढोला मारू"में ढोला से प्यारा पिया ही लिया जाता है, यद्यपि ढोल नाम विशेष है। जैसे लाल से लालन। (४९) बिगसै=बिकसै, आनन्द मगन होकर (काकड़ी की तरह फूल कर फूटै)। (५१) गौंन=गवन, गमन।

॥ अथ बंदगी कौ अंग ॥ ४ ॥

दोहा

सुन्दर अंदर पैसि करि दिल मौं गौता मारि।
तौ दिल ही मौं पाइये सांई सिरजनहार ॥ १ ॥

सुन्दर दिल मौं पैसि करि करै बंदगी षूब।
तौ दिल मौं दीदार है दूरि नहीं महबूब ॥ २ ॥

जिस बंदे का पाक दिल सो बंदा माकूल।
सुन्दर उसकी बंदगी सांई करै कबूल ॥ ३ ॥

बंदा सांई का भया सांई बंदे पास।
सुन्दर दोऊ मिलि रहे ज्यौं फुल हु मैं बास ॥ ४ ॥

हर दम हर दम हक तू लेइ धनी का नांव।
सुन्दर ऐसी बंदगी पहुंचावै उस ठांव ॥ ५ ॥

बंदा आया बंदगी सुनि सांईं का नांव।
सुन्दर षोज न पाइये ना कहुं ठौर न ठांव ॥ ६ ॥

उलटि करै जो बंदगी हर दम अरु हर रोज।
तौ दिल ही मैं पाइये सुन्दर उसका षोज ॥ ७ ॥

सुन्दर बंदा चुस्त है जौ पैठै दिल मांहि।
तौ पावै उस ठौर ही बाहिर पावै नांहि ॥ ८ ॥

सुन्दर निपट नजीक है उठै जहां थी स्वास।
वहां हि गोता मारि तूं सांईं तेरै पास ॥ ९ ॥

[अङ्ग ४] (३) माकूल=(अ०) योग्य। कबूल=स्वीकार, मंजूर।

(६) आया बन्दगी=बन्दगी में लगा, प्रवृत्त हुआ।

(७) उलटि करै=बाहर की बन्दगी (सेवा, अर्चना, उपासना) न करके अन्दर हृदय में ध्यान धरै। (९) जहां थी=जहां से।

सषुन हमारा मांनिये मत षोजै कहुं दूर।
सांईं सीने बीच है सुन्दर सदा हजूर॥ १०॥

सुन्दर भूल्या क्यों फिरै सांई है तुझ मांहि।
एक मेक ह्वै मिलि रह्या दूजा कोई नांहि॥ ११॥

सुन्दर तुझ ही मांहिं है जो तेरा महबूब।
उस षूबी कौं जांनि तू जिस षूबी तें षूब॥ १२॥

जौ बंदा हाजिर षडा करै धणी का कांम।
सांईं कौं भूलै नहीं सुन्दर आठौं यांम॥ १३॥

जौ यह उसका ह्वै रहै तौ वह इसका होय।
सुन्दर बातौं ना मिलै जब लग आपन षोय॥ १४॥

सुन्दर बंदा बंदगी करै दिवस अरु रात।
सो बंदा कहिये सही और बात की बात॥ १५॥

करै बंदगी बहुत करि आपा आंणै नांहिं।
सुन्दर करी न बंदगी यौं जाणै दिल मांहिं॥ १६॥

बंदा आवै हुक्म सौं हुक्म करै तहां जाइ।
सुन्दर उजर करै नहीं रहिये रजा षुदाइ॥ १७॥

सांई बंदे कौं कसै करै बहुत बेहाल।
दिल में कछु आणै नहीं सुन्दर रहै षुस्याल॥ १८॥

सुन्दर बंदा बंदगी सदा रहै इकतार।
दिल में और न दूसरा सांईं सेती प्यार॥ १९॥

मुष सेती बंदा कहै दिल में अति गुमराह।
सुन्दर सो पावै नहीं सांईं की दरगाह॥ २०॥

---

(१४) आप न=आप (आत्मा, अहंकार) न (नहीं)।

(१५) बात की बात=कहने मात्र, कोरी बात।

(१७) हुक्म=हुकम, मर्जी (ईश्वर की)

सुन्दर ज्यौं मुख सौं कहै त्यौं ही दिल मैं जाप।
सोई बंदा सरषरू सांई रीझै आप ॥ २१ ॥
कै सांई की बंदगी कै सांई का ध्यान।
सुन्दर बंदा क्यौं छिपै धंदै सकल जिहान ॥ २२ ॥
वहुत छिपावै आप कौं मुझे न जांणै कोइ।
सुन्दर छाना क्यौं रहै जग में जाहर होइ ॥ २३ ॥
औरत सोई सेज पर बैठा पसम हजूर।
सुन्दर जान्यां ष्वाब मौं पसम गया कहुं दूर ॥ २४ ॥
तलब करै वहु मिलन की कब मिलसी मुझ आइ।
सुन्दर ऐसै ष्वाब मौं तलफि तलफि जिय जाइ ॥ २५ ॥
कल न परत पल एक हूं छाडै सास उसास।
सुन्दर जागी ष्वाब सौं देषै तौ पिय पास ॥ २६ ॥
मैं ही अति गाफिल हुई रही सेज पर सोइ।
सुन्दर पिय जागै सदा क्यौं करि मेला होइ ॥ २७ ॥
सुन्दर दिल की सेज पर औरत है अरवाह।
इस कौं जाग्या चाहिये साहिब बे परवाह ॥ २८ ॥
जो जागै तौ पिय लहै सोयें लहिये नांहिं।
सुन्दर करिये बंदगी तौ जाग्या दिल मांहिं ॥ २९ ॥

---

(२१) सरषरू=सुर्खरू (फा०) आबदार चेहरेवाला, प्रसन्न, इज्जतदार (उत्तम काम की खुशी से)।

(२२) धन्देः=धन्दना, करै, नदै।

(२४) ष्वाब (फा०)=स्वप्न, सपना। पसम=(अ०) स्वामी, पीव।

(२५) तलब करै=ढूंढे। (मिलन की=मिलने के लिए)।

जागि करै जो बंदगी सदा हजूरी होइ।
सुन्दर कबहुं न बीछुरै साहिब सेवग दोइ ॥ ३० ॥

॥ इति बंदगी कौ अंग ॥ ४ ॥

॥ अथ पतिव्रत कौ अंग ॥ ५ ॥

दोहा

सुन्दर हरि आराध करि है देवनि कौ देव।
भूलि न और मनाइये सबै भींति कै लेव ॥ १ ॥

सुन्दर और कछू नहीं एक बिना भगवंत।
तासौं पतिव्रत राषिये टेरि कहैं सब संत ॥ २ ॥

सुन्दर और न ध्याइये एक बिना जगदीस।
सो सिर ऊपर राषिये मन क्रम बिसवा बीस ॥ ३ ॥

सुन्दर कछु न सराहिये एक बिना भगवान।
लच्छन लागै तुरत ही सबहिं सराहैं आंन ॥ ४ ॥

सुन्दर और सराहतें पतिव्रत लागै षोट।
बालु सरायौ रेनुका बंधी न जल की पोट ॥ ५ ॥

---

(३०) "हाजिरां हजूर" के लिए "सदा हजूरी"। साहिब सेवग दोइ=सेव्य सेवक (बन्दा और माबूद) जीव ईश्वर का भेद (दोइ=द्वैत) नहीं रहे।

[अङ्ग ५] (१) लेव=लेवड़ा, पपड़ी ('भीत का लेव' मुहाविरा है तुच्छता के अर्थ में)

(४) लच्छन लागै=ऐब (दोष) लग जाय (यदि पतिव्रता अन्य को सराहै तो)। निर्दोष होने से संसार बड़ाई करै। आंन=अन्य (ससार के लोग)।

सुन्दर जब पतिव्रत गयौ तब पोई सपतंग।
मांनहुं टीका नील कौ विप्र दियौ निज अंग ॥ ६ ॥

सुन्दर जिन पतिव्रत कियौ तिनि कीये सब धर्म।
जब हिं करै पछु और कृत सब ही लागै कर्म ॥ ७ ॥

सुन्दर सब करनी करी सबै करी करतूति।
पतिव्रत राष्यौ राम सौं तब आई सब सूति ॥ ८ ॥

पतिव्रत ही मैं योग है पतिव्रत ही मैं जाग।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं वहै त्याग वैराग ॥ ९ ॥

पतिव्रत ही मैं यम नियम पतिव्रत ही मैं ध्यान।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं तीरथ सकल सनान ॥ १० ॥

पतिव्रत ही मैं तप भयौ पतिव्रत ही मैं मौंन।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं और कष्ट कहि कौंन। ११ ॥

पतिव्रत ही मैं शील है पतिव्रत मैं संतोष।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं वह ई कहिये मोष ॥ १२ ॥

पतिव्रत मांहि क्षमा दया धीरज सत्य वषांनि।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं याही निश्चय आंनि ॥ १३ ॥

सुन्दर पतिव्रत राषि तूं सुघर जाइ ज्यौं बात।
सुख मैं मेलै कोर जब तृपति होइ सब गात ॥ १४ ॥

सुन्दर रीझै रामजी जाकै पतिव्रत होइ।
रुलत फिरै ठिक बाहरी ठौर न पावै कोइ ॥ १५ ॥

---

(८) सूति=सूत आना=सीधा और साफ होना, जैसे बेजा बुनने में सूत (धागा) न टूट कर साफ सीधा आ जाय। अर्थात् उपासना से ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर सब सिद्धि हो गई। (९) जाग=यज्ञ।

(१४) ज्यौं=(रा०) इससे, इस अर्थ वा प्रयोजन से। अतः।

(१५) रुलत फिरै=योंही वृथा इधर उधर, ठिक बाहरी=बाहर (स्थूल) समार में स्थिर स्थान (गति, वा मंजिल) न प्राप्त होकर।

सुन्दर जो बिभचारिनी फरका दीयौ डारि।
लाज सरम वाकै नहीं डोलै घर घर बारि ॥ १६ ॥

विभचारणि नाक्री बिना लाज सरम कछु नांहि।
कालौ मुख कीयां फिरै सकल जगत कै मांहि ॥ १७

बिभचारिणि यौं कहतु है मेरौ पीय सुजांन।
सुन्दर पतिब्रता कहै काटौं तेरे कांन ॥ १८ ॥

बिभचारिणि यौं कहतु है मेरौ पिय अति पाक।
सुन्दर पतिब्रता कहै काटौं तेरी नाक ॥ १९ ।

बिभचारिणि यौं कहतु है शोभित मेरौ कंत।
सुन्दर पतिब्रता कहै तोडौं तेरे दंत ॥ २० ॥

बिभचारिणि यौं कहत है मेरौ पिय अति रौंन।
सुन्दर पतिब्रता कहै तेरी जिह्वा लौंन ॥ २१ ॥

बिभचारिणि कहै देषि तू मेरे पिय कै बाल।
सुन्दर पतिब्रता कहै तेरे माथै ताल ॥ २२ ॥

---

(१६) फरका=चीर (ओढ़नी) का वह विभाग जिसको स्त्री आगे लज्जा के लिए लहंगे में टांकती हैं।

(१७) नाक्री विना=बिन नाक की, नकटी। बेइज्जत।

(१८) काटौं तेरे कान=मैं तुझ से बढ़ कर हूं (कान काटना=किसी से बढ़ कर होना, मुहावरा है)।

(१९) काटौं तेरी नाक=मैं प्रतिष्ठित हूं प्रतिष्ठा रहित बदनाम है।

(२०) तोडौं तेरे दन्त=मार कर सीधी कर दूं। अर्थात् तू दण्ड के योग्य है।

(२१) रौंन=रमणीय। जिव्हा लौंन तुझे लूण (नमक) चबाया जाय जो ऐसी भ्रष्ट बात कहती है।

(२२) बाल=शिर के केश (कैसे सुन्दर हैं)। ताल=थाप। तेरा शिर पीटा जाने योग्य है

विभचारिणि कहै देषि तू मेरै पिय कौ गात।
सुन्दर पतिव्रता कहै तेरी छाती लात॥ २३॥

विभचारिणि कहै देषि तू मेरै पिय कौ द्वार।
सुन्दर पतिव्रता कहै तेरै मुख मैं छार॥ २४॥

पतिव्रता पति सनमुखी सुन्दर लहै सुहाग।
विभचारिणि विमुखी फिरै ताके बडे अभाग॥ २५॥

पतिव्रता छाडै नहीं सुन्दर पति की सेज।
विभचारिणि औगुन भरी पूजै देवी देव॥ २६॥

जाचिग कौ जाचै कहा सरै न कोई काम।
सुन्दर जाचै एक कौ अलष निरञ्जन राम॥ २७॥

सब ही दीसै दालद्री देवी देव अनंत।
दारिद्र भंजन एकही सुन्दर कमलाकंत॥ २८॥

पतिव्रता पति कै निकट सुन्दर सदा हजूरि।
विभचारणि भटकति फिरै न्याय परै मुख धूरि॥ २९॥

पतिव्रता देषै नहीं आन पुरुष की वोर।
सुन्दर वह विभचारिणि तकत फिरै ज्यौं चोर॥ ३०॥

पति की आज्ञा मैं रहै सा पतिव्रता जानि।
सुन्दर सनमुख है सदा निस दिन जोरे पानि॥ ३१॥

प्रभू बुलावै बोलिये ऊठि कहै तब ऊठि।
बैठावै तौ बैठिये सुन्दर यौं जी चूठि॥ ३२॥

---

(२९) न्याय परै मुख धूरि=न्याय (निर्णय यह कि) अन्त में, अततो गत्वा। मुख धूल पड़ना=मुह पर धूल (बदनामी) होना।

(३१) पानि=पाणि, हाथ।

(३२) जी चूठि=जीव को (वा जी जान से) पीव की मर्जी के चिपक जाय, अर्थात् दृढ़ता के साथ आज्ञा पालन करै।

प्रभू चलावै तब चलै सोइ कहै तब सोइ।
पहरावै तब पहरिये सुन्दर पतिव्रत होइ ॥ ३३ ॥

दिवस कहै तब दिवस है रैंनि कहै तब रैंन।
सुन्दर आज्ञा मैं रहै कबहुं न फेरै बैंन ॥ ३४ ॥

रीसि करै अत्यन्त करि तौ प्रभु प्यारौ लाग।
हंसि करि निकट बुलाइले सुन्दर माथै भाग ॥ ३५ ॥

सुन्दर पतिव्रत राम सौं सदा रहै इकतार।
सुख देवै तौ अति सुखी दुख तौ सुखी अपार ॥ ३६ ॥

रजा राम की सीस पर आज्ञा मेटै नांहि।
ज्यौं राषै त्यौं ही रहै सुन्दर पतिव्रत मांहि ॥ ३७ ॥

साहिब मेरा रामजी सुन्दर पिजमतिगार।
पाव पलोटै प्रीति सौं सदा रहै हुसियार ॥ ३८ ॥

करै हजूरी बन्दगी और न कोई काम।
हुकम कहै त्यौं ही चलै सुन्दर सदा गुलाम ॥ ३९ ॥

पति कौ बचन लियें रहै सा पतिवरता नारि।
सुन्दर भावै पीव कौं आवै नहीं अवगारि ॥ ४० ॥

जौ पिय कौ ब्रत ले रहै कन्त पियारी सोइ।
अंजन मंजन दूरि करि सुन्दर सनमुख होइ ॥ ४१ ॥

अपना बल सब छाडि दे सेवै तन मन लाइ।
सुन्दर तब पिय रीझि करि राषै कण्ठ लगाइ ॥ ४२ ॥

प्रीतम मेरा एक तूं सुन्दर और न कोइ।
गुप्त भया किस कारनै काहि न परगट होइ ॥ ४३ ॥

---

(३५) लाग=लागै। भाग=भाग्य।

(४०) अवगारि=ओगाल, नफरत, अवज्ञा।

(४१) अंजन मंजन=टीका टमका, बाह्य आडम्बर। इन्द्रियों का व्यापार, देवी देवता की उपासना इत्यादि।

हृदये मेरै तू बसै रसना तेरा नाम।
रोम रोम मैं रमि रह्या सुन्दर सब ही ठाम ॥ ४४ ॥
जहं जहं भेजै रामजी तहं तहं सुन्दर जाइ।
दाणों पांणी देह का पहली घरचा बनाइ ॥ ४५ ॥
अपणा सारा कछु नहीं डोरी हरि कै हाथ।
सुन्दर डोलै बादरा बाजीगर कै साथ ॥ ४६ ॥
ज्यौं हीं भावै राम मन सुन्दर त्यौं ही धारि।
जो ही भावै पीव कौं सोई भावै नारि ॥ ४७ ॥
सुन्दर प्रभु मुख सौं कहै सोई मीठी बात।
डार कहै तौ डार ही पात कहै तौ पात ॥ ४८ ॥
जौ प्रभु कौं प्यारौ लगै सोई प्यारौ मोहि ॥
सुन्द ऐसैं समुझि करि यौं पतिब्रता होहि ॥ ४९ ॥
सुन्दर प्रभु की चाकरी हासो पेल न जानि।
पहलै मन कौं हाथ करि पीछै पतिब्रत ठांनि ॥ ५० ॥
सुन्दर कछू न कीजिये क्रिया कर्म भ्रम आन।
करने कौं हरि भक्ति है समझन कौ है ज्ञान ॥ ५१ ॥

॥ इति पतिव्रत कौ अंग ॥ ५ ॥

---

(४५) जह जह=जिस जिस जन्मातर में, योनियों में। दाणां पाणी=खान पान। शरीर के पालन के लिए पत्येक योनि में भोजनादि का प्रबन्ध।

(४८) डार=डाली। (डाल २ पात २ मुहाविरा है) अथवा चाहे डाली न हो उसको डाली ही कहै यदि प्यारा ईश्वर डाली ऐसा कहै तो।

(५०) चाकरी हांसी पेल न जान=सेवा धर्म बहुत कठिन है, कोई खिलवाड़ नहीं है। "सेवधर्मो परम गहनो योगिना मप्यगम्य"।

(५१) आन=अन्य। भक्ति और ज्ञान से भिन्न अन्य सब कर्म और धर्म

॥ अथ उपदेश चितावनी कौ अंग ॥ ६ ॥

सुन्दर मनुषा देह की महिमा बरनहिं साध।
जामैं पइये परम गुरु अविगति देव अगाध ॥ १ ॥

सुन्दर मनुषा देह की महिमा कहिये काहि।
जाकौं बंछै देवता तू क्यौं पोवै ताहि ॥ २ ॥

सुन्दर मनुषा देह यह पायौ रतन अमोल।
कोडी सटै न पोइये मानि हमारौ बोल ॥ ३ ॥

सुन्दर सांची कहतु है मति आनै कछु रोस।
जौ तैं पोयो रतन यह तौ तोही कौ दोस ॥ ४ ॥

बार बार नहिं पाइये सुन्दर मनुषा देह।
राम भजन सेवा सुकृत यह सौदा करि लेह ॥ ५ ॥

सुन्दर निश्चय आन तूं तोहि कहूं करि प्यार।
मनुष जन्म की मौज यह होइ न बारम्बार ॥ ६ ॥

सुन्दर मनुषा देह मैं सारे बंधन बाढि।
आयौ हाथ सिला तलै काढि सकै तौ काढि ॥ ७ ॥

सुन्दर तू भटकति फिर्‌यौ स्वर्ग मृत्यु पाताल।
अबकै या नर देह मैं काढि आपनौ साल ॥ ८ ॥

मिथ्या और भ्रममूलक है। 'भक्तिमय ज्ञान" ही दादू-सम्प्रदाय का मूल सिद्धान्त है अनेक प्रसगों में सुन्दरदासजी ने बता दिया है।

(७) बाढि=बढ़ कर हैं। परन्तु इस ही में सब बन्धन खुल सकते हैं। 'शिला तले हाथ आना'=दब जाना फस जाना। जन्म-मरण का बन्धन फस जाना। एक मनुष्य देह ऐसी है जो आवागमनरूपी बन्धन से मुक्त कर सकती है।

(८) साल=(शल्य) सूल, कांटा। साल काढना=कांटा निकालना। त्रिविध दुःख या आवागमन का खटका मिटाना।

सुन्दर कछु संख्या नहीं बहुतक धरे शरीर।
अथकै तू भगवंत भजि विलम करै जिनि धीर ॥ ६ ॥

सुन्दर या नर देह है सब देहनि कौ मूल।
भावै यामैं समझि तूं भावै यामैं भूल ॥ १० ॥

सुन्दर मनुषा देह धरि भज्यौ नहीं भगवंत।
तौ पशु ज्यौं पूरै उदर शूकर स्वान अनंत ॥ ११ ॥

सुन्दर या नर देह अब पुल्यौ मुक्ति कौ द्वार।
यौं ही वृथा न पोइये तोहि कह्यौ कै बार ॥ १२ ॥

सुन्दर सांची कहत है जो मानै तौ मांनि।
यहै देह अति निंच है यहै रतन की पांनि ॥ १३ ॥

सुन्दर मनुषा देह यह तामैं दोइ प्रकार।
यातैं बूडै जगत महिं यातैं उतरै पार ॥ १४ ॥

सुन्दर बंधै देह सौं तौ यह देह निषिद्धि।
जो याकी ममता तजै तौ याही मैं सिद्धि ॥ १५ ॥

भूलत काहे बावरे देषि सुरंगी देह।
बंध्यौ फिरै अनादि कौ सुन्दर याके नेह ॥ १६ ॥

सुन्दर बंध्या देह सौं कबहु न छूटा भाजि।
और कियौ सनमंध अब भई कोढ मैं पाजि ॥ १७ ॥

मात पिता बंधव सकल सुत दारा सौं हेत।
सुन्दर बंध्या मोहि करि चेतै नहीं अचेत ॥ १८ ॥

---

(९) विलम=विलम्ब=अवेर, देर। (१४) दुष्कर्मों से डूबे। शुभकर्मों से तिरै।

(१६) देह जड़ है, आत्मा चेतन है। देह में आत्मा का अध्यास करना मिथ्या और बन्धन का कारण होता है।

(१७) 'कोढ में पाजि'=महाराजरोग कोढ़ में खाज का होना=विषम दुःख में अन्य अधिक दुःख का आ जाना।

सुन्दर स्वारथ सौं बंधे बिन स्वारथ को नांहिं।
जब स्वारथ पूजै नहीं आपु आपु कौ जांहिं॥ १९॥

सुन्दर अति अज्ञान नर समझत नाहिं न मूरि।
तू इनसौं लाग्यौ मरै ये सब भागै दूरि॥ २०॥

सुन्दर अति अज्ञान नर समुझत नहीं लगार।
जिनहिं लडावै लाड तू ते ठोकि हैं कपार॥ २१॥

सुन्दर माया मोह तजि भजिये आतम राम।
ये संगी दिन चारि के सुत दारा धन धाम॥ २२॥

सुन्दर नदी प्रवाह में मिल्यौ काठ संजोग।
आपु आपु कौं ह्वै गये त्यौं कुटंब सब लोग॥ २३॥

सुन्दर बैठे नाव में कहूं कहूं तें आइ।
पार भये कतहूं गये त्यौं कुटंब सब जाइ॥ २४॥

सुन्दर पक्षी वृक्ष पर लियौ बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गये त्यौं कुटंब सब जानि॥ २५॥

सुन्दर समझि विचार करि तेरौ इनमें कौंन।
आपु आपु कौं जाहिंगे सुत दारा करि गौंन॥ २६॥

सुन्दर तू इन सौं बंध्यौ ये सब तोसौं फर्क।
याही बात विचार करि तू हूं दै अब तर्क॥ २७॥

सुन्दर नाना जोनि में जन्म जन्म की भूल।
सुत दारा माता पिता सगलै याही सूल॥ २८॥

---

(१९) आपु आपु को जांहिं=त्याग जांय, यही नीचता।

(२०) मूरि=मूल, कुछ भी, थोड़ा भी।

(२१) कपार ठोकैं=मरने पर कपालक्रिया करैं।

(२७) तू हूं दै तर्क=यह मेरा यह तेरा ऐसी ममता भरी अज्ञता की तर्कना (दै) छोड़ दे।

सुन्दर मांथै बोझ लै यह तौ अति अज्ञान।
इनकौ करता और ही भय भंजन भगवान॥ २९॥

सुन्द काहे पैंचि ले अपने मांथै बोझ।
करता कौं जानै नहीं तू रांमां कौ रोझ॥ ३०॥

सुन्द तेरी मति गई समुंझत नहीं लगार।
कूकर रथ नीचै चलै हूं पैंचत हौं भार॥ ३१॥

सुंदर यह औसर भलौ भजि लै सिरजनहार।
जैसें ताते लोह कौं लेत मिलाइ लुहार॥ ३२॥

सुंदर औसर कै गयें फिरि पछितावा होइ।
शीतल लोह मिलै नहीं कूटौ पीटौ कोइ॥ ३३॥

सुन्दर यौंही देप तें औसर बीत्यौ जाइ।
अंजुरी माहें नीर ज्यौं किती बार ठहराइ॥ ३४॥

सुंदर अब तेरी पुसी बाजी जीति कि हारि।
चौपडि कौ सौ पेल है मनुषा देह बिचारि॥ ३५॥

सुंदर जीतै सो सही डाव बिचारै कोइ।
गाफिल होइ सु हारि कै चालै सरबस पोइ॥ ३६॥

सुंदर याही देह मैं हारि जीति कौ पेल।
जीतै सो जगपति मिलै हारे माया मेल॥ ३७॥

---

(३०) रामां कौ रोझ=रामां—जगल। रोझ—एक प्रकार का जगली पशु।

(३१) कूकर रथ नीचै...=यह मिथ्या अविवेक और अध्यास का दृष्टान्त है। कुत्ता रथ के नीचे २ चलता हुआ यह समझै कि यह रथ मेरे चलाये चलता है तो उसकी यह कल्पना हास्य के योग्य और नितान्त झूठी है। इस ही प्रकार ससार के व्यवहार मनुष्य के लिए हैं। मनुष्य अहन्ता से अपने ऊपर लेता है। कार्य के कारण तो और ही हैं।

(३३) ताता लोह कुटना मुहावरा है। अवसर पर ही काम होता है।

(३४) अंजुरी=आंदला। (३७) जगपति=ईश्वर, परमात्मा।

सुंदर अबकै आपणौ टोटौ नफौ विचारि।
जिनि इहकावै जगत में मेल्ह्यौ हाट पसारि॥ ३८॥

सुंदर भटक्यौ बहुत दिन अब तू ठौहर आव।
फेरि न कबहूं आइ है यहु औसर यहु डाव॥ ३९॥

सुंदर दुःख न मानि तूं तोहि कहूं उपदेश।
अब तौ कछूक सरम गहि धौले आये केश॥ ४०॥

सुंदर बैठा क्यौं अबै उठि करि मारग चालि।
कै कछु सुकृत कीजिये कै भगवंत संभालि॥ ४१॥

सुंदर सौदा कीजिये भली वस्तु कछु पाटि।
नाना विधि काटांगरा उस बनिया की हाटि॥ ४२॥

सुंदर विष पलि पार तजि लै केसरि कर्पूर।
जौ तू हीरा लाल ले तौ तौसौं नहिं दूर॥ ४३॥

सुंदर ठगबाजी जगत यह निश्चय करि जानि।
पहलै बहुत ठगाइयौ बहै घणों करि मांनि॥ ४४॥

सुन्दर ठग्यौ अनेकबर सावधान अब होइ।
हीरा हरि कौ नाम लै छाडि विषै सुख लोह॥ ४५॥

सुन्दर सुख कै कारनै दुःख सहै बहु भाइ।
को षेती को चाकरी कोइ वणज कौं जाइ॥ ४६॥

पराधीन चाकर रहै षेती मैं संताप।
टोटौ आवै बणज मैं सुन्दर हरि भजि आप॥ ४७॥

---

(३८) टोटा नफा विचारना=फायदा होगा या नुकसान इसका पहिले से विचार कर लेना ही बुद्धिमानी है।

(४२) पाटि=परख कर मोल ले। टांगरा=सामान, सौदा, हटइ पटइ उस बनिया=परमात्मा (की सृष्टि)।

(४३) पलि=फल, पूंछ, निःसार वस्तु।

सुख दुख छाया धूप है सुन्दर कर्म सुभाव।
दिन द्वै शीतल देषिये वहुरि तप्त मैं पांव॥ ४८॥

सुन्दर सुख की चाह करि कर्म करै बहु भांति।
कर्मनि कौ फल दुःख है तू भुगतै दिन राति॥ ४६॥

तैं नर सुख कीये घने दुख भोगये अनंत।
अब सुख दुख कौं पीठि दें सुन्दर भजि भगवंत॥ ५०॥

दीया की बतियां कहै दीया किया न जाइ।
दीया करै सनेह करि दीयें ज्योति दिपाइ॥ ५१॥

दीयें तें सब देषिये दीये करौ सनेह।
दीये दसा प्रकासिये दीया करि किन लेह॥ ५२॥

दीया राषै जतन सौं दीये होइ प्रकाश।
दीये पवन लगै अहं दीये होइ विनाश॥ ५३॥

सांई दीया है सही इसका दीया नांहि।
यह अपना दीया कहै दीया लपै न मांहि॥ ५४॥

सांई आप दिया किया दीया मांहि सनेह।
दीये दीये होत है सुन्दर दीया देह॥ ५५॥

॥ इति उपदेश चितावनी कौ अंग ॥ ६ ॥

---

(४८) तप्त मैं पांव=धूप, तावड़े में पाव का दाफना।

(५१) यह 'दीया' शब्द और 'वाती' तथा 'सनेह' शब्दों में श्लेष है। दीया=१ दान, २ दीपक। बाती=१ वार्त्ता, २ बत्ती। सनेह=१ स्नेह, प्रेम, २ तेल।

(५२) यहां भी श्लेष है। १ देने से (त्यागने से) दिव्यज्ञान की प्राप्ति होती है। २ दीपक से सब दिखाई दे। करि=१ हाथ में २ करके।

(५३) यहां भी श्लेष है। प्रसंग से अर्थ जान लेना। दीया=ज्ञान। अहं=अहंकार।

(५४) यहां 'दीया' शब्द से प्रकाश। परमात्मा स्वयं प्रकाश है, वह किसी अन्य प्रकाश से नहीं दिखाई देता। (५५) ज्ञानरूपी दीपक हृदय में परमात्मा ने

॥ अथ काल चितावनी कौ अंग ॥ ७ ॥

काल ग्रसत है बावरे चेतत क्यौं न अजान।
सुन्दर काया कोट मैं होइ रह्या सुलतान॥ १॥

सुन्दर काल महाबली मारे मोटे मीर।
तू कौंनं की गनति में चेतत काहि न वीर॥ २॥

सुन्दर काल गिराइ दे एक पलक मैं आइ।
तूं क्यौं निर्भय ह्वै रह्यौ देषि चल्यौ जग जाइ॥ ३॥

सुन्दर चितवै और कछु काल सु चितवै और।
तू कछु जाने की करै वहु मारै इहिं ठौर॥ ४॥

सुन्दर काल प्रवीण अति तूं कछु समुझै नांहिं।
तू जानैं जीवत रहू वहु मारै पल माहिं॥ ५॥

सुन्दर तेरी ओर कौं ताकि रहे जमदूत।
वैरी वैठे घारनैं तू सोवै किंहि सूत॥ ६॥

सुन्दर सूवा पींजरै केलि करै दिन राति।
मिनकी जानैं पाव कन ताकि रही इहि भांति॥ ७॥

सुन्दर मूसा फिरत है बिलतैं बाहिर आइ।
काल रह्यौ अहि ताकि करि कबहुक लेइ उठाइ॥ ८॥

मनुष्य को प्रदान किया। उसमें 'सनेह'=भक्तिरूपी तेल भर दिया। दीपक से दीपक जलता है। गुरु से शिष्य, परम्परागत ज्ञानधारा बहती है। परमात्मा ने यह सुन्दर देह प्रदान की है। यह देह ज्ञानभरी है सो इस ज्ञानरूपी दीया (दीपक) । प्रज्वलित करके अज्ञानरूपी अन्धकार मिटा लो।

१ (६) सूत=सूत के वस्त्र में, विस्तरों में। अथवा हे सूत पुत्र ! । वा सूत=सुरत, धुन।

सुन्दर मछरी नीर में विचरत अपने ख्याल।
बगुला लेत उठाइ कै तोइ ग्रसै यौं काल॥ ९॥

सुन्दर बैठी मक्षिका मीठे ऊपर आइ।
ज्यौं मकरी वाकों ग्रसै मृत्यु तोहि लै जाइ॥ १०॥

सुन्दर तोकौं मारि है काल अचानक आइ।
तीतर देषत ही रहै बाज झपट लै जाइ॥ ११॥

सुन्दर काल जुरावरी ज्यौं जाणैं त्यौं लेइ।
कोटि जतन जौ तू करै तोहूं रहन न देइ॥ १२॥

मेरी मेरी करत है तोकौं सुद्धि न सार।
काल अचानक मारि है सुन्दर लगै न वार॥ १३॥

मेरे मन्दिर माल धन मेरौ सकल कुटुम्ब।
सुन्दर ज्यौं की त्यौं रहै काल दियौ जब बंब॥ १४॥

सुन्दर गर्व कहा करै कहा मरोरै मूंछ।
काल चपेटौ मारि है समझि कहूं कै भूंछ॥ १५॥

यौं मति जानै बावरे काल लगावै वेर।
सुन्दर सबही देषतें होइ राष की ढेर॥ १६॥

सुन्दर संक रती नहीं बहुत करै उदमाद।
काल अचानक आइहै करिहै गुरदावाद॥ १७॥

सुन्दर क्यौं चेतै नहीं सिर पर साँधे काल।
पल मैं पटकि पछारि है मारि करै बेहाल॥ १८॥

सुन्दर काहे कौं करै थिर रहणें की बात।
तेरै सिर पर जम षडा करै अचानक घात॥ १९॥

---

(१२) जुरावरी=जोरावरी, बलात्, ज़बरदस्ती।

(१४) बंब=प्रबल शब्द। (१५) भूंछ=भुच=मूर्ख।

(१७) उदमाद=ऊधम। गुरदावाद=गुरदाबाज, लोटपोट, रेतखेत।

सुन्दर गाफिल क्यौं फिरै सावधान किन होय।
जम जौरा तकि मारि है घरी पहरि मैं तोय॥ २०॥

सुन्दर तौ तू उबरि है समरथ सरनैं जाइ।
और जहां जहां तू फिरै काल तहां तहां पाइ॥ २१॥

सुन्दर अपनौ राम तजि जाइ और के भौंन।
काल गहै जब कण्ठ कौं तबहि छुडावै कौंन॥ २२॥

सुन्दर रापै कौन कौं संचि संचि धन माल।
तेरै संग चलै न कछु पोसि लेहिंगे पाल॥ २३॥

सुत कलत्र माता पिता भइया बंधु समेत।
सुन्दर सब कौं देषते काल ग्रास करि लेत॥ २४॥

और चलै कहि कौन कौ सब कुटुंब घर मांहि।
सुन्दर काल उठाइ ले देषत ही रहि जांहि॥ २५॥

सुन्दर पौन लगै नहीं राष्यौ तहां छिपाइ।
काल पकरि कै केस कौं बाहरि नाष्यौ आइ॥ २६॥

काल ग्रसै सब सृष्टि कौं बचत न दीसै कोइ।
सुन्दर सारे जगत मैं तोबह तोबह होइ॥ २७॥

सुन्दर घर घर रोवणौं पर्यौ काल कौ त्रास।
केइक जारन कौं गये फिर केइक कौ नास॥ २८॥

सुन्दर सब ही थरसलै देषि रूप विकराल।
मुख पसारि कब कौ रह्यौ महा भयानक काल॥ २९॥

---

(२०) जौरा=जोरावर, जौंरा (भैंस, जो बहुत आसूदा रह कर जोर से दौड़ती है)।

(२३) खाल खोसना=खाल खैंचना, उपाड़ना। बुरी तरह बेहाल कर मारना।

(२७) तोबह तोबह=(अ०) तोबाह=त्राहि।

(२८) जारन=जलाने को गये (वे भी जलाये गये)।

(२९) थरसलै=थर्रावैं, डरैं।

त्य लोक ब्रह्म डर्‌यौ शिव डरप्यौ कैलास।
विष्णु डर्‌यौ वैकुंठ में सुन्दर मानी त्रास॥ ३०॥
इन्द्र डर्‌यौ अमरावती देवलोक सब देव।
सुंदर डर्‌यौ कुवेर पुनि देषि सबनि की छेव॥ ३१॥
राक्षस असुर सबैं डरें भूत पिशाच अनेक।
सुंदर डरपे स्वर्ग के काल भयानक एक॥ ३२॥
चन्द सूर तारा डरैं धरती अरु आकाश।
पांणी पावक पवन पुनि सुंदर छाडी आस॥ ३३॥
सुन्दर डर सुनि काल कौ कंप्यौ सब ब्रह्मंड।
सागर नदी सुमेर पुनि सप्त दीप नौ खंड॥ ३४॥
साधक सिद्ध सबें डरें तपी ऋषीश्वर मौंन।
योगी जंगम बापुरे सुंदर गनती कौंन॥ ३५॥
एक रहै करता पुरुष महाकाल कौ काल।
सुन्दर वहु विनसै नहीं जाकौ यह सब ष्याल॥ ३६॥
सुन्दर उठतें बैठतें जागत सोवत काल।
निर्भय कोइ न रहि सकै काल पसार्‌यौ जाल॥ ३७॥
सुन्दर षाते पीवते चलत फिरत डर होइ।
सबही कौं भै काल कौ निर्भय नाहीं कोइ॥ ३८॥
सुन्दर सुनतें देषतें लेतें देतें ग्रास।
यौंही मुख सौं बोलतें निकसि जात है स्वास॥ ३९॥
जगत जोइ जो कृत करै सो सो भय संयुक्त।
सुंदर निर्भय रामजी कै कोई जन मुक्त ४०॥
सुंदर या संसार तें काहि न निकसत भागि।
सुख सोवत क्यों बावरे घर में लागी आगि॥ ४१॥

---

(३५) मौंन=मुनीश्वर।

काम काल त्रैलोक में मारै जान सुजान।
सुन्दर ब्रह्मा आदि दै कीट प्रयंत वषान॥ ४२॥

क्रोध काल प्रत्यक्ष ही कियौ सकल कौ नास।
सुन्दर कौरव पांडुवा छपन कोटि परभास॥ ४३॥

लोभ काल यौं जानिये भरमावै जग माहिं।
बूडे आइ समुद्र मैं सुंदर निकसै नांहिं॥ ४४॥

मोह काल की पासि है सुन्दर निकसै कौंन।
पिता पुत्र संग जलि मुवौ अग्नि लगी जब भौंन॥ ४५॥

जो जो मन मैं कल्पना सो सो कहिये काल।
सुन्दर तू निःकल्प ह्वै छाडि कल्पना जाल॥ ४६॥

काल ग्रसै आकार कौं जामैं सकल उपाधि।
निराकार निर्लेप है सुन्दर तहां न व्याधि॥ ४७।

सुन्दर काल तहां तहां जब लग है अज्ञान।
ममत गयौ जब देह कौ तब व्यापक भगवान॥ ४८॥

सुन्दर वंध्या देह सौं तब लग ग्रासै काल।
छाडि ममत न्यारौ भयौ रज्जु विषै कत व्याल॥ ४९॥

सुन्दर काल अखंड है तिमिर रह्यौ ज्यौं छाइ।
ज्ञान भान प्रगटे जबहिं दोन्यू जाहिं बिलाइ॥ ५०॥

॥ इति काल चितावनी कौ अंग ॥ ७॥

---

(४२) जान=ज्ञानीजन।

(४३) छपन=छप्पन क्रिोड़ यादव प्रभास क्षेत्र में आपस में कट मरे।

(४५) पिता-पुत्र संग=मोह के वश में पुत्र को जला जान कर पिता ने भी अपने आपको जला दिया। (४७) नामरूपात्मक जगत् सब उपाधिमात्र है। दृश्यमान सब क्षर और मिथ्या है। अतः सब त्यागने योग्य है।

(४९) बन्ध्या=बन्धा हुआ। ग्रसै=ग्रसै, खाय। रज्जु विषै कत व्याल=रज्जु

॥ अथ नारी पुरुष श्लेष को अंग ॥ ८ ॥

नारी पुरुष सनेह अति देषैं जीवै सोइ।
सुन्दर नारी बीछुरै आप मृतक तब होइ ॥ १ ॥

नारी बोलै आकरी तब दुख पावै नाह।
सुन्दर बोलै मधुर मुख तब सुख सीर प्रवाह ॥ २ ॥

नारी बोलै प्यार सौं तब कछु पीवै पाइ।
जब नारी क्रोधहिं करै सुन्दर पिय मुरझाइ ॥ ३ ॥

नारी बोलै रस लियै कबहूं विरसी बात।
सुन्दर जीवै विरस तें रस तें पिय की घात ॥ ४ ॥

जाकै घर नारी भली सुन्दर ताकै चैन।
जाकै घर में करकसा कलह करै दिन रैंन ॥ ५ ॥

(जेवड़े) में व्याल (सर्प) का भ्रम होता है। वास्तव में जेवड़ा सांप तीन काल में भी नहीं है। अन्धकारादि दोषों से ऐसी मिथ्या प्रतीति होती है। इस ही प्रकार अज्ञानादि (अविद्या और मल, विक्षेप आवरण आदिक अन्तःकरण के दोषों वा शक्ति) से यह जगत् सत्य भासता है परन्तु यह मिथ्या है। ज्ञान के उदय से इसका नाश हो जाता है जैसे प्रकाश से रस्से में सांप का झूंठा भ्रम मिट जाता है।

(५०) ज्ञान भान=भानु सूर्य। ज्ञानरूपी सूर्य। दोन्यों=१ अन्धकार और २ अन्धकार का कारण। अविद्या और अविद्या का कार्य जगत्। दोनों नष्ट हो जाते हैं जब ब्रह्मज्ञान होता है।

[अङ्ग ८] इस अंग में नारी शब्द में श्लेष अधिक है। नारी=१ स्त्री, योषिता। २ हाथ की नाड़ी जिससे शरीर के स्वास्थ्य वा रोग का निदान तथा वात पित्त कफादिक दोषों की समता विषमता वैद्य जानते हैं।

(४) रस=प्रद्दा, रसाधिक्य का शरीर में उपद्रव। विरस=दूषित रस का अभाव। घर, भवन=२ शरीर।

नारी चलै उतावली नस सिस लागै माहि।
सुन्दर पटकै पीव सिर दुख सुनावै काहि ॥ ६ ॥
नारी घर बैठी रहै पर घर करै न गौन।
सुन्दर पावै पीव सुख दोष लगावै कौन ॥ ७ ॥
नारी प्यारी पीव कौं सुन्दर आठौं याम।
जब नारी असकी परै तब परचै बहु दाम ॥ ८ ॥
नारी नीकै बोलई सुन्दर तब सुख भौन।
जब नारी चुप करि रहै तब पिय पकरै मौन ॥ ६ ॥
पुरुष सदा डरपत रहै सुन्दर डोलै साथ।
नारी छूटै हाथ तैं तब कत आवै हाथ ॥ १० ॥
नारी निरपै रात दिन अति गति बांध्यौ मोह।
सुन्दर बार लगै नहीं पल में होइ विछोह ॥ ११ ॥
नारी मैं बल पुरष कौ पुरष भयौ बसि नारि।
अपुनौ बल समुझै नहीं बैठौ सर्वस हारि ॥ १२ ॥
नारी जाकै हाथ मैं सोई जीवत जानि।
नारी कै संग यहि गयौ सुन्दर मृतक बखानि ॥ १३ ॥
नारी फिरै गली गली ताकौ लज्या नांहि।
सुन्दर मार्यौ सरम कौ पुरष धुस्यौ घर माहिं ॥ १४ ॥
नारी डोलै भटकतो पुरषहि नहीं बिसास।
मति कहुं अटकै और सौं मोतें होइ उदास ॥ १५ ॥
सुन्दर पिय की लाडिली नारी सौं अति नेह।
जाइ दिपावै और कौं चूक पुरुष की येह ॥ १६ ॥
सुन्दर पिय अति बावरौ ह्वै करि जाइ अनाथ।
नारी अपनी आनि कै देइ और कै हाथ ॥ १७ ॥

(१४) नारी फिरै= ३-दोष कुपित होने से नाड़ी (धमनी) विकार से चलै। तब गली गली इधर उधर वैद्य का ढूंढै। (१७) रुग्णावस्था मे विह्वल वा

सुन्दर पीव कहा करै नारी चंचल होइ।
न्याइ दिपावै और कौं जे समुंझावै कोइ॥ १८॥

छाड्यौ चाहै पीव कौ नारी पर घर जाइ।
सुन्दर चंचल चपल अति तासौं कहा बसाइ॥ १६॥

समझावन कौं ल्याइये भलौ सयानौ कोइ।
तासौं बोलें आकरी कै कहुं षवर न होइ॥ २०॥

ऐसें बैसें आइ कै कहै बहुत ही बैंन।
तिनकी कछु मानै नहीं पुरुषहि होइ न चैंन॥ २१॥

भलौ सयानौ आइ जो समुझावे बहु भाति।
कुलवती मानै कह्यौ सुन्दर उपजै स्वाति॥ २२॥

सुन्दर नारी पुरुष की प्रीति परस्पर जानि।
तब तें संग तज्यौ नहीं जब तें पकरी पानि॥ २३॥

सुन्दर नारी पतिव्रता तजै न पिय कौ संग।
पीव चलै सहि गामिनी तुरत करै तन भंग॥ २४॥

दैव बिछोह करै जबहि तब कोई बस नाहिं।
सुन्दर नेह न निर्वहै आपु आपु कौं जाहिं॥ २५॥

इति साषी पचीस मैं नारी पुरुष प्रसङ्ग।
सुन्दर पावै चतुर अति तीन अर्थ तिनि सङ्ग॥ २६॥

॥ इति नारी पुरुष श्लेष को अंग ॥ ८ ॥

रोग विवश होकर अपनी नाड़ी दूसरे (वैद्य वा सयाने) को दिखावै।

(२३) पानि=हाथ।

(२४) सहिगामिनी=१ साथ चलनेवाली, अनुकूला। २ पुरुष=जीव के साथ ही नारी (स्त्री) वा नाड़ी (धमनी) रहती है। पतिव्रता पति वियोग में सती हो जाती है। २ जीव निकलने पर हाथ की नाड़ी छूट जाती है।

(२६) तीन अर्थ—दो अर्थों का संकेत तो ऊपर हो ही चुका। तीसरा अर्थ

॥ अथ देहात्मा बिछोह को अंग ॥ ६ ॥

दोहा

सुन्दर देह परी रही निकसि गयौ जब प्रान।
सब कोऊ यों कहत हैं अब लै जाहु मसान ॥ १ ॥

माता पिता लगावते छाती सौं सब अंग।
सुन्दर निकस्यौ प्रान जब कोउ न बैठै संग ॥ २ ॥

सुन्दर नारी करत ही पिय सौं अधिक सनेह।
तिनहूं मन मैं भय धर्यौ मृतक देषि करि देह ॥ ३ ॥

सुन्दर भइया कहत हौ मेरी दूजी बांह।
प्राण गयौ जब निकसि कै कोउ न चंपै छांह ॥ ४ ॥

सुन्दर लोग कुटंब सब रहते सदा हजूरि।
प्रान गये लागे कहन काढौ घर तें दूरि ॥ ५ ॥

देह सुरंगी तब लगैं जब लग प्राण समीप।
जीव जाति जाती रही सुन्दर बिदरंग दीप ॥ ६ ॥

चमक दमक सब मिटि गई जीव गयौ जब आप।
सुन्दर पाली कंचुकी नीकसि भागौ सांप ॥ ७ ॥

श्रवन नैंन मुख नासिका ज्यौं के त्यौं सब द्वार।
सुन्दर सो नहिं देषिये अचल चलावणहार ॥ ८ ॥

पुरुष=परमात्मा और उसके आधीन नारी=आत्मा या जीवात्मा या प्रकृति माया समझना चाहिए। यह तीसरा अर्थ अध्यात्म का है। इसका आभास पतिव्रता के अंगों में भी है—यथा 'साषी' में और यथा 'सवइया' में।

[अंग ६] इसके सुन्दर विचार 'सवइया' ग्रन्थ के इस ही (देहात्मा विछोह) अंग में देखना उचित है। वहां भी कैसा मनोग्राही मया ललित वर्णन किया है। हिन्दी भाषा में अन्यत्र ऐसा वर्णन नहीं मिलैगा।

(६) बिदरंग=बदरंग, बुरे रंग रूप का।

हँसै न बोलै नैंक हूं पाइ न पीवै देह।
सुन्दर अंनसन ले रही जीव गयौ तजि नेह ॥ ९ ॥

पाथर से भारी भई कौंन चलावै जाहि।
सुन्दर सो कतहूं गयौ लीयें फिरतौ ताहि ॥ १० ॥

सुन्दर पांणी सींचतौ क्यारी कंण कै हेत।
चेतनि माली चलि गयौ सूकौ काया पेत ॥ ११ ॥

ज्यौं कौ त्यौं ही देषिये सकल देह कौ ठाट।
सुन्दर को जांणै नहीं जीव गयौ किहिं घाट ॥ १२ ॥

सुन्दर देह हलै चलै चेतनि कै संजोग।
चेतनि सत्ता चलि गई कौंन करै रस भोग ॥ १३ ॥

हलन चलन सब देह कौ चेतनि सत्ता होइ।
चेतनि सत्ता बाहरी सुन्दर क्रिया न होइ ॥ १४ ॥

सुन्दर देह हलै चलै जब लगि चेतनि लाल।
चेतनि कियौ प्रयान जब रूसि रहै ततकाल ॥ १५ ॥

चम्बक सत्ता कर जथा लोहा नृत्य कराइ।
सुन्दर चम्बक दूरि ह्वै चञ्चलता मिटि जाइ ॥ १६ ॥

नरा सिख देह लगै भली सुन्दर अधिक स्वरूप।
चेतनि हीरा चलि गयौ भयौ अन्धेरा घूप ॥ १७ ॥

सुन्दर देह सुहावनी जब लगि चेतनि माँहिं।
कोई निकट न आवई जब यह चेतनि नांहिं ॥ १८ ॥

चेतनि कै संयोग तें होइ देह कौ तोल।
चेतनि न्यारौ ह्वै गयौ लहै न कौडी मोल ॥ १९ ॥

---

(९) अंनसन=अनशन=न खाना, निराहार।

(१०) कैसा मनोहर विचार है। चित्त द्रवीभूत हो जाता है।

(१९) तोल=प्रतिष्ठा, आदर।

चेतनि मिश्री देह तृण तुलत संग देहिं दाम।
सुन्दर दोउ जुदे भये तन तृण कौणैं काम ॥ २० ॥

चेतनि तें चेतनि भई अतिगति शोभित देह।
सुन्दर चेतनि निकसतें भई पेह की पेह ॥ २१ ॥

चेतनि ही लीयें फिरै तन कौं सहज सुभाइ।
सुन्दर चेतनि बाहरी पैल भैल ह्वै जाइ ॥ २२ ॥

देह जीव यौं मिलि रहे ज्यौं पांणी अरु लौंन।
बार न लाई बिछुरतें सुन्दर कीयौ गौंन ॥ २३ ॥

सुन्दर आइ शरीर मैं जीव किये उतपात।
निकसि गये या देह की फेर न बूझी बात ॥ २४ ॥

सुन्दर आयौ कौंन दिसि गयौ कौनसी वोर।
या किनहू जान्यौ नहीं भयौ जगत मैं सोर ॥ २५ ॥

॥ इति देहात्मा बिछोह कौ अंग ॥ ९ ॥

॥ अथ तृष्णा कौ अङ्ग ॥ १० ॥

पल पल छीजै देह यह घटत घटत घटि जाइ।
सुन्दर तृष्णा ना घटै दिन दिन नौतन थाइ ॥ १ ॥

बालापन जोबन गयौ वृद्ध भये सब कोइ।
सुन्दर जीरन ह्वै गये तृष्णा नव तन होइ ॥ २ ॥

---

(२०) कौणैं काम='किस' काम की नहीं, त्याग योग्य।
(२२) पैल भैल=गया भला, गड़बड़, नष्ट भ्रष्ट।
[अङ्ग १०] (१) नौतन=नूतन, नई, ताजा।
(२) नवतन=नव शरीरवाली।

सुन्दर तृष्णा यों बधै जैसैं बाढै आगि।
ज्यों ज्यों नापैं पूम को त्यों त्यों अधिकी जागि॥ ३॥

जन स बीस पचास सौ सहस्र लाप पुनि कोरि।
नील पदम सष्या नहीं सुन्दर त्यों त्यों थोरि॥ ४॥

नृपति प्रथीपति होन की इन्द्र ब्रह्म शिव बोक।
कन देहैं करतार ये सुन्दर तीनों लोक॥ ५॥

तृष्णा बहै तरंगिनी तरल तरी नहिं जाइ।
सुन्दर तीक्षण धार मे केते दिये बहाइ॥ ६॥

सुन्दर तृष्णा पकरि कैं करम करावै कोरि।
पूरी होइ न पापिनी भटकावै चहु वोरि॥ ७॥

सुन्दर तृष्णा कारनै जाइ समुद्र हि बीच।
टै जहाज अचानचक होइ अचली मीच॥ ८॥

सुन्दर तृष्णा लै गई जहं घन विषम पहार।
सिंह व्याघ्र मारै तहा कै मारै बटपार॥ ९॥

सुन्दर तृष्णा करत है सबकौ वाद गुलांम।
कम सहे त्यों ही चलै गनै शीत नहिं घाम॥ १०॥

मेघ सहे आंधी सहे सहे बहुत तन त्रास।
सुन्दर तृष्णा कै लियें करै आपनौ नास॥ ११॥

सुन्दर तृष्णा कै लियें पराधीन ह्वै जाइ।
सह वचन निस दिन सहै यौं परहाथ बिकाइ॥ १२॥

तृष्णा कै बसि होइ कै डोलै घर घर द्वार।
सुन्दर आदर मान बिन होत फिरै नर ष्वार॥ १३॥

ष्णा पट पसारियौ तृप्ति न क्योंही होइ।
न्दर पहलैं दिन गये लज्ज सरम नहिं कोइ॥ १४॥

(५) बोक=प्यास चाह।

तृष्णा डोलै ताकती स्वर्ग मृत्यु पाताल।
सुन्दर तीनहुं लोक में भर्यौ न एकहु गाल॥ १५॥

तृष्णा डाइण होइ कैं पायौ सब संसार।
सुन्दर संतोषी बचै जिनके ब्रह्म विचार॥ १६॥

सुन्दर तोहि कितौ कह्यौ सीष न मानी एक।
तृष्णा तू छाडै नहीं गही आपनी टेक॥ १७॥

तृष्णा तू बौरी भई तोकौं लागी बाइ।
सुन्दर रोकी नां रहै आगैं भागी जाइ॥ १८॥

सुन्दर तृष्णा बहु बधी धर्यौ बडो अति देह।
अध ऊरध दशहूं दिशा कहूं न तेरौ छेह॥ १९॥

सुन्दर तृष्णा डाइनी डाकी लोभ प्रचण्ड।
दोऊ काढें आंपि जब कंपि उठै ब्रह्मण्ड॥ २०॥

सुदर तृष्णा भाडिनी लोभ बडौ अति भांड।
जैसौ ही रंडुवौ मिल्यौ तैसी मिलि गई रांड॥ २१।

सुदर तृष्णा कोढनी कोढी लोभ भ्रतार।
इनकौं कबहुं न भीटिये कोढ लगै तन च्यार॥ २२॥

सुन्दर तृष्णा चूहरी लोभ चूहरौ जानि।
इनके भीटें होत है ऊंचे कुल की हानि॥ २३॥

सुदर तृष्णा सर्प्पणी लोभ सर्प कै साथ।
जगत पिटारा मांहि अब तू जिनि घालै हाथ॥ २४॥

सुन्दर तृष्णा है छुरी लोभ षङ्ग की धार।
इनतें आप बचाइये दोनौं मारणहार॥ २५॥

॥ इति तृष्णा को अंग ॥ १० ॥

(१५) गाल=गाला (चक्की का) अथवा मुंह (का गास)।
(२२) भ्रतार=भर्त्तार, पति।

॥ अथ अधीर्य उरांहने को अंग ॥ ११ ॥

देह रच्यौ प्रभु भजन कौं सुन्दर नख सिख साज ।
एक हमारी बात सुनि पेट दियौ किंहिं काज ॥ १ ॥

श्रवन दिये जस सुनन कौं नैन देषने सन्त ।
सुन्दर सोभित नासिका मुख सोभन कौं दन्त ॥ २ ॥

हाथ पांव हरि कृत्य कौ जीभ जपन कौं नाम ।
सुन्दर ये तुम सौं लगै पेट दियौ किंहिं काम ॥ ३ ॥

सुन्दर कीयौ साज सब समरथ सिरजनहार ।
कौंन करी यह रीस तुम पेट लगायौ लार ॥ ४ ॥

और ठौर सौं काढि मन करिये तुम कौं भेट ।
सुन्दर क्यौं करि छूटिये पाप लगायौ पेट ॥ ५ ॥

कूप भरै वापी भरै पूरि भरै जल ताल ।
सुन्दर प्रभु पेट न भरै कौंन कियौ तुम प्याल ॥ ६ ॥

नदी भरहिं नाला भरहिं भरहिं सकल ही नाड ।
सुन्दर प्रभु पेट न भरहिं कौंन करी यह पाड ॥ ७ ॥

पंडक पास वुषार पुनि बहुरि भरहिं घर हाट ।
सुन्दर प्रभु पेट न भरहिं भरियहिं कोठी माट ॥ ८ ॥

चूल्हा भाठी भार महिं इन्धन सब जरि जाइ ।
त्यौं सुन्दर प्रभु पेट यह कबहूं नहीं अघाइ ॥ ९ ॥

घम्बई थलहि समुद्र मैं पानी सकल समात ।
त्यौ सुन्दर प्रभु पेट यह रहै पात ही पात ॥ १० ॥

असुर भूत अरु प्रेत पुनि राक्षस जिनि कौ नांव ।
त्यौं सुन्दर प्रभु पेट यह करै पांव ही पांव ॥ ११ ॥

[अंग ११] (७) नाड=नाडा, छोटा सर वा तालाब। पाड=खड्डा।

सुन्दर प्रभुजी पेट की चिंता दिन अरु राति ।
सांझ पाइ करि सोइये फिरि मांगे परभाति ॥ १२ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट इनि जगत कियौ सब ख्वार ।
को देती को चाकरी कोई बनज व्यौपार ॥ १३ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट इनि जगत कियौ सब दीन ।
अन्न बिना तलफत फिरै जैसें जल बिन मीन ॥ १४ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट बसि भये रंक अरु राव ।
राजा राना छत्रपति मीर मलिक उमराव ॥ १५ ॥

विद्याधर पंडित गुनी दाता सूर सुभट्ट ।
सुदर प्रभुजी पेट इनि सकल किये पटपट्ट ॥ १६ ॥

सुदर प्रभुजी पेट यह रापै कछू न मान ।
वन में बैठै जाइ कैं उठि भागे मध्यान ॥ १७ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट बसि चौरासी लष जंत ।
जल थल के चाहैं सकल जे आकाश बसंत ॥ १८ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट इनि जगत कियौ सब भाड ।
कोई पंचामृत भपै कोई पतरा माड ॥ १९ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट कौं बहु बिधि करहिं उपाइ ।
कौन लगाई व्याधि तुम पीसत पोवत जाइ ॥ २० ॥

सुन्दर प्रभुजी सबनि कौ पेट भरन की चिंत ।
कीरी कन ढूढत फिरै माषी रस लैजंत ॥ २१ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट बसि देवी देव अपार ।
दोष लगावै और कौं चाहैं एक अहार ॥ २२ ॥

---

(१८) जन्त=जीवाजूण, जीवजन्त ।

(२१) लैजन्त=ले जाती हैं (मधुमक्खियां)

सुन्दर प्रभुजी पेट कौं दूधाधारी होइ।
पाषंड करहिं अनेक विधि पाहिं सकल रस गोइ ॥ २३ ॥

सुंदर प्रभुजी पेट कौं साधे जाइ मसान।
यंत्र मंत्र आराध करि भरहिं पेट अज्ञान ॥ २४ ॥

सुंदर प्रभुजी सब कह्यौ तुम आगै दुख रोइ।
पेट बिना हीं पेट करि दीनी पलक बिगोइ ॥ २५ ॥

॥ इति अघीर्य उरांहने को अंग ॥ ११ ॥

॥ अथ बिस्वास को अंग ॥ १२ ॥

सुंदर तेरे पेट की तोकौं चिंता कौंन।
बिस्व भरन भगवंत है पकरि बैठि तू मौंन ॥ १ ॥

सुंदर चिंता मति करै पाव पसारें सोइ।
पेट कियौ है जिनि प्रभू ताकौं चिंता होइ ॥ २ ॥

जलचर थलचर ब्योमचर सबकौं देत अहार।
सुंदर चिंता जिनि करै निस दिन बारंबार ॥ ३ ॥

सुंदर प्रभुजी देत है पाहन में पहुंचाइ।
तूं अब क्यौं भूखौ रहै काहे कौं बिललाइ ॥ ४ ॥

सुन्दर धीरज धारि तू गहि प्रभु कौ बिस्वास।
रिजक बनायौ रामजी आवै तेरै पास ॥ ५ ॥

काहे कौं परिश्रम करै जिनि भटकै चहुं ओर।
घर बैठें ही आइ है सुंदर साम्क कि भोर ॥ ६ ॥

---

(२३) गोई=गुप्त, छिप कर। (२५) पेट बिना ही······आपके पेट नहीं है परन्तु प्रजा के पेट लगा कर तुमने बड़ी बुराई पैदा करदी।

[अग १२] (६) कि (साम्क कि भोर में) अथवा, वा, और।

रिजक बनायौ रामजी कापै मेट्यौ जाइ।
सुंदर धीरज धारि तू सहजि रहेगो आइ ॥ ७ ॥

चंच संवारी जिनि प्रभू चूंन देइगो आंनि।
सुंदर तूं विश्वास गहि छांडि आपनी बांनि ॥ ८ ॥

सुन्दर दौरै रिजक कौं सौ तौ मूरष होइ।
यौं जानै नहिं बावरौ पहुंचावै प्रभु सोइ ॥ ६ ॥

सुन्दर समुंझि विचार करि है प्रभु पूरन हार।
तेरौ रिजक न मेटि है जानत क्यौं न गवांर ॥ १० ॥

सुन्दर निस दिन रिजक कौं वादि मरै नर झूरि।
रिजक दे तुझे रामजी जहां तहां भरपूरि ॥ ११ ॥

सुन्दर जो मुख मूंदि कैं बैठि रहै एकंत।
आनि पवावै रामजी पकरि उघारै दंत ॥ १२ ॥

सुन्दर ऐसै रामजी ताकौं जानत नांहिं।
पहुंचावत है प्रान कौं आपुहि बैठौ मांहिं ॥ १३ ॥

सुन्दर प्रभुजी निकट है पल पल पोषै प्रांन।
ताकौं सठ जानत नहीं उद्यम ठांनै आंन ॥ १४ ॥

सुन्दर पशु पंपी जितै चूंन सबनि कौं देत।
उनकै सौदा कौंन सो कहौ कौंन से षेत ॥ १५ ॥

सुन्दर अजिगर परि रहै उद्यम करै न कोइ।
ताकौं प्रभुजी देत है तू क्यौं आतुर होइ ॥ १६ ॥

सुन्दर मच्छ समुद्र मैं सौ जोजन विसतार।
ताहू कौं भूलै नहीं प्रभु पहुंचावनहार ॥ १७ ॥

---

(११) बादि=वृथा ही। झूरि=रो २ कर।

(१६) परि रहै=पड़ा रहै (कुछ काम चेष्टा नहीं करै)।

ुन्दर मनुषा देह में धीरज धरत न मूरि।
ाइ हाइ करतौ फिरै नर तेरै सिर धूरि॥ १८॥

सुन्दर सिरजनहार कौं क्यौं न गहै विस्वास।
जीव जंत पोषै सकल कोउ न रहत निरास॥ १६॥

ुन्दर जाकी सृष्टि यह ताकै टोटो कौन।
प्रभु के विस्वास बिन परै न हाडी लौंन॥ २०॥

सुन्दर जिनि प्रभु गर्भ में बहुत करी प्रतिपाल।
सो पुनि अजहूं करत है तू सोचै धनमाल॥ २१॥

ुन्दर सबकौं देत है चंच संवानी चौंनि।
ैरै तृष्णा अति बढी भरि भरि ल्यावत गौंनि॥ २२॥

सुन्दर जाकौं जो रच्यौ सोई पहुचै आइ।
कीरी कौ कन देत है हाथी मन भरि पाइ॥ २३॥

ुन्दर जल की बूंद तें जिनि यह रच्यौ सरीर।
ोई प्रभु याकौं भरै तू जिनि होइ अधीर॥ २४॥

सुन्दर अब विस्वास गहि सदा रहै प्रभु साथ।
तेरौ कियौ न होत है सब कछु हरि कै हाथ॥ २५॥

॥ इति विस्वास कौ अंग ॥ १२ ॥

---

(२०) परै न हांडी लौन=हाडी में नमक पड़ना, (ईश्वर की सहायता विना) कोई काम नहीं होता है।

(२२) चंच सवानी चौंन=चूच के योग्य चून (भोजन), कीड़ी को कण हाथी को मण देता है। गौंनि=गूण, बोरी।

॥ अथ देह मलिनता गर्व प्रहार कौ अंग ॥ १३ ॥

दोहा

सुन्दर देह मलीन है राष्यौ रूप संवारि।
ऊपर तें कलई करी भीतरि भरी भंगारि ॥ १ ॥

सुन्दर देह मलीन है प्रकट नरक की पानि।
ऐसी याही भाकसी तामैं दीनौ आनि ॥ २ ॥

सुन्दर देह मलीन अति बुरी वस्तु को भौन।
हाड मांस को कौथरा भली वस्तु कहि कौन ॥ ३ ॥

सुन्दर देह मलीन अति नस शिरा भरे विकार।
रक्त पीप मल मूत्र पुनि सदा वहै नव द्वार ॥ ४ ॥

सुन्दर मुख मैं हाड सब नैंन नासिका हाड।
हाथ पांव सब हाड के क्यौं नहिं समुझत राड ॥ ५ ॥

सुन्दर पंजर हाड कौ चाम लपेट्यौ ताहि।
तामैं बैठ्यौ फूलि कै मो समान को आहि ॥ ६ ॥

सुन्दर न्हावै बहुत ही बहुत करै आचार।
देह माहिं देषै नहीं भर्यौ नरक भंडार ॥ ७ ॥

सुन्दर अपरस धोवती चौकै वैठौ आइ।
देह मलीन सदा रहै ताही कै संगि पाइ ॥ ८ ॥

सुन्दर ऐसी देह मैं सुचि कहो क्यौं होइ।
झूठेई पाषंड करि गर्व करै जिनि कोइ ॥ ९ ॥

[अङ्ग १३] (१) भगारि=कूड़ा करकट।

(२) भाकसी=गढ़ा, अन्ध खन्धक। दीनौं=जीव को इस में ला धरा।

(५) रांड=यहां दुर्वचन, मूर्ख नासमझ अभागे के अर्थ में है।

(९) सुचि=शुचि, शौच, शुद्धता, पवित्रता।

सुन्दर सुचि रहै नहीं या शरीर के संग।
न्हावै धोवै बहुत करि सुद्ध होइ नहिं अंग॥ १०॥

सुन्दर कहा पषारिये अति मलीन यह देह।
ज्यौं ज्यौं माटी धोइये त्यौं त्यौं उकटै पेह॥ ११॥

सुन्दर मैली देह यह निमल करी न जाइ।
बहुत भांति करि धोइ तूं अठसठि तीरथ न्हाइ॥ १२॥

सुन्दर ब्राह्मन आदि कौं ता महिं फेर न कोइ।
सूद्र देह सौं मिलि रह्यौ क्यौं पवित्र अब होइ॥ १३॥

सुन्दर गर्व कहा करै देह महा दुर्गंध।
ता महिं तूं फूल्यौ फिरै संमुझि देषि सठ अंध॥ १४॥

सुन्दर क्यौं टेढौ चलै बात कहै किन मोहि।
महा मलीन शरीर यह लाज न उपजै तोहि॥ १५॥

सुन्दर देषै आरसी टेढी नापै पाग।
बैठौ आइ करंक पर अति गति फूल्यौ काग॥ १६॥

सुन्दर बहुत बलाइ है पेट पिटारी माँहिं।
फूल्यौ माइ न षाल मैं निरषत चालै छाँहिं॥ १७॥

सुन्दर रज बीरज मिले महा मलिन ये दोइ।
जैसौ जाकौ मूल है तैसोई फल होइ॥ १८॥

सुन्दर मलिन शरीर यह ताहू मैं बहु ब्याधि।
कबहूं सुख पावै नहीं आठौं पहर उपाधि॥ १९॥

---

(१३) ब्राह्मन आदि कौं=आत्मा नित्य शुद्ध होने से ब्राह्मण कही गई। इसका सिर्ग अशुद्ध शरीर से हुआ जो यहां शूद्र कहा गया।

(१६) नापै=धरै, बांधै। (रापै पाठ अच्छा होता)। करक=मुर्दा लाश, रक।

(१७) बलाइ=बला, बुरी बस्तु (बिष्ठा, मूत्र, आम, आदिक)।

सुन्दर कबहूं फुनसली कबहूं फोरा होइ।
ऐसी याही देह में क्यों सुख पावै कोइ॥ २०॥

कबहूं निकसै न्हारवा कबहूं निकसै दाद।
सुन्दर ऐसी देह यह कबहुं न मिटै विषाद॥ २१॥

सुन्दर कबहूं ताप ह्वै कबहूं ह्वै सिरबाहि।
कबहूं हृदय जलनि ह्वै नख शिख लागै भाहि॥ २२॥

कबहूं पेट पिरातु है कबहूं माथै सूल।
सुन्दर ऐसी देह यह सकल पाप का मूल॥ २३॥

सुन्दर कबहूं कान में चीस उठै अति दुःख।
नैंन नाक मुख में विथा कबहुं न पावै सुक्ख॥ २४॥

स्वास चलै खासी चलै चलै पसुलिया वाव।
सुन्दर ऐसी देह में दुखी रंक अरु राव॥ २५॥

॥ इति देह मलिनता गर्व प्रहार कौ अंग ॥ १३ ॥

॥ अथ दुष्ट को अंग ॥ १४ ॥

सुन्दर बातैं दुष्ट की कहिये कहा बखानि।
कहे बिना नहिं जानियें जितौ दुष्ट की बांनि॥ १॥

अपने दोष न देषई परकै औगुन लेत।
ऐसौ दुष्ट सुभाव है जन सुन्दर कहि देत॥ २॥

सुन्दर दुष्ट स्वभाव है औगुन देषै आइ।
जैसैं कीरी महल में छिद्र ताकती जाइ॥ ३॥

---

(२२) सिरबाहि=शिरो व्याधि, सिर दर्द। भाहि=दर्द, पीड़ा।

(२३) पिरातु=पीड़ा करता।

सूझत नांहिं न दुष्ट कौं पांव तरै की आगि।
औरन के सिर पर कहै सुन्दर वासौं भागि ॥ ४ ॥

देषी अनदेषी कहै ऐसौ दुष्ट सुभाव।
सुन्दर निशदिन परि गयौ कहिवेही कौ चाव ॥ ५ ॥

सुन्दर कबहुं न धीजिये सरस दुष्ट की बात।
मुख ऊपर मीठी कहै मन मैं घालै घात ॥ ६ ॥

व्याघ्र करै ज्यौं लुरपरी कूकर आगै आइ।
कूकर देषत ही रहै बाघ पकरि ले जाइ ॥ ७ ॥

सुन्दर काहू दुष्ट कौं भूलि न धीजहु वीर।
नीचै आगि लगाइ करि ऊपर छिरकै नीर ॥ ८ ॥

दुष्ट दिखावै बहुत बिधि आनि नवावै सीस।
सुन्दर कबहुंक जहर दे मारै बिसवा बीस ॥ ९ ॥

दुष्ट करै बहु बीनती होइ रहै निज दास।
सुन्दर दाव परै जबहिं तबहिं करै घट नास ॥ १० ॥

दुष्ट घाट घरिवौ करै घट मैं याही होय।
सुन्दर मेरी पासि मैं आइ परै जे कोय ॥ ११ ॥

बात सुनी जिनि दुष्ट की बहुत मिलावै आंनि।
सुन्दर मानै सांच करि सोई मूरष जानि ॥ १२ ॥

दुष्ट बुरी हो करत है सुन्दर नैंकु न लाज।
काम बिगारै और कौ अपनैं स्वारथ काज ॥ १३ ॥

पर कौ काम बिगारि दे अपनौ होउ न होइ।
यह सुभाव है दुष्ट कौ सुन्दर तजिये वोइ ॥ १४ ॥

---

(७) व्याघ्र=बघेरा (यह कुत्ते को मारखाता है)। और बहुत चालाक होता है।

(११) पासि=पाश, फांसी।

घर पोवत है आपनौ औरनि हूं कौ जाइ।
सुन्दर दुष्ट सुभाव यह दोऊ देत वहाइ ॥ १५ ॥

दुर्जन संग न कीजिये सहिये दुःख अनेक।
सुन्दर सब संसार में दुष्ट समान न एक ॥ १६ ॥

वींछू काटे दुख नहीं सर्प डसै पुनि आइ।
सुन्दर जो दुख दुष्ट तें सो दुख कह्यौ न जाइ ॥ १७ ॥

गज मारै तौ नाहिं दुख सिंह करै तन भंग।
सुन्दर ऐसौ नाहिं दुःख जैसौ दुर्जन संग ॥ १८ ॥

सुन्दर जरिये अग्नि महिं जल बूडे नहिं हांनि।
पर्वत ही तें गिरि परौ दुर्जन भलौ न जांनि ॥ १९ ॥

सुन्दर झंपापात ले करवत धरिये सीस।
वा दुर्जन के संगतें राषि राषि जगदीस ॥ २० ॥

सुन्दर विष हू पीजिये मरिये षाइ अफीम।
दुर्जन संग न कीजिये गलि मरिये पुनि हीम ॥ २१ ॥

सुन्दर दुख सब तोलिये घालि तराजू मांहिं।
जो दुख दुर्जन संग तें ता सम कोई नांहिं ॥ २२ ॥

सुन्दर दुर्जन सारिषा दुखदाई नहिं और।
स्वर्ग मृत्यु पाताल हम देषे सब ही ठौर ॥ २३ ॥

देह जरै दुख होत है ऊपर लागै लौंन।
ताहू तें दुख दुष्ट कौ सुन्दर मानै कौंन ॥ २४ ॥

जो कोउ मारै वान भरि सुन्दर कछु दुख नांहि।
दुर्जन मारै बचन सौं सालतु है उर मांहि ॥ २५ ॥

॥ इति दुष्ट को अंग ॥ १४ ॥

---

(२०) करवत=करौत (जैसे काशी करौत लेना)।

(२१) हीम=हिम, हिमालय के बर्फ में।

प्रगट विश्व यह वृक्ष है मूला माया मूल ।
महातत्त्व अहंकार करि पीछे भया स्थूल ॥ १ ॥
शाखा त्रिगुन त्रिधा भई सत रज तम प्रसरन्त ।
पंच प्रशाखा जानि यों उप शाखा सु अनंत ॥ २ ॥
अवनि नीर पावक पवन व्योम सहित मिलि पंच ।
इनहीं को विसतार जे कछु सकल प्रपंच ॥ ३ ॥
श्रोत्र त्वचा दृग नासिका जिह्वा है तिन मांहि ।
ज्ञान सु इन्द्रिय पंच ये भिन्न भिन्न बरतांहि ॥ ४ ॥
वाक्य पाणि अरु चरण पुनि गुदा उपस्थ जु नाम ।
कर्म सु इन्द्रिय पंच ये अपने अपने काम ॥ ५ ॥
शब्द स्पर्श जु रूप रस गन्ध सहित मिलि पुष्ट ।
मन बुधि चित्त अरु तहो अंतहकरन चतुष्ट ॥ ६ ॥
इन चौबीस हु तत्व को वृक्ष अनूपम एक ।
सुख दुख ताके फल भये नाना भांति अनेक ॥ ७ ॥
तामें दो पक्षी बसहिं सदा समीप रहांहि ।
एक भखे फल वृक्ष के एक कछू नहिं पांहि ॥ ८ ॥
जीवातम परमातमा ये दो पक्षी जांन ।
सुन्दर फल तरु के तजे दोऊ एक समान ॥ ९ ॥ १० वां ॥

पढ़ने की विधि —

केलि वृक्ष के तने की जड़ के कुछ ऊपर प्र अक्षर से प्रारंभ करें, जिसपर १ का अंक है, और ऊपर की ओर पढ़ते चले जांय ल अक्षर तक। यह प्रथम दोहे की प्रथम अर्धाली है। फिर द्वितीय अर्धाली केलि के बांई तरफ के ऊपर के प्रथम पत्ते की नोक पर के म अक्षर से पढ़ें और नोकों पर के अक्षरों को दोनों ओर के पत्तों पर पढ़ते जांय। दाहिनी ओर के सब से ऊपर के पत्ते की नोक पर के ल अक्षर पर पूरा करें। यहां प्रथम दोहा समाप्त हुआ। (केलि के दाहिने विभाग के सबसे नीचे के पत्ते की नोक पर के रि अक्षर पर ३ का अङ्क पिछले छन्दोंश से मिलाने को है।) अब आगे दूसरा दोहा केलि के वाम पार्श्व के सबसे ऊपर के पत्ते से शा अक्षर से पढ़ें जिस पर ४ का अङ्क है। दो २ पत्तों पर एक २ दोहा है। बांई ओर के दोहे पढ़े जाने पर दाहिनी ओर को ऊपर के पत्ते पर श्र अक्षर से पढ़ा जाय जिस पर ५ का अङ्क है। सबसे पिछला दोहा नीचे के दो पत्तों पर है, और यहां यह चित्रकाव्य के त्रि-वृक्ष-बन्ध का समाप्त होता है, ९ दोहों में ॥

॥ अथ मन कौ अंग ॥ १५ ॥

दोहा

मन कौं रापत हटकि करि सटकि चहूं दिसि जाइ।
सुंदर लटकि रु लालची गटकि षिपै फल पाइ ॥ १ ॥

मटकि तार कौं तौरि दे भटकत सांझ रु भोर।
पटकि सीस सुन्दर कहै फटकि जाइ ज्यौं चोर ॥ २ ॥

पल ही मैं मरि जात है पल मैं जीवत सोइ।
सुन्दर पारा मूरछित बहुरि सजीवनि होइ ॥ ३ ॥

आनें कबहुं न जानिये यौं मन नीकसि जाइ।
आवत कछू न देषिये सुन्दर किसी बलाइ ॥ ४ ॥

घेरैं नैंकु न रहत है ऐसौ मेरौ पूत।
पकरैं हाथ परै नहीं सुन्दर मनुवा भूत ॥ ५ ॥

नीति अनीति न देषई अति गति मन कै बंक।
सुन्दर गुरु की साधु की नैंकु न मानै संक ॥ ६ ॥

सुन्दर क्यौं करि षोजिये मन कौ बुरौ सुभाव।
आइ बनै गुदरै नहीं पेलै अपनौ दाव ॥ ७ ॥

सुन्दर या मन सारिषौ अपराधी नहिं और।
साप सगाई ना गिनै लपै न ठौर कुठौर ॥ ८ ॥

सुन्दर मन कामी कुटिल क्रोधी अधिक अपार।
लोभी तृप्त न होत है मोह लग्यौ सैंवार ॥ ९ ॥

[अंग १५] (७) गुदरै नहीं=गुजरै नहीं, हटै नहीं, मानैं नहीं।

(९) सैंवार=सिवार, जो पानी पर रहता है और धोखा देता है, थल समझकर आदमी डूब जाता है।

सुन्दर यह मन अधम है करै अधम ही कृत्य।
चल्यो अधोगति जात है ऐसी मन की वृत्य। १० ॥

सुन्दर मन के रिंदगी होइ जात सैतान।
काम लहरि जागै जबहिं अपनी गनै न आन ॥ ११ ॥

ठग विद्या मन के घनी दगाबाज मन होइ।
सुन्दर छल केता करै जानि सकै नहिं कोइ ॥ १२ ॥

सुन्दर यहु मन चोरटा नापै ताला तोरि।
तकै पराये द्रव्य कौं कब ल्याऊं घर फोरि ॥ १३ ॥

सुन्दर यहु मन जार है तकै पराई नारि।
अपनी टेक तजै नहीं भावै गर्दन मारि ॥ १४ ॥

सुन्दर मन बटपार है घालै पर की घात।
हाथ परे छोडै नहीं लूटि पोसि ले जात ॥ १५ ॥

सुन्दर मन गांठी कटौ डारै गर मैं पासि।
बुरौ करत डरपै नहीं महा पाप की रासि ॥ १६ ॥

सुन्दर यहु मन नीच है करै नीच ही कर्म।
इनि इन्द्रिनि कै वसि पर्‌यौ गिनै न धर्म अधर्म ॥ १७ ॥

सुन्दर यहु मन भांड है सदा भंडायौ देत।
रूप धरै बहु भांति कै राते पीरे सेत ॥ १८ ॥

सुन्दर यहु मन डूम है मांगत करै न संक।
दीन भयौ जाचत फिरै राजा होइ कि रङ्क ॥ १९ ॥

सुन्दर यहु मन रासिभौ दौरि विषै कौं जात।
गदही कै पीछै फिरै गदही मारै लात ॥ २० ॥

---

(१५) बटपार=लुटेरा।

(१६) गांठी कटौ=गठकटा, ठग। रासि= समूह, आगर।

(२०) रासिभौ=रासभ, गधा।

सुन्दर यहु मन स्वान है भटकै घर घर द्वार।
कहूंक पावै झूठि कौं कहूं परै वह मार ॥ २१ ॥

सुन्दर यहु मन काग है बुरी भली सब षाइ।
समुझायौ समुझै नहीं दौरि करङ्क हि जाइ ॥ २२ ॥

सुन्दर मन मृग रसिक है नाद सुनै जब कांन।
हलै चलै नहिं ठौर तें रहौ कि निकसौ प्रांन ॥ २३ ॥

सुंदर यह मन रूप कौं देषत रहै लुभाइ।
ज्यौं पतंग बसि नैंन कै जोति देषि जरि जाइ ॥ २४ ॥

सुन्दर यह मन भ्रम रहै सूंघत रहै सुगंध।
कंवल माहिं निकसै नहीं काल न देषै अंध ॥ २५ ॥

सुन्दर यह मन मीन है बंधै जिह्वा स्वाद।
कंटक काल न सूझई करत फिरै उदमाद ॥ २६ ॥

सुन्दर मन गजराज ज्यौं मत्त भयौ सुध नाहिं।
काम अंध जानै नहीं परै षाड के माहिं ॥ २७ ॥

सुन्दर यह मन करत है बाजीगर कौ ख्याल।
पंष परेवा पलक मैं मुवो जिवावत व्याल ॥ २८ ॥

ज्यौं बाजीगर करत है कागद मैं हथफेर।
सुन्दर ऐसैं जानिये मन मैं धरन सुमेर ॥ २९ ॥

सुन्दर यह मन भूत है निस दिन बकतें जाइ।
चिन्ह करै रोवै हंसै पावैं नहीं अघाइ ॥ ३० ॥

सुन्दर यह मन चपल अति ज्यौं पीपर कौ पांन।
बार बार चलिबौ करै हाथी कौ सौ कांन। ३१ ॥

---

(२१) झूठि=उच्छिष्ट। कहू परै वह मार=कहीं उस पर ऐसी (कड़ी) मार पड़े।

(२९) धरन=धरणी, पृथ्वी।

सुन्दर यह मन यौं फिरै पांनी कौ सौ घेर।
वायु बघूरा पुनि ध्वजा यथा चक्र कौ फेर॥ ३२॥

सुन्दर अरहट माल पुनि चरषा बहुरि फिरात।
धूंवा ज्यौं मन उठि चलै कापै पकर्‌यौ जात॥ ३३॥

मन वसि करने कहत हैं मन कै वसि ह्वै जांहि।
सुन्दर उल्टा पेच है समझि नहीं घट मांहि॥ ३४॥

मन कौं मारन बैठि करि मन मारै वै अंध।
सुन्दर घोरे चढन की घोरा बैठौ कंध॥ ३५॥

सुन्दर करत उपाइ बहु मन नहिं आवै हाथ।
कोई पीवै पवन कौं कोई पीवै काथ॥ ३६॥

सुन्दर साधन करत है मन जीतन कै काज।
मन जीतै उन सबनि कौं करै आपनी राज॥ ३७।

साधन करहिं अनेक विधि देहिं देह कौं दण्ड।
सुन्दर मन भाग्यौ फिरै सप्त दीप नौ षण्ड॥ ३८॥

सुन्दर आसन मारि कै साधि रहे मुख मौंन।
तन कौ राषै पकरि कैं मन पकरै कहि कौंन॥ ३९॥

तन कौं साधन होत है मन कौ साधन नांहिं।
सुन्दर बाहर सब करैं मन साधन मन मांहिं॥ ४०॥

साधत साधत दिन गये करहिं और की और।
सुन्दर एक विचार बिन मन नहिं आवै ठौर॥ ४१॥

सुन्दर यह मन रंक ह्वै कबहूं ह्वै मन राव।
कबहूं टेढौ ह्वै चलै कबहूं सूधे पाव॥ ४२॥

सुन्दर कबहूं ह्वै जती कबहूं कामी जोइ।
मन कौ यहै सुभाव है तातौं सियरौ होइ॥ ४३॥

---

(३६) काथ=कथीर अथवा काथा। कामवेग के दमनार्थ ऐसा साधु करते हैं।

पाप पुन्य यह म किया स्वर्ग नरक हूं जांऊं।
सुन्दर सब कछु मानि ले ताही तें मन नाउं॥ ४४॥

मन ही बड़ौ कपूत है मन ही महा सपूत।
सुन्दर जौ मन थिर रहै तौ मन ही अवधूत॥ ४५॥

मन ही यह विस्तरि रह्यौ मन ही रूप कुरूप।
सुन्दर यह मन जीव है मन ही ब्रह्म स्वरूप॥ ४६॥

सुन्दर मन मन सब कहैं मन जान्यौ नहिं जाइ।
जौ या मन कौं जांणिये तौ मन मनहिं समाइ॥ ४७॥

मन कौ साधन एक है निस दिन ब्रह्म विचार।
सुन्दर ब्रह्म विचारतें ब्रह्म होत नहिं बार॥ ४८॥

देह रूप मन ह्वै रह्यौ कियौ देह अभिमान।
सुन्दर समुझै आपकौ आपु होइ भगवान॥ ४९॥

जब मन देषै जगत कौं जगत रूप ह्वै जाइ।
सुन्दर देषै ब्रह्म कौं तब मन ब्रह्म समाइ॥ ५०॥

मन ही कौ भ्रम जगत सब रज्जु माहिं ज्यौं साप।
सुन्दर रूपौ सीप मैं मृग तृष्णा महिं आप॥ ५१॥

जगत बिझूका देषि करि मन मृग मानै सक।
सुन्दर कियौ विचार जब मिथ्या पुरुष करङ्क॥ ५२॥

तबही लौं मन कहत है जबलग है अज्ञान।
सुन्दर भागै तिमर सब उदै होइ जब भान॥ ५३॥

---

(४७) मन मनहि समाय=निर्विकल्प समाधि लग जाय। आत्म-साक्षात्कार प्राप्त हो जाय।

(५२) बिझूका=डरानी चीज़ (जैसे खेत में पुरुषाकार कुछ स्वरूप बनाकर खड़ा कर देते हैं) मिथ्या पुरुष करक=नकली आदमी की सी सूरत। अथवा मरे जानवर का कंकाल।

सुन्दर परम सुगन्ध सौं लपटि रह्यौ निश भोर।
पुण्डरीक परमातमा चंचरीक मन मोर ॥ ५४ ॥

　　　　सुन्दर निकसै कौंन विधि होइ रह्या लै लीन।
　　　　परमानन्द समुद्र मैं मग्न भया मन मीन ॥ ५५ ॥

दृष्टि न फेरै नैंकहूं नैंन लगे गोविन्द।
सुन्दर गति ऐसी भई मन चकोर ज्यौं चन्द ॥ ५६ ॥

　　　　इत उत कहूं न चलि सकै थकित भया तिहिं ठौर।
　　　　सुन्दर जैसैं नाद बसि मन मृग बिसरया और ॥५७॥

(मन को श्लेष)

　　　　घड तौ जाकै चारि हैं द्वै द्वै सिर हैं बीस।
　　　　ऐसी वडी बलाइ मन सिर करिले चालीस ॥ १ ॥

सिर तैं द्वै अध सिर करै सिर सिर चहुं चहुं पांव।
ऐसैं सिर चालीस हैं मन कहिये क छलाव ॥ २ ॥

　　　　सिर जाकै चालीस हैं असी अरध सिर जाहि।
　　　　पांव एक सौ साठि हैं क्यौं करि पकरै ताहि ॥ ३ ॥

आधे पग हैं तीन सै और अधिक पुनि बीस।
तिनहूं तें आधे करै पट सत अरु चालीस ॥ ४ ॥

---

(५४) पुंडरीक=कमल। चचरीक=भौंरा। मोर=मेरा।

(५७) और=अन्य सब पदार्थ (भूलकर)।

[मन को श्लेष]—यह मन के अंग का ही विभाग है इसमें छन्दों की संख्या पृथक् योंही दे दी है। इस वर्णन में मन की *अनंतता* या *विस्तार* बताया गया है। यहां मन=मण चालीस सेर का जो होता है उसके अर्थ में श्लेष है। धड=धड़ी दस सेर की। सिर=सेर। २०×२=४०। सिर तैं अध=एक सेर में दो आधसेरे होते हैं। सिर २ चहुं २ पाव=प्रत्येक सेर में चार पाव या पव्वे होते हैं। पांव=पाव

डेढ हजार रु एक सौ इतने होहिं अंगुष्ट ।
चौसठि से अंगुली करै मन तें कौंन सपुष्ट ॥ ५ ॥

नग की गिनती कौ गिनै तन कै रोम अनंत ।
ऐसै मन कौं षसि करै सुन्दर सौ षलिवंत ॥ ६ ॥

एक पालडे सीस धरि तौलै ताके साथ ।
वर चालीस क तौलिये तव मन आवै हाथ ॥ ७ ॥

पंच सीस करि येकठे धरै तराजू आइ ।
आठ वार जो तोलिये तव मन पकस्या जाइ ॥ ८ ॥

धरै एक धड पालडै तोलै बरियां चारि ।
थोरे में बसि होइ मन पंडित लेहु बिचारि ॥ ९ ॥

पव्वा । ४०×४=१६० पाव एक मण में होते हैं । असी अरध सिर=४०×२=८० अधसेरे । "आधे पग हैं·· ···" ।=१६०×२=३२० अधपव्वे या आधपाव एक मण में होते हैं । "तिनहू ते आधे···· " । ३२०×२=६४० आने भर वा छटकी एक मण में होती हैं । "डेढ हजार ······" । १५००+१००=१६००=४०×४० दाम (अंगूठा) । १६००×४=६४०० बिदाम (अंगुली)

(७) सीस धरि=अपने आपे को (चालीस) अनेक बार मार दे तब मन बस होय । यहां मुसलमान फकीरों के चालीस दिन के चिल्ले से भी अभिप्राय हो सकता है । चालीस दिन का रोजा या व्रत वे लोग रखकर तपस्या करते हैं ।

(८) पंच सीस=पांच सेर । ८×५=४० सेर का मण । यहां पच से पचेंद्रिय । और आठसे अष्टांग योग भी अवांतर भाव से ले सकते हैं ।

(९) एक धड=एक धडी=।) दस सेर का । १०×४=४० एक मण । सिर तो पहिले उतर हो गया अब धड़ की बारी आई । इससे देहाभिमान निवारण का अर्थांतर अभिप्रेत हो सकता है । पालडै=न्याय की तराजू । जगत् का व्यवहार जिसमें न्याय से ही विजय मिलती है । थोरे में=थोरा, थोड़ा सा सत्यज्ञान जो आत्माभिमान मिटा देने से तुरत मिलता है ।

एक सेर कुंजर हणै अति गति तामहिं जोर।
सेर गहे चालीस जिनि मन तें घली न ओर ॥ १० ॥

इंद्री अरु रवि शशि कला धात मिलावै कोइ।
सुन्दर तोलै जुगति सों तब मन पूरा होइ ॥ ११ ॥

चौपई

पांच सात नौ तेरह कहिये। साढे तीन अढाई लहिये।
सब कौं जोर एक मन होई। मन के गायें सत्य नहिं कोई ॥ १२ ॥
ज्ञान कर्म इन्द्री दश जानहुं। मन ग्यारहों सु प्रेरक मानहुं।
ग्यारह में जब एक मिटावै। सुन्दर तबहिं एकही पावै ॥ १३ ॥ ७०॥

॥ इति मन को अंग ॥ १५ ॥

---

(१०) एक सेर=शेर (सिंह) ऐसा है कि अकेला ही कुंजर (हाथी) को दुहाथल कुंभस्थल पर मार कर मार डालता है ऐसे शेर (सेर ३९) चालीस मिलकर अर्थात् ४० सेर का एक मण होता है। फिर उसके पराक्रम का क्या पार है। मन में चालीस हाथियों का सा बल है। यह श्लेषार्थ हुआ। अर्थात् महाबली है।

(११) इन्द्री ५+रवि १२+शशि १+कला १६+धात ६=४० हुए। धात सात भी होते हैं परन्तु यहां छह ही ग्रहण करने पड़े।

(१२) ५+७+९+१३+३॥+२॥=४० होते हैं। जोतीष के विद्यार्थी भी ऐसा बोलते हैं।

(१३) ज्ञानेंद्रिय पाच है। कर्मेन्द्रिय पाच है=यों १० इन्द्रियां हैं। और ग्यारहवां मन, सो भी अंतरेंद्रिय और दशों इन्द्रियों का प्रेरक वा राजा है। १०+१=११ हुए। एकादश इन्द्रियां भी प्रसिद्ध हैं। अब ११ के अंक में एका निकाल दें पहिले का, तो बाकी एका ही रह जाय। अर्थात् एक जो मन प्रथम उसको मिटा दें तौ १ जो ब्रह्म अद्वितीय है सो रह जाय। "अहं ब्रह्मास्मि" "एकोऽहं द्वितीयो नास्ति" महावाक्य के अर्थ की सिद्धि होय।

॥ इति श्लेषार्थः ॥

॥ अथ चाणक को अंग ॥ १६ ॥

छुट्यौ चाहत जगत सौं महा अज्ञ मति मन्द ।
जोई करै उपाइ कछु सुन्दर सोई फन्द ॥ १ ॥

ग करै जप तप करै यज्ञ करै दे दांन ।
रथ ब्रत यम नेम तैं सुन्दर ह्वै अभिमान ॥ २ ॥

सुन्दर ऊंचे पग किये मन की अहं न जाइ ।
कठिन तपस्या करत है अधो सीस लटकाइ ॥ ३ ॥

र सहै सर सीस पर वरिषा रितु चौमास ।
न्दर तन कौ कष्ट अति मन मैं औरै आस ॥ ४ ॥

सीत काल जल मैं रहै करै कामना मूढ ।
सुन्दर कष्ट करै इतौ ज्ञान न समझै गूढ ॥ ५ ॥

ग काल चहु वौर तैं दीनी अग्नि जराइ ।
न्दर सिर परि रवि तपै कौन लगी यह बाइ ॥ ६ ॥

बन बन फिरत उदास ह्वै कंद मूल फल पात ।
सुन्दर हरि के नाम बिन सबै थोथरी बात ॥ ७ ॥

रस बूदहि फल बिना हाथ चढै कछु नाहिं ।
न्दर ज्ञान हृदै नहीं फिरि फिरि गोते पाहिं ॥ ८ ॥

बैठौ आसन मारि करि पकरि रह्यौ मुख मौन ।
सुन्दर सैन बतावतें सिद्ध भयौ कहि कौन ॥ ९ ॥

उ करै पय पान कौं कौन सिद्धि कहि वीर ।
न्दर बालक बाछरा ये नित पीवहिं पीर ॥ १० ॥

[अङ्ग १६] चाणक=चाणक्य, कोड़ा, कड़ा उपदेश ।

(६) चहु वौर अग्नि=पचाग्नि तपना । बाइ=वायु, रोग ।

(७) थोथरी=थोथी, थोथिला ।

कोऊ होत अलौनिया पाहिं अलौंनो नाज।
सुन्दर करहिं प्रपंच बहु मान बढावण काज॥ ११॥

धोवन पीवै बावरे फांसू विहरन जांहिं।
सुन्दर रहै मलीन अति संमझ नहीं घट मांहिं॥ १२॥

एक लेत हैं ठौर ही सुन्दर बैठि अहार।
दाप छुहारी राइता भोजन विविधि प्रकार॥ १३॥

कोउक आचारी भये पाक करैं मुख मूंदि।
सुन्दर या हुन्नर विना पाइ सकै नहिं पूंदि॥ १४॥

कोउक माया देत है तेरै भरै भण्डार।
सुन्दर आप कलापकरि निठि निठि जुरै अहार। १५॥

कोउक दूध रु पूत दे कर पर मेल्हि विभूति।
सुन्दर ये पापण्ड किय क्यौं ही परै न सूति॥ १६॥

यंत्र मंत्र बहु विधि करै झाडा वूंटी देत।
सुन्दर सब पापण्ड है अंति पढै सिर रेत॥ १७॥

कोऊ होत रसाइनी वात बनावै आइ।
सुन्दर घर में होइ कछु सो सब ठगि ले जाइ॥ १८॥

गल में पहरी गूदरी कियौ सिंह कौ भेप।
सुन्दर देपत भय भयौ बोलत जान्यौ मेप॥ १९॥

---

(१४) पूंदि=(फा०) खवीद—ताजा खूराक। हरी जो जो घोड़ों (या बैलों) को खिलाते हैं। यहां उन वैष्णवों के भोजन-विधान पर कटाक्ष है।

(१५) तेरै=वे दरदान देनेवाले कहते हैं—"तेरे भंडार भरैं"।

(१६) सूति—यह सुन्दरदासजी के जन्म कथा से सम्बन्ध रखनेवाली बात का संकेत है। जग्गाजी ने धौसा में भिक्षा के समय कहा था—'दे माई सूत, ले माई पूत'। यहां अभिप्राय है कि हर एक साधु में ऐसी शक्ति नहीं हो सकती इससे साधारण साधु पाखंड ही करते हैं।

मेल्है पाव उठाइ कै बक ज्यौं मांडै ध्यान।
वैठी गटकै माछली सुन्दर कैसौ ज्ञान॥ २०॥

सुंदर जीव दया करै न्यौता मानै नाहिं।
माया छुवै न हाथ सौं परकाला लैं जाहिं॥ २१॥

भेष बनावै बहुत विधि जटा बधावैं सीस।
माला पहिरै तिलक दे सुंदर तजै न रीस॥ २२॥

केस लुचाइ न ह्वै जती कान फराइ न जोग।
सुंदर सिद्धि कहा भई बादि हंसाये लोग॥ २३॥

सुंदर गये टटांबरी बहुरि दिगम्बर होइ।
पुनि बाघम्बर ओढि कै बाघ भयौ घर पोइ॥ २४॥

रक्त पीत स्वेतांबरी काथ रंगै पुनि जैंन।
सुंदर देपे भेप सब कहूं न देप्या चैंन॥ २५॥

॥ इति चाणक को अंग ॥ १६ ॥

॥ अथ वचन विवेक को अंग ॥ १७ ॥

सुंदर तबही बोलिये समझि हिये मैं पैठि।
कहिये बात विवेक की नहितर चुप ह्वै बैठि॥ १॥

सुंदर मौंन गहे रहै जानि सकै नहिं कोइ।
बिन बोलै गुरुवा कहैं बोलें हरवा होइ॥ २॥

---

(२१) परकाला—(फा०) टुकड़ा, हिस्सा, चिथड़ा। भावार्थ-गांठ उठाकर या जो हाथ लगे सो लेकर चंपत बनैं।

(२४) टटांबरी=टाटंबरी, टाट पहिनने वाला साधु।

सुन्दर मौंन गहें रहै तब लग भारी तोल।
मुख बोलैं तें होत है सब काहू कौ मोल ॥ ३ ॥

सुन्दर यौं ही बकि उठै बोलै नहीं विचारि।
सबही कौं लागैं बुरौ देत ढीम सौ डारि ॥ ४ ॥

सुन्दर सुनतें होइ सुख तबही मुख तें बोल।
आक बाक बकि और को वृथा न छाती छोल ॥ ५ ॥

सुन्दर वाही वचन है जा महिं कछू बिवेक।
नातरु ,फेरा मैं पर्यौ बोलत मानौ मेक ॥ ६ ॥

सुन्दर वाही बोलिबौ जा बोलैं मैं ढंग।
नातरु पशु बोलत सदा कौंन स्वाद रस रंग ॥ ७ ॥

घूघू कउवा रासिभा ये जब बोलहिं आइ।
सुन्दर तिनकौ बोलिबौ काहू कौं न सुहाइ ॥ ८ ॥

सारो सूवा कोकिला बोलत वचन रसाल।
सुन्दर सबकौं कान दे वृद्ध तरुन अरु बाल ॥ ९ ॥

सुन्दर वचन कुवचन मैं राति दिवस को फेर।
सुवचन सदा प्रकासमय कुवचन सदा अंधेर ॥ १० ॥

सुन्दर सुवचन सुनत ही सीतल ह्वै सब अंग।
कुवचन कानन मैं परै सुनत होत मन भंग ॥ ११ ॥

सुन्दर सुवचन तक्र तें रापै दूध जमाइ।
कुवचन कांजी परत ही तुरत फाटि करि जाइ ॥ १२ ॥

सुन्दर सुवचन कै सुनै उपजै अति आनंद।
कुवचन काननि मैं परै सुनत होत दुख द्वंद ॥ १३ ॥

---

(६) फेरा=तंग बेरा या पानी का गढ़ा।

(१२) तक्र=छाछ। कांजी=खटाई।

सुन्दर वचन सु त्रिविधि है एक वचन है फूल।
एक वचन है असम से एक वचन है सूल ॥ १४ ॥

सुन्दर वचन सु त्रिविधि हैं उत्तम मध्य कनिष्ट।
एक कटुक इक चरपरे एक वचन अति मिष्ट ॥ १५ ॥

सुन्दर जान प्रवीण अति ताके आगे आइ।
मूरप वचन उचारि कैं वांणी कहै सुनाइ ॥ १६ ॥

सुन्दर घर ताजी बंधे तुरकिन की घुरसाल।
ताके आगे आइ के टटुवा फेरै चाल ॥ १७ ॥

सुन्दर जाकै बाफता पासा मलमल ढेर।
ताकै आगै चौसई आनि धरै बहुतेर ॥ १८ ॥

सुन्दर पंचामृत भपै नितप्रति सहज सुभाइ।
ताकै आगै रावरी काहे कौ ले जाइ ॥ १९ ॥

सूरज के आगै कहा करै जींगणा जोति।
सुन्दर हीरा लाल घर ताहि दिपावै पोति ॥ २० ॥

वांणी मैं बहु भेद है सुन्दर बिबिधि प्रकार।
शब्द ब्रह्म परब्रह्म कौ जानै जाननिहार ॥ २१ ॥

जा वांणी हरि कौं लियें सुन्दर वाही वक्त।
तुक अरु छन्द सबै मिलैं होइ अर्थ संयुक्त ॥ २२ ॥

जा वांणी में पाइये भक्ति ज्ञान वैराग।
सुन्दर ताकौं आदरै और सकल कौ त्याग ॥ २३ ॥

जा वानी हरि गुन बिना सा सुनिये नहिं कांन।
सुन्दर जीवन देषिये कहिये मृतक समान ॥ २४ ॥

---

(१४) असम=अश्म, पत्थर। कठोर। भारी।

(२०) जींगणा—आग्या, जुगनू। पोति=काच की पोत जिस को गहनों में पिरोते हैं वा बांधते हैं पडुवे।

रचना करी अनेक विधि भली बनायौ धाम।
सुन्दर मूरति बाहरी देवल कौंनें काम ॥ २५ ॥

॥ इति वचन विवेक कौ अंग ॥ १७ ॥

॥ अथ सूरातन कौ अंग ॥ १८ ॥

दोहा

सुन्दर सूरातन करै सूरबीर सो जांनि।
चोट नगारै सुनत ही निकसि मँडै मैदांनि ॥ १ ॥

सुन्दर सूर न गासणा झकि पडै रण मांहिं।
घाव सहै मुख सांमहां पीठि फिरावै नांहि ॥ २ ॥

पहरि संजोवा नीसरै सुणि सहनाई तूर।
सुन्दर रण में रुपि रहै तबहिं कहावै सूर ॥ ३ ॥

मुख तें बैंण न उच्चरै सुन्दर सूर सुजांण।
टूक टूक जब ह्वै पडै सबकौं करै बषांण ॥ ४ ॥

घर में सब कोइ बंकुडा मारहिं गाल अनेक।
सुन्दर रण में ठाहरै सूर बीर कौ एक ॥ ५ ॥

---

(२५) मूरति बाहरी=मंदिर में देवमूर्ति नहीं है या बाहर है तो वह देवालय नहीं है। जीव रहित शरीर मुर्दा है।

[अंग १८] सूरातन=शूर वीरता।

(२) न गासणा=गासणां (वा गिरासणा) खानेवाला गासों का ही नहीं *(अपितु रण में टूट पड़नेवाला)*। *'गिरासणा' दा० बा० अ० कालका छन्द* ५ में आया है।

(४) सब कौं=अन्य सब कोई। (५) बकुडा=बांका, ऐंठदार।

न्दर सूरातन विना वात कहै मुख कोरि।
रा तन तब जाणिये जाइ देत दल मोरि ॥ ६ ॥

सुन्दर सूरातन कठिन यह नहिं हांसी षेल।
कमधज कोई रुपि रहै जबहिं होत मुख मेल ॥ ७ ॥

न्दर सूरा तन किये जगत मांहिं जस होइ।
ीस समर्पें स्याम कौं संक न आनै कोइ ॥ ८ ॥

सीस उतारै हाथि करि संक न आनै कोइ।
ऐसे मंहगे मोल का सुन्दर हरि रस होइ ॥ ९ ॥

न्दर तन मन आपनौ आवै प्रभु कै काम।
ण मैं तैं भाजै नहीं करै न लौंन हराम ॥ १० ॥

सुन्दर दोऊ दल जुरैं अरु बाजै सहनाइ।
सूरा कै मुख श्री चढै काइर दै फिसकाइ ॥ ११ ॥

सुन्दर हय हींसै जहां गय गाजै चहुं फेर।
काइर भागै सटकदे सूर अडिग ज्यौं मेर ॥ १२ ॥

सुन्दर धरती धडहडै गगन लगै उडि धूरि।
सूर वीर धीरज धरै भागि जाइ भकभूरि ॥ १३ ॥

सुन्दर बरछी झलहलैं छूटैं बहु दिसि बांण।
सूरा पडै पतंग ज्यौं जहां होइ घंमसांण ॥ १४ ॥

---

(७) कमधज=कबन्ध, यह बैंक राठोडों के साथ अधिक लगता है। उनके बडों में अनेक बिना माथे लडे थे।

(११) श्री चढै=श्री चढना, हुशियारी का बढना, वीरता के जोश से शोभा बढना।

(१३) धडहडै=धर्रावै, धरधराहट करै घोड़ों की टापों से। भकभूरि=घण-राव्वा, कायर। घण कहना।

(१४) झल्हलैं=चमचमाहट करती फिरै या चलै।

सुन्दर धाढाली वहैं होइ कडाकडि मार।
सूर वीर सनमुख रहैं जहां पलकैं सार॥ १५॥

सुन्दर देषि न थरहरै हहरि न भागै बीर।
गहर बडे घंमसांण मैं फहर धरै को धीर॥ १६॥

सुन्दर सोई सूरमा लोट पोट ह्वै जाइ।
वोट कछू रापै नहीं चोट मुहैं मुहं षाइ॥ १७॥

सुन्दर सूरा तन करै छाडै तन को मोह।
हबकि थबकि पेलै पिसण जाइ चपावै लोह॥ १८॥

सुन्दर फेरै सांगि जब होइ जाइ विकराल।
सनमुख वाहै ताकि करि मारै मीर मुछाल॥ १९॥

सुन्दर सोभै सूरिवा मुख परि वरिषै नूर।
फौज फटावै पलक मैं मार करै चकचूर॥ २०॥

सुन्दर षैंचि कमान को भरि करि मारै बान।
जाकै लागै ठौर जिहिं लेकरि निकसै प्रांन॥ २१॥

सुन्दर सील सनाह करि तोप दियौ सिर टोप।
ज्ञान षडग पुनि हाथ लै कीयौ मन परि कोप॥ २२॥

---

(१५) धाढाली=धार (धार) वाली तलवार। पलकैं=पड़ैं। सार=लोहे के शस्त्र। फौलादी हथियार।

(१६) हहरि=डरकर। गहर=गहरे, भारी गभीर। फहर धरै=ऐसे समय में धीरवीर सहमते नहीं हैं। यह जुल्म हो कि वे न लड़ैं। अवश्य लड़ैं।

(१८) हबकि=फटकारे से। फुर्ती से। थबकि=कूटकर। मारकर। पेलै=पीस डालै (जैसे घाणी में)। पिसण=शत्रु (काम क्रोधादिक)। लोह चपावै=तलवार से काटै।

(२२) सील=शीलव्रत, ब्रह्मचर्य। सनाह=कवच, बकतर। तोप=सतोष।

सुन्दर निस दिन साधु कै मन मारन की मूठि।
मनकै आगै भागि करि कबहुं न फेरै पूठि॥ २३॥

मारै सब संग्राम करि पिसुनहु ते घट मांहिं।
सुन्दर कोऊ सूरमा साधु बराबरि नांहि॥ २४॥

साधु सुभट अरु सूरमा सुन्दर कहे बषांनि।
कहन सुनन कौं और सब यह निश्चय करि जांनि॥ २५॥

॥ इति सूरातन कौ अंग ॥ १८ ॥

॥ अथ साधु कौ अंग ॥ १९ ॥

संत समागम कीजिये तजिये और उपाइ।
सुन्दर बहुते उद्धरे सत संगति मैं आइ॥ १॥

सुन्दर या सतसङ्ग मैं भेदा भेद न कोइ।
जोई बैठै नाव मैं सो पारंगत होइ॥ २।

सुन्दर जो सतसङ्ग मैं बैठै आइ बराक।
सीतल और सुगंध ह्वै चन्दन की ढिग ढाक॥ ३ ..

सुन्दर या सतसङ्ग की महिमा कहिये कौंन।
लोहा पारस कौं छुवै कनक होत है रौंन॥ ४॥

जन सुन्दर सतसङ्ग मैं नीचहु होत उतंग।
परै क्षुद्र जल गंग मैं उहै होत पुनि गंग॥ ५॥

---

(२३) मूठि=दाव, वार। (तलवार की मूठी में रखकर दाव पर रहै)।

[अङ्ग १९] (३) बराक=दुष्टजन। ढाक=छीले का वृक्ष।

(४) कहिये=कह सकै। रौंन=रमणीय, सुन्दर।

(५) उतंग=ऊंचा।

सुन्दर या सतसङ्ग में शब्दन को औगाह।
गोष्टि ज्ञान सदा चलै जैसें नदी प्रवाह॥ ६॥

सुन्दर जौ हरि मिलन की तौ करिये सतसङ्ग।
बिना परिश्रम पाइये अविगति देव अभंग॥ ७॥

जो आवै सतसङ्ग में ताकौ कारय होइ।
सुन्दर सहजें भ्रम मिटै संसय रहै न कोइ॥ ८॥

संतनि ही तें पाइये राम मिलन कौ घाट।
सहजें ही षुलि जात है सुन्दर हृदय कपाट॥ ९॥

संत मुक्त के पौरिया तिनसौं करिये प्यार।
कूची उनकै हाथ है सुन्दर पोलहिं द्वार॥ १०॥

सुन्दर साधु दयाल है कहैं ज्ञान संमुझाइ।
पात्र विना नहिं ठाहरै निकसि निकसि करि जाइ॥ ११॥

सुन्दर साधु सदा कहैं भक्ति ज्ञान वैराग।
जाकै निश्चय ऊपजै ताकै पूरन भाग॥ १२॥

संतनि कै यह वनिज है सुन्दर ज्ञान विचार।
गाहक आवै लेन कौं ताही के दातार॥ १३॥

संतनि कै सो वस्तु है कबहूं पूटै नांहि।
सुन्दर तिनकी हाट तें गाहक ले ले जांहि॥ १४॥

साह रमइया अति वडा षोलै नहीं कपाट।
सुन्दर वान्यौटा किया दीन्ही काया हाट॥ १५॥

---

(६) औगाह=अवगाहन, श्रवण मनन करना।

(९) घाट=सुस्थान, ढब।

(१०) मुक्त=मुक्ति।

(१४) पूटै=घटै, कमीपर (न आवै)।

(१५) वान्यौटा=छोटासा वनिया, व्यापारी। छन्द १२ से १६ तक

अपना करि बैठाइया कीया बहुत निहाल।
जौ चाहै सो आइल्यौ सुन्दर कोठीवाल॥ १६॥
सुन्दर आये संतजन मुक्त करन कौं जीव।
सब अज्ञान मिटाइ करि करत जीव तें सीव॥ १७॥
जन सुन्दर सतसङ्ग तें पावै सब कौ भेद।
वचन अनेक प्रकार के प्रगट कहे जे वेद॥ १८॥
जन सुन्दर सतसङ्ग तें उपजै निर्गुन भक्ति।
प्रीति लगै परब्रह्म सौं सब तें होइ विरक्ति॥ १९॥
जन सुन्दर सतसङ्ग तें उपजै निर्मल बुद्धि।
जानै सकल विवेक करि जीव ब्रह्म की सुद्धि॥ २०॥
जन सुन्दर सतसङ्ग तें पावै दुर्लभ योग।
आतम परमातम मिले दूरि होंहिं सब रोग॥ २१॥
जन सुन्दर सतसङ्ग तें उपजै अद्वय ज्ञान।
मुक्ति होय संसय मिटै पावै पद निर्बान॥ २२॥
सुन्दर सब कछु मिलत है समये समये आइ।
दुर्लभ या संसार में संत समागम थाइ॥ २३॥
मात पिता सबही मिलै भइया बंधु प्रसंग।
सुन्दर सुत दारा मिलै दुर्लभ है सतसङ्ग॥ २४॥
राज साज सब होत है मन बंछित हू पाइ।
सुन्दर दुर्लभ संतजन बड़े भाग तें पाइ॥ २५॥

सुन्दरदासजी ने अपना थोड़ा हाल महाजनी का भी दरसा दिया है। और यह उनकी जीवनी से संबंधित है।

(१७) सीव=शिव, परमात्मदेव।

(२०) सुद्धि=सुध बुध, विवेक ज्ञान।

(२३) थाइ=(गु०) है। होता है।।

लोक प्रलोक सबै मिले देव इन्द्र हू होइ।
सुन्दर दुर्लभ संतजन क्यों करि पावै कोइ ॥ २६ ॥
ब्रह्मा शिव के लोक लौं हैं बैकुंठहु बास।
सुन्दर और सबै मिले दुर्लभ हरि के दास ॥ २७ ॥
राग द्वेप तें रहित हैं रहित मान अपमान।
सुन्दर ऐसे संतजन सिरजे श्री भगवान ॥ २८ ॥
काम क्रोध जिनि कै नहीं लोभ मोह पुनि नांहिं।
सुन्दर ऐसे संतजन दुर्लभ या जगु मांहिं ॥ २९ ॥
मद मत्सर अहंकार की दीन्ही ठौर उठाइ।
सुन्दर ऐसे संतजन ग्रंथनि कहे सुनाइ ॥ ३० ॥
पाप पुन्य दोऊ परै स्वर्ग नरक तें दूरि।
सुन्दर ऐसै संतजन हरि कैं सदा हजूरि ॥ ३१ ॥
आयें हर्ष न ऊपजै गयें शोक नहिं होइ।
सुन्दर ऐसे संतजन कोटिनु मध्ये कोइ ॥ ३२ ॥
कोई आइ स्तुती करै कोइ निंदा करि जाइ।
सुन्दर साधु सदा रहै सबही सौं सम भाइ ॥ ३३ ॥
कोऊ तौ मूरख कहै कोऊ चतुर सुजान।
सुन्दर साधु धरै नहीं भली बुरी कछु कांन ॥ ३४ ॥
कबहू पंचामृत मपै कबहूं भाजी साग।
सुन्दर संतनि कै नहीं कोऊ राग बिराग ॥ ३५ ॥
सुखदाई सीतल हृदय देषत सीतल नैंन।
सुन्दर ऐसे संतजन बोलत अमृत बैंन ॥ ३६ ॥
क्षमावंत धीरज लिये सत्य दया संतोष।
सुन्दर ऐसै संतजन निर्भय निर्गत रोष ॥ ३७ ॥
द्वंद कछू व्यापै नहीं सुख दुख एक समान।
सुन्दर ऐसे संतजन हृदै प्रगट दृढ ज्ञान ॥ ३८ ॥

घर वन दोऊ सारिषे सबतें रहत उदास।
सुन्दर संतनि के नहीं जिवन मरन की आस ॥ ३९ ॥
रिद्धि सिद्धि की कामना कबहूं उपजे नांहिं।
सुन्दर ऐसे संतजन मुक्ति सदा जग मांहिं ॥ ४० ॥
सूधि माहिं वरतें सदा और न जानहिं रंच।
सुन्दर ऐसे संतजन जिनि के कछु न प्रपंच ॥ ४१ ॥
सदा रहै रत राम सौं मन में कोउ न च्याह।
सुन्दर ऐसे संतजन सबसौं बेपरवाह ॥ ४२ ॥
धोवत है संसार सब गंगा मांहें पाप।
सुन्दर संतनि के चरण गंगा बंछे आप ॥ ४३ ॥
ब्रह्मादिक इंद्रादि पुनि सुन्दर बंछहिं देव।
मनसा वाचा कर्मना करि संतनि की सेव ॥ ४४ ॥
सुन्दर कृष्ण प्रगट कहै मैं धारी यह देह।
संतनि के पीछे फिरौं सुद्ध करन कौं येह ॥ ४५ ॥
सन्तनि की महिमा कही श्रीपति श्रीमुख गाइ।
तातें सुन्दर छाडि सब सन्त चरन चित लाइ ॥ ४६ ॥
संतनि की सेवा किये श्रीपति होहिं प्रसन्न।
सुन्दर भिन्न न जानिये हरि अरु हरि के जन्न ॥ ४७ ॥
सुन्दर हरि जन एक हैं भिन्न भाव कछु नांहिं।
संतनि माहें हरि बसै संत बसै हरि मांहिं ॥ ४८ ॥
सन्तनि की सेवा किये हरि की सेवा होइ।
तातें सुन्दर एकही मति करि जानै दोइ ॥ ४९ ॥
सन्तनि की सेवा किये सुन्दर रीझै आप।
जाकौ पुत्र लडाइये अति सुख पावै बाप ॥ ५० ॥

---

(४३) बछै=बांछना करैं। चाहै।

संतनि कौं कोउ दुःख दे तब हरि करै सहाइ।
सुन्दर रंभै बाछरा सुनि करि दौरै गाइ ॥ ५१

अठसठ तीरथ जो फिरै कोटि यज्ञ व्रत दान।
सुन्दर दरसन साधु कै तुलै नहीं कछु आंन ॥ ५२ ॥

संतनि ही कौ आसरौ संतनि कौ आधार।
सुन्दर और कछू नहीं है सतसंगति सार ॥ ५३

पावक जारै नीर कौं नीर बुझावै आगि।
सुन्दर वैरी परस्पर सज्जन छूटै भागि ॥ ५४ ॥

उलवा मारै काग कौं काक सु हनै उलूक।
सुन्दर वैरी परस्पर सज्जन हंस कहूंक ॥ ५५ ॥

सुन्दर कोऊ साधु की निंदा करै सु नीच।
चल्यौ अधोगति जाइ है परै नरक कै बीच ॥ ५६ ॥

सुन्दर कोऊ साधु की निंदा करै लबार।
जन्म जन्म दुख पाइ है ता महिं फेर न सार ॥ ५७ ॥

सुन्दर कोऊ साधु की निंदा करै कपूत।
ताकौं ठौर कहूं नहीं भ्रमत फिरै ज्यौं भूत ॥ ५८ ॥

सन्तनि की निंदा कियें भलौ होइ नहिं मूलि।
सुन्दर बार लगै नहीं तुरत परै मुख धूलि ॥ ५९ ॥

संतनि की निंदा करै ताकौ बुरौ हवाल।
सुन्दर उहै मलेछ है वहै बडौ चण्डाल ॥ ६० ॥

॥ इति साधु कौ अंग ॥ १९ ॥

---

(५२) तुलै नहीं=साधु दर्शन के तुल्य या बराबर और कोई वस्तु नहीं है।

(५५) उलवा=उल्लू पक्षी को दिन में कव्वा मारता है। और रात को उल्लू कव्वे को मारता है। कहूक=कुहक, दुष्टजन।

॥ अथ विपर्ज्जय कौ अंग ॥ २० ॥

सुन्दर कहत विचारि करि उलटी बात सुनाइ।
नीचे कौं मूडी करै तब ऊंचे कौं पाइ॥ १॥
अन्धा तीनौं लोक कौं सुंदर देखै नैंन।
बहिरा अनहद नाद सुनि अति गति पावै चैन॥ २॥
नकटा लेत सुगन्ध कौं यह तौ उल्टी रीति।
सुन्दर नाचै पंगुला गूगा गावै गीति॥ ३॥

[अंग २०] (१) नीचे कौ मूडी करै=नम्रहोय, अथवा शीर्षासन करै, योग साधै। तब ऊंचे कौं पाई=तब ऊंचे पग होंय। दूसरा अर्थ यह कि तब ऊंचा पद वा ऊंची अवस्था वा आत्मानुभव की उच्च गति (पार) पावै। यह अंग विपर्यय का इस "साषी" ग्रन्थ में "सवैया" ग्रन्थ के विपर्यय अंग के विचारों से बहुत मिलता-जुलता है। उसमें विस्तृत टीका प्रत्येक के नीचे कर दी है। इस कारण यहां विस्तार अनावश्यक है। थोड़ा थोड़ा अभिप्राय देते हैं। बाकी टीका उस अंग को देख कर इन दोहों का अर्थ जानना चाहिये।

(२) बाहिरी दृष्टि जिसकी रुक गई अंतर्दृष्टि खुल गई वह तीनों लोकों को दिव्य दृष्टि से देखै। जगत् के आकबाक् और बुरी भली के सुनने में श्रवणेंद्रिय जिसकी बन्द हो गई है ऐसा अंतर्नाद अनाहतनाद दश प्रकार को पाकर ब्रह्मानन्द या सुख अनुभव करै। (सवैया अंग २२। छन्द १ का पूर्वार्द्ध देखो टीका सहित)।

(३) नकटा नाम लोकलाज का बन्धन तोड़ कर ब्रह्म कमल की पराग का आनन्दमय सुगन्ध सूंघता है। पांगला—जिसकी लौकिक गति मिट कर गुणों की चपलता मिट कर भगवत ध्यान में भगवान के सन्मुख आत्मानन्द का नृत्य करै और गूंगा—जिसकी स्थूल वैखरी मध्यमा वाणी तक बन्द होकर परापश्यन्ती खुल गई, सो

कीडी कूंजर कौं गिलै स्याल सिंह कौं षाइ।
सुन्दर जल तें माछली दौरि अग्नि में जाइ॥ ४॥

समद समानौं बून्द में राई माहें मेर।
सुन्दर यह उलटी भई सूर्य कियौ अन्धेर॥ ५॥

मछली बुगला कौं भस्यौ देषहु याके भाग।
सुन्दर यह उलटी भई मूसै षायौ काग॥ ६॥

ब्रह्म विचार में ब्रह्मगीत गाता है। भगवान की वेद मार्ग से स्तुति गीत गाता है। संसार से बकवाद नहीं करे। (सवैया। उक्त)।

(४) कीरी=अति सूक्ष्म विचारवाली शुद्ध ब्रह्मानन्दी बुद्धि। सो कुंजर नाम काम-क्रोधादि मस्त हाथियों को निगल गई। उस ज्ञान बल से इन्हें मार दिया। स्याल-आत्मा स्वस्वरूप को भूल दीन स्याल सा हो रहा था। सो ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति से अपने स्वभाव की स्मृति होने से सत्यविपर्यय रूपी अध्यास जो सिंह सा प्रतीत होता था उसको खा गया—अर्थात् नाश कर दिया। आत्मानुभव से जगत् का मिथ्यात्व स्पष्ट हो गया। जल—सांसारिक कायारूपी जल में जीवरूपी मछली अज्ञानवश प्रसन्न थी। परन्तु ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होते ही ज्ञानाग्नि में जाकर पड़ी तब सच्चा सुख मिला उसही में सम्यज्ञान के उदय से दौड़ कर जा पड़ी। अर्थात् अधोगति संसार से निवृत्त हो ऊर्ध्वगति ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हुई। (स० २२। ३।)

(५) बूंद—जीव अति सूक्ष्म है उसमें ब्रह्म जो महान् अप्रमेय है सो समा गया अर्थात् जीव ब्रह्म एकता को प्राप्त हो गया। राई—अति सूक्ष्म ब्रह्माकार वृत्ति में अति विशाल मिथ्या जगत्‌रूपी मेरु था सो निवृत्त हो गया। अर्थात् ब्रह्माकारवृत्ति होते ही जगत् का लय हो गया। सूर्य—ब्रह्मज्ञानरूपी स्वप्रकाशरूपी सूर्य का उदय होते ही भ्रमरूपी जगत् का भ्रम मिटते ही अभावरूपी अन्धेरा हो गया। इस सूर्य ने यह बड़ा उत्पात किया कि उदय होते ही भासमान संसार को मिटा दिया। (स०। २२। ४।)

(६) मछली—मनसारूपी मछली ने दमरूपी बुगला को खा लिया। शुद्ध

सुन्दर उलटी बात है समुझै चतुर सुजांन।
सूवै काढे पकरि कै या मिनिकी के प्रांन ॥ ७ ॥

गुरु शिष के पायनि पर्यौ राजा हूवौ रंक।
पुत्र बांझ के पंगुल सुंदर मारी लङ्क ॥ ८ ॥

कमल मांहि पांणी भयौ पाणी माहे भांन।
भान मांहि ससि मिलि गयौ सुंदर उलटौ ज्ञान ॥ ९ ॥

मन से जगत् भ्रांति मिटी। मूसा-सदा चचल चपल मनरूपी चूहे ने अपने भक्षक शत्रु पापरूपी कव्वे को खा लिया। मन की चचलता मिटने से सर्व पापवासना निरत हो गई। (स० २२। ५) सवैया में सांप लिखा है।

(७) सूवा—सुवासनायुक्त अंतःकरणरूपी तोते ने बीप्सारूपी नाशक बिलाई को प्राणांत कर दिया। जब अंतःकरण शुद्ध हो गया तो कामना सब मिट गई। ब्रह्म प्राप्ति सहज हुई। (स० २२। ५)

(८) शिष=शिष्य—जो चित्त, सो अज्ञान अवस्था में मन की सीख में चलकर उसका चेला बना रहा। परन्तु जब ज्ञान पाया तो ज्ञान बल से मन को शिक्षा देने लगा। यों उल्टा मन का गुरु बन गया सो मन अब चित्त के आश्रित हो गया। राजा—रजोगुण का अभिमानी मन, अपने बल से जीव को अज्ञान अवस्था में अपने वशवर्ती कर रक्खा था। सो ही जीव को ज्ञान की प्राप्ति होने से तो वही मन पर शासन करने लगा। सो मन तो दीन प्रजा हो गया और जीव उसका राजा हो गया।—बांझ—बुद्धिरूपी सात्विकी बांझ नारी के ज्ञानरूपी पांगला बेटा हुआ। पांगला इस लिए कि मन की चपलतारूपी पाव जिससे विषयादि में बहिर्मुख होता था टूट गये। ऐसे पगु पुत्र ने संसाररूपी लंका को विजय किया। अर्थात् बुद्धि जब निर्मल हुई तो ज्ञानोदय उत्पन्न हुआ। ज्ञान से भ्रमरूप जगत् नष्ट हो गया। (स० २२। ६)

(९) कमल—हृदय कमल में प्रेमाभक्तिरूपी सुन्दर निर्मल जल उपजा। उस प्रेमाभक्ति से ज्ञान भानु उत्पन्न हुआ। उस सूर्य ने त्रिविधताप का नाश किया सो

धोबी कौं उज्जल कियौ कपरै वपुरौ धोइ।।
दरजी कौं सीयौ सुई सुन्दर अचिरज होइ ॥ १० ॥
　　　　सोनै पकरि सुनार कौं काढ्यौ ताइ कलङ्क।
　　　　लकरी छील्यौ वाढई सुन्दर निकसी बङ्क ॥ ११ ॥
जा घर मैं बहु सुख किये ता घर लागी आगि।
सुन्दर मीठौ ना रुचै लौन लियौ सब त्यागि ॥ १२ ॥

शशि की सी सीतलता ब्रह्मनंद सुख की उत्पत्ति हुई। वास्तव में सूर्य ही के प्रकाश से चंद्रमा दीप्त होता है और फिर उस चन्द्रमा की शीतल किरणें पृथ्वी पर पड़ती हैं। मन शुद्ध होने से प्रेमाभक्ति हुई। उससे ज्ञान हुआ। ज्ञान से ससार-ताप निवृत्त होकर सच्चिदानन्द ब्रह्म के साक्षात्कार का अक्षय सुख मिला। (स० २२। ७।)।

(१०) धोबी—मनरूपी धोबी जब निर्मल हुआ तो उसने काया को भी निर्मल कर दिया। 'मन निर्मल तन निर्मल भाई'। मननरूपी अत करण की माटी मनरूपी कुम्हार को घड़कर सुघड़ बना देता है। वैसे तो मन ही कुम्हार का काम करता है। परन्तु जब ज्ञान की प्राप्ति से मनन शक्ति बढ़ी तो मन के सकल्प तो मिट गये और मनन ने मन को ठीक बनाया। मानों इसने उसका काम किया। यों उल्टा हुआ। सुरति रूपी बारीक सूक्ष्म प्रवेश करने वाली शक्ति जीवरूपी दरजी को (जो असल में कतर ब्योंत करने वाला दरजी मानों है) सीवै नाम ब्रह्म में एकता करै। जीव को ब्रह्म में मिलाकर एक कर दे। यह सुई इतना बड़ा काम कर देती है। (स० २२। ९)।

(११) सोना—सुमिरणरूपी सुवरण ने मनरूपी सुनार को ताय (तपा) कर तपश्चर्या आदिक साधनों से निष्कलक शुद्ध कर दिया। लयरूपी लकड़ी ने कर्मरूपी बढ़ई (खाती) को छीलकर नाम निर्विकार करके इसकी बाँक निकाल दी। अर्थात् भगवान् में रत हो जाने से कर्मों का संसर्ग मिट गया। ज्ञान से कर्मों की निवृत्ति हो गई तो आवागमन होता रह गया। (स० २२। ९।)।

(१२) जापर में—कायारूपी घर में, अज्ञान अवस्था में विषय सुख मिले बह

सुन्दर पर्वत उडि गयौ रुई रही थिर होइ।
बाव धर्‌यौ इंहि भांति कौ क्यौं करि मानै कोइ ॥ १३ ॥

स्यालो पायौ गाडरै सुसलै पायौ स्वान।
सुन्दर यह कैसी भई धवक ह्वि लागौ बान ॥ १४ ॥

ब्रह्मा ऊपर हंस चढि कियौ गगन दिशि गौन।
गरुड चढ्‌यौ हरि पीठि पर सुन्दर मानै कौंन ॥ १५ ॥

वृषभ भयौ असवार पुनि सुन्दर शिव पर आइ।
डाइन ऊपर जरप चढि भलो दई दौराई ॥ १६ ॥

पर अब ज्ञानाग्नि से भस्म हो गया। अर्थात् शरीराभिमान व विषयादि वासना मिट गये। मीठा, विषयादि का स्वाद गया और अब भगवत् प्रेमरूपी खुकराप्यारा लगा, सबसे वह नहीं रुचा, अच्छा नहीं लगा सर्वस्व त्याग एक इस भगवत्-भजन वा प्रेम को ही ग्रहण किया।

(१३) पर्वत—अहंकार का अभिमान ही पर्वत था सो ज्ञान की पवन से उड़ गया। और सात्विक वृत्तिरूपी रुई जा निर्मल स्वच्छ और गुरुता रहित है अंतःकरण में जम कर बैठ गई दृढ़ हो गई। बाव=पौन। विचारवान पुरुष ही मानैं, अन्य क्या समझै। (सा० २२। १०)।

(१४) स्यालो=भेड़िया। गाडरै=भेड़ वा भेड़ा, मींढा। सात्विकी वृत्ति के रहने और अभ्यास से मन के विकाररूपी भेड़िये को खाया अर्थात् नाश कर दिया। शील संतोषरूपी सुसे ने क्रोध क्रूरता सत्कार्य में अरुचि और संतों को देख भौंकने-वाले स्वानरूपी दुष्ट वृत्ति को खाया नाम निवारण किया। (सवैया में ऐसा विपर्यय नहीं है।)

(१५) हंस=जीव। ब्रह्मा=रजोगुण। गरुड़=ज्ञान। हरि=सतोगुणी ईश्वर। वृषभ बैल=शरीर। शिव=तमोगुण। गगन=अनंत में। (देखो "सवैया" अंग २२। छंद ८ की टीका।)

(१६) डाइन=बुरी मनसा। पदार्थों की घणी लालसा। जरप=संकल्प विकल्प भरा मन। (देखो उक्त टीका)।

रजनी मैं दीसै दिवस दिन मैं दीसै राति।
सुन्दर दीपक जल गयौ रही बिचारी बाति॥ १७॥

सुन्दर बरिपा अति भई सूकि गये नदि नार।
मेर बूडि जल मैं रह्यौ झर लाग्यौ इकसार॥ १८॥

कांसा पर्‌यौ पराकिदे बिजली ऊपर आइ।
घर की सब टाबर मुवौ सुन्दर कही न जाइ॥ १९॥

सुन्दर माली नीपज्यौ फल अरु फूल समेत।
हाली के कोठा भरे सूके बाड़ी पेत॥ २०॥

---

(१७) रजनी=रात=निवृत्ति (संसार का अभाव)। दिवस, दिन=ज्ञान का प्रकाश, ब्रह्मज्ञान की निष्ठा। दीपक=मोह-ममतारूपी तेल भरा विषयों का दीवा। जल गया=मिट गया, बुझ गया। बाति=वर्ति=बाती। ब्रह्मानन्द नामा वृत्ति (सवैया। अं० २२।। छ० ११ की टीका देखो)।

(१८) बरिपा=वर्षा=निरंतर भजन वा अनाहतनाद ध्वनि। नदी नार=नदी नाले=सब इन्द्रियों द्वारों से बहते रहनेवाले विषय वासना। सूकि गये=सूख गये=मिट गये। मेर=मेरु पर्वत=अति ऊंचा मध्यस्थ अहंकार। जल मैं रह्यो=डूब गया, जाता रहा। झर=भजनता इकसार तार, वा धुन, रटन (सवैया। २२। १२ टीका)।

(१९) कांसा=काया, शरीर, जो विषय भोग का बरतन है। बिजली=गुरु ज्ञान का चमका भरी दामिनी। पराकि=तड़ाके शब्द से, झटपट। घर की सब टाबर=सब इन्द्रिय और विषय मलिन अंतःकरणकी वृत्तियां। मुवौ=निवृत्त हुए। (उक्त देखो)। टाबर=बालबच्चे।

(२०) माली=क्षेत्रज्ञजीव। फल फूल कायारूपी क्षेत्र के नाना विषय भोग। हाली=अंतःकरण (वा मन) के कोठा नाम अन्तरंग वृत्तियों का स्थान। बाड़ी और खेत जो काया के विषयादिक सो सूखे नाम निवृत्त हो गये तब अंतःकरण की वृत्तियां अन्तर्मुखी होने से ब्रह्मानन्दरूपी सच्चे फलों से घर परिपूर्ण हो गया। आत्म-साक्षात्कार हो गया और जगत् की बहिर्मुखता मिट गई। (स०। २२। १२)।

भ्रमर सु तौ उज्जल भयौ हंस भयौ फिरि स्यांम।
को जानै केते भये सुन्दर उलटे कांम ॥ २१ ॥
अग्नि मथन करि नीसरी लकरी सहज सुभाइ।
पानी मथि घृत काढियौ सो घृत सुन्दर पाइ ॥ २२ ॥
पत्र मांहिं झोली धरै जोगी मांगै भीष।
सोवै गोरष यौं कहै सुन्दर गुरु की सीष ॥ २३ ॥

---

(२१) हंस=जीवात्मा जो स्वभाव से सतोगुणमय उज्ज्वल है सो विषयों की कालिमा से श्याम (काला) हो गया था अथवा श्यामसुन्दर का रंग श्याम (भगवद्भक्ति का रंग व ज्ञान) उसे लग गया। भ्रमर=मनरूपी भौंरा जो विषयोंरूपी पुष्पों पर बैठता रहा सो अब भगवद्भक्ति, जपतप, और ब्रह्मज्ञान से मलविक्षेप धोकर सपेद (उज्ज्वल निर्मल) हो गया।) (स० अ० २२ । १३ ।)

(२२) अग्नि=भक्त की विरह-अग्नि उसको मथन कहिए अत्यन्त प्रज्वलित करिके अथवा श्रवण-मनन आदिकों से ज्ञान प्रगट करके लकरी काढी नाम लय-योग से ब्रह्माकार वृत्ति निकाली उत्पन्न की। सहज=सहज योगसे आत्मा साक्षात्कार हुआ। पानी=प्रेम (भगवत् की भक्ति) अथवा अन्त करणरूपी तरल अथाह मनोवृत्तियों का समुद्र वा यह संसार, उसको मथि अर्थात् आलोड़न वा बिलोकर विचार विवेक करके वा साधन चतुष्टय करके (ज्ञानरूपी) घृत नाम ब्रह्मानन्द निकाला। सो ज्ञानरूपी घृत नित्य खाइये अर्थात् वह तदाकार वृत्ति का आनन्द "घी सो घोंट रह्यो घट भीतर" सदा ही निरंतर व्यापै। "यत्प्राप्य न निवर्त्तंते" जिसकी प्राप्ति के अनंतर उल्टा आने का काम नहीं, आवागमन मिट गया।

(२३) पत्र=नाम शुद्ध हृदय (मन) उसमें संसारी कर्मों की झोली नाम झक्कोल अर्थात् गुणों की कोथली जिसमें पाप-पुन्य भरे पड़े हैं। धरै=उन कर्मों को एक तरफ उठाकर धरदे नाम त्यागदे। मन शुद्ध होते ही शुभाशुभ कर्म की गांठड़ी छुट जाती है। और जोगी=जिज्ञासु, ज्ञान की भूख का सताया हुआ ज्ञानयोगी ज्ञान की भीष अपने गुरु वा अनुभवी संतों वा ब्रह्मज्ञानियों से मांगै—याचना करै।

पर घी लै करि घर धरै पर धन हरि हरि पाइ।
पर निंदा निस दिन करै सुन्दर मुक्ति ही जाइ ॥ २४ ॥

मांस भषै मदिरा पिवै वह तौ अगम अगाध।
जौ ऐसी करनी करै सुन्दर सोई साध ॥ २५ ॥

जोई है अति निर्दयी करै पशुन की घात।
सुन्दर सोई उद्धरै और वहे सब जात ॥ २६ ॥

सोवै गोरख=जागै जगत सोवै गोरख" ऐसा शब्द भीख मांगते समय उचारण करै। "या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी। यस्यां जागर्त्ति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।" (गीता)।—सर्व साधारण जीव जिस रात में सोवै उसमें योगी जागै और जिसमें वे संसारी जागै उसमें वह योगी सोवै"। इसही के आशयपर गुरु गोरखनाथ के समय से यह कहावत है। गुरु की सोष=गुरु के उपदेश से ऐसी ऊंची अवस्था उस जिज्ञासु योगी की हो जाती है (स० २२। १५।)

(२४) परघी=परमात्मा सम्बन्धी बुद्धि। घर=हृदय, अन्तःकरण। परधन=परमात्मज्ञान वा पराभक्ति। वा सतों से प्राप्त ज्ञान धन। पर निंदा=आत्मा से परे भिन्न जो अनात्म संसार माया उसकी निंदा नाम ग्लान करै और त्यागै। (स० । २२।१८)

(२५) मांस भषै=पदार्थों में ममतारूपी अमेध्य लालसा को भक्षण कर जाय, अर्थात् नाश कर दे। मोह की मदिरा मदांधता को पीवै, नाम (शिवजी ने जैसे गरल पी लिया वैसे) पीकर निवारण कर सिद्ध योगी बनै। अथवा भगवत्पदारविंद-मकरंदयुक्त मधु-मदिरा पीकर मस्त हो जाय। उसको पीकर संसारी मोह से मोहित न होवै। मांस कहने से यह भी अभिप्राय होता है कि तम रूपी पशु का ज्ञानी सिंह बनकर वध करै। उसमें के ज्ञानरूपी मांस (सत्य पदार्थ) को भाव नाम ग्रहण करै और विषयादिक अस्थि आदिक को त्याग दे।

(२६) अति निर्दयी=अति कठोर इन्द्रियरूपी (विषयरूपी चारेको चरनेवाले) पशुओं को मारनेवाला जो जितेंद्रिय पुरुष सो ही संसार सागर से तिरै। (स० २२। १६।)

सुन्दर समुझावै बहू सुनि है मेरी सास।
माइ बाप तजि धी चली अपने पिय के पास ॥ २७ ॥

बढ़ई कारीगर मिल्यौ चरषा गड्यौ बनाइ।
सुन्दर बहू सतेवरी उलटौ दियौ फिराइ ॥ २८ ॥

सुन्दर सबही सौं मिली कन्या अपन कुमारि।
वेस्या फिरि पतिव्रत लियौ भई सुहागनि नारि ॥ २९ ॥

कलिजुग मैं सतजुग कियौ सुन्दर उलटी गंग।
पापी भये सु ऊबरे धरमी हूये भंग ॥ ३० ॥

---

(२७) बहू=शुभगुणयुक्त शुद्ध बुद्धि यो ही बहू, अपनी सास सुरत को समझाती है, अर्थात् ब्रह्मज्ञान का उपदेश देती है। माइ=माया, बाप=वपु, शरीर और उसके विषभोग। इन मा बाप को त्यागकर धी जो शुद्धबुद्धि सो अपनी पति परमात्मा के पास चली। (स० २२। १७।)

(२८) बढ़ई=गुरु (जो शिष्यरूपी काठ को सुडौल करै) ने चित्तरूपी चरखे को बना दिया, शुद्ध कर दिया। यह चित्तरूपी चर्खा शुद्धबुद्धि बहू को फिराने को मिला तो उसने उलटा फिरा दिया। अर्थात् बहिर्मुख हुआ वा किया गया। (स०। २२। १९।)

(२९) कन्या=असंस्कृत जिज्ञासु की कच्ची बुद्धि सो अनेक गुरु और शास्त्रों के पास जाकर सीखै पढ़ै। इस प्रकार यह बुद्धि व्यभिचारिणी (वेश्या) होकर अन्त में एक परम तत्व परमात्मा को पाकर उसही का व्रत धारकर पतिव्रता हो गई। अर्थात् ज्ञान पिपासा की तृप्ति के लिए गुरुओं द्वारा सत्य खोजा तब तो व्यभिचार हुआ और अन्त में सिद्धि प्राप्त हुई तब लययोग द्वारा अद्वैत ब्रह्म की प्राप्ति हुई। (स०। २२। २०।)

(३०) कलिजुग=मलीन कर्मों में लीन ऐसी काया सोही कलियुग। उसमें इस ज्ञान का प्रभाव होने से सतयुग हुआ। भागीरथ की नाईं ज्ञान की गंगा को मोड़कर उद्धारक हुआ। इन्द्रियों और उनके विषयों को मारनेवाला ज्ञानी पुरुष

विप्र रसोई करत है चौकै काढी कार।
लकरी में चूल्हा दियौ सुन्दर लगी न वार ॥ ३१ ॥
रोटी ऊपर पोइकै तवा चढायौ आंनि।
पिचरि मांहे हण्डिका सुन्दर रांधी जानि ॥ ३२ ॥
पहराइत घर कौं मुसै साहु न जांनै कोइ।
चोर आइ रक्षा करै सुन्दर तब सुख होइ ॥ ३३ ॥

(हत्यारा होकर) ऊसरा अर्थात् ससार को तिर गया। और इन्द्रियों का पोषण और विषयों का सुख माननेवाला ससारी जीव (उनको न मारने से) धर्मी कहाया परन्तु उसकी आत्मा की हानि हुई इससे उसका नाश ही है अर्थात् दुर्गति को प्राप्त हुआ। (स० । २२ । २० ।)

(३१) विप्र=वेदादिशास्त्रों का ज्ञाता ज्ञानी पुरुष वा जीव रसोई नाम ज्ञान भक्ति करने लगा तब चौका नाम अन्तःकरण चतुष्टय में साधन चतुष्टय करने लगा वहां संसार का बहिष्कार कर दृढ़ वृत्ति की मर्यादा कर दी। और लकरी नाम अन्तर्मुख की लय तल्लीनता में चूल्हा नाम चित्त को दिया नाम लगाया। ऐसा तत्क्षण हो गया विलम्ब नहीं लगी। "क्षिप्रं भवतिधर्मात्मा" (गीता) इस वचन से ज्ञान के उदय होते ही अज्ञान तिमिर का नाश हो गया।

(३२) रोटी नाम रटन निरन्तर भगवत् का भजन उसपर नाम उसमें तवा नाम तत्वज्ञान का सुदृढ़ रक्षण तवा (ढाल) चढाया नाम योगारूढ़ हुआ। तब तत्व ज्ञान प्राप्त हो गया। पिचरी नाम भक्ति और ज्ञान मिश्रित साधन खाद्य पदार्थ तामें हंडिया नाम इस काया को रांधी नाम लीन कर दी और रधने से सिद्धान्न समान युक्त पदार्थ हो गई। "काया भई कपूर"। सिद्धों की काया नूरानी और तेजोमय हो जाती हैं। (स० । २२ । २१ ।)

(३३) पहराइत=ज्ञानेंद्रिय और कर्मेन्द्रिय जो नवद्वारों पर बैठी अपने रक्षा कर्म से विमुख होकर विषय लोलुपता उत्पन्न कर मन आदि अन्तःकरणरूपी घर को पट कर दिया। तब वह प्रसिद्ध चोर श्रीनारायण भगवान ने अपने जन पर दया कर

कोतवाल कौं पकरि कै काठी राष्यौ जूरि।
राजा भाग्यौ गांव तजि सुन्दर सुख भरपूरि ॥ ३४ ॥

नाइक लाधौ उलटि करि बैल बिचारै आइ।
गौन भरी लै वस्तु मैं सुन्दर हरिपुर जाइ ॥ ३५ ॥

सुन्दर राजा विपति सौं घर घर मांगै भीष।
पाय पयादौ उठि चलै घोरा भरै न बीष ॥ ३६ ॥

उन कृतघ्न पहरियों को मार कर अर्थात् इन्द्रिय दमनकर अन्त:करण के घर की रक्षा की अर्थात् चित्त को भगवत् के अन्दर लगा दिया। तब संसार के त्रिविध दुःखों से छुटकारा पाकर ब्रह्मानन्द सुख पाया। (स० २२। २४।)

(३४) कोतवाल=अज्ञान काल में चचल मन। उसे जूरि राष्यो=संकल्प से निरोध किया। राजा=रजोगुण। गांव=अन्त:करण। कोतवाल के बल पर राजा राज करता था। जब कोतवाल कैद हो गया तो राजा का बल नष्ट होने से लज्जित हो घरबार छोड़ भाग गया। चित्तवृत्ति के निरोध से सतोगुणी वृत्ति की वृद्धि हुई तब रजोगुण नहीं रहा तो शांति मिली।

(३५) बैल=बलीवर्द बलवान अहङ्कार वाला यह जीव निष्काम वृत्ति धारण करके अपने कर्मभार को नाइक नाम ब्रह्म पर धर दिया। "ब्रह्मण्याधाय कर्माणि" (गीता) कर्मों को अपने ऊपर न लेकर ब्रह्म में अर्पण करे। इस वचन प्रमाण से आइ नाम इस ससार में बिचारै नाम लाइलाज कर्मों के फलों के भोगवश ससार में मनुष्य देह पाकर यह सुकृत गुरु के उपदेश से किया। और गौन वा गौण—गुणा-नाम इदम् गौणम्—गुणों (सत-रज-तम) से बनै सो गौण (बोरा) अर्थात् गुणों से उत्पन्न हुए कर्मों को वस्तु—सत्य पदार्थ-ब्रह्म में भर दिये नाम अर्पण कर दिये। हरिपुर-हरि जो भगवान् ब्रह्म—उसका पुर दिसावर लोक—ब्रह्मलोक तुर्यावस्था को जाइ नाम प्राप्त हो गया। (स० २२। २२।)

(३६) राजा=रजोगुण युक्त जीव (वा मन)। विपति नानाप्रकार तृष्णाओं से लिप्त और उनके पूर्ण करने के यत्नों में पड़ा और फसा हुआ अनेक शुभाशुभ कर्म

पानी फिरै पुकारतौ उपजी जरनि अपार।
पावक आयौ पूछनें सुन्दर वाकौ सार ॥ ३७ ॥
जौ तूं मेरी सीषले तौ तू सीतल होइ।
फिरि मोही सौं मिलि रहै सुन्दर दुःख न कोइ ॥ ३८ ॥
पंथी मांहे पंथ चलि आयौ आकसमात।
सुन्दर वाही पंथ गहि उठि चाल्यौ परभात ॥ ३९ ॥

करै और अनेक पुरुषों से सहायता चाहै और इन्द्रिय द्वारों में आश्रय ढूंढे। विषयों के भोगों से शरीररूपी घोड़ा वाहन थक गया निर्बल निकम्मा हो गया तब अशक्त हुआ भी पाय पयादा नाम मनोवृत्ति से सकल्प मात्र ही से तृष्णाओं के भोगों का विचार कर मन दुलता रहै। अर्थात् मन की वासना तो शक्तिहीन होनेपर नहीं मिटी। भीष=भिक्षा। बीष=बीख, एक प्रकार की हलकी चाल घोड़े की। (स०। २२। २५।)

(३७) पानी=प्रेम से उत्पन्न विरह की तपत। उसको ज्ञानरूपी अग्नि प्रगट होकर बुझावै। अर्थात् विरह सताप पक्वज्ञान के पैदा होने से निवृत्त होता है। जिज्ञासु ज्ञानी सिद्धों को, ज्ञान-पिपासा मिटाने को, ढूंढता है तो दयाकर ज्ञानी सिद्ध अग्निरूप ज्ञान की मानों मूर्त्ति ही उस विरह कातर को सम्हाल करके उसका समाधान करके संसार जनित त्रिविध ताप को निवारण करता है। (स०। २२। २६।)

(३८) सीतल=ज्ञान प्रेम को कहता है कि मेरे उपदेश से तू (जो स्वभाव से शीतल है) सीतल हो जाय। फिर प्रेम और ज्ञान एकमेक हो जाय। भक्ति में प्रथम द्वैत भाव अवश्य रहता है तब ही तो भक्त अपने उपास्य की प्राप्ति में विह्वल होता है। जब होते होवे पराभक्ति की मंजिल आ पहुंचती है तब ज्ञान (अर्थात् अद्वैत ज्ञान—अपरोक्षानुभूति) दशा प्राप्त होकर ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है। (स०। २२। २६।)

(३९) पंथी=मुमुक्षु सत साधक के भीतर पंथ जो स्वयम् ज्ञान आकर प्राप्त हुआ। उस ज्ञानरूपी पंथ के मुमुक्षु पथी में प्रवेश होते ही वह सुवेला (ब्रह्म प्राप्ति

चलत चलत पहुंच्यौ तहां जहां आपनौ भौंन।
सुन्दर निश्चल ह्वै रह्यौ फिरि आवै कहि कौंन ॥ ४० ॥

बन में एक अहेरिये दीनी अग्नि लगाइ।
सुन्दर उलटै धनुष सर सावज मारै आइ ॥ ४१ ॥

मार्‍यौ सिंह महा बली मार्‍यौ व्याघ्र कराल।
सुन्दर सबही घेरि करि मारी मृग की डाल ॥ ४२ ॥

सुन्दर सरवर सूकतैं कंवल प्रफुल्लित होइ।
हंस तहां क्रीडा करै पंषी रहै न कोइ ॥ ४३ ॥

का विशेष समय ब्राह्म मुहूर्त) में, आप ज्ञानरूप होकर योगारूढ होकर ब्रह्मरूप होने को स्वयम् चल पड़ा। (स० । २२ । २८ ।)

(४०) चलत=उस ज्ञान मार्ग में ज्ञानरूप होकर वह ज्ञानी ऊर्द्धगामी होकर ब्रह्मलोक, निज ज्ञान भवन, में जा पहुंचा। और वहां निश्चल हो गया। "य प्राप्य न निवर्त्तते तद्धाम परमं मम" (गीता) वह परमोत्कृष्ट निज ब्रह्म का धाम है वहां पहुच कर ज्ञानी फिर नहीं लौटता। वहीं ब्रह्ममय ब्रह्मस्वरूप होकर ब्रह्मानन्दरूपी हो रहता है। (उक्त।)

(४१) बन में—ससार के विषय भोगरूपी बन। अहेरिया=शिकारी, साधक संत। अग्नि=ज्ञानकी अग्नि। धनुष=ध्यान। सर=बाण, लक्ष्यपर चित्त वृत्ति। सावज=शिकार, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिक दुष्ट पशुरूपी घातक। (स० । २२ । २९ ।)

(४२) सिंह=अहंकार या काम। व्याघ्र=बहिर्मुख मन या मोह। मृग की डाल=इन्द्रियों का समूह। डाल=डार, झुंड। इन सब को मारा नाम जय किया। (उक्त।)

(४३) सरवर=संसाररूपी ताल या छोटा समुद्र। उसका सूखना=निःशेष होना। कँवल=शुद्ध हृदय या शुद्ध बुद्धि। प्रफुल्लित=ब्रह्मानन्द पाकर परम हर्षित होना। हंस=ब्रह्मानन्द प्राप्त सन्त। क्रीडा=ब्रह्मानन्द सुख में मग्न होना। पंषी=संसारी

कूप उसार्यो कुंभ में पानी भर्यौ अटूट।
सुन्दर तृषा सबै गई धापे चार्यों पूट ॥ ४४ ॥
सुन्दर बरिषा अति भई सूकि गई सब साप।
नींब फल्यौ बहु भाति करि लागे दाड्यौं दाप ॥ ४५ ॥
मिष्ट सु तौ करवो लग्यौ करवो लाग्यौ मीठ।
सुन्दर उलटी बात यह अपने नैननि दीठ ॥ ४६ ॥

जीवरूपी पक्षी, अथवा बहिर्मुख बाहर ससार के विषयों के चुगनेवाले पक्षीरूप चित के विकार वा वृत्तियां।

(४४) कूप=विषयरूपी अध कूप जिसमें वासना तृष्णारूपी जल भरा हुआ है। कुंभ=मन शुद्ध मन। उसार्या=छिड़काया। मन के एकाग्र वा शुद्ध हो जाने पर विषयादिक निवृत्त हो गये। पानी=प्रेम वा ज्ञान। अटूट=अनत, अथाह। तृषा=मृग-तृष्णा, वा विषय वासना। गई=मिट गई। धापे=तृप्त हुए। चार्यो पूट=चारों कोंन। अतःकरण चतुष्टय। दिव्य ज्ञान की प्राप्ति से परमानन्द प्राप्त हुआ तो फिर कई भूख प्यास, इच्छा, कामना अवशेष ही नहीं रही। सर्व परिपूर्ण हो गया।

(४५) बरिषा=गुरु शास्त्र द्वारा उपदेश प्राप्त होकर साधन चतुष्टय किया तो ज्ञानामृत की वर्षा इतनी हुई कि सांसारिक विषय भोगादि की खेती सब नष्ट हो गई, अर्थात् ज्ञानरूपी वर्षा से विषयरूपा बाड़ी सूख गई नाम निवृत्ति हो गई। और अन्य वृक्ष तो सूख गये परन्तु केवल प्रथम जा कड़ुवा लगता था उपदेशरूपी कल्पवृक्ष सा वा मीठे फलों से (दाडिम अनार और दाख अगूर आदिक) फलवाला हो गया, नाम सत्य, निष्कामता, अमानता, अदंभ, अहिंसा, तितिक्षा आदि फल लगे।

(४६) मिष्ट=संसारका सुख जा आदि में मीठा सुप्यारा लगता था वह त्याग वैराग्य प्राप्त हुआ तब कड़ुवा लगा। और त्याग वैराग्य जो पहिले कड़ुवा लगता था वह अब मीठा प्रिय लगने लगा। सुन्दरदासजी ने यह बात निज अनुभव से कही है। अथवा निज गुरु दादूजी और अन्य महात्माओं का भी यही हाल्त अपने आंखों देखा है।

मित्र सु तौ बैरी भये बैरी हूये मित।
सुन्दर उलटी बात सौं भागी सबही चित ॥ ४७ ॥

ऊजर मैं बस्ती भई बस्ती भई उजारि।
सुन्दर उलटे पेच कौं पंडित देषि बिचारि ॥ ४८ ॥

नीच सु तौ ऊंचौ भयौ ऊंचौ हूवौ नीच।
सुन्दर उलटौ ज्ञान है इनि साधिन के बीच ॥ ४९ ॥

सुन्दर सब उलटी कही संमुझै संत सुजांन।
और न जांनै बापुरे भरे बहुत अज्ञांन ॥ ५० ॥

॥ इति विपर्जय को अंग ॥ २० ॥

---

(४७) मित्र=मोह, ममता, सुत, कलत्र, वतक आदि सब हेय और अप्रिय हो गये। वे मोक्ष मार्ग में बंधन होने से शत्रु समान लगने लगे। और जो प्रथम बैरी समान अप्रिय लगते थे, साधु संत, शास्त्र, सत्संग, भजन, भक्ति वे अब मोक्ष के सच्चे साधन होने से मित्र समान प्यारे लगने लगे।

(४८) ऊजर=उजाड़, निर्जन स्थान, वा अंतरंग अंतःकरण का लोक जिसमें ज्ञान प्राप्ति से पहिले मन की वृत्तियां अन्तर्मुख होकर नहीं बैठती वा बसती थीं। अथवा विविक्तदेश, निर्जनस्थान में त्यागी संत बसते हैं। बस्ती=विषय-लोलुप बहिर्मुख इन्द्रिय विषयादि का ससार उजड़ गया नाम अब मन और अन्तःकरण की वृत्तियां इधर से उठ गईं। अथवा त्यागी बैरागी ने घर बार सब छोड़ दिये और वन में जा बसे।

(४९) नीच=जो प्रथम कुसंग और कुकर्मरत था वह सत्संग और सत्कर्म से उत्तम हो गया। और जो उच्चकुल का वा अच्छा था वह कुसंग और कुमार्गगामी हो जाने से अधोगति को प्राप्त होकर नीचा गिर गया।

(५०) अर्थ स्पष्ट है।

॥ इति साषी का अंग २० विपर्यय शब्द का सुन्दरानन्दी टीका सहित समाप्तम् ॥ २० ॥

॥ अथ समर्थाई आश्चर्य को अंग ॥ २१ ॥

दोहा

सुन्दर समरथ राम है जे कछु करै सु होइ।
जो प्रभु कौं कछु कहत है ता समबुरा न कोइ ॥ १ ॥

कर्तुमकर्त्ता अन्यथा सुन्दर सिरजनहार।
पलक मांहि उतपति करै पलक मांहि संहार ॥ २ ॥

ज्यौं हरि भावै त्यौं करै कौन कहै यह नांहि।
अरि उपावै पलक मैं सुन्दर पाला मांहि ॥ ३ ॥

ज्यौं हरि भावै त्यौं करै काले धौले रंग।
धौले तें काले करै सुन्दर आपु अभंग ॥ ४ ॥

सुन्दर संमरथ राम की मो पै कही न जाइ।
पलही में जल थल भरै पल में धूरि उडाइ ॥ ५ ॥

सुन्दर संमरथ राम कौं करत न लागै धार।
पर्वत सौं राई करै राई करै पहार ॥ ६ ॥

सुन्दर सिरजनहार कौं करतें यैसी शंक।
रङ्कहि लै राजा करै राजा सौं लै रङ्क ॥ ७ ॥

सुन्दर सिरजनहार की सबही अद्भुत बात।
गर्भ मांहि पोषत रहै जहां गम्य नहिं मात ॥ ८ ॥

सुन्दर संमरथ राम कौं कहत दूरि तें दूरि।
पलक मांहि प्रगटै सही हृदये मांहि हजूरि ॥ ९ ॥

---

(२) "कर्तुमकर्त्ता…"। भगवान शब्द की परिभाषा—कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम् समर्थः। अच्छा बुरा करने न करने के लिए जो सामर्थ्य रखते वही भगवान (ईश्वर) है। सर्वशक्तिमान परमात्मा है।

सुन्दर संमरथ राम की महिमा कही न जाइ।
देषहु या अकाश कौं क्यौं करि राष्यौ छाइ ॥ १० ॥

सुन्दर अगम अगाध गति पल मैं बादल होइ।
गरजै चमकै बिज्जली बरषन लागै तोइ ॥ ११ ॥

पल मैं कछुव न देषिये सुद्ध रहै आकाश।
सुन्दर समरथ रामजी उतपति करै रु नाश ॥ १२ ॥

एक बूद तें चित्र यह कैसौ कियौ बनाइ।
सुन्दर सिरजनहार की रचना कही न जाइ ॥ १३ ॥

जड चेतनि संयोग करि अद्भुत कीयौ ठाट।
सुन्दर संमरथ रामजी भिन्न भिन्न करि घाट ॥ १४ ॥

करै हरै पालै सदा सुन्दर संमरथ राम।
सबही तें न्यारौ रहै सब मैं जिन कौ धाम ॥ १५ ॥

अंजन यह माया करी आपु निरंजन राइ।
सुन्दर उपजत देषिये बहुरयौं जाइ बिलाइ ॥ १६ ॥

उपजै बिनसै जगत सब सुख दुख बहु संताप।
सुन्दर करि न्यारा रहै ऐसा समरथ आप ॥ १७ ॥

सुन्दर करता राम है भरता और न कोइ।
हरता वहई जानिये ऐसा संमरथ सोइ ॥ १८ ॥

जाकी आज्ञा मैं सदा धरती अरु आकास।
ज्यौं राषै त्यौं ही रहै सुन्दर मानहिं त्रास ॥ १९ ॥

---

(११) तोइ=तोय, जल।

(१२) कछुव=कुछ भी।

(१३) एक बूद तें=एक (रज वीर्य के) बिन्दु से। चित्र=तसवीर, मूर्ति, शरीर का आकार, पशु-पक्षी, मछली वानर, मृग-मनुष्यादिक का।

(१४) घाट=घड़त, बनावट।

(१६) अंजन=कालुष्य, अविद्या, जड़ प्रकृति।

पावक पानी पवन पुनि सुन्दर आज्ञा मांहि।
चन्द सूर फिरते रहैं निश दिन आवैं जांहि॥ २०॥

जाकी आज्ञा मैं रहै सुन्दर सप्त समुन्द्र।
सबही मांनहिं त्रास कौं देवन सहित पुरंद्र॥ २१॥

जाकी आज्ञा मैं रहैं ब्रह्मा विष्णु महेस।
सुन्दर अवनि अनादि की धारि रहे सिर सेस॥ २२॥

सुन्दर आज्ञा मैं रहैं काल कर्म जमदूत।
गण गंधर्व निशाचरा और जहां लगि भूत॥ २३॥

सिध साधिक जोगी जती नाइ रहे मुनि सीस।
सुन्दर सबही कहत हैं जै जै जै जगदीस॥ २४॥

आज्ञा मांहि सदा रहैं सुन्दर बरुन कुबेर।
अष्ट कुली पर्वत सहित आज्ञा मांहि सुमेर॥ २५॥

सुन्दर आज्ञा मैं रहैं दशौं दिशा दिग्पाल।
हलें चलें नहिं ठौर तें बीति गये बहु काल॥ २६॥

छपन कोटि आज्ञा करैं मेघ पृथी पर आइ।
सुन्दर भेजैं रामजी तहं तहं बरषैं जाइ॥ २७॥

रिद्धि सिद्धि लौंडी सदा आज्ञा मेटै नांहि।
सुन्दर मानैं त्रास अति प्रभु भेजै तहं जाहि॥ २८॥

आज्ञा मांहीं लक्ष्मी ठाढी है कर जोरि।
सुन्दर प्रभु सनमुख रहै दृष्टि सकै नहि चोरि॥ २९॥

---

(२२) अवनि=पृथ्वी। सेस=शेष सहस्रमुख से पृथ्वी को शिर पर सदा धारे रहते हैं। ऐसा पुराण में लिखा है।

(२७) आज्ञा करैं=(प्रभु की) आज्ञा पाने से। आज्ञा करने से।

(२८) लौंडी=दासी।

(२९) दृष्टि चोरि=निगाह के अनुसार बरतें।

आज्ञा मांहें तत्व सब होइ देह कौ संग।
सुन्दर बहुरि जुदे रहें आज्ञा फरै न भंग ॥ ३० ॥

आज्ञा मांहें रहत है सप्त दीप नौ षंड।
सुन्दर प्रभु की त्रास तें कंपै सब ब्रह्मंड ॥ ३१

ऐसे प्रभु की त्रास तें कंपै सबही लोक।
बार बार करि कहत हैं सुन्दर तुम कौं धोक ॥ ३२ ॥

उभै बाहु चहु बाहु पुनि अष्ट बाहु भुज बीस।
सहस्र बाहु नहिं लिषि सकै सुन्दर गुन जगदीस ॥ ३३

एकानन चतुराननं पंचानन षटशीस।
दश सहस्रानन कहि थके सुन्दर गुन जगदीस ॥ ३४ ॥*

उभै अष्ट दश द्वादशा अरु कहिये पुनि बीस।
द्वै सहस्र लोचन थके सुन्दर ब्रह्म न दीस ॥ ३५

एक रसन चहुं रसन पुनि पंच षष्ट दश आहि।
द्वै सहस्र सुनि सेस के बरनि सकै नहिं ताहि ॥ ३६ ॥

---

(३०) देह कौ सग=देह के संगी बनें। देह का संग दें। बहुरि=मृत्यु के समय काया जीव से पृथक् हो जाय।

(३२) धोक=ढोक कर, झुक कर।

(३३) उभै बाहु=मनुष्य। चहु बाहु=देवता। अष्ट बाहु=देवी, शक्ति भुज बीस=रावण। सहस्रबाहु=सहस्रार्जुन।

(३४) एकानन=मनुष्य। चतुरानन=ब्रह्मा। पचानन=महादेव=षटशीस=षडानन स्वामिकार्तिक। दश=दशानन=रावण। सहस्रानन=शेष *। ३४। 'सहस्रानन' का 'ह' हस्व से पढ़िए।

(३५) उभै आदिक नेत्र उपरोक्त मस्तकों में प्रत्येक में दो २ करके।

(३६) एक रसन आदि उसही तरह एक २ करके उपरोक्त के जिव्हा। केवल शेष के दूनी हैं कि सर्प के दो जिव्हा एक मुख में होती हैं।

एक सीस चहु सीस पुनि पंच सीस षट सीस।
दश सिर और सहस्र सिर नमत सकल जगदीस ॥ ३७ ॥

सूरति तेरी ख़ूब है को करि सकै वपान।
वानी सुनि सुनि मोहिया सुन्दर सकल जिहान ॥ ३८ ॥

पलक माहिं परगट करै पल मैं धरै उठाइ।
सुन्दर तेरै ख्याल की क्यों करि जानी जाइ ॥ ३९ ॥

ज्यौं का त्यौं ही देषिये सुन्दर सब ब्रह्मंड।
यह कोई जानै नहीं कनकी मांडी मंड ॥ ४० ॥

साँई तेरा अगम गति हिक्मति की कुरबांन।
सब सिरजै न्यारा रहै सुन्दर यह हैरान ॥ ४१ ॥

शेष मसाइक औलिया सिध साधिक मुख मौन।
वै भी वैठै थाकि करि सुन्दर वपुरा कौन ॥ ४२ ॥

प्रीतम मेरा एक तू सुन्दर और न कोइ।
गुप्त भया किस कारनै काहि न परगट होइ ॥ ४३ ॥

धन्य धन्य मोटा धनी रच्या सकल ब्रह्मंड।
सुन्दर अद्भुत देषिये सप्त दीप नौ षंड ॥ ४४ ॥

उतपति साईं तैं किया प्रथम हि वो ऊंकार।
तिसतें तीनों गुन भये सुन्दर सब निस्तार ॥ ४५ ॥

तिनका रच्या सरीर यह महल अनूपम एक।
चौरासी लष जूनु ये सुन्दर और अनेक ॥ ४६ ॥*

---

(४०) मंड=मंडान, सृष्टि।

(४१) कुरवान=बलिहारी (अ०)।

(४५) ऊंकार=ऊंकार से सृष्टि की उत्पत्ति वेदशास्त्र में कही है।

(४६) *मूल पुस्तक (क) में 'जू जुवे' ऐसा पाठ है। इसका अर्थ बारिश में छोटे रेंगनेवाले जीव भी हो सकता है। परन्तु हमें लेखक दोष वा भ्रम ही प्रतीत

आप न बैठा गोपि ह्वै सुन्दर सब घट मांहि।
करता हरता भोगता लिपै छिपै कछु नांहि ॥ ४७ ॥

ऐसी तेरी साहिबी जांनि न सकै कोइ।
सुन्दर सब देषै सुनै काहू लिप्त न होइ ॥ ४८ ॥

करै करावै रामजी सुन्दर सब घट मांहि।
ज्यौं दर्पन प्रतिबिंब है लिपै छिपै कछु नाहि ॥ ४९ ॥

बाजीगर बाजी रची ताकौ आदि न अंत।
भिन्न भिन्न सब देषिये सुन्दर रूप अनंत ॥ ५० ॥

काढि काढि बाहिर करै राते पीरे रंग।
सुन्दर चांवर धूरि के पंप परेवा संग ॥ ५१ ॥

कबहूं मिलावै गोटिका कबहूं बीछुरि जांहि।
सुन्दर नाचै जगत सब ऐसी कल तुझ मांहि ॥ ५२ ॥

अंजन कीया नैंन मैं सबही राषै मोहि।
सुन्दर हुन्नर बहुत हैं कोइ न जांनै तोहि ॥ ५३ ॥

ब्रह्मादिक शिव मुनि जनां थाके सबही संत।
सुन्दर कोउ न कहि सकै जाकौ आदि न अंत ॥ ५४ ॥

सुन्दर सब चकित भये वचन कह्या नहिं जाइ।
टग टग रहे सु देषते ठगमूरी सी पाइ ॥ ५५ ॥

यातैं कोउ न कहि सकै थकित भये सिध साध।
सुन्दर हू चुप करि रहे वह तौ अगम अगाध ॥ ५६ ॥

वचन तहां पहुंचै नहीं तहां न ज्ञान न ध्यांन।
कहत कहत यौं ही कह्यौ सुन्दर है हैरांन ॥ ५७ ॥

हुआ। स्यात् 'नु' का 'जु' लिखा हो। इससे 'जुनु मैं' ऐसा पाठ बना दिया है। जुनु=जूण=योनियां। (५२) कल=कला।

(५३) अंजन=भुरकी का काजल।

नेति नेति कहि थकि रहे सुन्दर चार्यौं बेद।
अगह अकह अविशेष कौं कोउ न पावै भेद॥ ५८ ॥

किनहूं अंत न पाइयौ अब पावै कहि कौंन।
सुन्दर आगें होहिंगे थाकि रहे करि गौंन॥ ५६ ॥

लौंन पूतरी उदधि में थाह लेन कौं जाइ।
सुन्दर थाह न पाइये बिचिही गई बिलाइ॥ ६० ॥

अनल पंपि आकाश में उडे बहुत करि जोर।
सुन्दर वा आकास कौ कहूं न पायौ छोर॥ ६१ ॥

॥ इति समर्थाई को अंग ॥ २१ ॥

॥ अथ आपने भाव को अंग ॥ २२ ॥

सुन्दर अपनौ भाव है जे कछु दीसै आंन।
बुद्धि योग बिभ्रम भयौ दोऊ ज्ञान अज्ञान॥ १ ॥

जो यह देषै क्रूर ह्वै तौ वह होत कृतांत।
सुंदर जौ यह साधु ह्वै तौ आगै है सांत॥ २ ॥

सुन्दर जौ यह हंसि उठै तौ आगै हंसि देत।
जो यह काहू देत है तौ वह आगै लेत॥ ३ ॥

जो यह टेढौ होत है आगै टेढौ होइ।
सुन्दर परतप देषिये दर्पन मांहे जोइ॥ ४ ॥

---

(५८) अविशेष=निर्गुण, विशेष रहित।

(५९) गौंन=गमन।

[अंग २२] (२) कृतांत=यमराज। सांत=शांत, सात्विक।

(४) परतप=प्रत्यक्ष।

सुन्दर महल संवारि कै राख्यौ कांच लगाइ।
दैव योग सुनहां गयौ एक अनेक दिषाइ॥ ५॥

अपनी छाया देषि कै क्रूकर जानै आंन।
सुन्दर अति ही जोर करि भुसि भुसि मूवौ स्वांन॥ ६॥

सिंह कूप परि आइ कैं देषी अपनी छांहिं।
सुन्दर जान्यौ दूसरौ बूडि मुवौ ता माहिं॥ ७॥

फटिक सिला सौं आय करि कुंजर तोरै दन्त।
आगै देख्यौ और गज सुन्दर अज्ञ अतिंत॥ ८॥[*]

सुन्दर याकै ऊपजै काम क्रोध अरु मोह।
याही कै ह्वै मित्रता याही कै ह्वै द्रोह॥ ९॥

आपु हि फेरी लेत है फिरते दीसै आंन।
सुन्दर ऐसै जानि तू तेरौ ही अज्ञांन॥ १०॥

सुन्दर याकै शंक है याही है निहसंक।
याही सूधौ ह्वै चलै याही पकरै बंक॥ ११॥

सुन्दर याकै अज्ञना याही करै बिचार।
याही बूडै धार मैं याही उतरै पार॥ १२॥

सुन्दर अपने भाव करि पूजै देवी देव।
यह मैं पायौ पुत्र धन बहुत करी तीं सेव॥ १३॥

सुन्दर सूकै हाड कौं स्वान चचोरै आइ।
अपनौई मुख फोरि कै लोही चाटै षाइ॥ १४॥

---

(५) सुनहा=श्वान, कुत्ता।

* । ८। "अयन्त" होता तो अनुप्रास ठीक रहता।

(११) बंक=बांकापन।

(१३) तीं=उसकी। या उसने।

(१४) चचोरै=चबावै।

सुन्दर अपने भाव करि आप कियौ आरोप।
काहू सों सन्तुष्ट ह्वै काहू ऊपर कोप॥ १५॥

अपनोंई सब भाव है जो कछु दीसै और।
सुन्दर समुझै आतमा तब याही सब ठौर॥ १६॥

नीचे तें नीचे सही ऊंचे ऊपरि ऊंच।
सुन्दर पीछे तें पछे आगे कों न पहूंच॥ १७॥

बाहिर भीतरि सारिषौ व्यापक ब्रह्म अखण्ड।
सुन्दर अपने भाव तें पूरि रह्यौ ब्रह्मण्ड॥ १८॥

याही देषत सूर सौं याही देषत चन्द।
सुन्दर जैसौ भाव है तैसोंई गोविन्द॥ १९॥*

याही देषत नूर कों याही देषत तेज।
याही देषत जोति कौं सुन्दर याको हेज॥ २०॥

सुन्दर अपने भाव तें जनकी करे सहाइ।
बाहिर चढि कै बीठलौ दुष्ट हि मारै आइ॥ २१॥

सुन्दर अपने भाव तें मूरत पीयौ दुद्ध।
ठाकुर जान्यों सत्य करि नामां को उर सुद्ध॥ २२॥

सुन्दर अपनं भाव तें रूप चतुर्भुज होइ।
याकों ऐसोंई दसै वाकै रूप न कोइ॥ २३॥

काहू मान्यौ सींग सौ हृदये उपज्यौ चाव।
सुन्दर तैसोंई भयौ जाकै जैसौ भाव॥ २४॥

काहू सौं अति निकट है काहू सौं अति दूरि।
सुन्दर अपनो भाव है जहां तहां भरपूरि॥ २५॥

॥ इति आपने भाव को अंग ॥ २२ ॥

---

*। १९। "गोव्यंद" से अनुप्रास ठीक होता है।

(२२) बीठल और नामदेवजी की कथा भक्तमाल में प्रसिद्ध है।

॥ अथ स्वरूप विस्मरण को अंग ॥ २३ ॥

सुन्दर भूलौ आपकौं षोई अपनी ठौर।
देह मांहिं मिलि देह सौ भयौ और की और ॥ १ ॥

जा घट की उनहारि है तैसौ दीसत आहि।
सुन्दर भूलौ आपु ही सो अब कहिये काहि ॥ २ ॥

हाथी मांहे देषिये हाथी कौ अभिमांन।
सुन्दर चीटी मांहिं रिस चीटी कै अनुमांन ॥ ३ ॥

सिंह मांहि है सिंह सौ स्याल मांहिं पुनि स्याल।
जे हार है सुन्दर तैसौ ष्याल ॥ ४ ॥

हंस मांहिं है हंस सौ मोर मांहि है मोर।
सुन्दर जैसौ घट भयौ तैसौई तिहिं घोर ॥ ५ ॥

र्प ू भयौ सर्प मांहि है सांप।
सु घट भयौ तैसौ ह्वौ आप ॥ ६ ॥

बादर मैं बादर भयौ मच्छ मांहि पुनि मच्छ।
सुन्दर गाइनि मैं गऊ बच्छनि मांहि बच्छ ॥ ७ ॥

क ब्योमचर गनै कहां लौ कोइ।
सु घट जहां रह्यौ तिसौही होइ ॥ ८ ॥

सुन्दर पावक दार कै भीतरि रह्यौ समाइ।
दीरघ मैं दीरघ लगै चौरे मैं चौराइ ॥ ९ ॥

रं मथन करि बहुरि होइ बलवन्त।
सु काठ कौं जारि करै भस्मन्त ॥ १० ॥

] (२) उनहारि=समान, मिलता हुआ।
=रीस, क्रोध।
=दारु, काठ।

सुन्दर जड के संग तें भूलि गयौ निजरूप ॥
देषहु कैसौ भ्रम भयौ बूडि रह्यौ भव कूप ॥ ११ ॥

सुन्दर इन्द्रिय स्वाद सौं अति गति वांध्यौ मोह।
मीन न जानै वावरौ निगलि गयौ सठ लोह ॥ १२ ॥

मरकट मूठ न छाडई बंध्यौ स्वाद सौं आइ।
सुन्दर गर में जेवरी घर घर नाच्यौ आइ ॥ १३ ॥

जैसैं मदिरा पान करि होइ रह्यौ उनमत्त।
सुन्दर ऐसैं आपु कौं भूल्यौ आतम तत्त ॥ १४ ॥

ज्यौं ठगमूरि षात ही रहै कछू नहिं बुद्धि।
यौं सुन्दर निजरूप की भूलि गयौ सब सुद्धि ॥ १५ ॥

जैसैं वालक शंक करि कंपि उठै भय मांनि।
ऐसैं सुन्दर भ्रम भयौ देह आपु कौ जांनि ॥ १६ ॥

जे गुन उपजैं देह कौं सुख दुख बहु संताप।
सुन्दर ऐसौ भ्रम भयौ ते सब मानै आप ॥ १७ ॥

शीत उष्ण क्षुधा तृषा मोकौं लागं आइ।
सुन्दर या भ्रम की नदी ताही मैं वहि जाइ ॥ १८ ॥

अंध बधिर गूगौ भयौ मेरौ कौंन हवाल।
सुन्दर ऐसौ मानि करि बहुत फिरै वेहाल ॥ १९ ॥

मिलि करि या जड देह सौं रह्यौ तिसौही होइ।
सुन्दर भूलौ आपु कौं सुधि बुधि रही न कोइ ॥ २० ॥

सुन्दर चेतनि आतमा जडसौं कियौ सनेह।
देह पेह सौं मिलि रह्यौ रत्न अमोलक येह ॥ २१ ॥

दौरि दौरि जड देह कौं आपुहि पकरत आइ।
सुन्दर पंच पर्‌यौ कठिन सकं नहीं सुरझाइ ॥ २२ ॥

सूवा पकरि नली रह्यौ वह कहुं पकर्‌यौ नांहि।
ऐसैं सुन्दर आपु सौं पर्‌यौ पींजरा मांहि ॥ २३ ॥

ज्यौं गुंजनि कौ ढेर करि मरकट मानै आगि ।
ऐसें सुन्दर आपही रह्यौ देह सौं लागि ॥ २४ ॥

विप्र ह्वै रह्यौ शूद्र सौ भूलि गयौ ब्रह्मत्व ।
सुन्दर ईश्वर आपही मांनि लियौ जीवत्व ॥ २५ ॥

राजा सोयौ सेज परि भयौ स्वप्न मंहि रंक ।
सुन्दर भूलौ आपकौं देह लगाई पंक ॥ २६ ॥

ज्यौं नर बहुत स्वरूप है भ्रम तें कहै कुरूप ।
सुन्दर भूलौ आपुकौं आतम तत्त्व अनूप ॥ २७ ॥

बनिया मूधौ ह्वै रह्यौ टूगें फेर्‌यौ हाथ ।
सुन्दर ऐसो भ्रम भयौ मेरै तौ नहिं माथ ॥ २८ ॥

ज्यौं मनि कोऊ कंठ थी भ्रम तें पावै नाहिं ।
पूछत डोलै और कौं सुन्दर आपुहि मांहि ॥ २९ ॥

सुन्दर चेतनि आपु यह चालत जड की चाल ।
ज्यौं लकरी के अश्व चढ़ि कूदत डोलै बाल ॥ ३० ॥

भूतनि माहे मिल रह्यौ तातें ह्वौ भूत ।
सुन्दर भूलौ आपु कौं जरम्यौ नौ मन सूत ॥ ३१ ॥

आपुहि इन्द्री प्रेरि कैं आपुहि मानै सुक्ख ।
सुन्दर जब संकट परै आपु हि पावै दुःख ॥ ३२ ॥

यौं भ्रम तें बहु दिन भये बीति गयौ चिरकाल ।
सुन्दर लह्यौ न आपुकौं भूलि पर्‌यौ भ्रमजाल ॥ ३३ ॥

---

(२४) गुंजनि=लाल चिरमटी । (२६) पंक=कादा, मलिनता ।

(२८) मूधो=औंधा, उलटा । टूगें=ढूगे पर, चूतड़ पर । मूर्ख बनिये ने चूतड़ पर हाथ फेरा तो ख्याल किया कि यह तो चूतड़ है सिर नहीं है तो मान लिया कि सिर नहीं रहा । ऐसा उसे भ्रम हो गया । ऐसा सुन्दरदासजी ने कहीं देखा सा ही स्वरूप-विस्मरण के दृष्टांत में लिख दिया ।

देह मांहि ह्वै देह सौं कियौ देह अभिमांन।
सुन्दर भूलौ आपु कौं वहुत भयौ अग्यांन॥ ३४॥

कामी हूवो काम रत जती हुवो जत साधि।
सुन्दर या अभिमान तें दोऊ लागी व्याधि॥ ३५॥

कतहू भूलौ नीच ह्वै कतहू ऊंची जाति।
सुन्दर या अभिमांन करि दोनौं ही कै राति॥ ३६॥

कतहू भूलौ मौनि धरि कतहू करि वकवाद।
सुन्दर या अभिमान तें उपज्यौ वहुत विषाद॥ ३७॥

सुन्दर यौं अभिमान करि भूलि गयौ निज रूप।
कबहू बैठै छांहरी कबहू बैठै धूप॥ ३८॥

सुन्दर ऐसौ भ्रम भयौ छूटो अपनौ भौन।
दिशा भूल जानै नहीं पूरव पच्छिम कौन॥ ३९॥

सुन्दर वाकी सुधि गई जाकौं लागौ भूत।
काहू सौं बनिया कहै काहू सौं रजपूत॥ ४०॥

सुन्दर वाकी सुधि गई जाकौं लागी बाइ।
कहै औरकी औरई जो भावै सो पाइ॥ ४१॥

काहू सौं बाभन कहै काहू सौं चंडाल।
सुन्दर ऐसौं भ्रम भयौ यौं ही मारै गाल॥ ४२॥

ज्यौं अमली की ऊघतें परी भूमि पर पाग।
वह जानै यह औंर की सुन्दर यौं भ्रम लाग॥ ४३॥

---

(३६) राति=अंधेरा, अज्ञान। अथवा आराति=दुःख।

(४२) बांभन=ब्राह्मण। ब्राह्मण शब्द का गवारू अपभ्रंश है। हास्य के लिए ऐसा अपभ्रंश दिया है।

(४३) अमली=अमलदार, अफीमची। ऊघ=ऊंघना।

जैसें चिल्लीसेष हू कियौ मनोरथ और।
सुन्दर भूली आपु कौं यौं हूवो घर चौर॥ ४४॥

देह आपकौं जानि करि ब्राह्मन क्षत्रिय होइ।
वैश्य सूद्र सुन्दर भयौ अपनी सुधि बुधि षोइ॥ ४५॥

देह पुष्ट ह्वै दूबरी लगै देह कौं घाव।
चेतनि मानै आपुकौं सुन्दर कौन सुभाव॥ ४६॥

देह बाल अरु वृद्ध ह्वै जोवनि ह्वै पुनि देह।
सुन्दर मानैं आपुकौं दषहु अचिरज येह॥ ४७॥

बुद्धि हीन अति बावरौ देह रूप ह्वै जाइ।
सुन्दर चेतनता गई जडता रही समाइ॥ ४८॥

सान्यौ घर माँहि कहै हूं अपने घर जाउं।
सुन्दर भ्रम ऐसौ भयौ भूलौ अपनौ ठाउं॥ ४९॥

रवि रवि कौं ढूढत फिरै चन्द हि ढूढै चन्द।
सुन्दर हूवो जीव सौ आपु इहै गोबिंद॥ ५०॥

॥ इति स्वरूप विसमरण कौ अंग ॥ २३ ॥

---

(४४) चिल्लीसेष="शेख चिल्ली"। अपभ्रंश सेखसाली'। लाहोर के प्रसिद्ध शेखचिल्ली फकीर की कहावत से दृष्टांत है।

(४५) ब्राह्मन क्षत्रिय होय=आत्मा का ज्ञान (ब्रह्मत्व) भूलकर देहाभिमान (क्षत्रियत्व) हो जाता है। वैश्य सूद्र सुन्दर भयौ=यहां यह चमत्कार है कि सुन्दरदासजी जाति के वैश्य होकर सांसारिक व्यवहार में फसकर शूद्रता को प्राप्त हुए। अथवा हे सुन्दर! (वा सुन्दर कहता है कि) उच्चवर्ण वा अवस्था (वैश्यता) से गिरकर नीचवर्ण (शूद्रता) को पहुँचा। यह ज्ञान हीनता से निदनीय हुआ।

(४९) सान्यौ=(स० सानु=पंडित) पडित। स्याना, सयाना। (यदि बावला कहै तो कोई बात नहीं। सयाना ऐसा कहे यही अचरज है)।

(५०) गोबिंद=ईश्वर। ब्रह्म।

॥ अथ सांख्य ज्ञान कौ अंग ॥ २४ ॥

दोहा

सुन्दर साख्य विचार करि संमुझै अपनौ रूप।
नहिंतर जड के सग तें बूडत है भव कूप ॥ १ ॥

माया के गुन जड सबै आतम चेतनि जानि।
सुन्दर सांख्य विचार करि भिन्न भिन्न पहिचानि ॥ २ ॥

पंच तत्व कौ देह जड सब गुन मिलि चौवीस।
सुन्दर चेतनि आतमा ताहि मिलै पचीस ॥ ३ ॥

छव्वीसवौं सु ब्रह्म है सुन्दर साक्षी भूत।
यौं परमातम आतमा यथा बाप तें पूत ॥ ४ ॥

देह रूपई ह्वै रह्यौ देह आपकौं मानि।
ताही तें यह जीव है सुन्दर कहत बपानि ॥ ५ ॥

देह भिन्न हौं भिन्न हौं जब यह करै विवेक।
सुन्दर जीव न पाइये होइ एक कौ एक ॥ ६ ॥

क्षीण सपष्ट शरीर है शीत उष्ण तिहिं लार।
सुन्दर जन्म जरा लगे यह पट देह विकार ॥ ७ ॥

क्षुधा तृषा गुन प्रान कौं शोक मोह मन होइ।
सुन्दर साक्षी आतमा जानै विरला कोइ ॥ ८ ॥

जाकी सत्ता पाइ करि सब गुन ह्वै चैतन्य।
सुन्दर सोई आतमा तुम जिनि जानहु अन्य ॥ ९ ॥

[अग २४] (७) सपष्ट=सुपुष्ट, मोटा।

(९) गुन व्है चैतन्य=चेतन आत्मा की सत्ता से जड प्रकृति चेतन का सा न म करती है। चम्बुक के ससर्ग से जैसा लोहा चलन-हलन करने लगता है।

बुद्धि भ्रमै मन चित्त पुनि अहंकार बहु भाइ।
सुन्दर ये तौ तैं भ्रमै तूं क्यौं इनि संग जाइ॥ १०॥

श्रोत्र त्वचा दृग नासिका रसना रस कौं लेत।
सुन्दर ये तो तैं भ्रमै तू क्यों बांध्यौ हेत॥ ११॥

वाक्य पानि अरु पाद पुनि गुदा उपस्थ हि जांनि।
सुन्दर ये तो तैं भ्रमैं तूं क्यौं लीने मांनि॥ १२॥

सुन्दर तूं न्यारो सदा क्यौं इन्द्रिनि संग जाइ।
ये तो तेरी शक्ति करि बरतैं नाना भाइ॥ १३॥

सुन्दर मन कौं मन कहै बहुरि बुद्धि कौं बुद्धि।
तोहि आपने रूप की भूलि गई सब सुद्धि॥ १४॥

कहै चित्त कौं चित्त पुनि सुन्दर तोहि थपानि।
अहंकार कौं है अहं जानि सकै तो जानि॥ १५॥

सुन्दर श्रवणनि कौ श्रवण आहि नैंन कौं नैंन।
नासा कौं नासा कहै अरु बैननि कौ बैंन॥ १६॥

सुन्दर सिर को सीस है प्राननि कौ है प्रांन।
कहत जीव कौं जीव सब शास्तर वेद पुरांन॥ १७॥

सुन्दर तूं चेतन्य घन चिदानंद निज सार।
देह मलीन असुचि जड विनसत लगै न बार॥ १८॥

सुन्दर अविनाशी सदा निराकार निहसंग।
देह विनश्वर देषिये होइ पलक मैं भंग॥ १९॥

सुन्दर तू तौ एकरस तोहि कहौं समुझाइ।
घटै बढै आवै रहै देह विनसि करि जाइ॥ २०॥

---

(१०) (११) (१२) तौ तैं=तुम से। हे सुन्दर (या हे आत्मा)! सम्बोधन करके अज्ञान निवारण करने को चेतावनी देते हैं।

(१४) "मन कौं मन"=इस कहने से यह अभिप्राय है कि इन जड पदार्थों को चेतन समझ कर स्वतन्त्र व्यक्तित्व देकर अज्ञानी होते हैं।

जे विकार हैं देह कै देहहि कै सिर मारि।
सुन्दर याते भिन्न ह्वै अपनौ रूप विचारि ॥ २१ ॥

सुन्दर यह नहिं यह नहीं यह तौ है भ्रम कूप।
नाहिं नाहिं करते रहै सो है तेरौ रूप ॥ २२ ॥

एक एक कै एक पर तत्व गनैं तै होइ।
सुन्दर तूं सब कै परै तौ ऊपरि नहिं कोइ ॥ २३ ॥

एक एक अनुलोम करि दीसहिं तत्व स्थूल।
एक एक प्रतिलोम तें सुन्दर सूक्षम मूल ॥ २४ ॥

सूक्षम तें सूक्षम परै सुन्दर आपुहि जानि।
तो तें सूक्षम नाहिं कौ याही निश्चय आनि ॥ २५ ॥

इन्द्रिय मन अरु आदि दे शब्द न जानै तोहि।
सुन्दर तोतें चपल ये तू इनितें क्यौं होहि ॥ २६ ॥

धूलि धूम अरु मेघ करि दीसै मलिनाकाश।
सुन्दर मलिन शरीर संग आतम शुद्ध प्रकाश ॥ २७ ॥

देहनि कै ज्यौं द्वार में पवन लिपै कहुं नाहिं।
तैसें सुन्दर आतमा दीसै काया माहिं ॥ २८ ॥

पावक लोह तपाइये होइ एकई अंग।
तैसें सुन्दर आतमा दीसै काया संग ॥ २९ ॥

---

(२४) अनुलोम। प्रतिलाम।=तुलटा, उलटा। प्रथम अति सूक्ष्म से चलकर उत्तरोत्तर अति स्थूल तक। फिर उलटा चलकर अति स्थूल से अति सूक्ष्म तक।

(२५) सूक्षम तें सूक्षम परै="अणोरणीयान्" अणु अत्यन्त सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म।

(२८) पवन लिपै कहुं नांहि=पवन (आकाशादि सूक्ष्म पदार्थ) जो देह के अपेक्षा सूक्ष्म है सो स्थूल देह में लिप्त नहीं होता है। देह के परमाणु आदि अवयवों में सूक्ष्म पवनादि प्रवेश करते हैं और 'लिपै छिपै' नहीं। वैसे ही आत्मा सर्वत्र व्यापक है और वैसे ही बुद्धिगम्य हो सकती है।

चोट परै घन की जबहिं पावक भिन्न रहाइ।
सुन्दर दीसै प्रगट हो लोहा बधता जाइ ॥ ३० ॥

सुन्दर पावक एकरस लोहा घटि वढि होइ।
तैसें सुख दुख देह कौं आतम कौं नहीं कोइ ॥ ३१ ॥

नीर क्षीर ज्यौं मिलि रहे देह आतमा दोइ।
सुन्दर हंस विचार बिन भिन्न भिन्न नहिं होइ ॥ ३२ ॥

देह धात माहें मिलै आतम कनक कुरूप।
सुन्दर सांख्य सुनार बिन होइ न शुद्ध स्वरूप ॥ ३३ ॥

जबहिं कंचुकी हात है भिन्न न जानै सर्प।
तैसें सुन्दर आतमा देह मिले तें दर्प ॥ ३४ ॥

सर्प तजै जब कंचुकी वा दिसि देषै नांहिं।
सुन्दर संमुषै आतमा भिन्न रहै तनु मांहिं ॥ ३५ ॥

सुन्दर काला घटै बढै शशि मंडल कै संग।
देह उपजि बिनशत रहै आतम सदा अभंग ॥ ३६ ॥

देह कृत्य सब करत है उत्तम मध्य कनिष्ट।
सुन्दर साक्षी आतमा दीसै मांहिं प्रविष्ट ॥ ३७ ॥

अग्नि कर्म संयोग तें देह कडाही संग।
तेल लिंग दोऊ तपै शशि आतमा अभंग ॥ ३८ ॥

सूक्षम देह स्थूल कौ मिल्यौ करत संयोग।
सुन्दर न्यारौ आतमा सुख दुख इनकौ भोग ॥ ३९ ॥

---

(३०) घन की चोट से अग्निरूपी आत्माओं का विकार नहीं होता है विकार स्थूल लोहारूपी शरीर को ही होता है।

(३८) लिंग=लिंग शरीर। कड़ाही के तप्त तेलरूपी सूक्ष्म शरीर में बड़ा, पुरी, कचौरी आदि स्थूल शरीर या कारण शरीर। शशि आत्मा=चन्द्रमा की तरह आत्मा शीतल रह कर तप्त न होकर अभग (न्यारा) रहता है।

हलन चलन सब देह को आतम सत्ता होइ।
सुन्दर साक्षी आतमा कर्म न लागै कोइ॥ ४०॥

सुन्दर सूरय के उदै कृत्य करै संसार।
ऐसैं चेतनि ब्रह्म सौं मन इंद्रिय आकार॥ ४१॥

व्योम वायु पुनि अग्नि जल पृथवी कीये मेल।
सुन्दर इनतें होइ क्या चेतनि पेलै पेल॥ ४२॥

सुन्दर तत्व जुदे जुदे राष्या नाम शरीर।
ज्यौ कदली के षभ मैं कौन वस्तु कहि वीर॥ ४३॥

देह आप करि मानिया महा अज्ञ मतिमंद।
सुन्दर निकसै छीलकै जबहिं उचेरै कंद॥ ४४॥

काष्ट सु जोरैं जुगति करि कीया रथ आकार।
हलन चलन जातें भया सो सुन्दर ततसार॥ ४५॥

तत्व कहै इकतीस लौं मत जू जुवा बषानि।
सुन्दर जल कौनैं पिया मृग तृष्णा घर आनि॥ ४६॥

देह स्वर्ग अरु नरक है बंद मुक्ति पुनि देह।
सुन्दर न्यारौ आतमा साक्षी कहियत येह॥ ४७॥

सुन्दर नदी प्रवाह मैं चलत देषिये चन्द।
तैसैं आतम अचल है चलत कहै मतिमंद॥ ४८॥

---

(४१) आकार=मन, इन्द्रिय और शरीर साकार पदार्थ कर्म करते हैं। आत्मा नहीं करता। आत्मा की सत्तामात्र से कर्म है।

(४४) कन्द=कादा, प्याज जिसमें छिलके ही छिलके होते हैं कदली स्तम्भ की तरह।

(४६) इकतीस तत्व=५ तत्व +५ तन्मात्राएं +५ ज्ञानेन्द्रिय +५ कर्मेन्द्रिय +४ अन्तःकरण +३ गुण +१ प्रकृति +१ जीव +१ ईश्वर +१ परमात्मा। मत जू जुवा बषानि=जुदे जुदे मतमतान्तर (शास्त्रों में) कहते हैं। मृगतृष्णा घर आनि। मृगतृष्णा का जल मिथ्या है। उसको पीकर कौन घर आया या उसे घर लाया।

गोमूत्रिका बंध—१—२
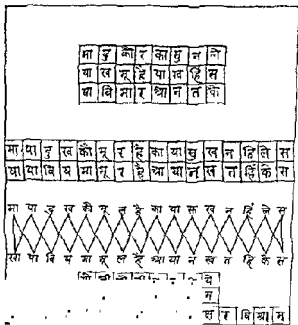
प्रथम गोमूत्रिका बंध "माया" इत्यादि दोहा स्पष्ट ही है।

इसके पढ़ने की विधि —

प्रथम चित्र में प्रथम पंक्ति के प्रथम अक्षर 'मा' को द्वितीय पंक्ति के 'या' के साथ पढ़ने से 'माया' हुआ। इसी प्रकार प्रथम और द्वितीय पंक्तियों को मिला कर पढ़ने से दोहे की प्रथम अर्धाली हो गई। और तृतिय पंक्ति के अक्षरों को द्वितीय पंक्ति के अक्षरों के साथ पढ़ने से दूसरी अर्धाली होगी। जो सारा छन्द दूसरे चित्रों में स्पष्ट है। और तीसरे चित्र में दूसरे की तरह तिरछे अक्षरों के पढ़ने में भी वही पाठ पढ़ा जायगा ॥ १ ॥ (र को ल भी पढ़ा गया है)

दूसरे गोमूत्रिका छंद के पढ़ने की विधि —

प्रथम पंक्ति के प्रथम अक्षर 'गो' को द्वितीय पंक्ति के प्रथम अक्षर 'वि' के साथ पढ़ कर उसी द्वितीय पंक्ति के द्वितीय अक्षर 'द' को पढ़ कर उसके ऊपर के अक्षर 'जी' के साथ पढ़ने से 'गोविदजी' हुआ। इसी तरह आगे 'गोपालजी' और फिर 'मरहर' और फिर 'निरामय' पढ़ा जायगा। यों ४—४ अक्षर के चार हुए। उत्तर अर्धाली स्पष्ट है ही ॥ २ ॥

बहुत सुगंध दुर्गन्ध करि भरिये भाजन अंबु।
सुन्दर सब मैं देषिये सूरय की प्रतिबिंबु ॥ ४९ ॥

देह भेद बहु विधि भये नाना भांति अनेक।
सुन्दर सब मैं आतमा वस्तु विचारें एक ॥ ५० ॥

तिलनि माहिं ज्यौं तेल है सुन्दर पय मैं घीव।
दार माहिं है अग्नि ज्यौं देह माहिं यौं सीव ॥ ५१ ॥

फूल माहिं ज्यौं वासना इक्षु माहिं रस होइ।
देह माहिं यौं आतमा सुन्दर जानै कोइ ॥ ५२ ॥

पोसत माहिं अफीम है वृक्षन मैं मधु जांनि।
देह माहिं यौं आतमा सुन्दर कहत बषांनि ॥ ५३ ॥

सुन्दर ब्रह्म अवर्न है व्यापक अग्नि अवर्न।
देह दार तें देषिये पावक अंतहकर्न ॥ ५४ ॥

तेज प्रकास रु कल्पना जब लग संग उपाधि।
जब उपाधि सब मिटि गई सुंदर सहज समाधि ॥ ५५ ॥

सुन्दर देह सराव मैं तेल भर्‌यौ पुनि स्वास।
बाती अंतहकरन की चेतनि जोति प्रकास ॥ ५६ ॥

सुन्दर पचह तत्व को देह भयौ सो कुम्भ।
नौ तत्वनि कौ लिंग पुनि माहिं भर्‌यौ है अंभ ॥ ५७ ॥

जीव भयौ प्रतिबिंब ज्यौं ब्रह्म इंदु आभास।
सुन्दर मिटै उपाधि जब जहं के तहां निवास ॥ ५८ ॥

जाग्रत स्वप्न सुषोपती इनितें न्यारौ होइ।
सुन्दर साक्षी तुरियतत रूप आपनौ जोइ ॥ ५९ ॥

---

(५४) अवर्न=वर्णन रहित। अथवा वर्ण (रगरूप) रहित। अंतहकर्न=अंतःकरण द्वारा दिखाई देता है आंख से नहीं।

(५७-५९) ऐसे वर्णन कई बेर आ चुके हैं वहां प्रसंग और टीका में देखें।

तीन अवस्था जड कही ये तौ है भ्रमकूप।
सुन्दर आप बिचारि तूं चेतनि तत्त्व स्वरूप ॥ ६० ॥

जाग्रत स्वप्न सुषोपती तीनि अवस्था गौंन।
सुन्दर तुरिय चढ्यौ जबहिं परी चढै तब कौंन ॥ ६१ ॥

॥ इति सांख्य ज्ञान को अंग ॥ २४ ॥

॥ अथ अवस्था अंग ॥ २५ ॥

एक अंग सो आतमा सुंन अवस्था तीन।
सुंदर मिलि करि बांधिये न्यारे न्यारे कीन ॥ १ ॥

एक सुंन तें दस भये दूजी सत ह्वै जाहिं।
तीजी सुंन सहस्र ह्वै एक बिना कछु नाहिं ॥ २ ॥

सुंन सुंन दस गुन बधै बहु बिधि ह्वै बिस्तार।
सुंदर सुंन मिटाइये एक रहै निरधार ॥ ३ ॥

तीनि अवस्था माहिं है सुन्दर साक्षीभूत।
सदा एकरस आतमा व्यापक है अनुस्यूत ॥ ४ ॥

---

(६१) तुरिय=यहां श्लेष है—(१) तुरी=घोड़ा। (२) तुरीय=तुरीयातीत (परमात्मा)।

[अंग २५] (१-२) सुंन=(१) शून्य (२) शून्यावस्था, मिथ्या माया। एके के अङ्क के आगे शून्य (बिन्दी) लगाने से १०, १००, १००० बन जाते हैं। चेतन परमात्मा बिन जड प्रकृति शून्य मात्र है। और शून्य (प्रकृति) को मिटाने से एक (१) परमात्मा ही रह जाता है। प्रकृति को जीतना ही ईश्वर प्राप्ति है।

(४) तीनि अवस्था=१ जाग्रत। २ स्वप्न। ३ सुषुप्ति।

(१) अवस्था का अन्य भेद ।

सुन्दर जागत भींत महिं लिप्यौ जगत चित्रास ।
स्वप्न घौंट सतगुरु भई हरैं सकल घट नास ॥ ५ ॥

चित्र कछू नहिं देषिये अबहिं अंधेरी होइ ।
सुन्दर सुपुपति में गये जाग्रत स्वप्ना दोइ ॥ ६ ॥

तीन अवस्था तें जुदौ आतम व्योम समान ।
भीति चित्र पुनि घौंट तम लिप्त नहीं यौं जान ॥ ७ ॥

(२) अवस्था का अन्य भेद ।

सुन्दर जाग्रत धूप है स्वप्न जौन्ह ज्यौं जानि ।
दोऊ माहिं देषिये रूप सकल पहिचानि ॥ ८ ॥

सुपुपति मावस की निसा अभ्र रहे पुनि छाइ ।
सुन्दर कछु सूझै नहीं रूप सकल छिपिजाइ ॥ ६ ॥

धूप जौन्ह तम रूप सौं नैंन लिपै कहुं नाहिं ।
सुन्दर साक्षी आतमा तीन अवस्था मांहिं ॥ १० ॥

(३) अवस्था का अन्य भेद ।

वाजीगर परदा किया सुन्दर बैठा मांहिं ।
षेल दिपावै प्रगट करि आप दिपावै नांहिं ॥ ११ ॥

---

(५) चित्रास=चित्राशय, चित्र समूह । घौंट=गहरी नींद, सुषुप्ति । स्वप्न और सुषुप्ति (दोनों) अवस्थाओं में जाग्रत् के दृश्य अदृष्ट हो जाते हैं ।

(७) भीति-चित्र=जाग्रत में । घौंट=सुषुप्ति में लिपटा या छिपा हुआ । तम=अन्धेरे में स्वप्नावस्था में ।

(८) जौन्ह=जौन्हाई, जुन्हाई, चांदनी ।

(१०) नैंन=नेत्र, रूपज्ञान की शक्ति या इन्द्रिय तीनों अवस्था में लोप नहीं होती है । वैसेही आत्मा तीनों अवस्थाओं में वर्त्तमान है । केवल अवस्था भेद ज्ञान की सामग्री के भेद से है ।

नर पशु पंषी काठ के प्रगट दिषावें षेल।
हस्त क्रिया सब करत है सुन्दर आप अकेल ॥ १२ ॥

सुन्दर चेतनि शक्ति बिन नाचि सकै नहिं कोइ।
यौं यह जाग्रत जानिये जो कछु जाग्रत होइ ॥ १३ ॥

बहुरि वहै रजनी दिषै परदा करै बनाइ।
सुन्दर बैठा गोपि ह्वै बाहरि षेल दिषाइ ॥ १४ ॥

नर पशु पंषी चर्म के दीसहिं रूप अनेक।
सुन्दर चेतनि शक्ति करि नांच नचावै एक ॥ १५ ॥

यौं यह स्वप्नै देषिये जाग्रत कौ आभास।
सुन्दर दोऊ भ्रम भये जाग्रत स्वप्न प्रकास ॥ १६ ॥

अब सुनि सुषुपति की कथा सुन्दर भ्रम कछु नांहि।
काठ चर्म कौ षेल सब धर्‍यौ पिटारा मांहि ॥ १७ ॥

सुन्दर बाजीगर जुदौ षेल करै दिन राति।
वहै षेल रजनी करै वहै षेल परभाति ॥ १८ ॥

जाग्रत स्वप्न सु जमुनिका सुषुपति भई पिटार।
सुन्दर बाजीगर जुदौ षेल दिषावन हार ॥ १९ ॥

तीन अवस्था के परै चौथी तुरिया जांनि।
सुन्दर साक्षी आतमा ताहि लेहु पहिचांनि ॥ २० ॥

(४) अवस्था का अन्य भेद।

एक अवस्था के विषै तीनहुं वर्ते आइ।
जाग्रत स्वप्न सुषोपती सुन्दर कहत सुनाइ ॥ २१ ॥

जाग्रदवस्था जानिये सब इन्द्रिय व्यापार।
अपने अपने अर्थ कौं सुन्दर करै बिहार ॥ २२ ॥

---

(१९) जमुनिका=जवनिका, पर्दा, आवरण।

आग्रत मैं स्वप्ना चहै करै मनोरथ आंन।
नैंन न देषै रूप कौं शब्द सुनै नहिं कांन॥ २३॥

जाग्रत मैं सुषुपति भई जबहि तंवारी होइ।
सुन्दर भूलै देह कौं सुधि बुधि रहै न कोइ॥ २४॥

स्वप्नै मैं जाग्रत चहै वचन कहै मुख द्वार।
ज्वाब देत हैं और को सुन्दर शुद्धि न सार॥ २५॥

स्वप्नै माँहिं स्वप्न है देषै नाना रूप।
जागैं तें सब कहत है सुन्दर छाया धूप॥ २६॥

सुन्दर ऐसैं जानियें सुषुपति स्वप्ना मांहिं।
स्वप्नै ही मैं अनुभवै जागैं जानैं नांहिं॥ २७॥

सुषुपति मैं जाग्रत उहै जानो करि अनुमांन।
जागैं तें ततपर भयौ सब इन्द्रिनि कौ ज्ञांन॥ २८॥

सुषुप्ति ही मैं स्वप्न है जागैं चक्रित चित्त।
कछूक बार लषै नहीं सुन्दर चित्त अचित्त॥ २९॥

सुषुप्ति मैं सुषुप्ति उहै सुष अनुभवै प्रभाति।
सुन्दर जागैं कहत है सुख सौं सूते राति॥ ३०॥

तीन अवस्था भेद है तीनों ही भ्रमकूप।
चौथी तुरिया ज्ञानमय सुन्दर ब्रह्म स्वरूप॥ ३१॥

(५) अवस्था को अन्य भेद।

बर बरियान बरिष्ट पुनि तीन्हुं कौ मत एक।
भिन्न भिन्न व्यौहार है सुन्दर समुझ विवेक॥ ३२॥

---

(२४) तवारी=तिवाला, गश बेहोशी।

(२९) चक्रित=चक्री, चलायमान। अचित्त=चित्त रहित, शक्तिहीन, गुणहीन। थोथा। कोरा।

(३२) बर बरियान, बरिष्ठ=महात्मा, गुरु और सिद्ध के ये तीन दर्जे हैं।

वर सो जीवन मुक्त है तुरिया साक्षी भूत।
लिपै छिपै नहिं सब करै अंनकरता अवधूत ॥ ३३ ॥

महा मुक्त अक्रिय सदा सो कहिये वरियान।
तुरिया तुरियातीत कै मध्य कहैं सज्ञान ॥ ३४ ॥

जाकी गति न लषि परै सो कहिये जु वरिष्ट।
तुरियातीत परातपर बचन परै उतकृष्ट ॥ ३५ ॥

ब्रह्म समुद्र जहां तहां ता महिं तीनौं लीन।
एक किनारे आइ करि सब कौं सिक्षा दीन ॥ ३६ ॥

दूजौ रहै समुद्र मैं सीस दिपावै आइ।
पूछै बोलै बचन कौं फेरि तहां छिपि जाइ ॥ ३७ ॥

ब्रह्मानंद समुद्र तें तीजौ निकसै नांहि।
गहरै पैठौ जाइ कैं मगन भयौ ता मांहि ॥ ३८ ॥

अष्टावक्र वसिष्ट मुनि प्रगट कियौ निज ज्ञांन।
क्रम ही क्रम उपदेश करि किये ब्रह्म सामांन ॥ ३९ ॥

दत्तात्रय शुकदेवजी बोले वचन रसाल।
नृपति परीक्षत भूप अदु मुक्त किये ततकाल ॥ ४० ॥

ऋषभदेव बोले नहीं रहे ब्रह्ममैं होइ।
गरक भये निज ज्ञान मैं द्वैत भाव नहिं कोइ ॥ ४१ ॥

जाग्रदवस्था जानिये जबहिं होइ साक्षात।
अष्टावक्र वसिष्ट मुनि कही सबनि सौं बात ॥ ४२ ॥

अष्टावक्र और वशिष्ट आदि को वर संज्ञा बताई है। और दत्तात्रेय और शुकदेवजी को वरियान अवस्था की कक्षा दी है। तथा ऋषभदेवादि को वरिष्ट पद मिला है। यों उदाहरण दिये हैं। तीनों अवस्थाओं को समझाने को यह उत्तम उदाहरण महामुनियों के दिये हैं।

स्वप्न अवस्था माँहि है पूछे बोलै सैंन।
दत्तात्रय सुकदेवजी कहे कछूक बैंन ॥ ४३ ॥

सुषुपति मैं कछु सुधि नहीं ऐसी परम समाधि।
ऋषभदेव चुप करि रहे छूटी सकल उपाधि ॥ ४४ ॥

(६) अवस्था का अन्य भेद।

मावस अति अज्ञान कै निसा अँधेरी कीन।
ससि आतमा दसै नहीं ज्ञान कला करि हीन ॥ ४५ ॥

है अज्ञान अनादि कौ जीव पर्यौ भ्रम कूप।
श्रवन मनन निदिध्यास तें सुन्दर है चिद्रूप ॥ ४६ ॥

श्रवण सु कहिये प्रतिपदा ज्ञान कला दरसाइ।
दुतिया तृतिया चतुर्थी सुनि पंचमी दिषाइ ॥ ४७ ॥

मनन किये षष्टी दसै अर्थ लेइ पहिचानि।
होइ सप्तमी अष्टमी नवमी दशमी जानि ॥ ४८ ॥

निदिध्यास एकादशी पुनि द्वादशी बदंति।
आगै होइ त्रयोदशी चतुर्दशी पर्यंति ॥ ४९ ॥

तदाकार पूरन कला पूरनमासी होइ।
पूरन ज्ञान प्रकाश शशि भ्रम संदेह न कोइ ॥ ५० ॥

ताहि कहत हैं ब्रह्मविदु शास्त्र वेद पुरांन।
सुन्दर या अनुक्रम बिना और सकल अज्ञांन ॥ ५१ ॥

(४५ से ५१) तक—प्रकाश के अनुक्रम और व्यतिक्रम का उदाहरण देकर तीनों अवस्थाएं समझाई हैं। चन्द्रमा के अभाव में अमावस्या से लेकर जो सुषुप्ति है, प्रतिपदा से दशमी तक थोड़े प्रकाश को स्वप्न और ११ से पूर्णिमा तक बर्द्धमान प्रकाश को जाग्रत कह कर दरसाया है। परन्तु ये उदाहरण पूरे नहीं घटते हैं। कुछ सहायक होते हैं। ब्रह्मविदु=ब्रह्मवित्=ब्रह्मवेत्ता=ब्रह्मज्ञानी।

छप्पय ।

प्रथम भूमिका श्रवन चित्त एकाग्रहि धारै।
द्वुतिय भूमिका मनन श्रवन करि अर्थ विचारै॥
तृतिय भूमिका निदिध्यास नीकी विधि करई।
चतुर्भूमि साक्षातकार संशय सब हरई॥
अब तासौं कहिये ब्रह्म-विदुवर वरयान वरिष्ट है।
यह पंच पष्ट अरु सप्तमो भूमि भेद सुन्दर कहै॥ ५२॥

॥ इति अवस्था कौ अंग ॥ २५ ॥

॥ अथ विचार कौ अंग ॥ २६ ॥

सुन्दर साधन सब थकै उपज्यौ हृदय विचार।
श्रवन मनन निदिध्यास पुनि याही साधन सार॥ १॥
सुन्दर या साधन बिना दूजौ नहीं उपाइ।
निस दिन ब्रह्म बिचार तें जीव ब्रह्म ह्वै जाइ॥ २॥
सुन्दर एक विचार है सुरझावन कौ सूत।
उरझि रह्यौ संसार में नरशिरस प्रानी भूत॥ ३॥
उपजै एक बिचार जब तब यह पावै ठौर।
सरझावन कौं जगत महिं सुन्दर साधन और॥ ४॥

---

(५२) सात भूमिका ज्ञान की बताई हैं। परन्तु इनका अधिक सम्बन्ध तीनों अवस्थाओं से नहीं है। प्रसगवश कह दिया है। चतुर्भूमि=चौथी भूमिका। महात्मा ऐन साहिब ने अपने 'ब्रह्मविलास' में ज्ञान की सात भूमिकाए इस प्रकार बताई है ('— — — भूमिकाएं')—शुभेच्छा। २ शुभ विचार। ३ तनमनसा। [illegible] सक्ति। ६ पदार्थाभिवनी। ७ तुरीया।

सुन्दर एक बिचार तें हिरदौ निर्मल होइ।
फिरत रहै जौ मसक लौं काटन लागै कोइ ॥ ५ ॥

सुन्दर साधन सब किया बरकति दीसै नांहि।
आयौ हृदय बिचार जब तब संमुखै हरि मांहि ॥ ६ ॥

करत देह के कृय सब जौ उर होइ बिचार।
सुन्दर न्यारौई रहै लिपै न एक लगार ॥ ७ ॥

दधि मथि घृत कौं काढि करि देत तक महि डार।
सुन्दर बहुरि मिलै नहीं ऐसैं लेहु बिचार ॥ ८ ॥

जैसैं जल महि कवल है जल तें न्यारौ सोइ।
सुन्दर ब्रह्म बिचार करि सब तें न्यारौ होइ ॥ ९ ॥

मनि अहि के मुख मैं सदा बिष नहिं लागै ताहि।
सुन्दर ब्रह्म बिचारि तें सबसौं न्यारौ आहि ॥ १० ॥

सुन्दर एक बिचार तें सुख दुख होइ समान।
राग दोष उपजै नहीं तजै मान अपमान ॥ ११ ॥

सुन्दर एक बिचार सौं बुद्धि तजै नानत्व।
जानै एकै आतमा उपजै भाव समत्व ॥ १२ ॥

सुन्दर ब्रह्म बिचार है सब साधन कौ मूल।
याही मैं आये सकल डाल पान फल फूल ॥ १३ ॥

कीयौ ब्रह्म बिचार जिनि तिनि सब साधन कीन।
सुन्दर राजा कै रहै प्रजा सकल आधीन ॥ १४ ॥

परा पश्यंति मध्यमा हृदये होइ बिचार।
सुन्दर मुख तें वैषरी बांणी कौ बिस्तार ॥ १५ ॥

---

(५) मसक=मच्छर। काटन लागै=काटै, डंक मारै। अर्थात् मतमतान्तर के वाद-विवाद कर दूसरों को दश लगावै।

(६) बरकति=सिद्धि, फायदा, सै।

(१२) नानत्व=नानात्व (छन्द के अर्थ संक्षेप हुआ है)।

सुन्दर रूप रहै नहीं रूप रूप मिलि जाइ।
एक अखंडित आतमा सब मैं रह्यौ समाइ ॥ १६ ॥
इनि दहुंवनि कै मध्य है नव तत्त्वनि कौ लिंग।
सुन्दर करै विचार जब उहै होत तब भंग ॥ १७ ॥
पंच तत्त्व सौं मिलि रह्यौ सूक्षम लिंग शरीर।
सुन्दर एक विचार बिन चेतन मानत सीर ॥ १८ ॥
ज्यौं काहू कै रोग है नारी देषै वैद।
सुन्दर अपनी सी कहै वायु कियौ तन कैद ॥ १९ ॥
बहुरि बुलायौ जोतिषी उन यह कियौ बिचार।
सुन्दर ग्रह लागे सबै कीये पुन्य उवार ॥ २० ॥
भोपै भोपी आइ कै बहुत लगायौ दोष।
सुन्दर या ऊपर कियौ देवी देवन रोष ॥ २१ ॥
अपनी अपनी सब कहैं अटकर परै न कोइ।
सुन्दर बहुत मता सुनै कछू विचार न होइ ॥ २२ ॥
जे विषई अत्यन्त करि रहे विषै फल पाइ।
सुन्दर मावस की निसा अभ्र रहे अति छाइ ॥ २३ ॥
कोऊ एक मुमुक्षु कौं दीयौ गुरु उपदेश।
सुन्दर वासौं यौं कह्यौ यह संसार कलेश ॥ २४ ॥
जन्म मरण बहु भाति के आगै जम की त्रास।
चौरासी के दुख सुनि सुंदर भयौ उदास ॥ २५ ॥
बादल गये बिलाइ कैं तारनि कैं उजियार।
देष्यौ रजु कौ सर्प तब सुन्दर बिना बिचार ॥ २६ ॥
सुंदर कियौ विचार जब प्रगट भयौ तब भान।
अंधकार रजनी गई सर्प मिथ्यौ रजु जान ॥ २७ ॥

---

(२२) अटकर=अटकल, अनुमान।

सूतौ जीव नरेस यह सुख सज्या परि आइ।
वडी अविद्या नींद मैं सुंदर अति सुख पाइ॥ २८॥
आयौ कर्म पवास चलि नृपति जगावन हेत।
सुंदर दीनी पुरपरी अतिगति भयौ अचेत॥ २९॥
देष्यौ भक्त प्रधान जब राजा जाग्यौ नांहि।
सुन्दर संक करी नहीं पकरि झंझेरी बांहि॥ ३०॥
तव उठि करि बैठौ भयौ बहुरि जंभाई पात।
सुंदर कियौ विचार जब तब जाग्यौ साक्षात॥ ३१॥
देह वोर जो देपिये पंच तत्त्व कौ देह।
सुन्दर ब्रह्मा कीट लौं करहु विचार सु येह॥ ३२॥
प्रान वोर जो देपिये सवकौ एकै प्रान।
सुन्दर क्षुधा तृषा लगै सवकौ एक समान॥ ३३॥
मनहूं कौ जो देपिये मन सवहिन कौ एक।
सुन्दर करै विकल्पना अरु संकल्प अनेक॥ ३४॥
सुन्दर एकै आतमा जब यह करै विचार।
तब कछु भ्रम दीसै नहीं एक रहै निरधार॥ ३५॥

प्रश्न

कै दुख पावै देह यह कै इन्द्रिनि दुख होइ।
सुन्दर कै दुख प्रान कौ यह समुझावौ कोइ॥ ३६॥
कै दुख अंतहकरण कौं मन बुधि चित अहँकार।
सुन्दर कै दुख त्रिगुन कौं यह तुम कहौ विचार॥ ३७॥
कै दुख है महतत्त्व कौं कै दुख प्रकृति हि मांनि।
सुन्दर कै दुख पुरुष कौं श्री गुरु कहौ वषांनि॥ ३८॥

---

(३०) भक्त प्रधान=भक्त अमात्य जो सच्चा हितू है। यह प्रधान विचार है।

(३६) यही विचार 'सवैया" ग्रन्थ में देखो "विचार" के अंग में।

बहु बिधि देष्यौ सोच करि कछु जान्यौ नहिं जाइ।
सुन्दर यह दुख कौन कौं सद्गुरु कहि संमुझाइ ॥ ३९ ॥

उत्तर

सुन्दर दुख नहिं देह कौं इंद्रिनि कौं दुख नांहि।
दुख नहिं दीसै प्रान कौं स्वास चलै तनु मांहि ॥ ४० ॥
दुख नहिं अंतहकरन कौं जिननें देह प्रवृत्त।
सुंदर दुख नहिं त्रिगुन कौं यह तुम जानहु सत्य ॥ ४१ ॥
दुःख नहीं महतत्व कौं प्रकृति सु तौ जड़रूप।
सुन्दर दुख नहिं पुरुप कौं सूक्षम तत्व अनूप ॥ ४२ ॥
जड चेतन संयोग तें उपज्यौ एक अज्ञान।
सुन्दर दुख ताकौं भयौ सद्गुरु कहै सुजान ॥ ४३ ॥
जौ विचार यह ऊपजै तुरत मुक्त ह्वै जाइ।
सुन्दर छूटै दुखन तें पद आनंद समाइ ॥ ४४ ॥
यह विचार सुख रूप है और सबै दुख रासि।
सुन्दर यानें कटत है नाना विधि की पासि ॥ ४५ ॥
भरमावन कौं और सब पहुंचावन कौं एक।
सुन्दर साधू कहत हैं जाकौं नाम विवेक ॥ ४६ ॥
याही एक बिचार तें आतम अनुभव होइ।
सुन्दर संमुझै आपुकौं संशय रहै न कोइ ॥ ४७ ॥
जाही कौं चितवन करै तैसो ही ह्वै जाइ।
सुन्दर ब्रह्म विचार तें ब्रह्म हि मांहि समाइ ॥ ४८ ॥
करत विचार विचारिया एकै ब्रह्म विचार।
सुन्दर सकल बिचार मैं यह बिचार निज सार ॥ ४९ ॥

---

(४९) विचारिया=विचार किया। इस विचार को पहुचे कि 'ब्रह्म एक है'।

ब्रह्म विचारत ब्रह्म है और विचारत और।
सुन्दर जा मारग चलै पहुंचै ताही ठौर ॥ ६० ॥

॥ इति विचार कौ अंग ॥ २६ ॥

॥ अथ अक्षर विचार अंग ॥ २७ ॥

ऐंन नहीं अरु ऐंन है गैंन नहीं अरु गैंन।
सुन्दर नुकता आरसी दूरि किये तें ऐंन ॥ १ ॥

सुन्दर नुकता भिन्न है मिल्यौ ऐंन सौं नांहिं।
मिलि करि दोऊ बांचिये मिले अमिल यौं मांहि ॥ २ ॥

ऐंन आतमा जानिये नुकता भयौ शरीर।
सुन्दर दोऊ भिन्न हैं मिले देषियें बीर ॥ ३ ॥

ऐंन सु दीरघ देषिये नुकता तनक दिषाइ।
सुंदर नुकता तनक तें ऐंन गैंन है जाइ ॥ ४ ॥

उहै ऐंन उह गैंन है नुकता ही कौ फेर।
सुंदर नुकता भ्रम लग्यौ ज्ञान सुपेदा हेर ॥ ५ ॥

[अंग २७] (१) (ऐंन), गैन='ज्ञानझूलना अष्टक' में इस पर टीका देखो। ऐन=प्रत्यक्ष। गैन=अप्रत्यक्ष, विकारमय। नुक्ता=बिन्दु, फारसी के ऐंन (अ़) अक्षर पर बिन्दु लगाने से गैन अक्षर (ग़) बन जाता है। यहां बिन्दु माया का विकार अभिप्रेत है। आर=आड़, (मल, विक्षेप आवरण) रुकावट। अमिल=नुक्ता (माया) ऐन (ब्रह्म) से भिन्न है। ऊपर (आरोपित) रहने से उसमें मिला सा प्रतीत होता है। शरीर=शरीर मायाकृत है।

(५) सुपेदा=अक्षर मिटाने को अक्षर पर (हरताल की तरह) लगाने को।

ऐंन ऐंन के ऊपरैं नुकता फूला होइ।
ऐंन गैंन ह्वै जात है ऐंन न सूझै कोइ॥ ६॥

तुकता फूला ऊपरै सुन्दर अंजन लाइ।
तुकता फूला दूरि ह्वै ऐंन हि ऐंन दिपाइ॥ ७॥

ज्यौं आकार अक्षरनि में त्यौं आतम सब मांहिं।
सुन्दर एकै देषिये भिन्न भाव कछु नांहिं॥ ८॥

जैसैं विंजन मिलत है पर अक्षर सौं आइ।
अहंकार सुन्दर गयें आतम ब्रह्म समाइ॥ ९॥

विंजन पर अक्षर मिलें द्वैत भाव दरसाइ।
भक्त मिलै भगवंत कौं सुन्दरदास कहाइ॥ १०॥

विंजन पर अक्षर मिलै द्वैत भाव नहिं कोइ।
सुन्दर ज्ञानी ब्रह्ममय एक मेक मिल होइ॥ ११॥

विंजन स्वर अक्षर मिलै होइ और ही रूप।
रज वीरज संयोग तें उपजै देह स्वरूप॥ १२॥

देषत दीसै एक ही अरथ विचारय दोइ।
सुन्दर अद्भुत बात है संमुझै पंडित कोइ॥ १३॥

---

(७) फूला=आंखकी पुतली पर दाग वा छोटी सी टिक्की (रोग)।

(८) अकार से ही सब व्यजनों का उच्चारण होता है।

(९) अहंकार गयें=दूसरे (अगले) व्यंजन से मिल कर अपना रूप खो देता है। यही अहंता का नाश होना है।

(१०) द्वैतभाव दरसाया=जब पर व्यजन में मिल कर भी अपना रूप बना रहे तो अहंकार नष्ट न होने से द्वैत भाव बना रहेगा।

(१२) होई और ही रूप=इकारादि स्वर मिलने से अकारवाले अक्षर विकृत से हो जाते हैं। जैसे इ का ए। ओ का अव।

(१३) अद्भुत बात=प्रकृति में ब्रह्म सर्व व्यापक है परन्तु विवेक शून्य बुद्धि को

सोरठा

विंजन होइ तकार तालिय होइ शकार जो।
सुन्दर होइ छकार उभय वरन नहिं देषिये ॥ १४ ॥
यौ द्विज सूद्र सु एक ज्ञान निपै नहिं भेद है।
उभय वरन तजि टेक ब्रह्म रूप सुन्दर भये ॥ १५ ॥

दोहा

दीरघ कै पीछै भये ह्वै अनयास गुरुत्व।
सुन्दर लघु दीरघ करै ज्यौं अक्षर संयुत्व ॥ १६ ॥
आपुन लघु ह्वै जात है और हि दे सनमान।
सुन्दर रीति बडेन की जानहिं सत सुजान ॥ १७ ॥
जो कोउ आइ बडौ कहै धरैं बडाई सीस।
तौ हू आप समा करै सुन्दर बिस्वा बीस ॥ १८ ॥
सुन्दर लघुता गहि रहै दूरि करैं जब गर्ब।
गुरु ताही कौं देत है वित्त आपनौ सर्व ॥ १९ ॥
जौ गुरु कै पीछे रहै तौ लघु दीरघ होइ।
आगैं लघु कौ लघु रहै सुन्दर पुस्तक जोइ ॥ २० ॥

॥ इति अक्षर विचार अंग ॥ २७ ॥

ब्रह्म का ज्ञान भिन्न नहीं होता। जैसे स्वर मिले व्यञ्जन साधारण दृष्टि में अक्षर ही दीखते हैं। परन्तु उनका विच्छेद करने से व्यञ्जन स्वर पृथक ही दिखाई देते हैं। यही विवेक के अभ्यास का फल होता है।

(१४) होइ छकार=हलन्त् के आगे तालव्य श का छ हो जाता है। ऐसे ही ज्ञान के सत्कार से वर्ण भेद नहीं रहता है।

(१६) गुरुत्व="संयुक्ताद्यं दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसंमिश्रं। विज्ञेयं मक्षरं गुरु पादान्तस्थं विकल्पेन"। संयुक्ताक्षर के पहिला अक्षर सदा ही गुरु हो जाता है। संयुत्व=

॥ अथ आत्मानुभव कौ अंग ॥ २८ ॥

सुख तें कह्यो न जात है अनुभव को आनंद।
सुन्दर संमुखे आपु कों जहां न कोई द्वंद ॥ १ ॥

उमगि चलत है कहन कों कछू कह्यो नहिं जाइ।
सुन्दर लहरि समुद्र में उपजै बहुरि समाइ ॥ २ ॥

कह्यो कछू नहिं जात है अनुभव आतम सुक्ख।
सुन्दर आवै कंठ लौं निकसत नाहिं न मुक्ख ॥ ३ ॥

सुन्दर जैसैं सर्करा गूंगै पाई होइ।
सुख सौ कहि आवै नहीं कांप वजावै सोइ ॥ ४ ॥

सदा रहै आनंद मैं सुन्दर ब्रह्म समाइ।
गूगा गुड कैसैं कहै मनही मन मुसकाइ ॥ ५ ॥

जाकै निश्चय ऊपजै अनुभव आतम ज्ञान।
सुन्दर सो बोलै नहीं सहज भया गलतांन ॥ ६ ॥

जाकौ अनुभव होत है सोई जानै सार।
सुन्दर कहै बनै नहीं सुख तैं एक लगार ॥ ७ ॥

कामी जानै काम सुख सोऊ कह्यो न जाइ।
आतम अनुभव परम सुख सुन्दर बचन बिलाइ ॥ ८ ॥

जाता है। जो गुरु की सेवा नहीं करै वह लघु (गुण रहित) रह जाता है। जो चले तो हो जाते हैं परन्तु अपनी पूठ में गुरु से सोखत नहीं व अयोग्य रह जाते हैं। इस बात को अक्षरों के उदाहरण से समझाया है।

[अंग २८] (४) कांप बजावै=कांख में हथेली धर कर दबाने से एक शब्द होता है। वह हर्ष का द्योतक है।

(८) बचन विलाइ=बचन काम नहीं देता है। क्योंकि कहन में नहीं आता है।

सो जानै जाके भयौ आतम अनुभव ज्ञान।
मुख सौं कहें बनै नहीं सुन्दर जानै जान ॥ ९ ॥

सुन्दर जिनि अमृत पियौ सोई जानै स्वाद।
बिन पीये करतौ फिरै जहां तहां बकबाद ॥ १० ॥

सुन्दर जाकै वित्त है सो वह राषै गोइ।
कौडी फिरै उछालतौ जो टटपूज्यौ होइ ॥ ११ ॥

जाकै घट अनुभव नहीं ताकै सुख नहिं लेश।
सुन्दर बहु बकबाद करि करतौ फिरै कलेश ॥ १२ ॥

जाकै अनुभव होत है ताही कै सुख चैन।
सुन्दर मुदित रहै सदा पूछै बोलै बैन ॥ १३ ॥

सुन्दर डुबकी मारि कै सुख में रहै समाइ।
वह सब कौं देषत फिरै वह नहिं देष्यौ जाइ ॥ १४ ॥

अनुभव करिकै आतमा जानैं ज्यौं आकास।
सदा अखंडित एकरस सुन्दर स्वयं प्रकास ॥ १५ ॥

ताकौ आदि न अंत है मध्य कह्यौ नहिं जाइ।
सुन्दर ऐसौ आतमा सब मैं रह्यौ समाइ ॥ १६ ॥

नां वह सूक्षम स्थूल है नां वह एक न दोइ।
सुन्दर ऐसौ आतमा अनुभव ही गमि होइ ॥ १७ ॥

नां वह रूप अरूप है नां वह मूल न डाल।
सुन्दर ऐसौ आतमा नां वह बृद्ध न बाल ॥ १८ ॥

---

(९) जान=जानने वाला। ज्ञानी।

(११) गोइ=गुप्त। टटपूज्या=टाटकी कीमत की पूंजीवाला। अथवा टूटी पूंजीवाला। दरिद्र। दिवालिया।

(१७) गमि=गम्य। जाना जाय।

लघु दीरघ दीसै नहीं नां वह भीत अभीत।
सुन्दर ऐसौ आतमा कहिये वचनातीत ॥ १९

इन्द्रिय पहुंचि सकै नहीं मन हू की गमि नांहि।
सुन्दर जानै आपु कौं आपु आपु ही मांहि ॥ २० ॥

बुद्धि हु पहुंचि सकै नही करै दूरि लग दौर।
सुन्दर ऐसौ आतमा पहुंचि सकै क्यौं और ॥ २१ ॥

शब्द तहां पहुंचै नहीं बहु विधि करै वखांन।
सुन्दर ऐसौ आतमा अनुभव होइ प्रमांन ॥ २२ ॥

वेद कह्यौ बहु भांति करि शास्त्र कही बहु युक्ति।
सुन्दर स्मृती पुरान पुनि कह्यौ बहुत विधि उक्ति ॥ २३ ॥

क्यौं ही करयौ न जात है व्योम मांहि चित्रांम।
सुन्दर कहि कहि सब थके है अनुभव विश्रांम ॥ २४ ॥

रवि ससि तारा दीप पुनि हीरा होइ अनूप।
सुन्दर उनकै तेज तें दीसै उनकौ रूप ॥ २५ ॥

त्यौं आतम के तेज तें आतम करै प्रकास।
सुन्दर इन्द्रिय जड सबै कोइ न जाणैं तास ॥ २६ ॥

कोई थापत कर्म कौं कोई थापत काल।
को कहै सृष्टि सुभाव तें सुन्दर बाइक जाल ॥ २७ ॥

को कहै माया ब्रह्म पुनि दोऊ सदा अनादि।
जैसैं छाया ब्रह्म की सुन्दर यौं प्रतिपादि ॥ २८ ॥

नास्ति वादी यौं कहै कर्त्ता नाहीं कोइ।
सुन्दर मिल्या संजोग सब पुनि वियोग हू होइ ॥ २९ ॥

---

(१९) भीत=डर, हुआ। अभीत=निर्भय।

(२८) प्रतिपादि=प्रतिपादित, समर्थित।

(२९) 'नास्तिवादी'=छन्द के निवाहने को नास्ति को नास्ती या नास्तिक

षट दरसन सब अंध मिलि हस्ती देष्या जाइ।
अंग जिसा जिनि कर गह्या तैसा कह्या बनाइ॥ ३०॥°

झगरत लागे परस्पर काकौ मानै कौंन।
सुन्दर देष्या दृष्टि सौं तिनि तौ पकरी मौंन॥ ३१॥°

बांधि गरगदा सब चले करी मुक्ति कौं दौर।
सुन्दर धोषा मैं परे मुक्ति कहौ किहिं ठौर॥ ३२॥

मुक्ति बतावत ब्योम परि कहि धोषे के बैंन।
सुन्दर अनुभव आतमा यहै मुक्ति सुख चैंन॥ ३३॥

कोऊ मुक्ति शिला कहै दूरि बतावत प्रोक्ष।
सुन्दर अनुभव आतमा यह ई कहिये मोक्ष॥ ३४॥

सुन्दर साधन सब करैं कहै मुक्ति हम जांहिं।
आतम के अनुभव बिना और मुक्ति कहुं नांहिं॥ ३५॥

सुन्दर मीठी बात सुनि लागे करवा पांन।
कष्ट करैं बहु भांति के तातैं अति अज्ञांन॥ ३६॥

दूरि करै सब वासना आशा रहै न कोइ।
सुन्दर बहई मुक्ति है जीवत ही सुख होइ॥ ३७॥

सुन्दर कोऊ कहत हैं नाभि कंवल मैं ईस।
कोऊ ऐसैं कहत हैं हृदय मांहिं जगदीस॥ ३८॥

पढ़ना उचित है। पाठ तो दोनौं पुस्तकों में यही है। संयोग=तत्वों के संयोग से जीवादिसृष्टि, और वियोग से प्रलय मृत्यु आदि होते हैं, चार्वाकमत में।

(३२) गरगदा=भारी कमर बंधा। तयारी करके।

(३७) जीवत ही सुख=जीवन्मुक्ति, ब्रह्मानन्द का सुख।

(३० से ३१) तक को मिलावै 'सवइया' अंग २८ के छन्द १७ से।

(३२ से ३७) तक का विचार "सवैया" अंग २८ छन्द १३ व १४ से मिलावैं।

(३८ से ४२) तक का विचार "सवइया" अंग २८ छन्द १६ से मिलावैं।

कोऊ कंठ थिपे कहै अग्र नासिका कोइ।
कोऊ भृकुटी मैं कहै सुन्दर अचिरज होइ ॥ ३६ ॥

कोऊ कहै लिलाट मैं कोऊ तालु माहिं।
कोऊ भौंर गुफा कहै सुन्दर अनुभव नांहिं ॥ ४० ॥

अनुभव बिन जानै नहीं सुन्दर व्यापक रूप।
बाहिर भीतर एकरस ऐसा तत्व अनूप ॥ ४१ ॥

पंच कोस तें भिन्न है सुन्दर तुरिय स्थान।
तुरियातीत हि अनुभवै तहां न ज्ञान अज्ञान ॥ ४२ ॥

श्रवन ज्ञान है तब लगै शब्द सुनै चित लाइ।
सुंदर माया जल परै पावक ज्यौं बुझि जाइ ॥ ४३ ॥

मनन ज्ञान नहिं जात है ज्यौं बिजुरी उद्योत।
माया जल बरषत रहै सुन्दर चमका होत ॥ ४४ ॥

निदिध्यास है ज्ञान पुनि बडवा अनल समान।
माया जल भक्षन करै सुन्दर यह हैरांन ॥ ४५ ॥

आतम अनुभव ज्ञान है प्रलय अग्नि की अंच।
भस्म करै सब जारि कैं सुन्दर द्वैत प्रपंच ॥ ४६ ॥

नित्य कहत गुरु आतमा सो है शब्द प्रमान।
जैसैं व्यापक व्यौम पुनि सुन्दर यह उपमांन ॥ ४७ ॥

जाकी सत्ता इन्द्रियनि यह कहिये अनुमांन।
सुन्दर अनुभव आतमा यह प्रत्यक्ष प्रमांन ॥ ४८ ॥

सुन्दर तत्व जुदे जुदे राख्या नाम शरीर।
ज्यौं कदली के खम्भ मैं कौन वस्तु कहि बीर ॥ ४६ ॥

(४३ से ४६) तक का विचार 'सवइया' अग २८ छन्द २९ से मिलावैं।

(४५) हैरांन=हैरानी, आश्चर्य, आपत्ती।

है सौ सुन्दर है सदा नहीं सु सुन्दर नांहिं।
नहीं सु परगट देपिये है सौ लहिये मांहि ॥ ५० ॥
विरवा बुद्धि गुलाब है शब्द सु फूल प्रकास।
सुन्दर आतम ज्ञान कौ अनुभौ मध्य सुवास ॥ ५१ ॥

॥ इति आत्मानुभव कौ अंग ॥ २८ ॥

॥ अथ अद्वैत ज्ञान कौ अंग ॥ २६ ॥

सुन्दर हूं नहिं और कछु तू कछु और न होइ।
जगत कह्या कछु और है एक अखंडित सोइ ॥ १ ॥
सुन्दर हौं नहिं तू नहीं जगत नहीं ब्रह्मण्ड।
हौ पुनि तू पुनि जगत पुनि व्यापक ब्रह्म अखंड ॥ २ ॥
सुन्दर पहली ब्रह्म था अबहू ब्रह्म अखंड।
आगै हू यह ब्रह्म है मृषा पिण्ड ब्रह्मण्ड ॥ ३ ॥
वृक्षन कौ वन कहत हैं वन मैं वृक्ष अनेक।
सुन्दर द्वैत कछू नहीं वृक्ष रु वन तौ एक ॥ ४ ॥

---

(५०) है सो सुन्दर है सदा=नित्य, शुद्ध, बुद्ध चेतन आत्मा सदा एकरस रहता है। उसमें विकार वा नाश नहीं है। नहीं सो सुन्दर नाहि=जो अभावरूप है उसका कभी भी भाव नहीं होता। अथवा जो माया है सो मिथ्या है यह तीन काल ही सच नहीं रखती है। नहीं सु परगट देपिये=जो दश्य, नाशमान माया है सो व्यवहार मे भासमान होती है वास्तव में नहीं है।

(५१) विरवा बुद्धि ...ज्ञानकी तीन अवस्थाएं इसमें बताई हैं। (१) साधारण ज्ञान—जैसे गुलाब के (विरवा) वृक्ष को देखने से यह ज्ञान हुआ कि यह अमुक वृक्ष है। (२) परन्तु उस पर फूल खिलने से फूल के ज्ञान से एक विशेषज्ञान

घर कहिये सब भूमि पर भूमि घरनि में होइ।
सुन्दर एकै देषिये कहन सुनन कौं दोइ ॥ ५ ॥

सुन्दर घर सब गांव में गांव सकल घर मांहि।
घर अरु गांव विचारिये तौ कछु दूजा नाहिं ॥ ६ ॥

वापी कूप तलाव में सुन्दर जल नहिं और।
एक अखंडित देषिये व्यापक सबही ठौर ॥ ७ ॥

कोरि किये चित्राम बहु एक शिला कै मांहि।
यौं सुन्दर सब ब्रह्ममय ब्रह्म बिना कछु नांहि ॥ ८ ॥

दीप मसाल चिराक बहु दौं लागी घर लाइ।
सुन्दर पावक एक ही ऐसैं ब्रह्म दिषाइ ॥ ९ ॥

सुन्दर यह सब ब्रह्म है नाम धर्‍यौ संसार।
एक बीज तें पलटि कैं हूवौ वृक्षाकार ॥ १० ॥

सुन्दर सबकी आदि है सुन्दर सबका मूल।
यथा वृक्ष में देषिये डाल पांन फल फूल ॥ ११ ॥

भयौ सरकरा ईक्षु रस व्यापि मिठाई मांहिं।
सुन्दर ब्रह्म सु जगत है जगत ब्रह्म है नांहिं ॥ १२ ॥

हुआ। (३) जब उस फूल की सुगन्ध को सूंघा तो दिमाग मस्त हो गया। और उसका पूर्ण ज्ञान वा अनुभव हुआ कि जो एक वृक्ष था, जिसमें वह फूल लगा था, उसमें ऐसी उत्तम सुगन्ध है। आत्मा का साक्षात्कार भी सुगन्ध के ज्ञान की तरह है। केवल वृक्ष या फूल के दर्शण से गन्ध का ज्ञान नहीं हो सकता है इसही तरह आत्मा का ज्ञान समझिये।

[अंग २९] नोट—इस अंगकी साखियों के भाव के लिए देखें 'सवइया' का अंग अद्वैत ज्ञान का।

(८) कोरि=कोर कर, खुदाई करके।

(९) दौं=प्रज्वलित अग्नि।

सुन्दर घृतई वन्धि गयौ धर्‌यौ डरा सौ नाम ।
ऐसैं रामहि जगत है जगत देषिये राम ॥ १३ ॥

सुन्दर पांनी तें कछू पाला भिन्न न होइ ॥
ऐसैं जगत सु ब्रह्म है जगत ब्रह्म नहिं दोइ ॥ १४ ॥

सुन्दर नीर समुद्र कौ जमि करि हूवौ लौंन ।
तैसैं यह सब ब्रह्म है दूजा कहिये कौंन ॥ १५ ॥

सुन्दर जैसैं लोह के किये बहुत हथियार ।
ऐसैं यह सब ब्रह्म है जौ दीसै बिस्तार ॥ १६ ॥

कारन तैं कारज भयौ कारन कारज एक ।
जैसैं कंचन तैं कियौ सुन्दर घाट अनेक ॥ १७ ॥

जैसैं कीये मैंन के हय हाथी बहु जन्त ।
सुन्दर ऐसैं ब्रह्म है आदि मध्य अरु अन्त ॥ १८ ॥

जैसैं मनिका सूत के बीचि सूत कौ तार ।
ऐसैं सुन्दर ब्रह्म सब याही है निरधार ॥ १९ ॥

सुन्दर तांना सूत का बानैं बुनियां सूत ।
नाव धर्‌यौ फिरि और ही यथा धाप तें पूत ॥ २० ॥

सुन्दर मैं सुन्दर जगत सुन्दर है जग मांहि ।
जल सु तरंग तरंग जल जल तरंग द्वै नांहिं ॥ २१ ॥

सुन्दर ब्रह्म अखंड पद सुन्दर यह विस्तार ।
ज्यौं सागर मैं बुद्‌बुदा फेन तरंग अपार ॥ २२ ॥

सुन्दर मैं जग देषिये जग मैं सुन्दर सोइ ।
कुंजर मैं नारी प्रगट नारी कुंजर होइ ॥ २३ ॥

---

(१८) मैंन=मैण, मोम ।

(२३) कुंजर में नारी=यह उदाहरण लीला को सकेत करता है जिसमें गोपियों ने प्रेमवश मिल कर अपने शरीरों से हाथी बना कर श्रीकृष्ण को उसपर सवार किया था। इसके चित्र भी मिलते हैं। इसको "गोपीकुंजर" कहते हैं।

जैसें बुनत महीर मैं फुलरी परती जांहिं।
ऐसें सुन्दर ब्रह्म तें जगत भिन्न कछु नांहिं॥ २४॥
चीर मांहिं ज्यौं चूनरी गिलम मांहि बहु भांति।
ऐसें सुन्दर देषिये जगत ब्रह्म नहिं द्वांति॥ २५॥
राजा प्रजा तुरंग गज पशु पंषी बहु जन्त।
सुन्दर पट ज्यौं आतमा जग चित्राम अनंत॥ २६॥
इकक्रीडहिं इक मारियंहिं वस्तर कौं कछु नांहिं।
सुन्दर जग चित्राम ज्यौं पट आतम के मांहि॥ २७॥
कोट कांगुरे एक है देषत दीसहिं दोइ।
ऐसें सुन्दर ब्रह्म तें जगत भिन्न नहिं होइ॥ २८॥
लोक हाथ पर देषिये ज्यौं सीतला सरीर।
ऐसें सुन्दर ब्रह्म तें जगत भिन्न नहिं बीर॥ २९॥
सुन्दर मैं संसार है ज्यौं सरीर मैं अंग।
हस्त पांव मुख नासिका नैंन श्रवन सब संग॥ ३०॥
हस्त पांव अरु अंगुली नैंन नासिका कांन।
सुन्दर जगत सरीर ज्यौं निंदै कौंन स्यांन॥ ३१॥
सुन्दर जिह्वा आपुनी अपने ही सब दंत।
जौ रसना चिदलित भई तौ कहा बैर करंत॥ ३२॥
सुन्दर ज्यौं आकाश मैं अभ्र होइ मिटि जांहिं।
त्यौं आतम तें जगत है ताही मध्य समांहि॥ ३३॥

---

(२४) बुनत महीर मैं=महीर एक प्रकार का वस्त्र होता है जिसमें जुलाहे बुनते समय फूल बूटे पाड़ते है। देखो 'सवैया' अंग ३२। छन्द १८। 'जैसी विधि देखियत फुलरी महीर पै'। यहां टीका में दूसरा अर्थ भी किया है जो इसको देखते अनावश्यक है।

(२५) द्वांति=(भांति के अनुप्रास के कारण ऐसा रूप दिया)—दो, द्वैत।

(३२) विदलित=पिस गई (दांतों के नीचे)।

जीन पोश बंध।
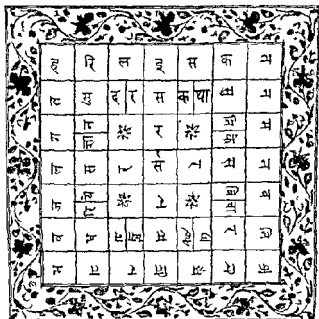
उल्लाला छंद। सरस इस्क तन मन सरस। सरस नवनि करि अति सरस।
सरस तिरत मन जल सरस। सरस लगति हरि लइ सरस॥
सरस कथा सुनि पै सरस। सरस विचार उहै सरस।
सरस ध्यान धरियै सरस। सरस ज्ञान सुन्दर सरस॥८॥

इस के पढ़ने की विधि —

मध्य के 'स' अक्षर से जिसपर १ का अंक है, 'सरस' शब्द ऊपर को पढ़ते हुए दाहिनी ओरको 'मन' शब्द को पढ़कर अंदर 'सरस' में प्रथम चरण पूर्ण करें। फिर उस ही 'सरस' से दूसरा चरण प्रारंभ करें उलटे पढ़ते हुए, दाहिनी पार्श्व के शेष विभाग को पढ़ते हुए, 'अति' शब्द को पढ़कर 'सरस' शब्द पर अंदर दूसरे चरण को पूर्ण करें। इसही प्रकार तीसरे, चौथे चरणों को पढ़ें। दूसरे छन्द को भी अंदर के उसही 'स' अक्षर से प्रारंभ कर 'सरस' शब्द को पढ़कर अंदर के पार्श्व के शब्दों को पढ़ते हुए उस 'सरस' शब्द में प्रथम चरण को पूरा करें। दूसरे चरण को उसही 'सरस' को उलटा पढ़ते हुए अंदर के पार्श्व के शेष टुकड़े को पढ़ते हुए 'सरस' शब्द में पूरा करें। इसही प्रकार तीसरे चौथे चरणों को 'सरस' शब्द से प्रारंभ करके अंदर के पार्श्वों के शब्दों को पढ़ते हुए 'सरस' शब्द ही में पूर्ण करें।

जहं सुन्दर तहं जग नहीं जग तहं सुन्दर नित्य।
जहं पृथ्वी तहं घट नहीं घट तहं पृथ्वी सत्य ॥ ३४ ॥

वोहं सोहं एकही तूं ही हूं ही एक।
कहिवे ही कौ फेर है सुन्दर संमुझि बिवेक ॥ ३५ ॥

ज्यौं माता हाऊ कहै बालक मानैं त्रास।
त्यौं सुन्दर संसार है मिथ्या बचन बिलास ॥ ३६ ॥

जगत नाम सुनि भ्रम भयौ मान्यौ सत्य स्वरूप।
सुन्दर मृग जल देषिये है सूरय की धूप ॥ ३७ ॥

जैसें महदाकाश तैं घटाकाश नहिं भिन्न।
यौं आतम परमातमा सुन्दर सदा प्रसन्न ॥ ३८ ॥

आतम अरु परमातमा कहन सुनन कौं दोइ।
सुन्दर तब ही मुक्त है जबहिं एकता होइ ॥ ३९ ॥

देह धरैं यह जीव है ईस्वर धरैं बिराट।
कारज कारन भ्रम गयें सुन्दर ब्रह्म निराट ॥ ४० ॥

जगत जगत सबको कहै जगत कह्यौ किहिं ठौर।
सुन्दर यह तौ ब्रह्म है नाम धर्यौ फिरि और ॥ ४१ ॥

षोज करत ही जगत को जगत बिलै ह्वै जाइ।
सुन्दर यह सब ब्रह्म है जगत कहां ठहराइ ॥ ४२ ॥

जगत कहे तें जगत है सुन्दर रूप अनेक।
ब्रह्म कहे तें ब्रह्म है वस्तु बिचारें एक ॥ ४३ ॥

प्रगट भयौ भ्रम जगत कौ करतें जगत बिचार।
सुन्दर ब्रह्म बिचार तें जगत न रह्यौ लगार ॥ ४४ ॥

ज्यौं रवि के उद्योत तें अंधकार भ्रम दूरि।
सुन्दर ब्रह्म बिचार तें ब्रह्म रह्यौ भरपूरि ॥ ४५ ॥

---

(४०) निराट=निरा, अकेला।

सुन्दर "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" कहतु हैं वेद।
चतुर श्लोकी माहिं पुनि सकल मिटायौ भेद ॥ ४६ ॥
सुन्दर कह्यौ वसिष्ट पुनि रामचन्द्र सौं ज्ञांन।
ब्रह्म बतायौ एक ही दूरि कियौ भ्रम आंन ॥ ४७ ॥
सुन्दर अष्टावक्र ऋषि ब्रह्म बतायौ एक।
दूरि कियौ भ्रम सकल ही जो नानात्व अनेक ॥ ४८ ॥
दत्तात्रय मुनि यौं कह्यौ ब्रह्म बिना कछु नांहिं।
सुन्दर सोई कृष्णजी भाख्यौ गीता मांहिं ॥ ४९ ॥
सुन्दर यहै निरूपियौ बहु बिधि करि वेदांत।
ब्रह्म बिना दूजा नहीं सबकौ यह सिद्धांत ॥ ५० ॥

॥ इति अद्वैतज्ञान कौ अंग ॥ २९ ॥

---

(४६) 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानाऽस्ति किंचन"। यह सब (जगत्) निश्चय ब्रह्म है इसमें नानात्व जो भासता है वह कुछ नहीं है।

चतुर श्लोकी=चतुःश्लोकी भागवत। अर्थात् भागवत में सब सन्देह मिटा दिया है। नारदजी को प्रथम चार श्लोक भागवत के प्राप्त हुए। उन पर ही इतना विस्तार हुआ।

(४७) वसिष्ठ=योगवासिष्ठ ग्रन्थ में रामचन्द्रजी को वसिष्ठजी ने वेदान्त का उपदेश दिया।

(४८) अष्टावक्र=अष्टावक्र गीता में ब्रह्मज्ञान कहा।

(४९) दत्तात्रेय=दत्तात्रेय महामुनि ने दत्तात्रेय संहिता में अद्वैत ज्ञान प्रतिपादन किया।

(५०) वेदान्त=उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और शांकर भाष्य आदि में वेदान्त सिद्धान्त निर्णीत है।

॥ अथ ज्ञानी कौ अंग ॥ ३० ॥

सुन्दर ज्ञानी जगत मैं बिचरै सदा अलिप्त।
यह गुन जानै देह कै भूपो रहै क तृप्त ॥ १ ॥

पाइ पिवै देपै सुनै सुन्दर ले पुनि स्वास।
सोंचै नीर पताल कौं फिरि मारै आकास ॥ २ ॥

देपै परि देपै नहीं सुनता सुनै न कांन।
जानै सब जानै नहीं सुन्दर ऐसा ज्ञांन ॥ ३ ॥

भक्ष करै न भपै कछू सूंघत सूंघै नांहि।
ऐसे लक्षण देपिये सुन्दर ज्ञानी मांहि ॥ ४ ॥

बोलत ही अनबोलता मिलता ही अनमेल।
सोवत ही अनसोवता सुन्दर ऐसा पेल ॥ ५ ॥

बैठैं तें बैठा नहीं ऊठत ऊठ्या न मांनि।
चलतैं सो चालै नहीं सुन्दर ज्ञानी जांनि ॥ ६ ॥

देत कछू नहिं देत है लेत कछू नहीं लेइ।
यह सब जानै स्वप्न करि सुन्दर ज्ञानी सेइ ॥ ७ ॥

काज अकाज भलौ बुरौ भेदा भेद न कोइ।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय देह-क्रिया सब होइ ॥ ८ ॥

काइक वाइक मानसी कर्म न लागै ताहि।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय देह-क्रिया सब आहि ॥ ९ ॥

पहलैं कियौ न अब करौं आगै की नहिं आस।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञान करि काटे बंधन पास ॥ १० ॥

[३० ज्ञानी का अंग]=इस अंग के लिए देखें "सवैया" ग्रन्थ में ज्ञानी का अंग २९।

विधि निषेद जाकै नहीं नां कछु पाप न पुंन्य।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञान मैं सब करि जानै शुंन्य॥ ११॥

हर्ष शोक उपजै नहीं राग द्वेष पुनि नाहिं।
सुन्दर ज्ञानी देषिये गरक ज्ञान के माहिं॥ १२॥

बंध मोक्ष जाकै नहीं स्वर्ग नरक नहिं दोइ।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय संशय रह्यौ न कोइ॥ १३॥

घर बन दोऊ सारिषे ना कछु ग्रहण न त्याग।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय ना कहुं राग बिराग॥ १४॥

निंदा स्तुती देह की कर्म शुभाशुभ देह।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय कछू न जानै येह॥ १५॥

कोहू सौं घटि बढि नहीं काहू निकट न दूरि।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय ब्रह्म रह्या भरपूरि॥ १६॥

शब्द सुनै सो ब्रह्ममय कहै ब्रह्ममय बैन।
सुन्दर ज्ञानी ब्रह्ममय ब्रह्महि देषै नैंन॥ १७॥

पंच तत्व पुनि ब्रह्ममय ब्रह्मा कीट पर्यंत।
ज्ञानी देषै ब्रह्ममय सुन्दर संत असंत॥ १८॥

सुंदर बिचरत ब्रह्ममय ब्रह्म रह्या भरपूर।
जैसैं मच्छ समुद्र मैं कहां जाइ कहु दूर॥ १९॥

जौ पग पहरी पानही कांटा चुभै न कोइ।
सुंदर ज्ञानी सुखमई जहां तहां सुख होइ॥ २०॥

जलचर थलचर व्योमचर जीवनि की गति तीन।
ऐसैं सुंदर ब्रह्मचर जहां तहां लयलीन॥ २१॥

अपनै मन आनंद है तौ सगरै आनंद।
सुन्दर मन शीतल भयौ दह दिशि शीतल चन्द॥ २२॥

ऊठत बैठत फिरत हूं षातहुं पीवत प्रांन।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञांन॥ २३॥

जागत सोवत जीवते सुप सो फरत थपान।
सुन्दर ज्ञानी के सदा कहिये केवल ज्ञांन ॥ २४ ॥

भूत हु भव्य हु वर्त्तते दूजा नांहीं आन।
सुन्दर ज्ञानी के सदा कहिये केवल ज्ञान ॥ २५ ॥

अध ऊरध दश हू दिशा पूरन ब्रह्म समांन।
सुन्दर ज्ञानी के सदा कहिये केवल ज्ञांन ॥ २६ ॥

घटाकाश ज्यौं मिलि गयौ महदाकाश निदांन।
सुन्दर ज्ञानी के सदा कहिये केवल ज्ञान ॥ २७ ॥

मुक्ति शिला मूर्ये कहै ते सौ अति अज्ञांन।
सुन्दर ज्ञानी के सदा कहिये केवल ज्ञान ॥ २८ ॥

भावै तनु काशी तजौ भावै वागड माहिं।
सुन्दर जीवन मुक्त के ससय कोऊ नाहिं ॥ २६ ॥

जेसौ कासी क्षेत्र है तैसौ वागड देश।
सुन्दर जीवन मुक्त के सक नहीं लवलेस ॥ ३० ॥

अज्ञानी कौ जगत सब दीसै दुख सताप।
सुन्दर ज्ञानी के सकल ब्रह्म विराजै आप ॥ ३१ ॥

अज्ञानी कौ जगत यह दुखदाइक भै त्रास।
सुन्दर ज्ञानी के जगत है सब ब्रह्म बिलास ॥ ३२ ॥

अज्ञ क्रिया कछु करत है अह बुद्धि कौं आंनि।
सुन्दर ज्ञानी करत है अहकार विनु जांनि ॥ ३३ ॥

---

(२५) भूत हु भव्य हु वर्त्तते=भूत भविष्यत, वर्त्तमान ये तीनौं काल वर्त्तमान से भासते हैं।

(२६) अध ऊरध =न दिशाए ज्ञानी में वर्त्तती हैं। सर्वत्र एक ब्रह्म समान रहता है। "दिक कालादि—अनवच्छिन्न"। ब्रह्म में काल, कर्म, दिशा, कारण कार्य कुछ नहीं हैं। इससे ये ज्ञानी में भी नहीं हैं, जो ब्रह्म ही है।

अज्ञानी सुख दुखनि कौं जानत अपने माहिं।
सुन्दर ज्ञानी आपु मैं सुख दुख मानै नांहिं॥ ३४॥

सुन्दर अज्ञ रु तज्ञ कै अंतर है यहु भांति।
वाकै दिवस अनूप है वाहि अधेरी राति॥ ३५॥

ज्ञानी शुभ कर्मनि करै लोक आचरन हेत।
बहुत भांति के शब्द कहि सुन्दर सिन्या देत॥ ३६॥

जानत है सब स्वप्न करि इन्द्रिनि कौ व्यवहार।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञान तैं भिन्न न होइ लगार॥ ३७॥

सुन्दर ज्ञानी ज्ञान मैं गरक भयौ निज ठौर।
दत दिपावै और गज दसन पान कै और॥ ३८॥

तम रज गुण करि जगत है भक्त सतोगुण रुद्ध।
सुन्दर तीनों गुन परै ज्ञानी सात्विक सुद्ध॥ ३९॥

तवा अधोमुख आरसी दर्पण सूधौ होइ।
ऐसै तम रज सत्व गुण सुन्दर देषहु जोइ॥ ४०॥

तवा माहिं नहिं देषियै सूरय कौ उद्दोत।
सुन्दर मूधी आरसी तामैं कछूक होत॥ ४१॥

जब दर्पन सूधौ करै रवि आभासै आइ।
सुन्दर दर्पन मिटि गयें सूरयई रहि जाइ॥ ४२॥

जीव ब्रह्म मिलि जात है सुन्दर उपजें ज्ञान।
दूर भयौ प्रतिबिंब जब रह्यौ एक ही भान॥ ४३॥

---

(३५) तज्ञ=ज्ञानी।

(४१) मूधी=उलटी। पुराने समय में आरसी फौलाद लोहे की बनती थी। एक ओर सेकल से चमक होती थी। दूसरे ओर कम होती थी। उसमें अधिक नहीं दिखाई देता था। सूर्य के सामने चमक उसमें अधिक और इसमें कम होती थी। यह लोहे का कारण था। (४३) उपजें ज्ञान=ज्ञान के उत्पन्न होने से, जीव

सुन्दर ज्ञान प्रकास तं घोपौ रहै न कोइ।
भावै घर माहे रहौ भावै वन मैं होइ॥ ४४॥
वन तैं घर आवै नहीं घर तैं वन नहिं जाइ।
सुन्दर रवि उद्दोत तैं तिमिर कहां ठहराइ॥ ४५
पंपी की पर टूट कैं भूमि पर्यौ जिहिं ठौर।
सुन्दर उडिवे तें रह्यौ मिटी सकल ही दौर॥ ४६॥
एक क्रिया पेती करै बंधन होत अपार।
एक क्रिया भोजन करत बंधन उतनी बार॥ ४७
एक क्रिया मल मूत्र कौं तजत नहीं वछु प्यार।
सुन्दर ज्ञानी की क्रिया बंधन नहीं लगार॥ ४८॥
चौपरि पेलहिं द्वै जने सुन्दर बाजी लाइ।
जीतै सु तौ पुसाल ह्वै हारै सौ मुरझाइ॥ ४९॥
एक जनौ दुहुं वोर कौं चौपरि पेलै आनि।
सुन्दर हारनि जीत कछु ऐसैं ज्ञानी जांनि॥ ५०॥
सुन्दर देष्या आपुकौं सुनै आपुनै बैंन।
बूझ्या अपनी बूझि कौं समुझ्या अपनी सैंन॥ ५१।
सुन्दर भाया आपु कौं आया अपुनी ठांम।
गाया अपने ज्ञान कौं पाया अपना धांम॥ ५२॥
अंत्यज ब्राह्मण आदि दै दार मथै जो कोइ।
सुन्दर भेद कछू नहीं प्रगट हुतासन होइ॥ ५३॥

ब्रह्म एक हो जाते हैं जैसे दर्पण हट जाय तब सूर्य ही रह जाय। जीव तो ब्रह्म का प्रतिबिंब मात्र है।

(५३) दार मथै=(दारु) लकड़ी को आगे से अग्नि, रगड़ कर, उत्पन्न करै। (५३) और (५६) तक ज्ञान की भेदभाव रहित व्यापकता और सर्व के लिए समान पावनशक्ति के कैसे सुन्दर उदाहरण हैं। वर्णाश्रम, सम्प्रदाय, छोटे बड़े का कुछ भी भेद नहीं। जो करै सो हो पावै।

दीपग जोयौ विप्र घर पुनि जोयौ चण्डाल।
सुन्दर दोऊ सदन कौ तिमिर गयौ ततकाल ॥ ५४ ॥

अंत्यज के जल कुम्भ मैं ब्राह्मन कलस ममार।
सुन्दर सूर प्रकाशिया दुहुंवनि मैं इकसार ॥ ५५ ॥

अंत्यज ब्राह्मन आदि दै किवा रंक कि भूप।
सुन्दर दर्पन हाथ लै सो देपै निज रूप ॥ ५६ ॥

सुन्दर सब कौ ज्ञान की बातैं कहै अनेक।
ज्यौं दर्पन बहु भांति कै अग्नि परै कहुं एक ॥ ५७ ॥

देह चलै आतम अचल चलत कहै मतिमद।
अभ्र चलत ज्यौं देपिये सुन्दर चलै न चन्द ॥ ५८ ॥

सूरय करि कैं देपिये तवा आरसी दोइ।
सूरय सूरय सौं दर्स सुन्दर समुझै कोइ ॥ ५९ ॥

जो भिक्षा मागत फिरै कै जौ भुक्तै राज।
सुन्दर ज्ञानी मुक्त है ना कछु काज अकाज ॥ ६० ॥

इंद्री अर्थनि कौं गृहै लिप्त न कबहू होइ।
सुन्दर ज्ञानी मुक्त है कम न लागै कोइ ॥ ६१ ॥

---

(५७) अग्नि परै कहु एक=आतशी शाशे से आग पड़ै अर्थात् उत्पन्न होय, शीशे चाहे जिस आकार के वा तरह के हों, अग्नि तो भिन्नरूप की नहीं होगी, वही एकरूप अग्नि ही होगी। ऐसे ही ज्ञान एक ही है सचा, वर्णन उसका पृथक्-पृथक् भले ही करैं।

(५९) सूरज के सामने चाहे तवा करो चाहे आरसी करो उसमें सूरज तो सूरज ही दीसैगा। ऐसे ही आत्मा का सब प्राणियों या भूतों में (घड़ों की नाईं) प्रतिबिंब पड़ता है सो इकसार है।

(६०) भुक्तै राज=जनक राजा की तरह जिसके भोग मोक्ष साथ-साथ थे।

ज्ञानी चारि प्रकार

रागी त्यागी शांति पुनि चतुर्थ घोर बषांनि।
ज्ञानी चारि प्रकार हैं, तिनहिं लेहु पहिचांनि॥ ६२॥

रागी राजा जनक है त्यागी शुक सम थोर।
शांति जानि जमदग्नि कौं दुर्वासा अति घोर॥ ६३॥

क्रिया सु तिनकी भिन्न है भिन्न देह व्यवहार।
ज्ञान विषै नहिं भेद है सुंदर एक लगार॥ ६४॥

क्रिया देषि ज्ञानीनि की सब कोऊ भ्रमि जाहिं।
सुन्दर देषैं देह कृत आशय पावैं नांहिं॥ ६५॥

॥ इति ज्ञानी कौ अंग ॥ ३० ॥

॥ अथ अन्योऽन्य भेद अंग ॥ ३१ ॥

सुन्दर ज्ञानी नृपति कै सेना है चतुरङ्ग।
रथ अश्व गज त्रय अवस्था इन्द्रिय पाइक संग॥ १॥

तुरिया सिंघासन कियौ तुरियातीत सु वोक।
ज्ञान छत्र है सीस पर सुन्दर हर्ष न शोक॥ २॥

रथ चौवीस हु तत्व कौ कर्म सुभासुभ वैल।
सुन्दर ज्ञानी सारथी फरै दशौं दिशि सैल॥ ३॥

---

(६२) शान्ति=शान्त (ज्ञानी का एक प्रकार वा अवस्था का विशेषण)।

[अङ्ग ३१]—(२) वोक=(सं० ओक) स्थान, निज भवन। आखिरी मंजिल वा पद। परमगति।

(३) "आत्मानं रथिनं विद्धि। शरीरं रथमेव च"। (उप०। गीता)

तीनौं गुन इंद्रिय सकल ये सब चालै गैल।
सुन्दर बिचरत जगत मंहि ताहि न लागै मैल ॥ ४ ॥

(२) अन्य भेद।

देह तमूरा ठाट जड जीभ तार तिहिं लाग।
सुन्दर चेतन चतुर बिन कौंन बजावै राग ॥ १ ॥

जीभ तार दोऊ बजहिं सुन्दर देषहु आइ।
एक बजावत देषिये एक न देष्या जाइ ॥ २ ॥

एक कह्या अनुमानि करि एक देषिये अक्ष।
सुन्दर अनुभव होइ जब तब देषिये प्रत्यक्ष ॥ ३ ॥

किनहूं पूछ्यौ फेरि कैं अनुभव कैसी होइ।
सुन्दर तुम अनुभव कही चिन्ह बतावौ कोइ ॥ ४ ॥

तेरैं अनुभव होइ है तबहिं जानि हैं बीर।
मुख तें कही न जात है सुन्दर सुख की सीर ॥ ५ ॥

कन्या पूछत और त्रिय पुरुष मिलै कौ सुक्ख।
सुंदर परसी पीव कौं तब कछु कहै न मुक्ख ॥ ६ ॥

गूंगै पाई सरकरा सुन्दर मन मुसक्याइ।
सैंन बतावै हाथ सौं मुख तें कही न जाइ ॥ ७ ॥

जिन जिन कौ अनुभव भयौ तिन तिन पकरी मौंन।
सुन्दर अनुभव गोपि है चिन्ह बतावै कौंन ॥ ८ ॥

सुन्दर जैसैं पुरुष तें अंगुरी है चेतन्य।
अंगुरी जंत्र बजावई राग अन्य ही अन्य ॥ ९ ॥

पुरुष सु तौ चेतन्य है अंगुरी अंतह्करणं।
सुंदर बाजै जंत्र तनु शब्द कहै बहु वर्ण ॥ १० ॥ १४ ॥

---

(१०) जंत्र=यंत्र, बाजा। तनु=देह।

(३) अन्य भेद

सत् अरु चित्त आनंदमय ब्रह्म विशेषण तीन।
अस्ति भाति प्रिय आतमा कहे विशेषण कौन ॥ १ ॥

असह जानि जड दुःख मय तीन विशेषण देह।
उपजै वर्तै लीन ह्वै सब विकार कौ गेह ॥ २ ॥

ब्रह्म देह के मध्य है अंतहकरण उपाधि।
तन् संबंधी आतमा ताहि लगी यह व्याधि ॥ ३ ॥

याही सुद्ध असुद्ध है याके ज्ञान अज्ञान।
जड सौ मिलि जडवत भयौ जीवातम सो जांन ॥ ४ ॥

अस्ति असत सौ जानिये भाति भयौ जड रूप।
प्रिय पुनि हूवौ दुःख मय भूलि पर्यौ भ्रम कूप ॥ ५ ॥

यह लक्षण अज्ञान कौ देह सु मान्यौ आप।
सुन्दर या अभिमान तें व्यापैं तीनौं ताप ॥ ६ ॥

ताही तें यह जीव है अहं ममत जब होइ।
भूलि गयौ निज रूप कौं सुधि बुधि अपनी षोइ ॥ ७ ॥

जो कोई जह्यास ह्वै सद्गुरु सरणै आइ।
सुन्दर ताहि कृपा करै ज्ञान कहै समुझाइ ॥ ८ ॥

वासौं सद्गुरु यौं कहै समझि आपनौ रूप।
सकल भेद भ्रम दूरि करि तू है तत्व अनूप ॥ ९ ॥

[अन्यभेद ३ रा] (२) और (१)=सत् का अस्ति। चित् का भाति। आनन्द का प्रिय। क्रमशः। उपजै वर्तै लीन व्है=उत्पत्ति, स्थिति, संहार को प्राप्त होवै। विकार=विकृति जो प्रकृति से गुणभेद संस्कार से होती है सो प्रपंच का कारण है, चेतन की सत्ता से।

(७) अहं ममत=(१) अहंता (२) ममता।

अस्त होइ सत रूप तब भाति होइ चैतन्य।
प्रिय पुनि है आनन्दमय आतम ब्रह्म न अन्य ॥ १० ॥

जीव भयौ अनुलोम तें ब्रह्म होइ प्रतिलोम।
सुन्दर दारु जराइ कें अग्नि होइ निर्धोम ॥११॥२५॥

(४) अन्य भेद।

गऊ देह कै मद्धि है पय अरु उत्तम ज्ञान।
सुन्दर घृत ज्यौं आतमा व्यापक, एक समान ॥ १ ॥

चारि श्रवन जब नीरिये बांट मनन अभ्यास।
सुदर दुहिये धेनु कौं सो कहिये निदिध्यास ॥ २ ॥

दुग्ध ज्ञान जब पाइये जा मन निश्चै तात।
सुन्दर दधि मथि अनुभवै निकसै घृत साक्षात ॥ ३ ॥

सुन्दर या अनुक्रम बिना ज्ञान प्रगट नहिं होइ।
बात कहें का होत है भ्रम मति भूलै कोइ ॥ ४ ॥ २६ ॥

(५) अन्य भेद।

क्रिया करत है बहुत बिधि ज्ञान दृष्टि जो नांहिं।
अंध चल्यौ मग जात है परै कूप के मांहिं ॥ १ ॥

ज्ञान दृष्टि करि निपुनि है क्रिया नहीं पग दौर।
अग्नि लगै जब सदन में पंगु जरै वहि ठौर ॥ २ ॥

ज्ञान क्रिया दोऊ मिलहिं तबही होइ उधार।
यथा अंध के कंध पर पंगु होइ असवार ॥ ३ ॥

---

(१०) अस्त=अस्ति।

(११) निर्धोम=निर्धूम। धूम (धुवां) अग्नि में उपाधि है। जैसे आत्मा पर माया। "धूमेनाग्निरिवावृता" (गीता)।

[अन्य भेद ४ थे में] (२) चारि=चारा। तृणादिक। बांट=बांटा, सानी दाल खली बिनोला दाना आदि।

कूप अग्नि दोऊ बचहिं तामैं फेर न कोइ।
सुन्दर ज्ञान क्रिया विना मुक्त कहे नहिं होइ॥ ४॥
क्रिया भक्ति हरि भजन है और क्रिया भ्रम जांन।
ज्ञान ब्रह्म देषै सकल सुन्दर पद निर्बांन॥ ५॥ ३४॥

(६) अन्य भेद।

कर्त्ता कर्म न भोगता पुद्‌गल जीव न कोइ।
सुन्दर यह भ्रम स्वप्न मैं जागें एक न दोइ॥ १॥
भ्रम कर्त्ता भ्रम भोगता भ्रम सु कर्म भ्रम काल।
भ्रम पुद्‌गल भ्रम जीव है सुन्दर सब भ्रम जाल॥ २॥
बचन जाल उरझै सबै सुरझावैं गुरु देव।
नेति नेति करते रहैं सुन्दर अलष अभेव॥ ३॥
एक अखंडित ब्रह्म है दूसर नांही आंन।
सुन्दर भ्रम रजनी मिटै प्रगट होइ जब भान॥ ४॥
कठिन बात है ज्ञान की सुन्दर सुनी न जाइ।
और कहीं नहिं ठाहरै ज्ञानी हृदय समाइ॥ ५॥ ३६॥

॥ इति अन्योऽन्य भेद अंग॥ ३१॥

॥ इति श्री स्वामी सुन्दरदास विरचित साषी समाप्तम्॥

---

(४) कूप अग्नि=कूप से और अग्नि से (पड़ने जलने से बचे)।

इस (५) अन्यभेद में सुन्दरदासजी ने दादूजी की सम्प्रदाय का और निजमत को कह दिया है।

[अन्य भेद (६) में] (१) पुद्‌गल=देह, शरीर।

(४) भान=भानु, सूर्य (ज्ञानरूपी सूर्य)।

(५) और कहीं नहिं ठाहरै=ज्ञानरूपी अमृत सिंहनी के दूध के समान है, सो

ज्ञानी के शुद्ध हृदयरूपी कनकपात्र ही में ठहर सकता है अन्य पात्र तो इसके लिए अपात्र, अनधिकारी और अयोग्य है उसमें यह पय (ज्ञान) नहीं ठहर सकता है। अर्थात् पहिले अपने आपको गुरु उपदेश, साधन और भक्ति से इस योग्य बनावै तब ज्ञान समा सकता है। अन्यथा लाक्षज्ञान वा स्मशानज्ञान की तरह क्षणभंगुर होगा। इधर सुना उधर निकल गया।

@ अङ्ग ३१ के अन्त में मूल (क) पुस्तक में ६ ठे अन्य भेद की समाप्ति के भी अनन्तर—दो श्लोक शार्दूल (विक्रीडित), एक अनुष्टुप, १ भुजगप्रयात छन्द, फिर १ अनुष्टुप छन्द—यों संस्कृतमय ये पांच छन्द हैं। सो (ख) पुस्तकानुसार हमने फुटकर काव्य के अन्त में, अर्थात् यों समस्त ग्रन्थों के अन्त में, दिये हैं। सो संगति प्रतीत होगी। सुन्दरदासजी "साषी" पर सब ग्रन्थ समाप्त कर चुके थे ऐसा भासित होता है।

॥ इति श्री स्वामी सुन्दरदासजी की "सार्षी" पर सुन्दरानन्दी टीका समाप्तम् । अंग ३१ । साखी संख्या १३५१ ॥

पद (भजन)

॥ अथ पद (भजन)† ॥

जकडी राग गौडी

(१)

(ताल रूपक)

देह कहै सुनि प्रांनियां काहे होत उदास वे।
अरस परस हम तुम मिले ज्यौंव् पहुप अरुवास वे ॥ (टेक)
इक पहुप बास मिलाप जैसौ दूत घृत ज्यौं मेल वे।
काष्ठ मैं ज्यौं अग्नि व्यापक तिलनि मैं ज्यौं तेल वे ॥
जैसें उदक लवना मध्य गवना एकमेक वपानियां।
सुन्दरदास उदास काहे देह कहै सुनि प्रानियां ॥ १ ॥
जीव कहै काया सुनौ हम तुम होइ बियोग वे।
हम निर्गुण तुम गुणमयी कैसैं रहत संयोग वे ॥
संयोग कैसैं रहत तोसौं हौं अमर अविनास वे।
तूं क्षण भंगुर आहि बौरी कौन ताको आस वे ॥
इक आस ताकी कहा करिये नास होवै तिहिं तनौ।
सुन्दरदास उदास यातैं जीव कहै काया सुनौ ॥ २ ॥
देह कहै सुनि प्रानियां तोहि न जानत कोइ वे।
प्रगट सु तौ हमतैं भयौ छलपनो जिनि होइ वे ॥

---

† पदों की रागों के स्वरूप और समय की तालिका परिशिष्ट में देखें।

(१) वियोग=वियोग, भिन्न। बौरी=बावली, अल्प बुद्धि की।

इक होइ जिनि कृतघनी कबहूँ भोग बहु बिधि तें किये।
शब्द सपरस रूप रस पुनि गंध नीकैं करि लिये॥
इक लिये गंध सुवास परिमल प्रगट हम तें जानियां।
सुन्दरदास विलास कीने देह कहै सुनि प्रानियां॥ ३॥
जीव कहै काया सुनौ तू काहू नहिं काम वे।* .
सोभ दई हम आइकैं चेतनि कीया चांम वे॥
इक चाम चेतनि आइ कीया दिया जैसें भौन वे।
बोलन चालन तबहिं लागी नहितु होती मौंन वे॥
यह मौंन तेरौ जबहिं छूटै तबहि तुम नीकी बनौ।
सुन्दरदास प्रकास हमतें जीव कहै काया सुनौ॥ ४॥
देह कहै सुनि प्रानियां तेरैं आंषि न कांन वे।
नासा मुख दीसै नहीं हाथ न पांव निसांन वे॥
इक हाथ पांव न सीस नाभी कहा तेरौ देषिये।
भिन्न हमतें जबहिं बोलै तबहिं भूत विशेषिये॥
डरैं सब कोई शब्द सुनि कै भरम भै करि मांनियां।†
सुन्दरदास आभास ऐसौ देह कहै सुनि प्रानियां॥ ५॥
जीव कहै काया सुनौ तो महिं बहुत बिकार वे।
हाड मांस लौहू भरी मज्जा मेद अपार वे॥
इक मेद मज्जा बहुत तोमैं चाम ऊपर छाइया।
जा परी हम होंहि न्यारे सबैं देषि घिनाइया॥

---

* "नहिं" के स्थान में "नाहीं" पाठ छन्द को और भी ठीक बनाता है। सोभ=शोभा। तबहिं तुम नीकी बनौ=यदि वाणी बन्द हो जाय तो गूंगा रहे वा मूरख समझा जाय। उत्तम वाणी ही से मनुष्य की बड़ाई और इहलोक और परलोक का हित साधन होता है।

† "कोई" में हृस्व इ हो तो (कोइ) छन्द ठीक रहे।

(५) भरम भै=भ्रो प्रगट में लोगों को जान पड़े (भूत प्रेत का होना, या प्रभाव)।

घिन करै सबकौ देषि तौ कौं नांक मदै जन जनौं।
सुन्दरदास सुवास हमतैं जीव कहै काया सुनौं॥ ६॥
देह कहै सुनि प्रांनियां तेरै ठौर न ठांव वे।
लेत हमारौ आसिरौ धरत हमहीं को नांव वे॥
तूं नांव कैसें धरत हम का बात सुनिये एक वे।
जा हांडी मैं षाइ चलिये ताहि न करिये छेक वे॥
अब छेक कोयें नाहिं सोभा करि हमारी कांनियां।
सुन्दरदास निवास हममैं देह कहै सुनि प्रांनियां॥ ७॥
जीव कहै काया सुनौ मेरै ठौर अनंत वे।
आयौ थो इस काम कौं भजन करन भगवंत वे॥
भगवंत भजनै कारनि आयौ प्रभु पठायौ आप वे।
पीछली सुधि सबै बिसरी भयौ तोहि मिलाप वे॥
इक मिले तोसौं कहा कोसौं अंतरा पार्यौ घनौं।
सुन्दरदास विसास घातनि जीव कहै काया सुनौं॥ ८॥

(२)

अलष निरंजन ध्यावउं और न जाचउं रे।
कोटि मुक्ति देइ कोई तौ ताहि न राचउं रे॥ (टेक)
ब्रह्मा कहियेइ आदि पार नहीं पावै रे।
कीयौ करम कुलाल सुमन नहिं भावै रे॥ १॥
बिष्णु हुते अधिकारि सुतौ प्रभ जनम्यौं रे।
संकट माहिं ग्याइ दसौं दिस भरम्यौं रे॥ २॥

---

(६) सबकौ=सब कोई।

(७) कानियां=कांन, कांण मानना, आदर करना। लोहा मानना।

(८) कहा कोसौं=तुम से मिलना क्या हुआ कोसों का आंतरा पड़ गया।

शंकर भोलानाथ हाथ धरु दीनौं रे।
अपनौं काल उपाइ मरम नहिं चीन्हौं रे॥ ३॥
औरौं देविय देव सेव हम त्यागिय रे।
सब तें भयौ उदास ब्रह्म लय लागिय रे॥ ४॥
जाचिक निकट अवास आस धरि गावै रे।
वाहरि ठाढो रहै कि भीतरि आवै रे॥ ५॥
पवरि भईय दातार सार मोहि वूझिय रे।
इहां आवन की गैलि तोहि कस सूझिय रे॥ ६॥
जाचिक बोलै वैन सकल फिरि आयौ रे।
तोहि जैसौ कोउ अवर कहूं नहीं पायौ रे॥ ७॥
सब साहिन पर साहि नृपति पर राइय रे।
सब देवन पर देव सुन्यौ सुख दाइय रे॥ ८॥
पुसिय भये दातार कहा तुम मांगै रे।
रिधि सिधि मुकति भंडार सु तेरै आगै रे॥ ९॥
जाकर इन कीये चाहि ताहि कौं दीजै रे।
हम कहं नाम पियार सदा रस पीजै रे॥ १०॥
देष्यौ वहुत डुलाइ न कतहूंव डौलै रे।
दियौ अभै पद दान मान नहीं तोलै रे॥ ११॥
जाचिक देइ असीस नाम लेइ काकौ रे।
माइ बाप कुल जाति वरन नहीं वाकौ रे॥ १२॥
सब तेरौ परिवार न तेरौ कोइय रे।
वहुत कहा कहौं तोहि सबद सुनि दोइय रे॥ १३॥
धनि धनि सिरजनहार तौ मंगल गायौ रे।
जन सुन्दर कर जोरि सीस तोहि नायौ रे॥ १४॥

---

२ का (३) धर=धरदान वीरभद्रगण को भस्मागर कहा देकर।

(३)

ताहि न यह जग ध्यावई, जातैं सब सुख आनंद होइ रे।
आन देव कौं ध्यावनैं, सुख नहिं पावै कोइ रे॥ (टेक)

कोई शिव ब्रह्मा जपै रे कोई विष्णु अवतार।
कोई देवी देवता इहां उरझ रह्यौ संसार॥ १॥
घट धारी सब एक हैं रे तासौं प्रीति न लाइ।
मेंढ सरन गहै मेंडका तौ कैसें उबस्यौ जाइ॥ २॥
प्राण पिंड जिन सिरजिया रे सो तो बिसरै दूरि।
और और के ह्वै गये तातैं अंत परै मुख धूरि। ३॥
लोक कहैं हम करत हैं रे सेवा पूजा ध्यान।
काति मुई सब जन्म लौं वह भयौ कपास निदान॥ ४॥
गुनधारी गुन सौं रंजै रे निर्गुन अगम अगाध।
सकल निरंतर रमि रह्या ताहि सुमिरै कोइ एक साध॥ ५॥
जरा मरन तैं रहित है रे कीजै ताकी सेव॥
जन सुन्दर तासौं लग्या जौ है अविनासी देव॥ ६॥

(४)

(पूर्वी बोली मिश्रित)

हरि भजि बौरी हरि भजु त्यजु नैहर कर मोहु।
पिव लिनहार पठाइहि इक दिन होइहि बिछोहु॥ (टेक)*

---

३ का (४)—काति मुई...=उम्र भर सूत काता (काम धंधा किया) और अन्त सब वृथा गया। इसीसे मुहाविरा है कि "काता पींदा सब कपास हो गया"।

४ पद की टेक=नैहर कर=नेहर (पीहर) का।—पिव लिनहार=पिया (गौणे पर) लेने को आवेगा तब।

* "भजु" को "भजू" पढ़ना वा उच्चारण करना ठीक होगा। "पठाइहि" को "पठाइही" और "होइहि" को "हुइहि" पढना ठीक होगा। छन्द और राग की सुविधा के कारण से ही।

आपुहि आपु जतन करु जौं लगि बारि बयेस।
आन पुरुष जिनि भेटहु केहूके उपदेस॥ १॥
जबलग होहु सयानिय तबलग रहब संभारि।
केहूं तन जिनि चितवहु ऊंचिय दृष्टि पसारि॥ २॥
यह जोबन पिय कारन नीकैं राखि जुगाइ।
आपनौ घर जिनि छोड़हु पर घर आगि लगाइ॥ ३॥
यहि बिधि तन मन मारै दुइ कुल तारै सोइ।
सुन्दर अति सुख बिलसई कंत पियारी होइ॥ ४॥

(५)

ये तहां झूलहि संत सुजान सरस हिंडोलवा। (टेक)
जत सत दोउ थंभ रे श्रद्धा भूमि बिचारि।
क्षमा दया धृति दीनता ये सखि सोभित डांडी चारि॥ १॥
उत्तम पटली प्रेम की रे डोरी सुरति लगाइ।
भईया भाव झुलावई ये सखि हरषि हरषि गुन गाइ॥ २॥
चहुं दिशि बादल उनइये रे रिमिझिमि बरिषै मेह।*
अंतर भीजै आतमा ये सखि दिन दिन अधिक सनेह॥ ३॥
झूलहि नाम कबीरजी रे अति आनंद प्रकास।
गुरु दादू तहां झूलहीं ये सखि झूलै सुन्दरदास॥ ४॥

(६)

(ताल तिताला)

सन्तो भाई पानी बिन कछु नांहीं।
तो दर्पन प्रतिबिंब प्रकासै जो पानी उस मांहीं॥ (टेक)

---

४ का (१) बारि बयेस=बालपन।
५ वां पद—झूलेका रूपक काया और आत्मापर है।—नाम=नामदेव भक्त।
* 'उनइये रे' के स्थान में 'उनइये' या कनये पढ़ना।
६ ठा पद—"पानी" शब्द का श्लेष अनेक अर्थ में। हाथी का मद भी उसकी

पानी तें मोती की सोभा महिंगे मोल बिकावै।
नहिं तो फटकि शिला की सरिभरि कौडी बदलै पावै ॥ १ ॥
जब गजराज मस्तमद होई करिये बहु बिधि सारा।
जब मद गयौ भयौ बसि अपनै लादि चलायौ भारा ॥ २ ॥
जब सरवर जल रहै पूरि कै सब कोइ देषन चाहा।
सूकि गये ताही के भीतरि पैठै जाइ बराहा ॥ ३ ॥
याही साषि कहै सिषि साधू बिंद राषि कैं लीजै।
सुन्दरदास जोग तब पूरण राम रसाइन पीजै ॥ ४ ॥

(७)

(ताल तिताला)

सन्तो भाई सुनिये एक तमासा।
चुप करि रहौं त कोई न जानें कहतैं आवै हासा ॥ (टेक)
नारी पुरुष के ऊपर बैठी बूझै एक प्रसंगा।
जौ तू मेरै कहे न चालै तौ रहु रहै न रंगा ॥ १ ॥
कंत कहै सुनि सर्व-सोहागनि तेरा बोल न टालौं।
अबकै क्योंही छूटन पाऊं बहुरि न तोहि संभालौं ॥ २ ॥
बहुरि त्रिया इक बात बिचारी यह कब हो नहिं मेरौ।
अबकै आइ परयौ बस मांही करि छाडौंगी चेरौ ॥ ३ ॥
दोऊ मेल रहत नहिं दीसै इक दिन होंहि निराले।
सुन्दरदास भये बैरागी इनि बातन के चाले ॥ ४ ॥

शाभा है जो पानी से है। पानी बीर्य के अर्थ में भी। बराहा=शूकर (कादे का दूढ स बचोई)।

७ वां पद—(टेक) सन्तो। पुरुष=जीव। नारि=माया (काया) निराले=(१) मन्यु से। (२) मोरा से, अलग से।

(८)

(ताल तिताला)

देषौ भाई कामिनि जग मैं ऐसी।
राजा रंक सबनि के घर मैं बाघनि ह्वै कर वैसी॥ (टेक)
कबहीं हंसै कबही इक रोवै कोई मरम न पावै।
झीनी पैसि हरै बुधि सबकी छल बल करि गटकावै॥ १॥
ज्ञानी गुनी सूर कवि पण्डित होते चतुर सयाना।
सनमुख होइ परे फन्द मांही जुवती हाथ बिकाना॥ २॥
बस्ती छाडि बसैं बन मांहिं चावैं सूके पाता।
दाउ परै उनहूं कौं मारै दे छाती परि लाता॥ ३॥
नागलोक नग पतनी कहिये मृत्युलोक मैं नारी।
इन्द्रलोक (मैं) रंभा ह्वै बैठी मोटी पासि पसारी॥ ४॥
तीनि लोक मैं बच्यौ न कोई दीये डाढ तर सारे।
सुन्दरदास लगे हरि सुमिरन ते भगवन्त उबारे॥ ५॥

(९)

(ताल तिताला)

सन्तो माई पद मैं अचिरज भारी।
समझै कौ सुननैं सुख उपजै अन समझै कौं गारी॥ (टेक)
माय मारि करि ऊपरि बैठा बाप पकरि करि बांध्यौ।
घर के और कुटंबी ऊपरि बिन कमान सर सांध्यौ॥ १॥

---

८ वां पद—झीनी पैसि=बारीक या गहरी घुस कर। अपना काबू बड़ी चतुराई के साथ पुरुष पर करके। गटकावै=अपना स्वार्थ सिद्ध करै। मान मारै।

(४) नाग पतनी=नाग कन्या। (५) 'दीये'—इसको 'दिये' पढ़ें।

९ वां पद—इस पद में विपर्यय शब्द का उपयोग है। 'अचिरज' और 'गारी' के विलक्षण अर्थों की टीका देखें। माइ=माया। बाप=अहंकार। कुटुंबी=इन्द्रिय और

त्रिया त्रास करि बाहरि काढी लहुडी धी घरि घाली।
जेठी धी कै गलै छुरी दे बहू अपूठी चाली॥ २॥
सास बिचारी ज्यौं त्यौं नीकी सुसरौ बडौ कसाई।
तास्यौं सगति बनै न कबहूं निकसिइ भयौ जंवांई॥ ३॥
पुत्र हुवौ परि पाइ पांगुली नैंन अनन्त अपारा।
सुन्दरदास इसौ कुल दीपग कियौ कुटंब संहारा॥ ४॥

(१०)

(ताल चरचरी)

पल पल छिन काल ग्रसत, तोहिरे दग नाहिं द्रसत,
हँसत मूढ अज्ञान तें।
करत है अनेक धन्ध, और कौन वदत अन्ध,
देपत शठ विनस जाइ झूठे अभिमान तें॥ (टेक)
पर्‌यौ जाइ विषै जाल होइगें बुरे हवाल,
बहुत भांति दुःख पंहै निकसत या प्रान तें।
सुत दारा छाडि धाम अरथ धरम कौन काम
सुन्दर भजि राम नाम छूटै भ्रम आन तें॥ १॥

(११)

(तिताला)

भया मैं न्यारा रे। सतगुरु के जु प्रसाद भया मैं न्यारा रे॥
• श्रवन सुन्यौ जब नाद भया मैं न्यारा रे।
छूटौ वाद विवाद भया मैं न्यारा रे॥ (टेक)

विषय तथा कामक्रोधादिक। सर=ज्ञान का तीर। त्रिया=तृष्णा। लहुडी=लघुता, निरभिमानता। सास=बुद्धि। सुसरो=मात्सर्य। जवांई=अभिमान, क्रोध। पुत्र=ज्ञान। अनत नैन=दिव्य दृष्टि, प्रकाश। कुल दीपग=जिज्ञासु ज्ञानी जीव मत महात्माओं का सत्संग।

१० वां पद—द्रसत=दीसत, दिखता। आन=अन्य। भिन्न।

लोक वेद को संग तज्यौ रे साधु समागम कीन।
माया मोह जञ्जाल तें हम भागि किनारौ दीन ॥ १ ॥
नाम निरंजन लेत हैं रे और कछू न सुहाइ।
मनसा वाचा कर्मना सब छाडी आन उपाइ ॥ २ ॥
मनका भरम विलाइया रे भटकत फिरता दूरि।
उलटि समाना आप मैं तब पाया राम हजूरि ॥ ३ ॥
पिंड ब्रह्माण्ड जहां तहां रे वा बिन और न कोइ।
सुन्दर ताका दास है जातैं सब पैदाइस होइ ॥ ४ ॥

(१२)

(तिताला)

काहे कौं तू मन आनत भै रे। जगत विलास तेरौ भ्रम है रे ॥ (टेक)
जन्म मरन देहनि कौं कहिये सोऊ भ्रम जब निश्चय महिये ॥ १ ॥
स्वर्ग नरक दोऊ तेरी शंका तूही राव भयौ तू रंका ॥ २ ॥
सुख दुख दोऊ तेरे कीये तैंही बन्ध मुक्त करि लीये ॥ ३ ॥
द्वैत भाव तजि निर्मै होई तब सुन्दर सुन्दर है सोई ॥ ४ ॥१२॥

(१) राग माली गौडो

(ताल रूपक)

हरि नाम तैं सुख ऊपजै मन छाडि आन उपाइ रे।
तन कष्ट करि करि जौ भ्रमै तौ मरन दुःख न जाइ रे ॥ (टेक)
गुरु ज्ञान कौ विश्वास गहि जिनि भ्रमै दूजी ठौर रे।
योग यज्ञ क्लेश तप व्रत नाम तुल्य न और रे ॥ १ ॥

---

११ वां पद=उलटि समाना आपमें=अंतर्मुख वृत्ति हो गई। पिंड=शरीर,काया। ब्रह्माण्ड=सकल सृष्टि।

[राग माली गौडो] १ ला पद—नाम तुल्य=नाम के बराबर।

सब सन्त यौंही कहत है श्रुति स्मृति ग्रन्थ पुरान रे।
दास सुन्दर नाम तें गति लहै पद निर्वान रे॥ २॥

(२)

(ताल रूपक)

सतसंग नित प्रति कीजिये मति होइ निर्मल सार रे।
रति प्रानपति सौं ऊपजै अति लहै सुक्ख अपार रे॥ (टेक)
मुख नाम हरि हरि उच्चरै श्रुति सुनै गुन गोबिन्द रे।
रटि ररंकार अखंड धुनि तहां प्रगट पूरन चन्द रे॥ १॥
सतगुरु बिना नहिं पाइये यह अगम उलटा खेल रे।
कहि दास सुन्दर देषतें होइ जीव ब्रह्म हि मेल रे॥ २॥

(३)

(ताल रूपक)

ब्रह्म ज्ञान बिचारि करि ज्यौं होइ ब्रह्म स्वरूप रे।
सकल भ्रम तम जाय मिटि उर उदित भान अनूप रे॥ (टेक)
यह दूसरौ करि जबहिं देषै दूसरौ तब होइ रे।
फेरि अपनी दृष्टि ही कौ दूसरौ नहिं कोइ रे॥ १॥
दिवि दृष्टि करि जब देषिये तब सकल ब्रह्म विलास रे।
अज्ञान तें संसार भासै कहत सुन्दरदास रे॥ २॥

(४)

(ताल रूपक)

परब्रह्म है परब्रह्म है परब्रह्म अमिति अपार रे।
नहिं जगत है नहिं जगत है नहिं जगत सकल असार रे॥ (टेक)

---

२ रा पद—"सुख"को छन्द सौन्दर्य के लिए "सुक्ख" लिखना पड़ा है। श्रुति=कान।

३ रा पद—दिवि दृष्टि=दिव्य दृष्टि, भेद रहित ज्ञान।

नहिं पिंड है न ब्रह्मांड है नहिं स्वर्ग मृत्यु पाताल रे।
नहिं आदि है नहिं अंत है नहिं मध्य माया जाल रे ॥ १ ॥
नहिं जन्म है नहिं मरन है नहिं काल कर्म सुभाव रे।
जीव नहिं जमदूत नहिं अनुस्यूत सुन्दर गाव रे ॥ २ ॥

(५)

जग तै जन न्यारा रे। करि ब्रह्म बिचारा
ज्यौं सूर उन्यारा रे। (टेक)
जल अंबुज जैसें रे, निधि सींप सु तैसें रे
मणि अहि मुख ऐसें रे ॥ १ ॥
ज्यौं दर्पन माहीं रे, दीसै परछांही रे, कछु परसै नहीं रे ॥ २ ॥
ज्यौं घृत हि समीपै रे, सब अंग प्रदीपै रे, रसना नहिं छीपै रे ॥ ३ ॥
ज्यौं है आकसा रे, कछु लिपै न तासा रे, यौं सुदरदासा रे ॥ ४ ॥

(६)

गुरु ज्ञान बताया रे, जग झूठ दिपाया रे, यौं निश्चै आया रे ॥ (टेक)
ज्यौं मृग जल दीसै रे, कोइ पिया न पीसै रे, यौं बिस्वा बीसै रे ॥ १ ॥
ज्यौं रैंनि अंधारी रे, रजु सर्प निहारी रे, भ्रम भागा भारी रे ॥ २ ॥
ज्यौं सींप अनूपा रे, करि जान्यौ रूपा रे, कोइ भयौ न भूपा रे ॥ ३ ॥
बंध्या सुत झूलै रे, आकास के फूलै रे, नहिं सुन्दर भूलै रे ॥४॥१८॥

(१) राग कल्याण

(तिताला)

तोहि लाभ कहा नर देह कौ।
जो नहिं भजे जगतपति स्वामी तौ पशुवन मैं छेह कौ। (टेक

---

५ वां पद—अनुस्यूत=सर्वव्यापक, ओतप्रोत
६ ठा पद—पीसै=पीवैगा (रा०)।

पान पान निद्रा सुख मैथुन सुत दारा धन गेह् कौ ।
यह तौ ममत आहि सबहिंन कौं मिथ्या रूप सनेह कौ ॥ १ ॥
समझि विचारि देषि या तन कौं बंध्यौ पूतरा षेह् कौ ।
सुन्दरदास जानि जग झूठौ इनमें कोउ न केह् कौ ॥ २ ॥

(२)

(ताल तिताला)

नर राम भजन करि लीजिये ।
साध संगति मिलि हरि गुन गइये प्रेम मगन रस पीजिये । (टेक)
भ्रमत भ्रमत जग में दुख पायौ अब काहे कों छीजिये ।
मनिषा जन्म जानि अति दुर्लभ कारिज अपनौ कीजिये ॥ १ ॥
सहज समाधि सदा लय लागै इहि बिधि जुग जुग जीजिये ।
सुंदरदास मिलै अबिनाशी दंड काल सिर दीजिये ॥ २ ॥

(३)

(ताल तिताला)

नर चिंत न करिये पेट की ।
ह्लै चलै तामैं कछु नांहीं कलम लिपी जो ठेट की ॥ (टेक)
जीव जंत जलथल के सबही तिनि निधि कहा समेट की ।
समय पाय सबहिंन कौं पहुचैं कहा बाप कहा बेटकी ॥ १ ॥
जाकौ जितनौ रच्यौ बिधाता ताकौ आवै तेटकी ।
सुंदरदास ताहि किन सुमिरौ जौ है ऐसा चेटकी ॥ २ ॥

[राग कल्याण] १ ला पद (जारी)—पूतरा=पुतला, मूर्त्ति । केह=किसी का ।

२ रा पद—दंड काल सिर=काल के माथे में सोंटा मारो । । काल जीतो । अमर बनो ।

३ रा पद—बेटकी=बेटी, पुत्री । तेटकी=तितनी (वा, उतने टके भर, वजन भरी) । चेटकी=चेटक करने वाला । इस अद्भुत सृष्टि का रचने, पालने और फिर मिटा देने वाला ।

(४)

(धीमा तिताला)

जग झूठौ है झूठौ सही। पूरन ब्रह्म अकल अविनाशी।
मन वच क्रम ताकौ गही॥ (टेक)

उपजै विनसै सो सब बाजी वेद पुराननि मैं कही।
नाना विधि के खेल दिखावै बाजीगर साँचौ वही॥ १॥
रज भुजंग मृगतृष्णा जैसी यह माया बिस्तरि रही।
सुन्दर वस्तु अखंड एक रस सो कहू बिरलै लही॥ २॥

(५)

(तिताला)

तत थेई तत थेई तत थेई ता धो। नागड धी नागड धी
नागड धी मा धो। (टेक)

थुंगनि थुंगनि थुंगनि थुंगा त्रिघट उघटित तुरिय उतंगा॥ १॥
तन नन तन नन तन नन तन्ना शुद्ध गगनवत आतम भिन्ना॥ २॥
तत् त्वं तत् त्वं तत् सो त्वं असि साम वेद यौं बदत तत्वमसि॥३॥
अद्भुत निरतत नासत सोहं सुंदर गावत सोहं सोहं॥ ४॥ २३॥

---

४ था पद—सही=यह बात सही है, निश्चित है, सिद्धांत की है।

५ वां पद—इसका अध्यात्म अर्थ। तत्=वह ब्रह्म। थे ई=तुमही निश्चय करके हो। ता धी=वह बुद्धि, महावृत्ति वाली। नागड़ धी=नागी बुद्धि, असंप्रज्ञात समाधि में जो अंतःकरण की अवस्था। नागड़ धी=नहीं गहरी गड़नेवाली बुद्धि। नागड़ धी=नागर+धी=शुद्ध संस्कृत हुई बुद्धि। मा धी=मत हटसे ढकेल। यहां केवल उक्त शुद्ध बुद्धि का काम है। (जारी)—थुंग त्रिघुग...=थू+अंग=थ्वंग=थुंग—अंग, काया माया हेय है थूकने योग्य। तीन बेर कहने से वचन की प्राधान्यता हुई। त्रिघट=स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों ही नाशमान शरीर है। उघटित=ये तीनों उद्घाटित, खुल जांय अर्थात् इनका अन्त हो जाय। (तब) वह तत्

(१) राग कानड़ी

राम छबीले कौ व्रत मेरैं।

सुख तौ सुखी दुखी तौ हू सुख ज्यौं राषै त्यौं नेरैं॥ (टेक)
निश तौ निश बासर तौ बासर जोई जोई कहैं सोई सोई बेरैं।
आज्ञा मांहिं एक पग ठाढी तब हाजरि जब टेरैं॥ १॥
रीसि करहिं तौ हू रस उपजै प्रीति करहिं तौ भाग भलेरैं।
सुन्दर धन के मन मैं ऐसी सदा रहंगी केरैं॥ २॥

(२)

संत सुखी दुख मय संसारा।

संत भजन करि सदा सुखारे जगत दुखी गृह कै विवहारा॥ (टेक)
संतनि कै हरि नाम सकल निधि नाम सजीवनि नाम अधारा।
जगत अनेक उपाइ कष्ट करि उदर पूरना करै दुखारा॥ १॥
सतनि कौं चिंता कछु नाहीं जगत सोच करि करि मुख कारा।
सुन्दरदास संत हरि सनमुख जगत बिमुख पचि मरै गंवारा॥ २॥

(३)

संत समागम करिये भाई।

जानि अजानि छुवै पारस कौं लोह पलटि कंचन होइ जाई॥ (टेक)
नाना बिधि बनराइ कहावत भिन्न भिन्न करि नाम धराई।
जाकौ बास लगै चन्दन की चन्दन होत बार नहिं काई॥ १॥

(सत् ब्रह्म) उतग अर्थात् सर्वोच्च सबसे ऊपर प्राप्त हो जो तुरीय है। अर्थात् तुरीयावस्था। तननन...ततनन्न इति जो प्रगट विश्व दृश्यमान भासता है सो परब्रह्म नहीं है यह तो माया मात्र है। ब्रह्म तो आकाश की तरह अति सूक्ष्म परन्तु सर्व व्यापक है। आगे स्पष्ट अर्थ है।

[राग कानड़ी] १ ला पद—नेरैं=निकट। बेरैं=बेला, समय। हर वक्त हाजिर। धन=धण, पत्नी। केरैं=केड़ै (रा०) गिर्द फिरो।

नवका रूप जानि सतसंगति तामैं सब कोई बैठहु आई।
और उपाइ नहीं तरिबे को सुन्दर काढी राम दुहाई ॥ २ ॥

(४)

हरि सुख की महिमां शुक जांनैं।
इंद्रपुरी शिव ब्रह्मलोक पुनि बैकुंठादिक नजरि न आंनैं। (टेक)
ता सुख मगन रहैं सनकादिक नारद हू निर्मल गुन गांनैं।
ऋषभदेव दत्तात्रय तन मैं वामदेव महा मुक्त बषांनैं ॥ १ ॥
ता सुख कौ क्षय होइ न कबहूं सदा अखडित संत प्रवांनैं।
सुन्दरदास आस ता सुख की प्रगट होइ तबही मन मांनैं ॥ २ ॥

(५)

सब कोउ आप कहावत ज्ञानी।
जाकौं हर्ष शोक नहिं ब्यापै ब्रह्मज्ञान की ये नीसांनी ॥ (टेक)
ऊपर सब बिवहार चलावै अंतहकरण शून्य करि जांनी।
हानि लाभ कछु धरै न मन मैं इहिं विधि विचरै निर अभिमांनी ॥ १ ॥
अहंकार की ठौर उठावै आतम दृष्टि एक उर आंनी।
जीवन-मुक्त जांनि सोइ सुन्दर और बात की बात बषांनी ॥ २ ॥

(६)

तू अगाध परब्रह्म निरंजन को अब तोहि लहै।
अजर अमर अविगति अविनासी कौंन रहनि रहै ॥ (टेक)
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद से सहु अगम कहै।
सुन्दरदास बुद्धि अति थोरी कैसैं तोहि गहै ॥ १ ॥

---

३ रा पद – काढी=खुल। राम दुहाई=सत समागम से बढ़कर मोक्ष का उपाय अन्य नहीं। इस बात को राम की दुहाई देकर कहते हैं।

४ था पद– शुक=शुकदेव मुनि। भागवत में ब्रह्मानन्द को भक्ति द्वारा प्राप्त करने का उपदेश है।

५ वां पद—बात की बात=कोरी बात है। ६ ठा पद—गहै=ग्रहण करै। पकड़ै।

(७)

ज्ञान तहां जहां द्वंद्व न कोई ।

वाद विवाद नहीं काहू सौं गरक ज्ञान में ज्ञानी सोई ॥ (टेक)

भेदाभेद दृष्टि नहिं जाकै हर्ष शोक उपजै नहिं दोई ।
समता भाव भयौ उर अंतर सार लियौ सब ग्रंथ बिलोई ॥ १ ॥
स्वर्ग नरक संशय कछु नांहीं मनकी सकल वासना धोई ।
वाही कै तुम अनुभव जानौ सुन्दर उहै ब्रह्ममय होई ॥ २ ॥

(८)

पंडित सो जु पढ़ै यह पोथी ।

जा मैं ब्रह्म विचार निरंतर और बात जानौ सब थोथी ॥ (टेक)

पढत पढत केते दिन बीते विद्या पढी जहां लग जो थी ।
दोष बुद्धि जौ मिटी न कबहूं यातैं और अविद्या को थी ॥ १ ॥
लाभ पढै कौ कछू न हूवौ पूंजी गई गांठि की सो थी ।
सुन्दरदास कहै समुझावै बुरौ न कबहूं मानौं मो थी ॥ २ ॥ ३१ ॥

(१) राग बिहागड़ौ

(ताल त्रिवट)

हो वैरागी राम तजि किंहि देश गये ।

ता दिन तैं मोहि कल न परत है परवसि प्रान भये ॥ (टेक)

भूष पियास नींद नहिं आवै नैंननि नेम लये ।
अंजन मंजन सुधि सब बिसरी नख शिष विरह तये ॥ १ ॥

---

७ वा पद—गरक=डूबा हुआ, गहरी पहुच वाला । बिलोई=मथन करके । मनन करके ।

८ वा पद—को थी=कौन सी थी । इससे बढ़कर अज्ञान और क्या हो सकता है । मो थी=मुझ से, मेरे कहे का ।

[राग बिहागड़ौ]१ ला—तये=तपाये ।

आपु कृपा करि दरसन दीजै तुम कौनैं रिझये।
सुन्दर बिरहनि तब सुख पावै दिन दिन नेह नये ॥ २ ॥

(२)

(धीमा तिताला)

माई हो हरि दरसन की आस।
कब देषौं मेरा प्रान सनेही नैंन मरत दोऊ प्यास ॥ (टेक)
पल छिन आध घरी नहिं बिसरौं सुमिरत सास उसास।
घर बाहरि मोहि कल न परत है निस दिन रहत उदास ॥ १ ॥
यहै सोच सोचत मोहि सजनी सूके रगत र मांस।
सुन्दर बिरहनि कैसें जीवै बिरह बिथा तन त्रास ॥ २ ॥

(३)

(तिताला)

हमारे गुरु दीनी एक जरी।
कहा कहौं कछु कहत न आवै अंमृत रसहि भरी ॥ (टेक)
ताकौ मरम संत जन जानत बस्तु अमोल परी।
यातैं मोहि पियारी लागत लैकरि सीस धरी ॥ १ ॥
मन भुजंग अरु पंच नागनी सूंघत तुरत मरी।
डायनि एक षात सब जग कौं सो भी देष डरी ॥ २ ॥
त्रिबिधि बिकार ताप तनि भागी दुरमति सकल हरी।
ताकौ गुन सुनि मीच पराई और पवन धपुरी ॥ ३ ॥
निस बासर नहिं ताहि बिसारत पल छिन आध घरी।
सुन्दरदास भयौ घट निरविष सबही ब्याधि टरी ॥ ४ ॥

---

१ ग कौनैं=क्यों नहीं (अर्थात् क्यों नहीं रिझते)। २ ग पद—रगत र=रक्त (रुधिर) र (और)।

३ ग पद—डायनि=डायन में। मीच=मौत। पराई=भागी।

(४)

(तिताला)

मन मेरे उलटि आपु कौं जानि ।

काहे कौं उठि चहु दिशि धावै कौन परी यह बानि ॥ (टेक)

सत गुरु ठौर बताई तेरी सहज सुनि पहिचानि ।
तहां गये तोहि काल न व्यापै होइ न कबहूं हानि ॥ १ ॥
तू ही सकल बियापी कहिये संमुझि देषि भ्रम भानि ।
तूं ही जीव शीव पुनि तूं ही तू ही सुन्दर मानि ॥ २ ॥

(५)

(तिताला)

हाहा रे मन हाहा ।

हाइ हाइ तोहि टेरि कहत हौं अब चलि सीधी राहा ॥ (टेक)

बार बार समुझायौ तो कौं दे दे लंबी धाहा ।
निकसि जाइ पल मांहि धूम ज्यौं कतहूं ठौर न ठाहा ॥ १ ॥
तेरौ वार पार नहिं दीसै बहुत भांति औगाहा ।
डुबकी मारि मारि हम थाके कतहु न पायौ थाहा ॥ २ ॥
जौ तू चतुर प्रवीन जान अति अबकै करि निर्बाहा ।
छाडि कलपना राम नाम भजि यातैं और न लाहा ॥ ३ ॥
चञ्चल चपल चाहि माया की यह गुलाम-गति काहा ।
सुन्दर सँमुझि बिचार आपुकौ तू तौ है पतिसाहा ॥ ४ ॥

---

४ था पद सहज सुनि=सहज योग से शून्यावस्था (वृत्ति रहित भूमि का ज्ञान की) । शीव=शिवा । कैवल्य ।

५ वा पद—धाहा=जोर से चीख मार कर पुकारना । औगाहा=विचार किया । काहा=काह, क्या वस्तु है ? कैसी है ?

(६)

(तिताला)

तूं ही रे मन तूं ही ।

कौंन कुबुद्धि लगी यह तोकौं होत सिंह तें चूही ॥ (टेक)

छानत छार फिरै निसवासर कौडी कौं सब भू ही ।

अंमृत छाडि निलज्ज मूढ़-मति पकरत नीरस छूही ॥ १ ॥

अंत न पार कलपना तेरी ज्यौं वरिषा ऋतु* फूही ।

सुख निधान अपनौं सुख तजि कैं कत ह्वै दुःख समूही ॥ २ ॥

शिव सनकादिक पुनि ब्रह्मादिक प्रह्लाद‡ अरु ध्रू ही ।

नाम कबीरा सोझा पीपा कहै सतगुरु दादू ही ॥ ३ ॥

बाती देषि कहा तू भूलै यह तौ है सब रूही ।

सुन्दर ऐसैं जानि आपुकौं सुन्दर काहि न हू ही ॥ ४ ॥

(७)

गुजराती भाषा

(ताल दीपचन्दी-होली का ठेका)

भाई रे आपणपौ जू ज्यौं । सांभलि नें जिमना तिम हूं ज्यौं ॥ (टेक)

जीव थया ज्यारैं देह हुं जाराणौं । निज सरूप नथी आप पिछाण्यौं ॥ १ ॥

मूल्यौं ज्ञानां† तुम्हे वीसर्यौ ज्यारैं । जीव थया तुम्हें तलक्षण त्यारैं ॥ २ ॥

सद्गुरु मिलैन संसय जावे । पोताली आंणे महिमावे ॥ ३ ॥

दृढ़ करतौ तेहूं मोलै । हूंतौ तेजे सोहं बोलै ॥ ४ ॥

हम जाणे हूं वस्तु अनामैं । सुन्दर तें सुन्दर पद पामै ॥ ५ ॥

---

६ ठा पद— भू ही=पृथ्वी को ही । फूही=फफोंद । भुर्र पानी की छींटों सी । रूही=रुई । हू ही=हो जाता ।

* रितु पाठ भी है ।

‡ उच्चारणार्थं ह को द्व किया । † 'ग्यान' पाठ ।

(१) राग केदारो

व्यापक ब्रह्म जानहुं एक।

और भ्र दूरि सब मक रिये इहै परम विवेक॥ (टेक)

ऊंच नीच भलौ बुरौ सुभ असुभ यह अज्ञान।
पुन्य पाप अनेक सुख दुख स्वर्ग नरक वषांन॥ १॥
द्वंद्व जौं लौं जगत तौ लौं जन्म मरण अनंत।
हृदै मैं जब ज्ञान प्रगटै होइ सबकौ अन्त॥ २॥
दृष्टि गोचर श्रुति पदारथ सकल है मिथ्यात।
स्वप्न तें जाग्यौ जबहिं तब सब प्रपंच बिलात॥ ३॥
यथा भांन प्रकाश तें कहुं तम रहै न लगार।
कहत सुन्दर संमुझि आई तब कहा संसार॥ ४॥

(२)

देषहु एक है गोबिंद।

द्वैत भाव हि दूरि करिये होइ तब आनन्द॥ (टेक)

आदि ब्रह्मा अन्त कीट हु दूसरौ नहिं कोइ।
जो तरग बिचारिये तौ बहै एकै तोइ॥ १॥
पंच तत्व रु तीन गुन कौ कहत है संसार।
तऊ दूजौ नांहिं एकहि बीज कौ बिस्तार॥ २॥
अतत निरसन कीजिये तौ द्वैत नहिं ठहराइ।
नहिं नहीं करते रहै तहा बचन हूं नहिं जाइ॥ ३॥
हरि जगत मैं जगत हरि मैं कहत है यौं वेद।
नाम सुन्दर धर्‌यौ जब ही भयौ तब ही भेद॥ ४॥

[राग केदारो] २ रा पद—अतत निरसन=अतत्व जो माया उसका निरसना नाम बाध होने से। (आरी) नाम=नाम रूप मय जगत है।

(३)

ज्ञान विन अधिक अरुझत है रे।
नैंन भये तौ कौंन काम के नैंक न सूझत है रे ॥ (टेक)
सब में व्यापक अन्तरजामी ताहि न बूझत है रे।
भेद दृष्टि करि भूलि पर्यौ है तातैं जूझत है रे ॥ १ ॥
कठिन करम की परत आपसी माँहि असूझत है रे।
सुन्दर घट में कामधेन हरि निश दिन दूझत है रे ॥ २ ॥

(४)

हरि बिन सब भ्रम भूलि परे हैं।
नाना विधि के क्रिया कर्म करि बहु विधि फलन फरे हैं ॥ (टेक)
कोऊ सिर परि करवत धारैं कोऊ हीम गरे हैं।
कोऊ झंपापात लेइ करि सागर बूडि मरे हैं ॥ १ ॥
कोऊ मेघाडम्बर भीजहिं पंचा अग्नि जरे हैं।
कोऊ सीतकाल जल पैठैं बहु कामना भरे हैं ॥ २ ॥
कोऊ उलटिकि अधोमुख झूलहिं कोऊ रहत परे हैं।
कोऊ बन में पान कन्द पगि बल्कल बसन धरे हैं ॥ ३ ॥
कोऊ तीरथ कोऊ व्रत करि करि कष्ट अनेक करे हैं।
सुन्दर तिनकौं को गंगुमानैं पुहपित वचन छरे हैं ॥ ४ ॥

---

३ रा पद—अरुझत=उलझना, कठिनाई में फंसना। सूझत=दिखना। असूझत=चित्त में अवगाहें पड़ना है। दूझत=दूध देनी।

४ था पद—परे=पड़े। हीम=हिमालय में। फंद पगि=फंदे जमीन में गोड़कर निकल कर (?)। पुहपित=पुष्प भरे। छरे=छरक गये, झड़ गये, अर्थात् इनका वचनविस्तार हो बड़ा सुन्दर है। अथवा "पुष्पितां वाचं" (गीता) इसी अभिप्राय है।

(१) राग मारू

लगा मोहि राम पियारा हो।
प्रीति तजि संसार सौं मन किया न्यारा हो ॥ (टेक)
सत गुरु शब्द सुनाइया दिया ज्ञान बिचारा हो।
भरम तिमर भागै सबै गहि कीया उज्यारा हो ॥ १ ॥
चापि चापि सब छाडिया माया रस पारा हो।
नाम सुधारस पीजिये छिन बारम्बारा हो। २ ॥
मैं बन्दा ब्रह्म का जाका वार न पारा हो।
ताहि भजै कोइ साधवा जिनि तन मन मारा हो ॥ ३ ॥
आन देव कौं ध्यावई ताकै मुख छारा हो।
अलप निरञ्जन ऊपरै जन सुन्दर वारा हो ॥ ४ ॥

(२)

मेरै जिय आई ऐसी हो।
तन मन अरप्यौ राम कौं पीछै जानौ जैसी हो ॥ (टेक)
सत गुरु कही मरम की हिरदै मैं वैसी हो।
संगुझि परी सब ठौर की कहौं रही न कैसी हो ॥ १ ॥
अन जानै जो कछु किया अब होय न वैसी हो।
रीति सकल संसार की मोहि लगत अनैसी हो ॥ २ ॥
मनसा बाहरि दौरती अभि अन्तर पैसी हो।
अगम अगोचर सुंनि मैं तहां लागी लैसी हो ॥ ३ ॥
जो आगै सन्तनि करी उपजी है तैसी हो।
सुन्दर काहू कौं डरै अब भागी भैसी हो ॥ ४ ॥

[राग मारू] २ रा पद—अनैसो=अप्रिय, बुरी। लै=लय, लग्न। भै सी=भय-वाली। भयानक।

(३)

सुन्यौं तेरौ नीकौ नांऊं हो।
मोहि कछू दत दीजिये बलिहारी जांऊं हो॥ (टेक)
सब ठाहर होइ आइयौ रुचि नहीं कहांऊं हो।
ब्रह्मा विष्णु महेश लौं अरु किते बताऊं हो॥ १॥
मैं अनाथ भूखौ फिरौं तोहि पेट दिपांऊं हो।
धका लगे तें गिर परौं तबही मरजांऊं हो॥ २॥
दुर्बल की कछु बूझिये कबकौ बिललांऊं हो।
तेरै कछु घटि है नहीं मैं कुटम्ब जिवांऊं हो॥ ३॥
राम राम रटिबौ करौं निर्मल गुन गांऊं हो।
सुन्दर रङ्क निवाजिये यहु रोजी पांऊं हो॥ ४॥

(४)

सोई जन राम कौं भावै हो।
कनक कामिनी परहरै नहिं आप बन्धावै हो॥ (टेक)
सबही सौं निरवैरता काहू न दुषावै हो।
सीतल बानी बोलिकै रस अंमृत प्यावै हो॥ १॥
कैतौ मौंन गहे रहै कै हरिगुन गावै हो।
भरन कथा संसार की सब दूरि उडावै हो॥ २॥
पंचौ इन्द्री बसि करै मन मनहिं मिलावै हो।
काम क्रोध अरु लोभ कौं पनि पोदि बहावै हो॥ ३॥
चौथा पद कौ चीन्ह कै ता मांहि समावै हो।
सुन्दर ऐसे साधु की ढिग काल न आवै हो॥ ४॥

---

३ रा पद—कहांऊं=कहीं भी।

पद ४ था—चौथा पद=तुरीया अवस्था। गुणातीत हो जाना।

चौकी बंध

चौपइया

या पासैं आप रहै अविनाशी देषि विचारहु काया।
या काहु न जाना जगत भुलाना मोहे मोटी माया॥
या माटी माहें हीरा निकस्या सतगुर पोज लपाया।
या पल लपेट्यो सुन्दर दीसैं याही पासैं पाया॥ १॥

इसके पढ़ने की विधि

इस चित्रकाव्य के चित्र के गर्भ में या अक्षर से प्रारंभ करके दाहिनी ओर पढैं। और सैं अक्षर फिर दाहिनी ओर पढते हुए चौकी के प्रथम पाये में सी अक्षर से चरणार्ध वा यति को उच्चारण करके आगे पार्श्व के देषि आदि शब्दों को पढ कर हु अक्षर को पढ अंदर काया शब्द पर प्रथम चरण पूर्ण करैं। फिर उसही या अक्षर से काहु में होकर मोटा माया तक अन्दर आ पढैं। यहां दूसरा चरण पूरा हुआ। आगे इसही प्रकार उसही या अक्षर से शेष दोनों चरणा को पढ कर सुन्दर दीसैं याही पासैं पाया। यहां समाप्त कर दें। चारों चरणों के चरणार्धों में चार अक्षर पायेंगे हैं।

(५)

जुवारी जूवा छाडौ रे।

हारि जाहुगे जन्म कौं मति चौपडि मांडौ रे ॥ (टेक)

चौपड अंतहकरण की तीनौं गुन पसा रे।

सारि कुबुद्धी धरत हो यौं होइ विनासा रे॥ १॥

लष चौरासी घर फिरै अब नरतन पायौ रे।

पाकी काची सारि है जो दाव न आयौ रे॥ २॥

झूठी बाजी है मडी तामैं मति भूलौ रे।

जीव जुवारी बापडा काहे कौं फूलौ रे॥ ३॥

सारि संमुझि कैं दीजिये तौ कबहु न हारौ रे।

सुन्दर जीतौ जन्म कौ जौ राम संभारौ रे॥ ४॥

(६)

ऐसी मोहि रैनि बिहाई हो।

कौन सुनै कासौं कहौं बरनी नहि जाई हो॥ (टेक)

पूरन ब्रह्म विचार तैं मोहि नींद न आई हो।

जागत जागत जागिया सूतें न सुहाई हो॥ १॥

कारण लिंग स्थूल की सब शंक मिटाई हो।

जाग्रत स्वप्न सुषोपती तीनौं विसराई हो॥ २॥

तुरिया तत्पद अनुभयौ ताकी सुधि पाई हो।

"अहं ब्रह्म" यौं कहत हौ हौं गयौ विलाई हो॥ ३॥

बचन तहां पहुंचै नहीं यह सैन बताई हो।

सुन्दर तुरियातीत मैं सुन्दर ठहराई हो॥ ४॥

---

६ ठा पद—कहत हौ=कहते कहते। कहता रहता था, (इसके अभ्यास [illegible] फिर)। गयो बिलाई=ब्रह्म में लीन हो गया।

(७)

ज्ञानी ज्ञान कौ जानै हो ।
मुक्त भयौ विचरै सदा कछु शंक न आनै हो ॥ (टेक)
सँमुझि बूझि चुपचाप ह्वै बकवाद न ठानै हो ।
दूरि भई सब कल्पना भ्रम भेदहि भानै हो ॥ १ ॥
देपै हस्तामलक ज्यौं कछु नाहि न छानै हो ।
सुन्दर ऐसी ह्वै रहै तबही मन मानै हो ॥ २ ॥ ४६ ॥

(१) राग भैरू

वेगि वेगि नर राम संभाल, सिर पर मूठ मरोरत काल (टेक)
या तन का लेखा है ऐसा, काचा कुंभ भरया जल जैसा ।
निनसत बार कछू नहिं होई, पीछे फिरि पछितावै सोई ॥ १ ॥
को तेरौ तूं काकौ पूत, घर घर नौ मन अरभयौ सूत ।
नीकैं संमुझि देपि मन माँहि, आठ बाट सब कोई जाँहि ॥ २ ॥
ममता मोह फंद सौं करै, बाट बटोही क्यौं नहीं डरै ।
संगी तेरे सबै सिधाये, तौकौं दैंन संदेसा आये ॥ ३ ॥
मनुष देह दुर्लभ है सही, शिव विरंचि शुक नारद कही ।
सुंदरदास राम भजि लेह, यह औसर बरियां पुनि येह ॥ ४ ॥

---

७ वां पद—हस्तामलक=हाथ के आंवले के समान । स्पष्ट । यथा तुलसीदासजी ने कहा है:—"जानहिं तीनि काल निज ज्ञाना । करतलगत आमलक समाना ।"

[राग भैरू] १ ला पद—लेखा=लेखा, हिसाब । अंत निश्चय । आठ बाट=आठ रास्ते । बुरे रस्ते में । बरियां=बरियन=अतिथ्येश ।

(२)

घट विनसै नहीं रहै निदांना।

पुदइ (फहुं) देष्या अकलि तैं जांना ॥ (टेक)

ब्रह्म विष्णु महेसुर षपिया, इंद्र कुबेर गये तप तपिया ॥ १ ॥

पीर पैकंबर सबैं सिधाये, मुहमद सिरिषे रहन न पाये ॥ २ ॥

धरनि गगन पानी अरु पवना, चंद सूर पुनि करिहैं गवना॥ ३ ॥

एक रहै सो सुन्दर गावै, मुष्टि न माइ दृष्टि नहिं आवै ॥ ४ ॥

(३)

चीरज नास भये फल पावै, ऐसा ज्ञान गुरू संसुझावै ॥ (टेक)

मन कौं जानि सकल का मूल, साषा डाल पत्र फल फूल।

मन कै उदै पसारा भासै, मन कै मिटैं जु ब्रह्म प्रकासै ॥ १ ॥

कौ हौं आहि कहां तें आया, क्यौं करि दूजा नाम धराया।

ऐसें निस दिन करै बिचारा, होइ प्रकास मिटै अंधियारा ॥ २ ॥

बाहिर दृष्टि सो भीतरि आनै, भीतरि दृष्टि ब्रह्म पहिचानै।

जो भीतरि सो बाहरि सूझै, यह परमारथ बिरला बूझै ॥ ३ ॥

मृतिका के घट भये अपार, जल तरंग नहिं भिन्न विचार।

सुन्न कहन सुनन कौं दोइ, पाला गलि पानी ही होइ ॥ ४ ॥

(४)

सोई है सोई है सोई है सब में।

कोई नहिं कोई नहिं कोई नहिं तब में ॥ (टेक)

पृथ्वी नहिं जल नहिं तेज नहिं तन में।

वायु नहिं व्योम नहिं मन आदि मन में ॥ १ ॥

---

२ रा पद—यह पद किसी मुसल्मान फकीर को सुनाया है। माइ=मावै, समावै।

शब्दादि रूप रस गन्ध नहिं घर मैं।
श्रोत्र त्वक् चक्षु घ्राण रसना न चर मैं ॥ २ ॥
सत रज तम नहिं तीन गुन हित मैं।
काल नहिं जीव नहिं कर्म नहिं कृत मैं ॥ ३ ॥
आदि नहिं अंत नहिं मध्य नहिं अस मैं।
सुन्दर सुभाव नहिं सुन्दर है तस मैं ॥ ४ ॥

(५)

(गुजराती भाषा में)

किम छै किम छै काम निहकाम छै।
जिमनौ तिम छै ठाम नौं ठाम छै ॥ (टेक)
आम छै आम छै आम छै आम छै।
अधो नै ऊरधै दश दिशा धाम छै ॥ १ ॥
दिवस नहिं रैंनि नहि शीत नहिं धाम छै।
एक नहिं वे नहिं पुरुप नहिं बांम छै ॥ २ ॥
रक्त नहिं पीत नहिं सेत नहिं स्याम छै।
कहत इम सुन्दर नाम न अनाम छै ॥ ३ ॥

(६)

ऐसा ब्रह्म अखंडित भाई, वार पार जान्यौ नहिं जाई ॥ (टेक)
अनल पंपि उडि चढि आकास, थकित भई कहुं छोर न तास ॥ १ ॥

---

४ था पद—चर मैं=चरमावस्था वा वास्तव में। अथवा चर (जीव सृष्टि) में इन्द्रियां केवल देखने मात्र हैं। हित=जीव की भलाई गुणों में ग्रसित वा लिप्त रहने में नहीं है। कृत=कृत्य, वा किया हुआ कर्म। अस=ऐसा। तस=तैसा, वैसा। इतने गिनाये सो मेरा (आत्मा का) रूप नहीं है।

५ वा पद—(गुजराती भाषा है)

लौंन पुत्तरी थाघै दरिया, जान जात ता भीतरि गरिया ॥ २ ॥
अति अगाध गति कौन प्रवानै, हेरत हेरत सबै हिरानै ॥ ३ ॥
कहि कहि संत सबै कोउ हारा, अब सुन्दर का कहै विचारा ॥ ४ ॥

(७)

सोवत सोवत सोवत आयौ, सुपनै ही मैं सुपनौ पायौ ॥ (टेक)
प्रथमहिं सुपनौ आयो येह, आपु भूलि करि मान्यौ देह।
ताकै पीछै सुपनौ और, सुपनै ही मैं कीन्ही दौर ॥ १ ॥
सुपन इन्द्री सुपना भोग, सुपना अन्तहकरण वियोग।
सुपनै ही मैं बांध्यौ मोह, सुपनै ही मैं भयौ बिछोह ॥ २ ॥
सुपनै सुर्ग नरक मैं बास, सुपनै ही मैं जम की त्रास।
सुपनै मैं चौरासी फिरै, सुपनै ही मैं जनमै मरै ॥ ३ ॥
सतगुरु शब्द जगावनहार, जब यह उपजै ब्रह्म विचार।
सुन्दर जागि परै जे कोइ, सब संसार सुप्न तब होइ ॥ ४ ॥

(८)

तू हीं तू हीं तू हीं तू, जोई तू है सोई हूं ॥ (टेक)
ज्यौं ज्यौं आवै त्यौं त्यौं यौं, ना कछु यौं नहिं ना कछु त्यौं ॥ १ ॥
तूमति जाणौ है या स्यौं, ज्यौं की त्यौं ही ज्यौं कौं त्यौं ॥ २ ॥
यौं हीं यौं हीं यौं ही यौं, सुन्दर घोपौ रापै क्यौं ॥ ३ ॥

---

६ ठा पद—अनल पप=एक पक्षी जो सदा ही आकाश में उड़ा करता है। वहीं अडा देता है। अडा जमीन पर पड़ने से पहिले फूट जाता है और बचा निकलते उड़कर मां-बापों के पास चला जाता है।—(हिंन्दी शब्दसागर)। जीव भी ब्रह्मरूपी आकाश में (इस पक्षी की तरह) रहकर उसका पता नहीं पाता है।

८ वां पद—त्यौं यौं=जैसे २ जन्म लेता हू कर्म करने-लेने देने का व्यवहार चलता है। परन्तु यह सब मिथ्या है। इससे न लेना कोई वस्तु है न देना कुछ

(१) राग ललित

तू अगाध तू अगाध, तू अगाध देवा।
निगम नेति नेति कहैं, जानैं नहिं भेवा ॥ (टेक)
ब्रह्मादिक विष्णु शंकर, सेस हू बषानैं।
आदि अन्ति मद्धि तुमहि, कोऊ नहिं जानैं ॥ १ ॥
सनकादिक सारदादि (क) सारदादि (क) गावैं।
सुर नर मुनि गन गंध्रर्व, कोऊ नहिं पावैं ॥ २ ॥
साध सिद्धि थकित भये, चतुर बहु सयानां।
सुन्दरदास कहा कहै, अति ही हैरांनां ॥ ३ ॥

(२)

द्वार प्रभु के जाचन जइये।
विविधि प्रकार सरस गुन गइये ॥ (टेक)
जाचिक होइ सु नींद निवारै, बड़े प्रात दाता हि संभारै ॥ १ ॥
नित प्रति ताके कान जगावै, वह पुनि जानै जाचिक आवै ॥ २ ॥
दाता के मन चिन्ता होई, दान करन की उपजै कोई ॥ ३ ॥
सुन्दरदास पहाऊ गावै, मांगत इहै जु दरसन पावै ॥ ४ ॥

(३)

अब हू हरि कौं जाचन आयौ।
देषे देव सकल फिरि फिरि मैं, दालिद्र भजन कोउ न पायौ (टेक)
नाम तुम्हारौ प्रगट गुसांई, पतित उधारन बेदन गायौ।
ऐसी साषि सुनि संतनि मुख, देत दान जाचिक मन भायौ ॥ १ ॥

वस्तु है। या स्यौं=निरामय ब्रह्म को इस विकारवाली माया जैसा मत जान (या स्यौं=इस जैसा)। अर्थात् ब्रह्म अक्षर अखंड सम है।

[राग ललित] १ ला पद—साद्धि=सिद्ध। अथवा सिद्धि को साध (प्राप्त करके)।
२ रा पद—पहाऊ=सुबह या सुबह का गीत, परभाती।

तेरे कौन बात की टोटौ, हौं तौ दुरख दलिद्र करि छायौ।
सोई देह घटै नहिं कब हीं, बहुत दिवस लग जाइ न पायौ ॥ २ ॥
अति अनाथ दुर्बल सबही विधि, दीन जानि प्रभु निकट बुलायौ।
अंतहकरण उमगि सुन्दर कौ, अभैदान दे दुःख मिटायौ ॥ ३ ॥

(४)

तुम प्रभु दीन दयाल मुरारी।
दुःख हरण दालिद्र निवारण भक्त बछल संतनि हितकारी ॥ (टेक)
जे जे तुमकौं भजत गुसांई, तिन तिन की तुम बिपति निवारी।
आंप सरीपे करिकैं रापे, जनम मरन की संका टारी ॥ १ ॥
बार बार तुम सौं कहा कहिये, जानराइ भंय-भंजन भारी।
सुन्दरदास करत है विनती, मोहू कौं प्रभु लेहु उबारी ॥ २ ॥

(५)

आजु मेरैं ग्रह सत गुरु आये।
भरम करम की निसा बितीती, भोर भयौ रवि प्रगट दिपाये। (टेक)
अति आनन्द फन्द सुख सागर, दरसन देषत नैंन सिराये।
प्रफुलित कमल अग सब पुलकित, प्रेम सहित मन मंगल गाये ॥ १ ॥
बचन सुनत सबही दुख भागे, जागे भाग चरन सिर लाये।
सुन्दर सुफल भयौ सबही तनु जन्म जन्म के पाप नसाये ॥ २ ॥

---

३ रा पद—देह=देहु, दीजिए।

४ था पद—जानराइ=सब कुछ जाननेवाले।

५ वा पद—सिराये=शीतल हुए। जो नेत्र विरह की तपत से तपे हुए थे वे दर्शनों की शीतलता से तृप्त हो गये। (यह पद स्वा० सुन्दरदासजी ने रज्जबजी या जगजीवणजी के आने पर कहा।)

(६)

जागि सवेरे जागि सवेरे, जागि परें तें तू ही है रे ॥ (टेक)
सोइ सुपन में अति दुख पावै, जागि परें जीवत्व मिटावै ॥ १ ॥
सोइ सुपन में आनत भैसौ, जागि परें जैसै कौ तैसौ ॥ २ ॥
सोइ सुपन में ह्वै गयौ रंका, जागि परें रावत है बंका ॥ ३ ॥
सोइ सुपन में सुधि बुधि षोई, जागि परें सुन्दर है सोई ॥ ४ ॥ ६३ ॥

(१) राग काल्हेड़ौ

(गुजराती भाषा में)

जो वो पूरण ब्रह्म अखंड अनावृत एक छै।
नथी बीजों अवर न कोइ यह बिवेक छै॥ (टेक)
इम बाह्याभ्यंतर व्योम तिम व्यापी रह्यौ।
जेन्हौ आदि न अन्त न मध्य महा वाक्यें कह्यौ ॥ १ ॥
ये जे देहादिक भ्रम रूप ते इम* जाणि ज्यौ।
इम मृग तृष्णा में नीर निश्चय आणिज्यौ ॥ २ ॥
ये जे शेष नाग पर्यंत ऊर्द्ध लोक छै।
ये हां जे दीसै नानात्व ते सब फोक छै॥ ३ ॥
जेन्हें उपनौ आत्मज्ञान तेन्हों भ्रम टल्यौ।
कहे छै सुन्दर पानी माहिं इम पालो गल्यौ ॥ ४ ॥

---

६ ठा पद—'रावत है बंका'=प्रबल राजा वा शासक। स्वयम् ब्रह्म ही। स्वप्न छे जागना ज्ञान प्राप्ति है।

[राग काल्हेड़ौ] १ ला पद—जेन्हौ=जिसका। फोक=फोग, मरुभूमि में एक तुच्छ घास होता है। फोकट। तुच्छ।

* 'यम' पाठान्तर है।

(२)

(गुजराती भाषा में)

काईं अद्भुत बात अनूप कही जाती नथी।
ये जे वाणी ते निर्वाण महापुरुषें कथी॥ (टेक)
ये जे परा पश्यंती मध्य रिहैं मुख वैषरी।
ते न्हैं नेति नेति कहैं वेद कारण छै हरी॥ १॥
ये जे पछै रहैं अवशेष ते न्हैं स्यों कहै।
जे न्हैं अनुभव आतम ज्ञान इम छै तिम लहै॥ २॥
इम कस्तूरी कर्पूर केसरि किम छिपैं।
तेन्हीं सगलै आवै बास प्रगट ते तिम दिपैं॥ ३॥
जेन्हें जे काई पाधो होइ डकारें जांणिये।
तिम सुन्दर अनुभव गोपि वचन प्रमांणिये॥ ४॥

(३)

(गुजराती भाषा में)

तम्हे साभड़िज्यो श्रुति सार वाक्य सिद्धांतना।
एतां सर्व खल्विदं ब्रह्म वचन छै अंतना॥ (टेक)
एतां जगत नथी त्रय काल एक जगदीस छै।
इम सर्प रज्जु नै ठामि न विस्वावीस छै॥ १॥
ए जे उपनो भ्रम मिथ्यात जिहां लग रात्र छै।
काई नथी वस्तु तो अन्य कल्पना मात्र छै॥ २॥

---

२ रा पद—निर्वाण=इस शब्द का सम्बन्ध वाणी से भी है और महापुरुषों से भी। निर्वाण देनेवाली वाणी। अथवा निर्वाण प्राप्ति के योग्य पुरुष। परा, पश्यती, मध्यमा और वैखरी—ये चार प्रकार की वाणियां हैं। स्यौं=ऐसा। नेति नेति कहने में

ज्यारें कीधौ भांन प्रकास भ्रम ततक्षण गयौं।
ज्यारें लीधौ निज कर साहि रजु नौ रजु थयौं॥ ३॥
तिम "एक मेव" छै ब्रह्म बीजो को नथी।
कहै छै सुन्दर निश्चय धारि निज अनुभव कथी॥ ४॥

(४)

(गुजराती भाषा में)

जेन्हें हृदयें ब्रह्मानन्द निरन्तर थाइ छै।
जेन्हें अनुभव जाणे तेहज किम कहवाइ छै॥ (टेक)
ज्यारें अन्तर थी आनन्द उमगि कठेरमें।
त्यारें मुख थी नवि कहवाइ वली पाछूसमें॥ १॥
इम लहरी उठै समुद्र मूकि जाये किहां।
एतां पाल लगणि आविनै समै जिहांनी तिहां॥ २॥
तेन्ही पटतर नथी अनेक सर्व सुख स्वर्गना।
नथी ब्रह्मलोक शिवलोक नथी अपवर्गना॥ ३॥
ये जे ब्रह्मानन्द अपार कहै किम जे भणी।
कांई सुन्दर नवि कहवाइ जिह्वा ते भणी॥ ४॥ ६७॥

जो अवशिष्ट रहे अथवा मिथ्या माया के मिटने पर जो अखड चिदानन्द सदा बना रहनेवाला परमात्मा रहता है। वह आत्मज्ञानियों को प्राप्त होता है। सगलैं=सर्वत्र। पाधौ=खाया।

३ रा निज अनुभव कथी=अपना निज का अनुभव ज्ञान—ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर प्राप्त हुआ उसही को स्व० सु० दा० जी ने यहां कहा है।

४ था पद—इस पद में भी ब्रह्मानन्द के अनुभव का कथन है। जेन्हैं=जिन्हें। कठे=कठ में। रमैं=खेलें। विराजै।

(१) राग देवगंधार

अब कै सतगुरु मोहि जगायौ ।

सूतौ हुतौ अचेत नींद मैं, बहुत काल दुख पायौ ॥ (टेक)

कबहूं भयौ देव कर्मनि करि, कबहूं इन्द्र कहायौ ।

कबहूं भूत पिशाच निशाचर, पात न कबहूं अघायौ ॥ १ ॥

कबहूं असुर मनुष्य देह धरि, भू मंडल मैं आयौ ।

कबहूं पशु पंषी पुनि जलचर, कीट पतंग दिषायौ ॥ २ ॥

तीनौं गुन के कर्मनि करिकैं, नाना योनि भ्रमायौ ।

स्वर्ग मृत्यु पाताल लोक मैं, ऐसौ चक्र फिरायौ ॥ ३ ॥

यह तौ स्वप्नौ है अनादि कौ, बचन जाल बिथरायौ ।

सुन्दर ज्ञान प्रकास भयौ जब, भ्रम संदेह बिलायौ ॥ ४ ॥

(२)

अब तौ ऐसैं करि हम जांन्यौ ।

जो नानात्व प्रपंच जहालौं मृगतृष्णा कौ पांन्यौ ॥ (टेक)

रजु कौ सर्प देषि रजनी मैं भ्रम तें अति भय आंन्यौ ।

रवि प्रकाश जब भयौ प्रात ही रजु कौ रजु पहिचान्यौ ॥ १ ॥

ज्यौं बालक बेताल देषि कैं यौं ही बृथा डरांन्यौ ।

ना कछु भयौ नहीं कछु ह्वै है यह निश्चय करि मांन्यौ ॥ २ ॥

शशा-शृङ्ग बंध्या-सुत झूलै मिथ्या बचन बषांन्यौ ।

तैसैं जगत कालत्रय नाहीं संमुझि सकल भ्रम भांन्यौ ॥ ३ ॥

[राग देवगधार] १ ला पद—'कबहूं' इसे 'कबहु' उच्चारण करना ठीक होगा । बिथरायौ=फैला, वा. फैलाया।

२ रा पद —(टेक में) पान्यौ=पानी । झूलै=पलने में (बालक)।

जौ कछु हुतौ रह्यौ पुनि सोई दुतिया भाव विलांन्यौ।
सुन्दर आदि अन्त मधि सुन्दर सुन्दर ही ठहरांन्यौ ॥ ४ ॥

(३)

पद मैं निर्गुण पद पहिचांना।
पद कौ अर्थ विचारै कोई पावै पद निर्बांना ॥ (टेक)
पद बिन चलै जहां पद नाहीं पद है सकल निधांना।
ज्यौं हस्ती के पद मैं सब पदकाहू पद न भुलांना ॥ १ ॥
देव इन्द्र विधि शिव बैकुंठहिं ये पद ग्रंथनि गांना।
जीवत पद सौं परचै नाहीं मूये पद किन आंना ॥ २ ॥
पद प्रसिद्ध पूरण अविनाशी पद अद्वैत बषांना।
पद है अटल अमर पद कहिये पद आनन्द न छांना ॥ ३ ॥
पद षोजे तें सब पद बिसरै बिसरै ज्ञान रु ध्यांना।
पद कौ तातपर्य सो पावै सुन्दर पद हिं समांना ॥ ४ ॥

(४)

अब हम जान्यौ सब मैं साषी।
साषि पुरातन सुनी आगिली देह भिन्न करि नांषी। (टेक)
साषी सनकादिक अरु नारद दत्त कपिल मुनि आषी।
अष्टावक्र वसिष्ट व्यास-सुत अत प्रसिद्ध यह भाषी ॥ १ ॥
साषी रामानन्द गुसांई नाम कबीर हि राषी।
साषी संत सकल ही कहिये गुरु दादू यह दाषी ॥ २ ॥
साषी कोऊ और आनतें मन मैं यह अभिलाषी।
अपनी साषी अपे आपुही सुन्दर अनुभव चाषी ॥ ३ ॥ ७१ ॥

---

२ रा पद—दुतिया=द्वैत। ३ रा पद—'पद' शब्द पर श्लेषार्थ कथन। पद=उच्च स्थान। पद=पांव। पद=स्थान, स्थल, खोज। पद=मोक्ष।

४ था पद—"साषी" शब्द में श्लेषार्थ कथन। साषी=साक्षी, परमात्मा स्वरूप

(१) राग बिलावल

संत भलैं या जग मैं आये, मनसा वाचा राम पठाये।
परम दयाल सकल सुख दाता, पर उपगारी किये विधाता ॥ (टेक)
कीये विधाता बडे ज्ञाता, शील संयम उर धरैं।
काम क्रोध कलेश माया, राग द्वेषहिं परहरैं ॥
गुन निधान रु ज्ञान सागर, अति सुजान प्रबीन हैं।
यौं कहत सुन्दर मुक्त विचरत, सदा ब्रह्महि लीन हैं ॥ १ ॥
जिन के दरसन पातक जाहीं, परसन सकल विकार नसाहीं।
वचन सुनत मैं भ्रम सब भागै, नखशिख रोम रोम सब जागै ॥
जागै जु नख शिख रोम सबही, प्रेम उमगै पलक मैं।
पुनि गलित ह्वै करि अङ्ग भीजै, सुख समुद्र की झलक मैं ॥
वै हरन दुरगति करन शुभ मति, परम दुल्लभ गाइये।
यौं कहत सुन्दर सन्त ऐसैं, बड़े भागनि पाइये ॥ २ ॥
साध कि पटतर कोई न तूलै, पाजी देषि कहा कोउ भूलै।
चिंतामनि पारस कहा कीजै, हीरा पटतरि कैसैं दीजै।
दीजै न पटतर चन्द सूरिज, दीप की अब को कहै।
वह कामधेन रु कल्पतरवर, चन्दन पटतर क्यौं लहै ॥
पुनि मेरु सागर नदी बोहिथ, धरनि अंबर पेषिया।
यौ कहत सुन्दर साध सरभरि, कोइ न जग मैं देषिया ॥ ३ ॥
साधु की महिमा अगम अपारा, कही न जाइ कोटि मुख द्वारा।
जिनकी पद रज वंदहिं देवा, इंद्र सहित विनवै करि सेवा ॥

निःसंग है। साषि पुराणी=पुरातन ग्रन्थों वा महात्माओं के वचन। वा वाक्य विवेक। नांपी=डाली, रक्खी। आपी=कही। व्यास-सुत=शुकदेव मुनि। दाषी=रही, वा देखी।

[राग बिलावल] १ ला पद—भलैं=भलेही। सौभाग्य है। मनसा वाचा राम

सेवा करहिं पुनि इन्द्र ब्रह्मा, धूप दीपनि आरती।
वै हमहिं दुल्लभ दास हरि के, करै अस्तुति भारती॥
अति परम मंगल सदा तिनकै, साध महिमा जे कहैं।
जनम साफिल होइ सुन्दर, भक्ति दृढ हरि की लहैं॥ ४॥

(२)

सोइ सोइ सब रैनि बिहांनी, रतन जन्म की षबरि न जांनि॥ (टेक)
पहिले पहर मरम नहिं पावा, मात पिता सौं मोह बंधावा।
पेलत षात हंस्या कहुं रोया, बालापन ऐसैं ही षोया॥ १॥
दूजे पहर भया मतवाला, परधन परत्रिय देषि पुसाला।
काम अन्ध कामिनि संगि जाई, ऐसैं ही जोबन गयौ सिराई॥ २॥
तीजे पहर गया तरनापा, पुत्र कलत्र का भया संतापा।
मेरै पीछे कैसी होई, घरि घरि फिरिहैं लरिका जोई॥ ३॥
चौथे पहरि जरा तन व्यापी, हरि न भज्यौ इहिं मूरष पापी।
कहि समुझावे सुन्दरदासा, राम बिमुख मरि गये निरासा॥ ४॥

(३)

किति विधि पीव रिझाइये, अनी सुनु सषिय सयानी।
जोबन जाइ उतावला कछु साध न मानी॥ (टेक)
केस गुंदे मांग भरी सिंदूर घनेरा, हार हमेला पहरिया,।
भूषन बहुतेरा, काजल नैननि मैं कीया भवै पिय नेकु न हेरा॥ १॥

पठायैं=परमात्मा ने संसार का हित विचार और आज्ञा देकर। १ ला पद में ४ अंतर-पद दिये हैं और प्रत्येक में आभाग "सुन्दरदास" है। साफिल=सफल, सार्थक। यह १ ला पद साधु-महिमा का अत्यन्त मनोरम और सार-भरा है।

२ रा पद—लरिका जोई=(अपने पुत्र मर जाने पर) दत्तक पुत्र को ढूंढता फिरा।

वस्तर बहु विधि फेरिकैं, वोढ़ै अति झीना।
दर्पन मैं मुख देषि कैं, सिर तिलक जु दीना॥
सब सिंगार फीका भया, अवे पिय पुस नहिं कीना॥ २॥
सेज अनूप संवारि कैं, तहां फूल बिछाया।
चोवा चन्दन अरगजा, सब अंग लगाया॥
दीपग धर्‍या जलाइ कैं, अवे पिय मुख न दिषाया॥ ३॥
दारुन दुख कैसैं सहौं, क्यौं रहौं अकेली।
अति अरीझ मेरा साईंया, क्या करौं सहेली॥
सुन्दर बिरहनि यौं कहै, अवे हौं परी दुहेली॥ ४॥

(४)

जौ पिय कौ ब्रत ले रहै सो पिय हि पियारी।
काहे कौं पचि पचि मरत है मूरख बिभचारी (टेक)
अंजन मंजन क्या करै क्या रुप सिंगारा।
ऊपर निर्मल देषिये दिल मांहिं बिकारा।
इन बातनि क्यौं पाइये अवे प्रीतम पिय प्यारा॥ १॥
पतिव्रत कबहुं न देषिये मन चहुं दिश धावै।
और सषिन मैं बैसि कैं पतिव्रता कहावै।
हौंस करै पिय मिलन की अवे लोहि लाज न आवै॥ २॥
कोटि जतन कीयें कहा पिय एक न मांनै।
नाना बिधि की चातुरी बहुतेरी ठांनै॥
तन कौं बहुत बनावई अवे मन सौंपि न जांनै॥ ३॥

---

३ रा पद—अनी=री, अरी, ओ (संबोधन—पंजा॰ भा॰)। अवे=हैफ, अफसोस। ऐ! हे!। साध=साधन को वा हित की बात। अरीझ=रुष्ट, नाखुश, रीझा नहीं।

अपना वल जौ छाडि कें सब सुधि बिसरावै।
लोक बडाई नैंकहू कछु यादि न आवै।
सुन्दर तब पिय रीझि कें अवे तोहि कंठ लगावै ॥ ४ ॥

(५)

(पंजाबी भाषा)

आव असाडे यार तू चिरकि कू लाया।
हाल तुसा मालूम है तनु जौवन आया ॥ (टेक)
जदि मैं हों दीनि कडी तद कुझ न जाना।
हुंण मैंनो कल ना पवे सभ पेड भुलाना ॥ १ ॥
मा मैं नू ई आपदी तू धीय असाडी।
प्यौदी गल्ह अभावणी मैं सभी छाडी ॥ २ ॥
हिक सहा उभि राउदा मैं नू संमुझावै।
नालि तुसाडे हों चला जे कंतु न आवै ॥ ३ ॥
जे तैंहुण आया नहीं तामैं हुंणु आंवां।
सुन्दर आपै विरहनी मनु कित्थं लांवां ॥ ४ ॥

(६)

कैसें राम मिलै मोहि संतो यह मन थिर न रहाई रे।
निहचल निमप होत नहि कवहीं चहुं दिशि भागा जाई रे ॥ (टेक)
कौन उपाय करौं या मन को कैसी बिधि अटकाऊं रे।
ऐसें छूटि जाइ या तन सें कतहूं पोज न पाऊं रे ॥ १ ॥

---

४ था पद—बिभचारी=व्यभिचारिणी। आना वल=आनपे का गर्व। सौंदर्य, शृंगार, यौवन आदि की टसक और घमंड जो स्त्रियों में होता है।

सौयै स्वर्ग पताल निहारै जागैं जात न दीसै रे।
पेल्त फिरै विषै बन मांहीं लीयें पांच पचीसै रे ॥ २ ॥
मैं जान्यौ मन अब थिर होई दिन दिन पसरन लागा रे।
नाना चोज धरौं ले आगैं तऊ करंक पर कागा रे ॥ ३ ॥
ऐसे मन का कौन भरोसा छिन छिन रंग अपारा रे।
सुन्दर कहै नहीं बस मेरा राषै सिरजन हारा रे ॥ ४ ॥

(७)

रे मन राम सुमरि राम सुमरि राम की दुहाई।
ऐसौ औसर बिचारि, कर तें हीरा न डारि,
पसु के लषिन निवारि, मनुष देह पाई ॥ (टेक)
सकल सौंज मिली आइ, श्रवन नैंन बैंन गाइ,
संतनि कौं सिर नवाइ, लेषै तनु लाई।
दासिन कौ होइ दास, छूटै सब आस पास,
कर्मनि कौ करै नास, सुद्ध होइ भाई ॥ १ ॥
सतगुरु की करहु सेव, जिन तें सब लहै भेव,
मिलि हैं अविनासी देव, सकल भुवनराई।
सँमुझै अपनौं सरूप, सुन्दर है अति अनूप,
भूपति कौ होइ भूप, सांची ठकुराई ॥ २ ॥

---

६ ठा पद—निमष=एक भी निमेष (पलक)। जात=जाता हुआ (विषमांतर में)।
पांच पचीसै=पांचों इन्द्रियें और २५ तत्व।

७ वां पद—लेषै=हिसाब की रू से अच्छी बातों में तन का प्रयोग करै।
दास=हरि भक्त, ज्ञानी। पास=पाश, फांसी।

(८)

सबकै आहि अन्न मैं प्रांन।

बात बनाइ कहौ कोऊ केती, नाचि कूदि कैं लूटत तांन ॥ (टेक)

पंडित गुनी सूर कवि दाता, जो कोउ और कहावत जांन।
जठरा अग्नि प्रगट होइ जबही, तबही बिसर जाइ सब ज्ञांन ॥ १ ॥
मीर मलिक उमराव छत्रपति, औरउ कहियत राजा रांन।
जद्यपि सकल संपदा घर मैं, तद्यपि मुख देषियत कुमिलांन ॥ २ ॥
आसन मार रहे बन मांहीं, तेऊ उठत होत मध्यांन।
सुन्दर ऐसी क्षुधा पापिनी, रहै नहीं काहू की मांन ॥ ३ ॥

(९)

है कोई योगी साधै पौंना।

मन थिर होइ बिंद नहिं डोलै, जितेंद्री सुमरै नहिं कौंना ॥ (टेक)

यम अरु नेम धरै दृढ आसन, प्राणायाम करै मन मौंना।
प्रत्याहार धारणा ध्यानं, लै समाधि लावं ठिक ठौंना ॥ १ ॥
इडा पिंगला सम करि राषै, सुषमन करै गगन दिशि गौंना।
अह निश ब्रह्म अग्नि परजारै, सापनि द्वार छाडि दे जौंना ॥ २ ॥
बहुदल षटदल दशदल षोजै, द्वादशदल तहां अनहद भौंना।
षोडशदल अमृतरस पीवै, ऊपरि द्वै दल करै षलौंना ॥ ३ ॥
चढि आकास अमर पद पावै, ताकौ काल कदे नहिं षोना।
सुन्दरदास कहै सुनु अवधू, महा कठिन यह पंथ अलौंना ॥ ४ ॥

---

८ वां पद—मलिक=(अ०) बादशाह। मीर=(अ०) सरदार, शासक। उच्च कुल का उच्च पुरुष।

९ वां पद—मरै नहिं कौंना=अमर होय कोई भी योग कर देखै। योग के अंगों और साधनों का वर्णन 'ज्ञानसमुद्र २ रे उल्लास में देखें। ब्रह्म अग्नि परजारै=ब्रह्मज्ञान

(१०)

गुरु बिन गति गोविंद की जांनी नहिं जाई।
हौं सेवग उस पुरुष का मोहि देइ लषाई ॥ (टेक)
योगी यंगम सेवड़ा अरु बोध संन्यासी।
सेष मसाइक औलिया बूझे बनवासी ॥ १ ॥
जोगी तौ गोरष जपै जंगम शिव ध्यावै।
अरिहंत अरिहंत सेवड़ा कहुं पार न पावै ॥ २ ॥
बोध संन्यासी बापुरे लीये अभिमाना।
सेष मसाइक दीनका उनि कलमा ठाना ॥ ३ ॥
बड़े अवलिया यौं कहैं हमही निज बंदा।
बन बासी बन सेइ कैं पनि पाये फंदा ॥ ४ ॥
अपने अपने पंथ में सब दरसन राता।
जन सुन्दर रस राम कै कोई बिरला माता ॥ ५ ॥

(११)

ऐसा सतगुरु कीजिये करनी का पूरा।
उनमनि ध्यांन तहा धरै जहा चन्द न सूरा ॥ (टेक)
तन मन इंद्री बसि करै फिरि उलटि समावै।
कनक कामिनी देषि कैं कहुं चित न चलावै ॥ १ ॥

को अग्नि प्रज्वलित रक्खै। सापनि=कुंडलिनी=मूलाधार चक्र पर साढे तीन आंटे मारे त्रिकोणाकार यह सर्पिणी सी नाड़ी सोती है। मूलबन्ध लगा कर योगी इसे जगाते हैं। यह षट्चक्र भेदती हुई ऊपर चढती है सुषुम्ना में होकर और ऊपर सहस्र दल कमल में जा पहुंचती है। वहां योगी इसे रोकते हैं। यह मुक्तिदायिनी है। (ह० योग)।

द्वै पष हिंदू तुरक की विचि आप सभालै।
ज्ञान षडग गहि कृफता मधि मारग चालै ॥ २ ॥
जानै सबकौं एकहा पांनी की बूदा।
नीच ऊंच देषै नहीं कोई बाभण सूदा ॥ ३ ॥
सब संतनि का मत गहै सुमिरै करतारा।
सुन्दर ऐसे गुरु बिना नहिं ह्वै निस्तारा ॥ ४ ॥

(१२)

प्याली तेरै प्यालका कोई अंत न पावै।
कब का पेल पसारिया कछु कहत न आवै ॥ (टेक)
ज्यौंका त्यौं ही देपिये पूरन संसारा।
सरिता नीर प्रवाह ज्यौं नहिं खंडित धारा ॥ १ ॥
दीप जरत ज्यौं देपिये जैसैं का तैसा।
को जानै केता गया जग पावक ऐसा ॥ २ ॥
जैसैं चक्र कुलाल का फिरता वहु दीसै।
ठौर छाडि कतहु न गया यह बिसवा बीसै ॥ ३ ॥
प्रगट करै गुप्त करै पट घूंघट ओटा।
सुन्दर घटत न देपिये यह अचिरज मोटा ॥ ४ ॥

(१३)

एकै ब्रह्म विलास है सूक्षम अस्थूला।
ज्यौं अंकुर तैं वृक्ष है सापा फर फूला ॥ (टेक)
जैसैं भाजन मृतिका, अंतर नहिं कोई।
पांनी तैं पाला भया, पुनि पांनी सोई ॥ १ ॥

---

११ वां पद—सूदा=शूद्र। नीच जाति। उनमनि=उनमनी मुद्रा के साधन से ध्यान। कबीरजी का वचन है "निराकार औ लोकनिराश्रय निर्गुणध्यान विशेषा। सूक्ष्म वेद है उनमनि मुद्रा उनमनि वाणी लेखा"। हठयोग प्रदीपिका उ० ४ के श्लो० ६४

जैसैं दीपक तेज तैं, ऐसा यहु पेला।
घाट घरे बहु भांति के, है कनक अकेला ॥ २ ॥
वायु बघूरा कहन कौं, ऐसा कछु जांना।
बादर दीसत गगन मैं, तेउ गगन विलांना ॥ ३ ॥
सतगुरु तैं संसा गया, दूजा भ्रम भागा।
सुन्दर पटहि विचार तैं, सब देपे धागा ॥ ४ ॥

(१४)

एक अखंडित देपिये सब स्वयं प्रकाशा।
छता अनछता ह्वै गया यह बडा तमासा ॥ (टेक)
पंच तत्त दीसै नहीं नहिं इन्द्री देवा।
मन बुधि चित दीसै नहीं है अलप अभेवा ॥ १ ॥
सत्त रज तम दीसै नहीं नहिं जाग्रत सुपना।
सुषुपति हौं तुरिया नहीं नहिं और न अपना ॥ २ ॥
काल कर्म दीसै नहीं नहिं आहि सुभावा।
प्रकृति पुरुष दीसै नहीं नहिं आव न जावा ॥ ३ ॥
ज्ञे ज्ञाता दीसै नहीं नहिं ध्याता ध्यानं।
सुन्दर सोधत सोध तैं सुन्दर ठहरानं ॥ ४ ॥

और ८० में "मनोन्मनी" वा उन्मनी मुद्रा का विवरण है। यह राज-योग की तुरीयावस्था की प्राप्ति का साधन है। भकुटी के मध्य में ध्यान प्रारंभ होता है। फिर साधन से आगे बढ़ता है।

१३ वां पद—अस्थूला=स्थूल, इन्द्रिय गोचर।

१४ वां पद—छता अनछता=नित्य सत्य ब्रह्म है सो अदृष्ट है, बुद्धादिक से अगम्य है। इसही कारण नास्तिकों को उसके अस्तित्व में संदेह रहता है।

(१५)

जाकै हिरदै ज्ञान है ताहि कर्म न लागै।
सब परि बैठै मक्षका पावक तें भागै ॥ (टेक)
जहां पाहरू जागहीं तहां चोर न जांहीं।
आंपिन देपत सिंह कौं पशु दूरि पलांहीं ॥ १ ॥
जा घर मांहिं मंजार है तहां मूषक नासै।
शब्द सुनत ही मोर का अहि रहै न पासै ॥ २ ॥
ज्यौं रवि निकट न देपिये कबहूं अंधियारा।
सुन्दर सदा प्रकास मैं सबही तें न्यारा ॥ ३ ॥ ८९ ॥

(१) राग टोडी

राम रमइयौ, यौं संमुझइयौ, ज्यौं दर्पन प्रतिबिंब समइयौ ॥ (टेक)
करै करावै सब घट आपै, भिन्न रहै गुन कोइ न व्यापै ॥ १ ॥
रवि कै उदै करहिं कृत लोई, सूर्य कर्म लिपै नहिं कोई ॥ २ ॥
शब्द रूप रस गन्ध सपरसै, मन इन्द्रिनि तें न्यारौ दरसै ॥ ३ ॥
रसैं ब्रह्म जबहिं पहिचानै, सुन्दरदास तबै मन मानै ॥ ४ ॥

(२)

राम बुलावैं राम बुलावैं, राम बिना यह स्वास न आवै ॥ (टेक)
रामहिं श्रवनहुं शब्द सुनावै, रामहिं नैंनहुं रूप दिपावै ॥ १ ॥
रामहिं नासा गन्ध लिवावै, रामहि रसना रसहि चपावै ॥ २ ॥

---

१५ वां पद मक्षका=मक्षिका, मक्खी।

[राग टोडी] १ ला पद—लोई=लोग, लोक। "सूर्य" को 'सूरय' उच्चारण करै।

रामहिं दोऊ हाथ हलावै, रामहिं पांवहु पन्थ चलावै ॥ ३ ॥
रामहि स्रवनौं श्रवन उढावै, राम सुवावै राम जगावै ॥ ४ ॥
रामहिं चेतन जगत नचावै, रामहिं नाना खेल खिलावै ॥ ५ ॥
रामहिं रङ्कहिं राज करावै, रामहिं राजहि भीष मगावै ॥ ६ ॥
रामहिं बहु बिधि जलचर पावै, रामहिं पल मैं धूरि उडावै ॥ ७ ॥
रामहिं सबमैं भिन्न रहावै, सुन्दर वाकी वाही पावै ॥ ८ ॥

(३)

राम नाम राम नाम राम नाम लीजै।
राम नाम रटि रटि, राम रस पीजै ॥ (टेक)
राम नाम राम नाम, गुरु तें पाया।
राम नाम मेरै, हिरदै आया ॥ १ ॥
राम नाम राम नाम, भजि रे भाई।
राम नाम पटतरि, तुलै न काई ॥ २ ॥
राम नाम राम नाम, है अति नीका।
राम नाम सब साधन का टीका ॥ ३ ॥
राम नाम राम नाम, अति मोहि भावै।
राम नाम निसि दिन, सुन्दर गावै ॥ ४ ॥

(४)

भजि रे भजि रे, भजि रे भाई।
लै रे लै रे, लै सुख दाई ॥ (टेक)
दै रे दै रे, तन मन अपना, दै रे दै रे, दै सर सुपना ॥ १ ॥
मेटि रे मेटि रे मेटि अहंकारा, भेटि रे भेटि रे प्रीतम प्यारा ॥ २ ॥

---

२ रा पद—बुलावै=मुख जिह्वा से शब्द उच्चारण करावै। वाणी प्रदान करै। पावै=पा सकै, जान सकै।

गाइ रे गाइ रे गुन गोविन्दा, ध्याइ रे ध्याइ रे परमानन्दा ॥ ३ ॥
पोलि रे पोलि रे भरम कपाटा, बोलि रे सुंदर शब्द निराटा ॥ ४ ॥

(५)

पोजत पोजत सतगुरु पाया ।
धीरैं धीरैं सब संमुझाया ॥ (टेक)
चिन्तत चिन्तत चिन्ता भागी, जागत जागत आतम जागी ॥ १ ॥
बूझत बूझत अन्तरि बूझया, सूझत सूझत सब कछु सूझया ॥ २ ॥
जानत जानत सोई जांन्या, मानत मानत निश्चय मान्या ॥ ३ ॥
आवत आवत ऐसी आई, अबतौ सुन्दर रही न काई । ४ ॥

(६)

एक तूं एक तू व्यापक सारै ।
एक तू एक तू वार न पारै ॥ (टेक)
एक तू एक तू पृथवी जाना, एक तू एक तू भाजन नाना ॥ १ ॥
एक तू एक तू नीर प्रसंगा, एक तू एक तू फेन तरंगा ॥ २ ॥
एक तू एक तू तेज तपन्ता, एक तू एक तू दीप अनन्ता ॥ ३ ॥
एक तूं एक तू पवन प्रचूरा, एक तू एक तू फिरत बघूरा ॥ ४ ॥
एक तूं एक तू ज्यौं आकासा, एक तूं एक तू अभ्र निवासा ॥ ५ ॥
एक तूं एक तूं कनक स्वरूपा, एक तू एक तू घाट अनूपा ॥ ६ ॥
एक तू एक तू सूत्र समाना, एक तूं एक तू ताना वाना ॥ ७ ॥
एक तू एक तू और न कोई, एक तू एक तू सुन्दर सोई ॥ ८ ॥

४ था पद—निराटा=निराला, निर्मल ।

५ वां पद—आई=ज्ञानगति, समझ । काई=कोई । अथवा ऊपर का मैल ।

६ ठा पद—प्रसंगा=प्रकरण । जल से क्या पदार्थ बनते बिगड़ते हैं इसका ज्ञान विज्ञान । प्रचूरा=प्रचुर बहुतता । घाट=घड़ाई वस्तु ।

(७)

मेरौ धन मायौ माई री, कबहूं बिसरि न जाऊं।
पल पल छिन छिन घरी घरी तिहिं, बिन देखें न रहाऊं ॥ (टेक)
गहरी ठौर धरौ उर अन्तर, काहू कौ न दिखाऊं।
सुन्दर कौं प्रभु सुन्दर लागत, लै करि गोपि छिपाऊं ॥ १ ॥

(८)

मेरौ मन लागौ माई री, परम पुरष गोबिन्द।
चितवत नैंननि मोहत सैननि, बोलत बैंननि मन्द ॥ (टेक)
अद्भुत रूप अरूप सकल अंग, दुःख हरन सुखकन्द।
सुन्दर प्रभु अति सुन्दर सोभित, निरषत नित आनन्द ॥ १ ॥

(९)

एक पिंजारा ऐसा आया।
रूह रूई पींजण कै कारण, आपन राम पठाया (टेक)
पींजण प्रेम मूठिया मन कौ लै की तांति लगाई।
धुनि ही ध्यान बंध्यौ अति ऊंचौ, कबहू छूटि न जाई ॥ १ ॥
कम काटि काढै नीकें करि, गज ज्ञान कै सकेलै।
पहल जमाइ सुपेदी भरि करि, प्रभु कै आगै मेल्है ॥ २ ॥
जोइ जोइ निकट पिनावन आवै, रूई सबनि की पीजै।
परमारथ कौं देह धर्यो है, मसकति कछू न लीजै ॥ ३ ॥
बहुत रूई पीनी बहु बिधि करि, मुदित भये हरि राई।
दादू दास अजब पीनारा, सुन्दर बलि बलि जाई ॥ ४ ॥

---

८ वां पद—मन्द=धीमा,मधुर। अरूप=निराकार को साकार ध्यान कर के साथ ही अरूप भी कहा है।

९ वां १० वां पद—इन दोनों पदों में स्वा सु० दा० जी ने अपने गुरु श्री दादू-

(१०)

आया था इक आया था, जिनि, दरसन प्रगट दिपाया था (टेक)
श्रवण हू शब्द सुनाया था, तिन, सत्य स्वरूप बताया था ॥ १ ॥
ब्रह्मज्ञान संमुझाया था, तिन, संसा दूरि बहाया था ॥ २ ॥
अलप पजीना ल्याया था, तिन, बाटि सबनि सौं पाया था ॥ ३ ॥
ऐसा दादूराया था, सो, सुन्दर कै मनि भाया था ॥ ४ ॥९६॥

(१) राग आशावरी

कैसें धौं प्रीति रामजी सौं लागै।
मन अपराधी चहु दिश भागै ॥ (टेक)
निस वासर भरमै अति भारी, कह्या न मानै बडा बिकारी ॥ १ ॥
भटक्त डोलै निन ही काजा, बेसरमी कौ नेंकु न लाजा ॥ २ ॥
मेरौ बस नांहीं कछु यातैं, वारंवार पुकारत तातैं ॥ ३ ॥
आपुही कृपा करै हरि सोई, तौ सुन्दर थिर काहे न होई ॥ ४ ॥

दयाल की कुछ गुणावली वर्णन की है। पिजारा=पिंदारा, रुई पींदनेवाला। दादूजी ने कुछ दिन यह काम भी साधारण निर्वाह के लिए किया था। रूह=आत्मा। आत्मा के विकारों का जप तप नाम ध्यान से दूर करने को। जगत के लोगों को यही लाभ पहुंचाने को। गूठिया—जिससे तांत पर देकर रुई पींदी जाती है। धुनि ही=श्लेष है। (१) ध्वनि, सुरत। (२) रुई धुन कर। गज=गजबेल लोहा भी। गज=जिस से पींदी हुई सरेलते, इकट्ठी की जाती है। पींदण को लकडी को भी गज कहते हैं। सरेलना=इकट्ठा करना। ममकर्ति=(अ०) मशक्कत, मजदूरी। गजेल=एक प्रकार का लोहा और उस की तलवार भी।

(२)

अवधू आतम काहे न देपै।

जाहि हते सोई तुम मांही कहा लजावत भेपै॥ (टेक)

हिंसा बहुत करै अपस्वारथ स्वाद लग्यौ मद मांसै।

महा माइ भैरूं कौ सिर दै आपुहि बैठौ मासै॥ १॥

गोरप भोगि भषी नहिं कबहौं सुरापान नहिं पीया।

झूठहि नांव लेत सिद्धन कौ नरक जाहिगौ भीया॥ २॥

कान फारि कें भस्म लगाई योगी कियौ शरीरा।

सकल वियापी नाथ न जान्यौ जन्म गमायौ हीरा॥ ३॥

नाटक चेटक जन्त्र मन्त्र करि जगत कहा भरमावै।

सुन्दरदास सुमरि अविनासी अमर अभै पद पावै॥ ४॥

(३)

साधो साधन तन कौ कीजै।

मन पवना पंचों बसि रापै सून्य सुधा रस पीजै॥ (टेक)

चन्द सूर दोउ उलटि अपूठा सुषमनि कै घर लीजै।

नाद विंद जब गाठि परै तब काया नेंकु न छीजै॥ १॥

राजस तामस दोऊ छाडै सातिक वरतै तीजै।

चौथा पद मैं जाइ समावै सुन्दर जुग जुग जीजै॥ २॥

[राग आसावारी] २ रा पद—अपस्वारथ=निज स्वारथ को। सिर दै=सिर चढावै बकरे आदि का। भीया=भाई। हे भाई!। वियापी=व्यापक। अमर अभै पद=जोगियों से अमर पद पाने की बड़ाई है। अविनाशी पूर्ण ब्रह्म को भजने से वह पद प्राप्त हो सकता है, अन्यथा वाममार्ग के ढोंगों और गर्हित कर्मों से नहीं। यह पद जोगी जंगम शाक्तों आदि वाम-मार्गियों को कहा है। अवधू=जोगियों का साधु अघोरी। ३ रा पद—नाद नादानुसंधान, अनाहदनाद। विंद=वीर्यको ब्रह्मचर्य से जीत कर वश में रखना। चौथा पद=तुरीया।

(४)

मेरा गुरु है पष रहित समांना।

पिंड ब्रह्म निरन्तर पेखै ऐसा चतुर सयांना॥ (टेक)

पाप पुन्य की बेरी काटी हर्ष शोक नहिं आंना।

राग दोष तैं भया विवर्जित शीतल सपति धुर्मांना॥ १॥

हिन्दू तुरक दुहूं तैं न्यारा देषै बेद कुरांना।

मैं तैं मेटि तज्यौ आपा पर नीच ऊंच सम जांना॥ २॥

दिवस न रैनि सूर नहिं ससि हरि आदि अंत भ्रम भांना।

जन्म मरन का सोच न कोई पूरण ब्रह्म पिछांना॥ ३॥

जागि न सोवै षाइ न भूषा मरै न जीवै प्रांना।

सुन्दरदास कहै गुरु दादू देष्या अति हैरांना॥ ४॥

(५)

मेरा गुरु लागै मोहि पियारा।

शब्द सुनावै भ्रम उडावै करै जगत सौं न्यारा॥ (टेक)

जोग जुगति की सब विधि जानै, पानै कछू न छानै।

मन पवना उलटा गहि आनै, आनै छानै जानै॥ १॥

पंचौ इंद्री दृढ करि राखै, सून्य सुधा रस चाखै।

वानी ब्रह्म सदा ही भाखै, भाखै चाखै राखै॥ २॥

परमारथ कौं जग मैं आया, मन्त्र पर्गोना ल्याया।

बांटि बांटि सबहिन कौं पाया, पाया ल्याया आया॥ ३॥

परम पुरुष सौं प्रगटे आदू, अनहद सुनाया नादू।

सुन्दरदास ऐसा गुरु दादू, दादू नादू आदू॥ ४॥

---

४ था पद— [illegible] है।

[illegible]।

५ वां पद— [illegible] है— [illegible]

(६)

कोई पिवै राम रस प्यासा रे।

गगन मंडल में अमृत सरवै उनमनि के घर वासा रे ॥ (टेक)

सीस उतारि धरै धरती पर करै न तन की आसा रे।

ऐसा महिंगा अमी बिकावै छह रिति बारह मासा रे ॥ १ ॥

मोल करै सो छकै दूर तैं तोलत छूटै वासा रे।

जो पीवै सो जुग जुग जीवै कबहुं न होइ बिनासा रे ॥ २ ॥

या रस काजि भये नृप जोगी छाडे भोग बिलासा रे।

सेज सिघासन बैठे रहते भस्म लगाइ उदासा रे ॥ ३ ॥

गोरषनाथ भरथरी रसिया सोई कबीर अभ्यासा रे।

गुरु दादू परसाद कछूइक पायौ सुन्दरदासा रे ॥ ४ ॥

(७)

संतौ लपन बिहूंनी नारी।

अङ्ग एकहू स्यावति नाहीं, कंत रिझायौ भारी ॥ (टेक)

अन्धली आंषिन काजल कीया, मुंडली मांग संवारै।

बूची काननि कुंडल पहिरै, नकटी बेसरि धारै ॥ १ ॥

पाद में अर्द्ध के अन्तिम शब्द को दोहरा कर प्रथम पादके अन्तिम शब्द को उसके पीछे रख अनुप्रास कर फिर प्रथम के अर्द्ध के अन्तिम शब्द को अन्त में रख कर अनुप्रास किया है। दोनों पादों (चरणों) के अर्द्धों के अन्तिम शब्द परस्पर अनुप्रास युक्त हैं। सौंदर्य यह है कि वे तीनों शब्द द्वितीय पादार्द्ध में उक्त रीति से एकट्ठे होते हैं।—यथाः—आनैं छानैं जानैं। भावै चावै रावै। दादू नादू आदू।

६ ठा पद—सीस उतारना=आपा मारना। छूटे वासा रे=वैराग्य पावै। विरक्त हो जाय। बैठे रहते=जो बैठे रहते सो ही।

कंठ बिहूंनी माला पहिरै, कर बिन चूडा सोहै।
पाइ बिहूंनी पहरि घूंघरू, पति अपनै कौ मोहै ॥ २ ॥
दंत बिहूनी बीडा चावै जीभ बिहूनी बोलै।
निस दिन ता फूहरि कै पीछै संग लग्यौ पिव डोलै ॥ ३ ॥
मन बिन काम करै सब घर कौ जीव बिहूनी जीवै।
सुन्दर सांई सेज बिराजै तेल न बाती दीवै ॥ ४ ॥

(८)

संतहु पुत्र भया एक धी कै।
पुरुष संग कबहूं का छाड्या जानत सब कोई नीकै ॥ (टेक)
पिता आइ कीयौ संयोगा यहु कलियुग बरताना।
शब्द सु बिंद श्रवन द्वारै करि हृदै माहिं ठहराना ॥ १ ॥

---

७ वां पद—इस पद में विपर्यय शब्द का विन्यास कर पुरुष और प्रकृति (माया) का रूपक बांधा है। कंत=परम पुरुष। नारी=माया (जो अरूप और जड़ है, और पुरुषकी सत्ता से सब करती है। उस नारी (माया) के अरूपा होने से कोई अंग साबत नहीं फिर वह इतने नानारूप रंग धार कर सृष्टि में अद्भुत रचनाएं करती है। तेल न बाती दीवै=परमात्मा स्वयम् प्रकाश है—"न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।" उसे सूर्य चन्द्र विद्युत् अग्नि दीपक की किसी की भी दरकार नहीं। वह आप सबको प्रकाशित करता है। उसके साथ नित्य निरंतर यह महामाया विराजती और रमण करती रहती हैं। जो साकार उपासना में शिव+शक्ति, सीता+राम, राधा+कृष्ण का ध्यान है वही माया+ब्रह्म का (साकार ध्यान) है। "टरै न नित्य विहार"। "लैरां लाग्यो ही आवै"। वह कृष्ण, राधिका बिना एक निमेष नहीं रहता, न राधिका, कृष्ण बिना। इस लीला का आध्यात्मिक रहस्य माया और ब्रह्म का नित्य सम्बन्ध और नित्य सहज लीला ही है। और कुछ नहीं है। यह निश्चय है ॥

ता वीरज का सो सुत उपना निस दिन करै तमासा।
कर बिन उचकि चन्द कौं पकरै पग बिन चढै अकासा ॥ २ ॥
भूख न दूध धाइ का पीवै माकै चूपै फूलै।
सदा मुदित रोवै नहिं कबहूं पल्या पिंघूरै झूलै ॥ ३ ॥
अति बलवन्त अङ्ग तिन बालक करै काल कौ चोटा।
सुन्दर डर किसहू का नाहीं, रहै ब्रह्म की वोटा ॥ ४ ॥

(९)

मुक्ति तौ धोपै की नीसानी।
सो कतहू नहिं ठौर ठिकाना जहां मुक्ति ठहरानी ॥ (टेक)
को कहै मुक्ति ब्योम के ऊपर को पाताल के मांहीं।
को कहै मुक्ति रहै पृथवी पर ढूंढै तौ कहुं नाहीं ॥ १ ॥
बचन बिचार न कीया किनहूं सुनि सुनि सब उठि धाये।
गोदड़ा ज्यों मारग चाले आगै पोज बिलाये ॥ २ ॥
जीवत कष्ट करैं बहुतेरं मुये मुक्ति कहैं जाई।
धोपै ही धोपै सब भूले आगै ऊवाबाई ॥ ३ ॥

---

८ वां पद—इस पद में भी विपर्यय शब्द का प्रयोग करके बुद्धि, मन, आत्मा (ब्रह्म) का और ज्ञानरूपी पुत्र का परस्पर सम्बन्ध और व्यवहार दरसाया है।— धी=बुद्धि वा महत्तत्व। पुत्र=(यहां) मन। पिता=ब्रह्म (वा ब्रह्मा)। धी जो बुद्धिरूपी पुत्री उसके साथ ब्रह्म जो ब्रह्म उसने संयोग किया। यही आध्यात्मिक तत्त्व कथारूप विपर्यय शब्द में "ब्रह्म और सरस्वती" की कथा है जो पुराणों में वर्णित है और जिसका तात्त्विक अभिप्राय समझ कर मन्द और संस्कारहीन बुद्धि के पुरुष हास्य करते हैं। उसही को स्वामीजी ने इस पद में विस्तृत रूपक से बताया है। पुत्र=ज्ञान। शुद्ध सच्चिदानन्द का अपरोक्ष ज्ञान ही पुत्र हुआ। निर्मल बुद्धि परमात्मा ब्रह्म से मिलने से ही दिव्य ज्ञान उत्पन्न होता है। और वह ऐसा महाबली है कि काल को भी जीतता है। अर्थात् ज्ञानी योगी अमर है और काल उसके बश में है।

निज स्वरूप कौं जानि अखंडित ज्यौंका त्यौंही रहिये।
सुन्दर कछू गहै नहिं त्यागै वहै मुक्ति पद कहिये॥ ४॥

(१०)

राम निरंजन तूंही तूंही।
अहंकार अज्ञान गयौ जब सौ तूंही सौ हूंही॥ (टेक)
तूंही तूंही तब लग कहिये जब लग मैं मैं आगै।
मैं मैं मैं मैं होइ बिलै जब सोहं सोहं जागै॥ १॥
सोहं सोहं कहै जबै लग तब लग दूजा कहिये।
सुन्दर एक न दोइ तहां कछु ज्यों का त्यौं ह्वै रहिये॥ २॥

(११)

मन मेरे सोई परम सुख पावै।
जागि प्रपंच मांहि मति भूलै यह औसर नहिं आवै॥ (टेक)
सोवै क्यौं न सदा समाधि में उपजै अति आनन्दा।
जौ तू जागै जग उपाधि में क्षीन होइ ज्यौं चन्दा॥ १॥
सोइ रहै तें ह्वै अखंड सुख तौ तू जुग जुग जीवै।
जो जागै तौ परै मृत्यु मुख बादि वृथा विष पीवै॥ २॥
सोवै जोगी जागै भोगी यह उलटी गति जांनी।
सुन्दर अर्थ विचारै याकौ सोई पंडित ज्ञांनी॥ ३॥

---

९ वां पद—गोरंडा=गुबरेला कीड़ा जो गोबर की गोली कर के उसे उलटे पांव ढकेल कर बिलमें ले जाता है। सुन्दरदासजी जीवन्मुक्ति को मानते हैं। मुक्ति एक अवस्था मात्र है। शरीर छूटने पर मृत्यु हो जाने पर मुक्ति होने का क्या निश्चय हो सकता है। निजानंद निजस्वरूप जीव ही ब्रह्म है यह अनुभव परिपक्व होना ही मोक्ष है।

१० वां पद—चारों अवस्थाओं का वर्णन है।

११ वां पद—स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरों में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति के उदाहरण

चौपड़ बंध

चौपई
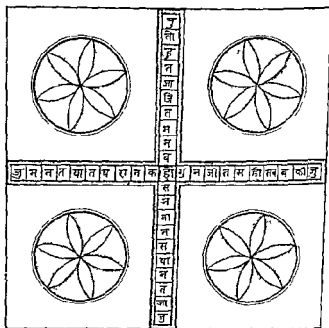
हो गुन जीन मह्यो सब की जु। हौं सनमान सयान तजौं जु॥
हौ धन सारन यानन म जु। हो दन मे नजि मान हुतो जु॥

पढ़न की विधि

चौपड़ के मध्य "हौं" अक्षर से प्रारंभ कर के दाहिनी, फिर बाएं, फिर ऊपर की ओर पढ़ें।

(१२)

संतो घर ही में घर न्यारा।

पिंड ब्रह्मंड तहां कछु नाहीं निरालम्ब निरधारा ॥ (टेक)

दिवस न रैनि सूर नहिससिहर अग्नि पवन नहि पांनी।

घर आकाश तहां कछु नाहीं ता घर सुरति समानी ॥ १ ॥

वेद पुरान शब्द नहि पहुँचै मनही मन में जांना।

उलटा पंथी मीन का मारग सून्य हि सून्य पयांना ॥ २ ॥

आदि न अन्त मध्य तहां नाहीं उतपति प्रलय न होई।

तीन हुं गुन तें अगम अगोचर चौथा पद है सोई ॥ ३ ॥

अलख निरंजन है अविनासी आपै आप अकेला।

दादूदास जाइ तहां कीया जीव ब्रह्म सौं मेला ॥ ४ ॥

(१३)

हरि का निज घर कोइक पावै।

जापरि कृपा होइ सतगुरु की सो वही ठौर समावै ॥ (टेक)

कोई नाभि कमल में सोधै कोई हृदय विचारै।

कोई कदली कुसम अष्टदल ताकै मध्य निहारै ॥ १ ॥

कोइ कंठ कोइ भ्रम नासिका कोई भ्रूवस्थाना।

कोई लिलाट कोइ तालू भीतरि कोइ ब्रह्मंड समाना ॥ २ ॥

सब कोइ बर्नन करै देह को सूक्षम ठौर न सूझै।

पिंड ब्रह्मंड तहां कछु नाहीं उलटि आप में बूझै ॥ ३ ॥

दिये हैं। अज्ञान अवस्था, मध्यावस्था, ज्ञानावस्था यों तीनों को सोने जागने और समाधि से बताया है।—"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी'...(गीता)।

१२ वां पद—घर=धरा, पृथ्वी। मीन का मारग=मछली उल्टे जल चढ़ती है।

काया सूंन्य तजै ता आगैं आतम सूंन्य प्रकासै।
परम सूंन्य सौं परचा होई तबहिं सकल भ्रम नासै॥ ४॥
पूरन ब्रह्म प्रकाश अखंडित वर्नन कैसैं होई।
दादूदास जाइ वा घर मैं जानैगा जन सोई॥ ५॥

(१४)

औधू एक जरी हम पाई।
पिंड ब्रह्मंड जहां तहां पसरी सद्गुरु मोहि बतई॥ (टेक)
सातौं धात मिलाइ एकठी तामैं रङ्ग निचोया।
अष्ट पहर की अग्नि लगाई पीत वरण तब जोया॥ १॥
चेला सकल मंढी मैं आये कहै गुरू स्यौं बैना।
घर घर भिष्या मांगत फिरते कबहुं न होतो चैना॥ २॥
अबतौ बैठे करैं बोगरा चिंता गई हमारी।
कोई कल्पना उपजै नांही सोवै पांव पसारी॥ ३॥
और करैं सो छिपतैं डोलैं मेरैं कछू न मावैं।
सुन्दरदास कहत है बाबा प्रगट ढोल बजावैं॥ ४॥

(१५)

औधू पारा इहि विधि मारौ।
हैं रसाइनी करहु रसाइन दुरस दालिद्र निवारौ॥ (टेक)
सीसी सुमति चढाइ जुगति करि ब्रह्म अग्नि प्रजारौ।
है भसमन्त उडै नहिं कबहूं ऐसी धवनी धारौ॥ १॥

---

१३ वां १४ वां पद—तीन शून्य कही हैं—(१) काया की। (२) आत्म-शून्य। (३) परम शून्य। इनसे परे परब्रह्म है। इन दोनों पदों में अपना आभोग न देकर अपने गुरु का दिया है। इस पद में एक प्रकार की रसायन का वर्णन कर आत्म रसायन की सिद्धि से अभिप्राय रक्खा है काया के साथ धातों को

पलटै घात होइ सब कंचन जीवन जडी विचारौ।
भागै रोग भूप अति लागै आगै भाग तुम्हारौ॥ २॥
और कलाप करहु काहे कौं किर्या कर्म सब डारौ।
मिथ्या बूटी पौदि मरौ जिनि बृथा जन्म कत हारौ॥ ३॥
सद्गुरु भेद बतावै जबही तबही थिर ह्वै पारौ।
सुन्दरदास कहै संमुझावै बाजै प्रगट नगारौ॥ ४॥ १११।

(१) राग सिंधूडौ

दादू सूर सुभट दलथम्भण रोपि रह्यौ रन माहीं रे।
जाकी साषि सकल जग बोलै टेक टली कहुं नाहीं रे॥ (टक)
ऐसी मार करै बाणन की जिहिं लागै सो जाणैं रे।
माता पूत एकही जायौ बैरी बहुत पषाणैं रे॥ १॥
हाक सुणें तैं हीयौ फाटै सनमुख कोइ न आवै रे।
जहां पडै तहां टूक टूक करि अति घमसांण मचावै रे॥ २॥
अंग उघाडे उतरि अषाडे परदल पाडै सूरा रे।
रहै हजूरि राम कै आगैं सुर परि बरषै नूरा रे॥ ३॥
काम धणीं कौ सबै संवार्‍यौ साहिब कै मन भायौ रे।
कछू एक जस गुरु दादू कौ सुन्दरदास सुनायौ रे॥ ४॥

तप से निर्मल कर दिया मानों स्वर्ण हो गई। बोगरा=बोंगालना, जुगाली। अर्थात् आनद से भोजन करते और पचाते हैं।

१५ वां पद—इस पद में भी रसायन का ही दृष्टांत है। यहां पारे से चंचल रन वा वीर्य का प्रयोजन है। रसायन में पारा अग्नि और जड़ी बूटियों से स्थिर होता है तब ही स्वर्ण होता है। मन भी जब तप वैराग्य की बूटी और ज्ञान-अग्नि से बंध कर थिर होता है। मिथ्या बूटी=झूठे मत मतांतर, वा झूठा सुख।

(राग सिंधूडौ) १ ला पद—दादूजी का सूरातन वर्णन किया है। पाडै=मारै।

(२)

सोई सूरवीर सावंत सिरोमनि, रन मैं जाइ गलारै रे।
आप आपणा घर मैं बैठा गाल सबै कोई मारै रे॥ (टेक)
नागौ लड़ै पहरि केसरियौ सत वादी सत भापै रे।
स्याम भरोसै संक न कोई और वोट नहिं रापै रे॥ १॥
ह्वै मरणीक आस तजि तनकी रोपि रहै रन मांहीं रे।
दोनौं प्राणी जुड़ै जब सनमुख तब पाछा दे नाहीं रे॥ २॥
पीसै दांत पिसण कै ऊपरि कै ऊपरि हाथ गहै हथियारा रे।
नेजा धारी निरपि फौज मैं मारै मन सिरदारै रे॥ ३॥
जहां छूटै तीर झड़ाझड़ि वीचै तहा म्यावतौ आवै रे।
सुन्दर लटकौ करै स्याम कौ तबतौ सूर कहावै रे॥ ४॥

(३)

द्वै दल आइ जुड़े धरणी पर निच सिंधूड़ो बाजै रे।
एक वीर कौं नृप निवेक चढि एक मोह नृप गाजै रे॥ (टेक)
प्रमथ काम रन माहिं गल्यारौ को हम ऊपरि आवै रे।
महादेव सरिपा मैं जीत्या नर की कौन चलावै रे॥ १॥
आइ विचार बोल्यियो बाणी मुख पर नीकैं डारयौ रे।
ज्ञान पडग ले तुरत काम कौं हाथ पकड़ि सिर कार्‌यौ रे॥ २॥
क्रोध आइ बोल्यौ रन मांहीं हौं सबहिन कौ काला रे।
देव दयन मनुप पशु पंपी जरैं हमारी ज्वाला रे॥ ३॥
पिमा आइकै हसनै लागी सीस चरन कौं नायौ रे।
चूक हमारी बकसहु स्वामी इतनैं क्रोध नसायौ रे॥ ४॥

---

२ रा पद—गल मारना=अपनी बड़ाई करना। वोट=सहारा, बचाव। धणी=सेना।

तबहिं लोभ रन आइ पचारयौ मैं तौ सबही जीते रे।
जौ सुमेर पर भीतरि आवै तौ पेट सबन के रीते रे॥ ५॥
इत संतोष आइ भयौ ठाढौ बोलै बचन उदासा रे।
होनहार सो ह्वै है भाई कीयौ लोभ कौ नासा रे॥ ६॥
महा लोभ कौं लागी चटपटी अति आतुर सौं धायौ रे।
मेरे जोधा सबही मारे ऐसौ कौंन कहायौ रे॥ ७॥
ता पर राइ बिबेक पचारयौ कीनी बहुत लराई रे।
इततें उततें भई झड़ाझड़ि काहू सुद्धि न पाई रे॥ ८॥
बहुत बार लग जूझे राजा राइ बिबेक हंकारयौ रे।
ज्ञान गदा की दई सीस मैं महा मोह कौ मारयौ रे॥ ९॥
फीटौ तिमिर भान तब ऊगौ अंतर भयौ प्रकासा रे।
युग युग राज दियौ अबिनासी गावै सुन्दरदासा रे॥ १०॥

(४)

सडफडै सूर नीसान घाई पडै, कोट की वोट सब छोडि चालै।
स्यांम के काम कौ लोट अरु पोट ह्वै, निकसि मैदान मैं चोट घालै (टेक)
जहां, कडकडै बीर गजराज हय हडहडै, धडहडै धरनि ब्रह्मंड गाजै।
झलहलै सार हथियार अति पडहडै, देखिता दूरि भकभूरि भाजै॥१॥
जहां तुपक तरवारि अरु सेल टक टूक ह्वै, बांण की तांण चहुं फेर हुई।
गहर घमसांण मैं कहर धीरज धरै, हहरि भाजै नहीं सुभट सोई॥२॥
पिसुन सब पेलि झडझेलि सनमुख लडै, मर्द कौं मारि करि गर्द मेलै।
पंच पचीस रिपु रीस करि निंदलै, सीस भुइ मेल्हि को कमध खेलै॥३॥

---

३ रा पद—पचारयौ=ललकारा। पचारयौ=प्रचारा, फैला। फीटौ=फीटा पड़ा। नाश हो गया। हकारयौ=हकाला, ललकारा।

अगम की गमि करै दृष्टि उलटो धरै, जीति संग्राम निज धाम आवै।
दास सुन्दर कहै मोज मोटी लहै, रीझि हरि राइ दरसन दिखावै॥४॥

(५)

महासूर तिनकौ जस गाऊं जिनि हरि सौं लै लाई रे।
मन मैवासी कियौ आपवसि और अनीति उठाई रे॥ (टेक)
प्रथम सूर सतयुग में कहिये ध्रुव दृढ ध्यान लगायौ रे।
माया छल करि छलने आई डिग्यौ न बहुत डिगायौ रे॥ १॥
सनक सनन्दन नारद सूरा नौ योगेसुर न्यारा रे।
तीनि गुणां कौं त्यागि निरन्तर कीयौ ब्रह्म विचारा रे॥ २॥
ऋषभदेव नृप सूर सिरोमनि जाइ वस्यौ बन मांहीं रे।
एक मेक है रह्यौ ब्रह्म सौं सुधि सरीर की नाहीं रे॥ ३॥
जन प्रहिलाद जोध जोरावर पिता दई बहु त्रासा रे।
राम नाम की टेक न छाडी प्रगट भयौ हरिदासा रे॥ ४॥
सूर धीर दत्तात्रय ऐसौ विचरत इच्छाचारी रे।
भयौ सुतन्त्र नहीं परतन्त्रा सकल उपाधि निवारी रे॥ ५॥

---

४ था पद—यह विचित्र आनद है कि स्वा० सुं० दा० जी जहां वीररस की कविता करते हैं तो बहुत ओजभरी होती है, क्योंकि शांतिरस प्रधान महात्मा की रचना वीररस में इतनी उत्कृष्ठ काव्य रचना की कुशलता प्रदर्शित करते हैं। तड़फड़ै =युद्ध के लिए अधीर हों। नीसान=निशान सहित बाजा, रणवाद्य। घाई=नक्कारे का गोंजदार शब्द। कोट की ओट—अब किले से बाहर मैदान की लड़ाईको जाते हैं। किला छोड़ मैदान में लड़ना अधिक शूरवीरता है। कड़कड़ै=शस्त्रों की आपस की टक्कर का शब्द वीर पुरुषों के तीव्र शब्दों से मिली हुई एक वीरता की ध्वनि। धड़हड़ै=धरांवे, धूजै। गाजै=बाजों के शब्दोंसे। टक=शरीर में घुस कर। कहर= क्रोध (और साथ ही धैर्य)। हहरि=दराटे भराटे से।

व्यास-पुत्र शुकदेव शुभट अति जनमत भयौ विरक्ता रे।
रम्भा मोहि सकी नहि ताकौ सदा ब्रह्म अनुरक्ता रे॥ ६॥
गोरषनाथ भरथरी सूरा कमधज्ज गोपी चन्दा रे।
चरपट काणेरी चौरङ्गी लीन भये तजि द्वन्दा रे॥ ७॥
रामानन्द कियौ सूरातन काशीपुरी मंझारी रे।
लोक उपासक शिव के होते आनि भक्ति विस्तारी रे॥ ८॥
नामदेव अरु रंकावंका भयौ तिलोचन सूरा रे।
भक्ति करी भय छाडि जगत कौ बाजहिं तिनके तूरा रे॥ ९॥
कलियुग माहिं कियौ सूरातन दास कबीर निसंका रे।
ब्रह्म अग्नि परजारि पलक में जीति लियौ गढ बंका रे॥ १०॥
जन रैदास साधि सूरातन विघ्नि मार मचाई रे।
सोझा पीपा सेन धना तिन जीती बहुत लराई रे॥ ११॥
अंगद भुवन परस हरदासा ज्ञान गह्यौ हथियारा रे।
नानक कान्हा बेण महाभट भलौ बजायौ सारा रे॥ १२॥
गुरु दादू प्रगटे साभरि मैं ऐसौ सूर न कोई रे।
वचन बान लायौ जाके उर थकित भयौ सुनि सोई रे॥ १३॥
आदि अन्ति कीयौ सूरातन युग युग साध अनेका रे।
सुन्दरदास मोज यह पावै दीजै परम विवेका रे॥ १४॥११६।

(१)   राग सोरठ

ऐसौ तैं, जूझ कियौ गढ घेरी।
कोई, जान न पायौ सेरी॥ (टेक)
दल जोरि कियौ सब एका, गहि शील सन्तोष बिवेका।

---

५ वां पद—मैवासी=किलेवाले को। अनीति उठाई=जुल्म को मिटा दिया। चौरंगी, चरपट, काणेरी=जोगी नाथ प्रसिद्ध हुए हैं। (हठयोग प्रदीपिका उ० १।

गुरु ज्ञान सदाई आया, उन सूरातन उपजाया ॥ १ ॥
पहिलें करि नांव अवाजा, तव रोके दश दरवाजा।
गहि ब्रह्म अग्नि परजारी, जरि मुई पचीसों नारी ॥ २ ॥
वै पंच पयादा कोपे, तहां उठि विवेक पग रोपे।
पुनि ज्ञान भयौ परचण्डा, तिनि मारि किये सत षण्डा ॥ ३ ॥
वै काम क्रोध दोउ भाई, गये लोभ मोह पै धाई।
तुम बैठे कहा गँवारा, उनि मार्‍यौ सब परिवारा ॥ ४ ॥
जब च्यार्‍यों मिलि करि आये, तब सील सूर उठि धाये।
ता पीछै उठ्यौ संतोषा, तिनि कछू न राष्यौ धोषा ॥ ५ ॥
जब जूझि परे अगवांनी, तब आये नृप अभिमांनी।
उठि प्रांन भंवाल गलारे, गहि राजा मांन पछारे ॥ ६ ॥
यह जीत्यौ पेत नरेसा, सो सुनियौ सेस महेसा।
घट भीतरि अनहद बाजे, तहां दादू दास विराजे ॥ ७ ॥
दत गोरष ज्यों जस तेरा, यौं गावै सुन्दर चेरा।
इक दीन वचन सुनि लीजै, मोहि मौज दरस की दीजै ॥ ८ ॥

(२)

गु॰ भा॰ (ताल)

भाजे कांई रे भिडि भारथ साम्हों सूरा सत जिणिहारे।
दुहौं पवाड सुजस ताहरौ कै मरसी कै मारै ॥ (टेक)

श्लो॰ ५-६-७) रामानन्द आदि भक्तों के नाम 'नाभाजी की भक्तमाल' में देखैं। और दादूजी आदिका जन्म लीला परचा और 'राघवदासजी की भक्तमाल' में आख्यान हैं।

(राग सोरठ) १ ला पद—सेरी=छोटा रास्ता। (निकल कर न जा सका ऐसा घेरा लगाया)। परजारी=प्रज्ज्वलित की।

चोट नगारै सुनै सुभट जन सिंधूड़ौ सहनाई।
छोडि सनाह हुलसि करि आयौ फूल्यौ अंग न माई॥ १॥
झलहल तीर तरवारि बरछी देषि कांदरैं काचा।
छूटैं तीर तुपक अरु गोला घाव सहै सुख सांचा॥ २॥
गाढा रोपि रहे रन माहे फिरि पाछौ जिणि आवैं।
घोडौ घालि पिसुण सब पेलै तब तू सोभा पावैं॥ ३॥
भला सूर सावन्त सराहै सो सूरातन कीजै।
सुन्दर सीस उतारि आपणौं स्याम काम कौं दीजै॥ ४॥

(३)

सोई औ गाढ रे रण रावत वाकौ, पाछा पाव न मेल्है।
साचै मतै स्याम रै आगै, सीस उतार्यां पेल्है॥ (टेक)
चढि चढि सूर चहु दिसि आया, हय हींसै गै गाजै।
बीजल ज्यौं चमकै बाढाली, काइर कादरि भाजै॥ १॥
मोह मिलि हूवा मोह नहीं मोडै, होइ जाइ विकराला।
सागि सबाहि करि सिर ऊपरि, मारैं मीर मुछाला॥ २॥
चूकै नहीं चोट यो घालै मारैं मार सुणावै।
करढी कमरि बाधि करि कमधज परकी फौज फिटावै॥ ३॥
खण्ड विहण्ड होइ पल माहीं करै न तन की लोभा।
सुन्दर मरै त मुकती पहुचैं, जीवै त जग में सोभा॥ ४॥

---

२ रा पद—पवाड=पँवाडा=सुजस जो जोगी बडवे गाते हैं। कांदरैं=कदराइल हो जाय, डरपाक।

३ रा पद—गै=गज, हाथी। मरैंत=मरने से। जीवैंत=जीने से। सबाहि=यह 'सुबाहि' पाठ होने से ठीक अर्थ होगा। अर्थात् अच्छी तरह बाह करके।

(४)

जो कोइ सुनै गुरू की बांनी, सो काहे कौ भरमै प्रांनी ॥ (टेक)
घट भीतरि सत दिषलावै, बडभागी होइ सु पावै।
जौ शब्द माहि मन रावै, सो राम रसाइन चापै ॥ १ ॥
घट भीतरि बिष्णु महेसा, ब्रह्मादिक नारद सेसा।
घट भीतरि इन्द्र कुबेरा, घट भीतरि प्रगट सुमेरा ॥ २ ॥
घट भीतरि सूरज चंदा, घट भीतरि सात समन्दा।
घट भीतरि नौ लष तारा, घट भीतरि सुरसरि धारा ॥ ३ ॥
घट भीतरि है रस भोगी, गोदावरि गोरष जोगी।
घट भीतरि सिद्धन मेला, घट भीतरि आप अकेला ॥ ४ ॥
घट भीतरि मथुरा काशी, घट भीतरि गृह बनवासी।
घट भीतरि तीरथ न्हाना, घट भीतरि आव न जाना ॥ ५ ॥
घट भीतरि नाचै गावै, घट भीतरि बैन बजावै।
घट भीतरि फाग बसन्ता, घट भीतरि कामिनि कन्ता ॥ ६ ॥
घट भीतरि स्वर्ग पताला, घट भीतरि है क्षय काला।
घट भीतरि युग युग जीवै, घट भीतरि अंमृत पीवै ॥ ७ ॥
जब घट सौं परचा होई, तब काल न व्यापै कोई।
जन सुन्दर कहि संमुझावै, सतगुरु बिन कोइ न पावै ॥ ८ ॥

(५)

मेरा मन राम नाम सौं लागा।
तातैं भरम गया भै भागा ॥ (टेक)

४ था पद—'भ्रमै' को 'भरमै' पाठ छन्द सौन्दर्य के लिए लिखा है। इसके अर्थ की समझ दादूवाणी में 'कायाबेली' का पद पढ़ने समझने से आ सकती है। वहां देखें और चन्द्रिकाप्रसादजी की उस पर टीका देखें।

आसा मनसा सब थिर कीनी, सत रज तम त्यागे तीनी।
पुनि हरष सोक गये दोऊ, मद मच्छर रहे न कोऊ॥ १॥
नख शिख लौं देह पखारी, तब सुद्ध भई सब नारी।
भया ब्रह्म अग्नि सुप्रकासा, किया सकल कर्म का नासा॥ २॥
इडा पिंगला उलटी आई, सुषमन ब्रह्मण्ड चढ़ाई।
जब मूल चापि दिढ बैठा, तब बिंद गगन में पैठा॥ ३॥
जहां शब्द अनाहद बाजै, तहां अन्तर जोति बिराजै।
कोई देषै देषनहारा, सो सुन्दर गुरू हमारा॥ ४॥

(६)

ऐसौ योग युगति जब होई।
तब काल न व्यापै कोई॥ (टेक)
धरि आसन पद्म रहता, सब काया कर्म दहंता।
तजि निद्रा छाडि अहारा, करि आपुहि आप बिचारा॥ १॥
गहि बिंद गगन दिशि जाता, भषि पवन पियाला माता।
सुनि अनहद सींगी बाजै, धुनि मांहि निरंजन गाजै॥ २॥
सो अवधू गुरु का पूरा, जिनि एक किया ससि सूरा।
अभि अतरि जोति जगावै, तहां उनमनि ताली लावै॥ ३॥
यह गंग जमुन बिचि पेला, तहा परम पुरुष का मेला।
गुरु दादू दिया दिषाई, तहा सुदर रह्या समाई॥ ४॥

५ वां पद—पषारी=धोई, स्नान कराई। नारी=नाड़ी (१०८ नाड़िया)। मूलचापि=मूलाधार चक्र को सिद्धासन दृढ़ करके सिद्ध कर लिया। बिन्द=वीर्य। गगन=मस्तिष्क, सहस्रार चक्र में।

६ ठा पद—गंग=पिंगला (दाहिने स्वर को) सूर्य नाड़ी। जमना=इडा (बायें स्वर की) चन्द्रनाड़ी। यथा—"गंगा जमना अंतर बेद। सुरसति नीर बहै परबेद।" दादूबाणी पद ४०७।

(७)

हमारे साहु रमइया मोटा, हम ताके आहि बनौटा ॥ (टेक)
यह हाट दई जिनि काया, अपना करि जानि बैठाया॥ ।
पूंजी को अंत न पारा, हम बहुत करी भंडसारा ॥ १ ॥
लई वस्तु अमोलक सारी, सब छाडि विषै पलि पारी ।
भरि राख्यौ सबही भौना, कोई खाली रह्यौ न कौना ॥ २ ॥
जो गाहक लेनै आवै, मन मान्यौ सौदा पावै ।
देपै बहु भाति किराना, उठि जाइ न और दुकाना ॥ ३ ॥
समरथ की कोठी आये, तब कोठीवाल कहाये ।
वनिजै हरि नाव निवासा, यह बनिया सुंदरदासा ॥ ४ ॥

(८)

देषहु साह रमइया ऐसा, सो रहै अपरछन वैसा ॥ (टेक)
यहु हाट कियौ संसारा, तामै विविधि भाति ब्यौपारा ।
सब जीव सौदागर आया, जिनि बनज्या तैसा पाया ॥ १ ॥
किनहूं वनिजी पलि पारी, किनहु लइ लौंग सुपारी ।
किनहूं लिये मूगा मोती, किनहूं लइ काच की पोती ॥ २ ॥
किनहू लइ औषध मूरी, किनहूं केसर कस्तूरी ।
किनहू लियौ बहुत अनाजा, किनहूं लियौ ल्हसण प्याजा ॥ ३ ॥

---

७ वां पद—बनौटा=बनाया हुआ बनिया जिसको बड़ा दूकानदार कुछ पूंजी देकर पृथक् दुकान पर बिठाकर साहूकार बना देता है । बनाया हुआ आदमी । प्रतिपालित ।

॥ "बैठाया" को 'विठाया' पढ़ना ठीक होगा । भंडसार=बिगाड़ या भंडार की भरती । पलि पारी=खली निस्सत्व पदार्थ । पारी=क्षार या खारी नमक जिसको हीन समझते हैं । निवासा=भंडार भर-भर कर ।

संतनि लीयो हरि हीरा, तिनस्यौं कीयो हम सीरा।
दुख दालिद्र निकट न आवै, यौं सुन्दर वनिया गावै ॥ ४ ॥

(६)

मोहि, सतगुरु कहि संमुझाया हो।
परम पुरुष विन और न परसौं, पीव निरंजन राया हो ॥ (टेक)
सब ऊपरि सोई मेरा स्वांमी, उसपरि कोई न बताया हो।
मनसा वाचा और कर्मना, वाही सौं मन लाया हो ॥ १ ॥
घट धारी सौं प्रीति न मेरी, जो अवतार कहाया हो।
वै हम भइया वंध आप मैं, एकहि जननी जाया हो ॥ २ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेस विचारा, उहां लग जान न पाया हो।
बाजी मांहि वीचि ही अटके, मोहि लिये सब माया हो ॥ ३ ॥
तहां गये गोरक्ष भरथरी, जहां घांम नहिं छाया हो।
तहा कबीर गुरु दादू पहुंचे, सुन्दर उहिं दिशि धाया हो ॥ ४ ॥

(१०)

मेरे, सतगुरु बडे सयाने हो।
लोक वेद मरजाद उलँघिकैं, गये गगन के थांने हो ॥ (टेक)
अगम ठौर कै आसन बैठे, बेहद सौं मन मांते हो।
सांचि सिंगार किया उर अंतर, मेष भरम सब भांने हो ॥ १ ॥

---

८ वां पद—अप्रछन=अप्रच्छन्न, प्रगट। परन्तु यहां तो गुप्त का अर्थ है अर्थात् प्रच्छन्न। सीरा=साजा, साझे। 'लियो' को 'लीयो' और 'कियो' को 'कीयो' बनाया गया।

९ वां पद—इसमें अवतारादि को भी शरीरधारी होने से माया के विकार कहे हैं। यही निर्गुण मत का चरम सिद्धान्त है।

तिमिर मिट्यौ जब ब्रह्म प्रकासे, फँसैं रहत छिपाने हो।
शिव विरंचि सनकादिक नारद, सेस नाग पुनि जाने हो॥ २॥
योगी यती तपी संन्यासी, ये सब भरम भुलाने हो।
तीरथ व्रत जप तप बहु करि करि, उरैं उरैं उरझाने हो॥ ३॥
गोरष भरथर नाम कबीरा, संतनि माँहि प्रवाने हो।
सुन्दरदास कहै गुरु दादू, पहुंचे आइ ठिकाने हो॥ ४॥

(११)

उस, सत गुरु की बलिहारी हो।
बंधन काटि किये जिनि मुक्ता, अरु सब बिपति निवारी हो॥ (टेक)
बानी सुनत परम सुख पायौ, दुरमति गई हमारी हो।
भरम करम के सलै षोले, दिये कपाट उघारी हो॥ १॥
माया ब्रह्म भेद समुझायौ, सो हम लियौ बिचारी हो।
आदि पुरुष अभि अलरि राषे, डांइनि दूरि बिडारी हो॥ २॥
दया करो उनि सन सुख दाता, अबकै लिये उबारी हो।
भवसागर में बूडत काढे, ऐसे परउपगारी हो॥ ३॥
गुरु दादू के चरण कवल परि, मेल्हौं सीस उतारी हो।
और कहा ले आगे राषै, सुन्दर भेट तुम्हारी हो॥ ४॥

(१२)

सोई सत भला मोहि लागै हो।
राम निरंजन सौं मन लावै, कनक कामिनी त्यागै हो॥ (टेक)
तजि ससार उलटि नहिं आवै, जो पग धरै स आगै हो।
ज्ञान षडग ले सनमुख झूझै, फिरि पीछे नहिं भागै हो॥ १॥

१० वां पद—थानै=स्थान। बेहद=सामा रहित। अनन्त। नाम=नामदेव।
११ वां पद—डांइनि=माया डाकिनी।

पंच तीन गुन और पचीसौं, ब्रह्म अग्नि मैं दागै हो।
सहज सुभाइ फिरै जन मुक्ता, ऐसैं जग मैं जागै हो ॥ २ ॥
आसा तृष्णा करै न कबहूँ, काहू पै नहिं मांगै हो।
कबहौं पंचा अमृत भोजन, कबहौं भाजी सागै हो ॥ ३ ॥
अंतर-जामी नैंकु न बिसरै, बार बार चित धागै हो।
सुन्दरदास तास कौं बंदै, सून्य सुधा रस पागै हो ॥ ४ ॥

(१३)

वे सन्त सकल सुखदाता हो।
जिनकै हृदै नांव निज निर्मल, प्रेम मगन रस माता हो ॥ (टेक)
रोमंचित अरु गद गद बांनी, पल पल पुलकति गाता हो।
सर्व भूत सौं दया निरन्तरि, सीतल बैन सुहाता हो ॥ १ ॥
दरसन करत ताप त्रय भागै, परसन पाप नसाता हो।
मौंन रहै बूझै तें बोलै, कहै ब्रह्म की बाता हो ॥ २ ॥
कोई निंदै कोई बंदै, सम दृष्टी तत-ज्ञाता हो।
कोप न करै हरप नहिं मांनै, परम पुरुष सौं राता हो ॥ ३ ॥
जग मैं रहै जगत सौं न्यारे, ज्यौं जल पुरइनि पाता हो।
सुन्दरदास संत जन ऐसे, सिरजे आप बिधाता हो ॥ ४ ॥

(१४)

भाई रे सतगुरु कहि संमुझाया।
मोहि एक बिचार बताया ॥ (टेक)

---

१२ वां पद—दागै=जलावै। भाजी=तरकारी। धागै=जोड़ै (जैसे तागे में रोकर वा सुई से सींकर)। पागै=मग्न हो, डूबै।

१३ वां पद—नांव निज=निज नांव, वा निर्मल नितान्त (निर्मल से सम्बन्ध रखें तो) पुरइनि-पाता=कमल का पत्ता।

धाये भूषे भूषे भूषे, जबलग नहीं संतोषा।
धाये धाये भूषे धाये, हरि भजि पायौ मोषा ॥ १ ॥
बैठे चलते चलते चलते, जबलग मन थिर नांहीं।
बैठे बैठे चलते बैठे, जब संमुर्खे हरि मांहीं ॥ २ ॥
निर्मल मैले मैले मैले, जबलग मनहि विकारा।
निर्मल निर्मल मैले निर्मल, गलित भये गुन सारा ॥ ३ ॥
उत्तम मध्यम मध्यम मध्यम, जबलग वस्तु न जांनी।
उत्तम उत्तम मध्यम उत्तम, आतम दृष्टि पिछानी ॥ ४ ॥
सांचा झूठा झूठा झूठा, जबलग आन पुकारै।
सांचा सांचा झूठा सांचा, वांणी ब्रह्म उचारै ॥ ५ ॥
पंडित मूरष मूरष मूरष, जबलग अहं न जाई।
पंडित पंडित मूरष पंडित, दुविधा दूरि गमाई ॥ ६ ॥
मुक्ता बंध्या बंध्या बंध्या, जबलग तजी न आसा।
मुक्ता मुक्ता बंध्या मुक्ता, सबतैं भया उदासा ॥ ७ ॥
जीत्या हास्या हास्या हास्या, जबलग है अज्ञांना।
जीत्या जीत्या हास्या जीत्या, सुन्दर ब्रह्म समाना ॥ ८ ॥

(१५)

भाई रे प्रकट्या ज्ञान उजाला।
अहंकार भ्रम गयौ विलाई, सतगुरु किये निहाला ॥ (टेक)
इंहे ज्ञान गहि ब्रह्मा बोले कहिये आदि कुलाला।
इंहे ज्ञान गहि सत गुन धरिकैं विष्णु करें प्रतिपाला ॥ १ ॥

---

१४ वां पद—धाये भूषे=धाये हुए वा तृप्त होकर भी भूखे के भूखे ही रहे थे। सन्ताप धन नहीं मिला तो। इस पद में इसी प्रकार शब्दार्थ योजना चातुर्य से कि है जिनको इसी तरह लगाया जावै।

इहै ज्ञान गहि शंकर गौरी प्रेम मग्न मति वाला।
इहै ज्ञान गहि शुक मुनि नारद बोलत बैन रसाला॥ २॥
इहै ज्ञान गहि राम भजत है बैठे शेष पताला।
इहै ज्ञान गहि प्रगट जतो भये ऐसे हनुमत बाला॥ ३॥
इहै ज्ञान गहि जन प्रह्लादू बचे अग्नि की झाला।
इहै ज्ञान गहि ध्रू अविनासी टरत न काहू टाला॥ ४॥
इहै ज्ञान गहि दत्त दिगम्बर, यहु न* लई मृगछाला।
इहै ज्ञान गहि गोरष जोगी, जीति लियौ जम काला॥ ५॥
इहै ज्ञान गहि गये भरथरी केते और भुंवाला।
इहै ज्ञान गहि गोपी चन्दहि छाड्यौ सब जञ्जाला॥ ६॥
इहै ज्ञान गहि नाम कबीरा पीवै अंमृत प्याला।
इहै ज्ञान गहि सोझा पीपा जन रैदास कमाला॥ ७॥
इहै ज्ञान गहि यौं गुरुदादू चलि सन्तनि की चाला।
इहै ज्ञान पायौ जन सुन्दर जग तें भया निराला॥ ८॥

(१६)

सब कोऊ भूलि रहे इहिं बाजी।
आप आपुने अहंकार मैं पातिसाहि कहा पाजी॥ (टेक)
पातिसाहि कै विभौ बहुत विधि पात मिठाई ताजी।
पेट पयादौ भरत आपनौ जीमत रोटी भाजी॥ १॥
पण्डित भूले बेद पाठ करि पढि कुरान कौं काजी।
वै पूरब दिशि करैं डण्डवत वै पच्छिम हि निवाजी॥ २॥

---

* 'न' अक्षर से यह प्रयोजन है कि मृगछाला तक धारण नहीं की। और यहु का अर्थ इस कारण (इस ज्ञान की प्राप्ति से)।

१५ वां पद—भुंवाला=भूपाल, राजा।

तीरथिया तीरथ कौं दौडे हज कौं दौडे हाजी।
अन्तर गति कौं पोजें नाहीं भ्रमणैं ही सौं राजी॥ ३॥
अपने अपने मद के मांते लर्यं न फूटी साजी।
सुन्दर तिनहिं कहा अब कहिये जिनकै भई दुराजी॥ ४॥१३२॥

(१) राग जैजैवन्ती

काहे कौं भ्रमत है तू बावरे अनित्र जाइ।
जासूं तूं कहत दूरि सोतो तेरे पास है॥ (टेक)
ऐसें तूं बिचारि देषि व्यापक है तोहि मांहि।
दूध मांहि घृत जैसें फूलनि में बास है॥ १॥
बाहरि कू दौरे तेरे हाथ न परत कछु।
उलटि अपूठो तेरी तोही में प्रकास है॥ २॥
जाके रूपरेष कछु बरणि कह्यौ न जाइ।
अलष अमूरति अमर अविनास है॥ ३॥
सोहं सोहं बार बार होतहै रहत नित्य।
याही में स्मुझि जो उठत तेरे स्वास है॥ ४॥
एकता बिचारै जब सुन्दर ही स्वामी होइ।
दूसरो बिचारै तब सुन्दर ही दास है॥ ५॥

(२)

आपुकौं संभारे जब तूही सुख सागर है।
आपकू बिसारें तब तूही दुख पाइ है॥ (टेक)

---

१६ वां पद—पाजी=छोटा आदमी। पयादा नौकर। निवाजी=नमाज पढ़ते हैं। फूटी साजी=बिगड़ी हुई साझी वा मेल। द्वन्द्व, द्वैतभाव।

[राग जैजैवन्ती] १ ला पद—अनित्र=अन्यत्र, और तरफ।

तू ही जब आवै ठौर दूसरौ न भासै और।
तेरी ही चपलता तें दूसरौ दिषाइ है॥ १॥
बांवें कानि सुनि भावै दाहिनै पुकारि कहूं।
अबकै न चेत्यौ तो तूं पीछै पछिताइ है॥ २॥
भावै आज भावै कल्पन्त बीतैं होइ ज्ञान।
तबही तू अबिनासी पद मैं समाइ है॥ ३॥
सुन्दर कहत सन्त मारग बतावैं तोहि।
तेरी षुसी परै तहां तू हीं चलि जाइ है॥ ४॥ १३४॥

(१) राग रामगरी

अवधू भेष देषि जिनि भूलै।
जबलग आतम दृष्टि न आई तबलग मिटै न सूलै॥ (टेक)
मुद्रा पहरि कहावत जोगी, युगति न दीसै हाथा।
वह मारग कहुं रह्यौ अनत ही, पहुंचै गोरषनाथा॥ १॥
लै संन्यास करै बहु तामस, लम्बी जटा बधावै।
दत्तदेव की रहनि न जानै, तत्त कहा तें पावै॥ २॥
मूड मुण्डाइ तिलक सिर दीयौ, माला गरै झुलाई।
जो सुमिरन कीनौ सब सन्तनि, सो तौ षबरि न पाई॥ ३॥
तहबन्ध बांधि कुतका लीना, दम दम करै दिवाना।
महमद की करनी नहिं जानै, क्यौं पावै रहिमाना॥ ४॥
दरसन लियौ भली तुम कीनी, क्रोध करौ जिनि कोई।
सुन्दरदास कहै अभिअन्तरि, वस्तु विचारौ सोई॥ ५॥

पद १ का—और २ रा—दोनों ही छन्द के अनुसार "सवैया" के अन्दर आने योग्य हैं।

[राग रामगरी] पद १ का—इसमें ढोंगी साधुओं, जोगियों, फकीरों को वसणी

(२)

सन्त चले दिस ब्रह्म की तजि जग व्यवहारा।
सीधैं मारग चालतैं निंदै संसारा॥ (टेक)
सन्त कहै सांची कथा मिथ्या नहिं बोलै।
जगत डिगावै आइकैं तौ कबहूं न डोलै॥ १॥
जे जे कृत संसार के ते सन्तनि छाडे।
ताकौं जगत कहा करै पग आगैं मांडे॥ २॥
जे मरजादा वेद की ते सन्तनि मेटी।
जैसें गोपी कृष्ण कौ सब तजि करि भेंटी॥ ३॥
एक भरोसे राम कै कछु शंक न आंनैं।
जन सुन्दर साचै मतै जग की नहिं मांनैं॥ ४॥

(३)

सतगुरु शब्दहुं जे चले तेई जन छूटे।
जग मरजादा में रहे ते महुकम खूटे॥ (टेक)
कुल की मोटी संकला पग बांधे दोई।
गले तौक कर हथकरी क्यौं निकसै कोई॥ १॥
नाना विधि के बांधनै सब बांधे वेदा।
सूर वीर कोई निकसि है जो पावै भेदा॥ २॥
बाबा अरु दादा चले ते मारग पोटा।
सो व्यापार न कीजिये जिहिं आवै टोटा॥ ३॥

लगाई है। ४ थे अन्तरे के पढ़ने से पाया जाता है कि स्वामीजी अन्य मतों के आचार्यों का भी आदर करते थे। दरसन=बाना, भेष (जैसे 'षट् दरसन' में)।

२ रा पद—सीधे मारग=जिस मार्ग सन्त चलते हैं वह सीधा रास्ता है। मरजादा बेद की=कर्मकाण्ड मर्यादा.

पन्थ पुरातम कहत हैं सब चलता आया।
सुन्दर सो उल्टा चलै जिन सतगुरु पाया॥ ४॥

(४)

यह सब जानि जग की पोट।
छाडि श्रीपति सरन सांचौ गहै झूठी वोट॥ (टेक)
दगाबाज प्रचण्ड लोभी कामना नहिं छेह।
भूत आगै पूत मांगै परेगी सिर खेह॥ १॥
देव देवी सकल भ्रमि भ्रमि कहूं न पूजो आस।
मानुषा तनु पाइ ऐसौ कियौ योंही नास॥ २॥
कष्ट करि करि स्वर्ग वंछहि और पृथवी राज।
महा मूढ अज्ञान अपनौं करहिं बहुत अकाज॥ ३॥
सुख निधान सुजान समृथ ताहि भजत न कोइ।
कहत सुन्दरदास ऐसैं काज कैसैं होइ॥ ४॥

(५)

नटवर रच्यौ नटवै एक।
बहु प्रकार बनाइ बाजी किये रूप अनेक॥ (टेक)
चारि खानी जीव तिनकी और औरैं जाति।
एक एक समान नांही करी ऐसी भांति॥ १॥
देव भूत पिसाच राक्षस मनुष पशु अरु पंखि।
अगिन जलचर कीट कृमि कुल गनै कौंन असंषि॥ २॥
भिन्न भिन्न सुभाव कीये भिन्न भिन्न अहार।
भिन्न भिन्न हि युक्ति रापी भिन्न भिन्न विहार॥ ३॥

---

३ रा पद—महुकम=(अ०) मोहक्म-मजबूत, गहरे, बहुत।
४ था पद—भूत=भूत प्रेत। देवताओं या भोमिया पीर के भाव भरते हैं वे।

भिन्न थानी सकल जांनी एक एक न मेल।
कहत सुन्दर मांहि बैठा करैं ऐसा पेल॥ ४॥

(६)

यहु तन ना रहै भाई।
विना देहुं चहुं मांहि सबको चल्यौ जग जाई। (टेक)
विष्णु ब्रह्मा शेष शंकर सो न थिर थाई।
देव दानव इन्द्र केते गये बिनसाई॥ १॥
कहत दश अवतार जग में औतरे आई।
काल तेऊ झपटि लीने वस नहीं काई॥ २॥
कौरवा पाडवा रावन कुम्भकरनाई।
गरद वैसे भये जोधा खबरि नां पाई॥ ३॥
घट धरैं कोइ थिर न दीसै रङ्क अरु राई।
दास सुन्दर जानि ऐसो राम ल्यौ लाई॥ ४॥

(७)

एक निरञ्जन नाम भजहु रे।
और सकल जंजाल तजहु रे॥ (टेक)
योग यज्ञ तीरथ व्रत दाना, लौंन बिना ज्यौं बिंजन नाना॥ १॥
जप तप संजम साधन ऐसैं, सकल सिंगार नाक बिन जैसैं॥ २॥
हेमतुला बैठें कहा होई, नाम बराबरि धर्म न कोई॥ ३॥
सुन्दर नाम सकल सिरताजा, नाम सकल साधन को राजा॥ ४॥

---

५ वां पद—नटपट=नटबाजी का आडम्बर। सृष्टि का पसारा जो एक बाजीगरी सी है।

६ ठा पद—बिनसाई=नष्ट होकर। कुम्भकरनाई=(अनुप्रासार्थ ऐसा रूप है) रावण का भाई। घट धरैं=शरीरधारी।

(८)

ऐसी भक्ति सुनहु सुखदाई।

तीन अवस्था में दिन बीते, सो सुख कह्यौ न जाई॥ (टेक)

जाग्रत कथा कीरतन सुमिरन, स्वप्नै ध्यान लै ल्यावै।

सुषुपति प्रेम मगन अंतिरगति, सकल प्रपंच भुलावै॥ १॥

सोई भक्ति भक्त पुनि सोई, सो भगवंत अनूपं।

सो गुरु जिन उपदेश बतायौ, सुन्दर तुरिय स्वरूपं॥ २॥

(९)

तूहीं राम हूही राम वस्तु विचारें भ्रम द्वै नाम॥ (टेक)

तू ही हूं ही जबलग दोइ, तबलग तू ही हूं ही होइ॥ १॥

तू ही हूं ही सोहं दास, तू ही हूं ही बचन विलास॥ २॥

तू ही हूं ही जबलग कहै, तबलग तू ही हूं ही रहै॥ ३॥

तू ही हूं ही जब मिट जाइ, सुन्दर ज्यौं की त्यौं ठहराइ॥ ४॥१४३॥

(१) राग वसन्त

इनि योगी लीनी गुरु की सीष।

नाम निरञ्जन मांगै भीष॥ (टेक)

कथा पहरी पंचरङ्ग, ज्ञान विभूति लगाई अङ्ग।

मुद्रा गुरु को शब्द कान, ऐसौ भेष कियौ अवधू सुजान॥ १॥

सींगी सुरति बजाई पूरि, बस्ती देखी बहुत दूरि।

जहां शब्द सुनै नगरी मंझारि, तहां आसन करि बैठौ विचारि॥ २॥

---

८ वा पद—अन्तिरगति=अन्तरगति।

९ वा पद—इस पद में अद्वैत प्रतिपादन किया है। "तत्वमसि" (वह तू ही है) के अर्थ को दरसाया है।

अंमृत कौ तहां आवै ग्रास, चेला चांटी रहै पास।
सब काहू सौं बांटि पाइ, तहां बिछुरि जमात कहूं न जाइ ॥ ३ ॥
यह भोजन पावै बार बार, भरि भरि पेट करै अहार।
भागी भूप अघाइ प्रान, ऐसी सुन्दर नगरी सुख निधान ॥ ४ ॥

(२)

मेरे हिरदै लागौ शब्द बान, ताकि मारे सत गुरु सुजान ॥ (टेक)
यह दशौं दिशा मन करतौ दौड़, बेधन ही रहि गयौ ठौड।
चलि न सकै वहु पैंड एक, देषौ माँहि कलेजे भयौ छेक ॥ १ ॥
ऊपरि घाव न दीसै कोइ, भीतरि नख शिख छीयौ पोइ।
कोइ न जानै मेरी पीर, सो जानै जाकै लग्यौ तीर ॥ २ ॥
जीवत मृतक किये मारि, रोम रोम ऊठे पुकारि।
प्रेम मगन रस गलित गात, मोहि बिसरि गई सब और बात ॥ ३ ॥
गति मति पलटी पलट्यौ अंग, पंच पचीसनि एक संग।
उलटि समाने सून्य माँहि, अब सुन्दर कहुं अनत नाँहि ॥ ४ ॥

(३)

ऐसौ बाग कियौ हरि अलष राइ।
यहु अद्भुत रचना कही न जाइ ॥ (टेक)
यह पंच तत्व कौ सघन बाग, मूल बिना तरु सरस लाग।
यहु विधि बिरवा रहे फूलि, जो देषै सो जाइ भूलि ॥ १ ॥

[राग बसन्त] १ ला पद—पंचरंग=पंच ज्ञानेन्द्रियों को बस करना। अमृत=ज्ञानरूपी अमृत। अथवा योग के अनुसार माथे में कुण्डलिनी अमृत बिन्दु पीवै।

२ रा पद—सतगुरु (दादूदयाल) का उपदेश—अतिशय ज्ञान का—हृदय में ऐसा पुसा कि अहंकार आदिक मिट कर अन्तरात्मा में प्रवृत्त हो गई और निरन्तर ज्ञान ध्यान से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो गई।

यह धारा मास फलै सुफाल, तहां पंखी बोलैं डाल डाल।
जब यह आवै मृतु बसंत, ये तब सुख पावैं सकल जंत ॥ २ ॥
ताहि सींचत है प्रभु बार बार, पुनि पल पल मांहि करै संभार।
प्रभु सबही द्रुम कौ मर्म जांन, तामैं कोइक बाके मनहि मांन ॥ ३ ॥
जो फलै न फूलै बाग मांहि, ऐसौ सतगुरु चन्दन और नाहि।
ताकी रुख्यक लागी आइ बास, तिन पलटि लियौ सुन्दर पलास ॥ ४ ॥

(४)

एसौ फागुन पेलै संत कोइ।
जामैं उतपति प्रलै जीव होई ॥ (टेक)

इनि मोह गुलाल लगायौ अङ्ग, पुनि लोभ अरगजा लियौ संग।
केसरि कुमति करो बनाइ, अरु माया कौ मद पियौ अघाई ॥ १ ॥
तहा मदल मदन बजावै भेरि, आसा अरु तृष्णा गावैं टेरि।
हाथनि मे लीने क्रोध बंस, इनि करि करि क्रीडा हत्यौ हंस ॥ २ ॥
जब पेलि माल्हि कैं चले न्हान, पुनि सोकसरोवर कियौ सनान।
ससै को तिलक दियौ लिलाट, गये आप आपकौ बारह बाट ॥ ३ ॥
इहै जांनि तुरत हम छूटे भागि, यह सब जग देष्यौ जरत आगि।
अपने सिर की फिरि डारी पोट, जन सुन्दर पकरी हरि की वोट ॥ ४ ॥

---

३ रा पद—ससार को बाग की उपमा देकर उसमें सतगुरुरूपी चन्दन के वृक्ष से अन्य वृक्षों के चन्दन बनने की बात कही। पलास=ढोला वृक्ष। निर्गन्ध अन्य वृक्ष (जो चन्दन की सुगन्ध से चन्दन हो जाते हैं) गुरु के वचनरूपी सुगन्ध से जिज्ञासु भी ज्ञानी हो गये वा हो जाते हैं।

४ था पद—मदल=मन्द-मन्द। अथवा मण्डल=डफ का घेरा। इस पद में किसी भ्रष्ट दम्भी साधु का वर्णन है, जिसकी बुरी बातें देख स्वामीजी घबराए और ससार की असारता का पक्का प्रमाण मिला।

(५)

हम देषि वसत कियौ विचार।
यह माया पेलै अति अपार॥ (टेक)
यहु छिन छिन मांहि अनेक रङ्ग, पुनि कहुं बिछुरै कहु करै संग।
यहु गुन धरि बैठी कपट भाइ, यहु आपुहि जनमें आपु पाइ॥ १॥
यहु कहुं कामिनि कहुं भई कन्त, यहु कहुं मारै कहूं दयावंत।
यहु कहुं जागै कहुं रही सोइ, यहु कहू हंसै कहुं उठै रोइ॥ २॥
यहु कहुं पाती कहु भई देव, पुनि कहुं युक्ति करि करै सेव।
यहु कहुं मालनि कहु भई फूल, यहु कहूं सूक्ष्म कहू ह्वै है स्थूल॥ ३॥
यहु तीन लोक मैं रही पूरि, भागी कहां कोई जाइ दूरि।
जौ प्रगटै सुन्दर ज्ञान अङ्ग, तौ माया मृग जल रजु भुजंग॥ ४॥

(६)

तुम पेलहु फाग पियारे कन्त।
अब आयौ है फागुन ऋतु वसंत॥ (टेक)
घसि प्रेम प्रीति केसरि सुरङ्ग, यह ज्ञान गुलाल लगावै अङ्ग।
भरि सुमति पिचरकी अपनै हाथ, हम भरिहैं तुमहिं त्रिलोकनाथ॥ १॥
तुम हमहिं भरहु करि अधिक प्यार, हम तुमहिं भरहिं प्रभु वार वार।
निसवासर पेल अखड होइ, यह अद्भुत पेल लपै न कोइ॥ २॥
तहां शब्द अनाहद अति रसाल, धुनि दुन्दभि ढोल मृदंग ताल।
सुख उपजै श्रवननि सुनत नाद, मन मगन होइ छूटै बिषाद॥ ३॥
हम तुमहिं पकरि आंजि हैं नैंन, सब हो हो हो हो कहै बैन।
तुम छूटौ चाहत फगुवा देइ, यह सुन्दर नारि कछू न लेइ॥ ४॥

---

५ वां पद—मृगजल=मृगतृष्णा का पानी (भ्रममात्र वा दृष्टिभ्रम)।

६ठा पद—धुनि दुन्दुभि=योग ध्यान वा समाधि में प्रथम अनेक शब्द होते हैं। देखो 'ज्ञानसमुद्र' में। आंजि है नैन=ब्रह्म तो निरंजन है उसके नेत्रों में अंजन

(७)

देषौ, घट घट आतम राम निरन्तर षेलत सरस बसंत।
ऐसौ, ष्याली ष्याल कियौ है, कबहुं न आवत अंत॥ (टेक)
चारि षानि विस्तार जगत यह, चौरासी लष जंत।
षेचर भूचर अरु जल चारी, बहु बिधि सृष्टि रचन्त॥ १॥
धरती गगन पवन अरु पानी, अग्नि सदा बरतंत।
चन्द सूर तारागन सबही, देव यक्ष अगनन्त॥ २॥
ज्यौं समुद्र मैं फेन बुदबुदा, लहरि अनेक उठंत।
तरवर तत्व रहैं एक रस, झरि झरि पत्र परन्त॥ ३॥
ज्यौं का त्यौंही षेल पसारा, बीत्यौ काल अनन्त।
सुन्दर ब्रह्म बिलास अखंडित, जानत हैं सब संत॥ ४॥१५०॥

(१) राग गौंड

मेरा प्रीतम प्रान अधार कब घरि आइ है।
कहुं सो दिन ऐसा होइ दरस दिषाइ है॥ (टेक)
ये नैंन निहारत माग इक टग हेरहीं।
बाल्हा जैसैं चन्द चकोर दृष्टि न फेरहीं॥ १॥

देना वा फाग खेलना पराभक्ति की काष्ठा है। परम प्रेम का भाव है। कछु न लेइ=निष्काम भक्तिमय ज्ञान को छोड़ और कुछ नहीं चाहिए।

७ वां पद—वसन्त के रूपक के साथ सृष्टि का वर्णन करने यह प्रयोजन है कि वसन्त शब्द से सदा वसने वा व्यापक रहना और फिर वसन्त शब्द से वसन्त ऋतु का अर्थ लेने से पुष्प के खिलने और आनन्द बाहुल्य होने से भी है। ऐसा वर्णन कबीरजी आदिक महात्माओं ने भी किया है। तरवर तत्व······।—जैसे वृक्षों के पत्ते झड़ भी जाते हैं और फिर नये आ जाते हैं तब वृक्ष वैसा ही सरसब्ज हो जाता है, वैसे ही यह संसार स्वल्प परिवर्त्तन पाकर फिर वैसा ही रूप धारे रहता है।

यहु रसना करत पुकार पिव पिव प्यास है।
वाल्हा जैसें चातक लीन दीन उदास है ॥ २ ॥
ये श्रवन सुनन कौं बैन धीरज नां धरैं।
वाल्हा हिरदै होइ न चैन कृपा प्रभु कब करैं ॥ ३ ॥
मेरे नख शिख तपति अपार दुःख कासौं कहौं।
अब सुन्दर आवै यार सब सुख तौ लहौं ॥ ४ ॥

(२)

मुझ वेगि मिलहु किन आइ मेरा लाल रे।
मैं तेरे बिरह वियोग फिरौं बेहाल रे ॥ (टेक)
हौं निस दिन रहौं उदास तेरे कारनै।
मुझे बिरह कसाई आइ लागा मारनैं ॥ १ ॥
इस पंजर माहैं पैठि बिरह मरोरई।
जैसैं वस्तर धोवी ऐंठि नीर निचोरई ॥ २ ॥
मैं का सनि करौं पुकार तुम बिन पीव रे।
यहु विरहा मेरी लार दुखी अति जीव रे ॥ ३ ॥
अब काहे न करहु सहाइ सुन्दरदास की।
वाल्हा तुमसौं मेरी आइ लगी है आस की ॥ ४ ॥

(३)

विरहनि है तुम दरस पियासी।
क्यौं न मिलौ मेरे पिय अविनासी ॥ (टेक)

[राग गौंड] १ ला पद—वाल्हा="वाल्हा" वा 'बाला' ऐसा शब्द गीतों में प्रत्येक अन्तरे में पादपूर्णार्थ स्त्रियां भी गाती हैं—'हांजी बाला'।

२ रा पद—लाल=प्यारा। लालन।

येते दिन हौं काइ बिसारी, निस दिन झूरि मरत है नारी ॥ १ ॥
बिभचारनि हौं होती नांहीं, लै पतिव्रतहि रही मन मांहीं ॥ २ ॥
तुम तौ बहुत त्रियन संग कीनौ, मैं तौ एक तुमहिं चित दीनौ ॥ ३ ॥
सुन्दरदास भई गति ऐसी, चातक मीन चकोर हि जैसी ॥ ४ ॥

(४)

लागी प्रीति पिया मौं सांची ।
अबहूं प्रेम मगन होइ नांची ॥ (टेक)
लोक वेद डर रह्यौ न कोई, कुल मरजाद कदे की पोई ॥ १ ॥
लाज छोडि सिर फरका डारा, अब किन हंसौ सकल संसारा ॥ २ ॥
भांवै कोई करहु कसौटी, मेरै तनकी घोटी वोटी ॥ ३ ॥
सुन्दर जबलग संका रापै, तबलग प्रेम कहां ते चापै ॥ ४ ॥

(५)

आज दिवस धनि राम दूहाई ।
आये सन्त सकल सुखदाई ॥ (टेक)
मंगलचार भयौ आनन्दा, कमल पिलै ज्यौं देपै चन्दा ॥ १ ॥
भाव अधिक उपज्यौ जिय मेरै, तन मन धन नौछावर फेरै ॥ २ ॥
विनती जोरि करूं दोइ हाथा, वारम्बार नवांऊँ माथा ॥ ३ ॥
मस्तक भाग उदै करि जाना, सुन्दर भेटे संत सयाना ॥ ४ ॥१५५॥

---

३ रा पद—काइ=काहे को । क्यों । झूरि=रो-रो कर । बिसूर-बिसूर कर ।

४ था पद—कदे की=(जैपुरी) कब की ही, बहुत समय की । फरका डारा=पल्ला वा घूंघट उतार डाला ।

५ वां पद—देखै चंदा=नील कमल चन्द्रमा की चांदनी से खिलते हैं । अथवा ऐसे खिलै जैसे पूर्ण चन्द्र होता है । मस्तक भाग उदै करि जाना=सतगुरु की प्राप्ति का होना सिर में लिखा वा सिर पर सूर्य सा भाग्य का उदय हुआ । ऐसा जाना गया । सयाना=बुद्धिमान, ज्ञानी, सतगुरु ।

(१) राग नट

यह तौ एक अचम्भौ भारी।
करहु आप सिर देहु और कै, कैसी रीति तुम्हारी॥ (टेक)
पंच तत्व गुन तीन आनि कै, जुक्ति मिलाई सारी।
आपुन निर्विकार होइ बैठे, हमकौं किये विकारी॥ १॥
जड की शक्ति कहां को स्वामी, देषहु दृष्टि निहारी।
हलन चलन चम्पक तें दीसै, सुई न चलत विचारी॥ २॥
माया मोह लगाई सबन कौं, मोहे नर अरु नारी।
ममता मच्छर अहंकार की, पांसि गरे मैं डारी॥ ३॥
ठग विद्या नीकी जानत हौ, बड़े चतुर व्यापारी।
हम कौं दोष न देहु गुसांई, सुन्दर कहत उचारी॥ ४॥

(२)

बाजी कौंन रची मेरे प्यारे।
आपु गोपि ह्वै रहे गुसांई, जग सब ही तैं न्यारे॥ (टेक)
ऐसौ चेटक कियौ चेटकी लोग भुलाये सारे।
नाना विधि के रङ्ग दिपावै, राते पीरे कारे॥ १॥
पांप परेवा धूरि सु चावल, लुक अंजन विस्तारे।
कोई जानि सकै नहिं तुमकौं, हुन्नर बहुत तुम्हारे॥ २॥

[राग नट] १ ला पद—करहु आप······ इस पद में ईश्वर के कर्त्ता और अकर्त्ता होने को सुन्दरता से दिखाया है। जड़माया केवल चेतन ब्रह्म के सकाश से सृष्टि रचना करती है। इस कारण वास्तव में कर्तृत्व की शक्ति ब्रह्म ही में घटती है। परन्तु ईश्वर सिद्धांत में अकर्त्ता ही माना जाता है, निर्गुण निर्विकार होने से। यही तो विचित्रता है। व्यापारी—व्यापारी को भी ठग कहने से इन्द्रजाल का अभिप्राय है।

ब्रह्मादिक पुनि पार न पावै, मुनि जन षोजत हारे।
साधक सिद्ध मौंन गहि बैठे, पंडित कहा बिचारे॥ ३॥
अति अगाध अति अगम अगोचर, च्यारौं वेद पुकारे।
सुन्दर तेरी गति तू जानै, किनहुं नहीं निरधारे॥ ४॥

(३)

तेरी अगम गति गोपाल।
कौंन जानै यह कहां तें कियौ ऐसौ ष्याल॥ (टेक)
को कहत है करम करता, को कहत है काल।
को कहत है न को करता, सबै मारत गाल॥ १॥
को कहत है ब्रह्म माया, हैं अनादि बिसाल।
को कहत है सब सुभावै, स्वर्ग मृति पाताल॥ २॥
जूवा जूवा मत बषानै जूई जूई चाल।
अंति सबही कूदि थाके, मृग की सी फाल॥ ३॥
वार पार कहूं न दीसै, कहूं मूल न डाल।
देषि सुन्दर भये चकित, सब ठगे से लाल॥ ४॥

(४)

देषहु, अकह प्रभू की वात।
एक बून्द उपाइ जल की, रची सातौ धात॥ (टेक)

---

२ रा पद—पांख परेवा=रांख का पखेरू (परिंद) बना देना। धूरि चावल= मिट्टी के चांवल बना देना। ये सब बाजीगर खेल दिखाते हैं। लुक अंजन=भुरकी का काजल, जिससे आदमी गुप्त हो जाय ऐसा भी।

३ रा पद—न को कर्त्ता=अकर्त्ता। मारत गाल=बकने, जल्पना करते हैं। जूवा, जुदा,—भिन्न भिन्न। ठगे से लाल=बालक जो ठगा गया।

साजि नख सिख अति अनूपम, कियौ चेतनि गात।
जोनि द्वारैं जनम पायौ, पुत्र जान्यौ मात॥ १॥
पुष्टि नित प्रति होंन लागौ, चलन पीवत पात।
बाल लीला रमत बहु बिधि, सबन अंग सुहात॥ २॥
बहुरि जोवन निरषि निज तन, कहीं ते न सँकात।
मन मनोरथ बहुत कीनें, छल छद्म उतपात॥ ३॥
जरा कंप्यौ सीस कंप्यौ, तज्यौ सब संघात।
कहत सुन्दर मरन पायौ, जीव यौं कहां जात॥ ४॥१६६॥

(१) राग सारंग

मेरौ पिय परदेश लुभानौ री।
जानत हौं अजहूं नहिं आये, काहू सौं उरझानौ री॥ (टेक)
ता दिन तें मोहि कल न परत है, जबतें कियौ पयानौ री।
भूष पियास नींद नहिं आवै, चितवत होत बिहानौ री॥ १॥
बिरह अग्नि मोहि अधिक जरावै, नैंननि में पहिचानौ री।
बिन देषें हौं प्रान तजोंगी, यह तुम साची मानौरी॥ २॥
बहुत दिनन की पथ निहारत, किनहुं संदेस न आनौ री।
अब मोहि रह्यौ परत नहिं सजनी, तन तें हंस उडानौ री॥ ३॥
भई उदास फिरत हौं व्याकुल, छूटौ ठौर ठिकानौ री।
सुन्दर बिरहनि कौ दुख दीरघ, जो जानै सो जानौ री॥ ४॥

---

४ था पद—छदम=छद्म, कपट लीला।

[राग सारंग] १ ला पद—उरझानौं=उलझा, विमला। रम गया। पयानौ=प्रयाण, गमन। विहानौ=बेहाल, व्यग्र। हंस=जीवरूपी पखेरु (उड़नेवाला है)।

कमल बन्ध

छप्पय
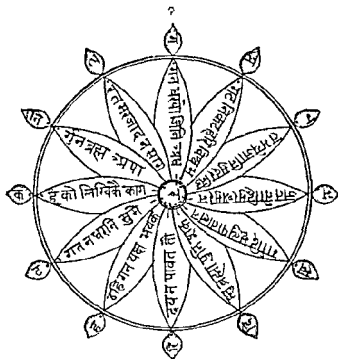
गगन धर्‍यो जिनि अधर टरत मरजाद न सागर।
निर्गुन ब्रह्म अपार कहे को लिखि है कागर॥
टगत न धरनि सुमेर हठहि गन यक्ष भयंकर।
हृदय न पावत ठौर विष्णु ब्रह्मा पुनि शंकर॥
स्वर्गादि मृत्यु पाताल तर भजन तोहि सुर असुर नर।
रत भये जानि सुन्दर निडर प्रगट निरन्तर हरि विश्व भर॥

पढ़ने की विधि

"गगन' शब्द के 'गकार' पर १ का अङ्क है—वहाँ से प्रारम्भ करके बाईं ओर की पँखुड़ियों के चरणों को पढ़ते जायँ। अन्त का चरण 'सुन्दर' वाली पंक्ति में है।

यह छप्पय चित्रकाव्य ही में है, ग्रंथ में नहीं है।

(२)

अंधे, सो दिन काहे भुलायौ रे।

जा दिन गर्भ हुतौ ऊंधे मुख, रक्त पीत लपटायौ रे ॥ (टेक)

बालपनै कछु सुधि नहीं कीनी, मात पिता हुलरायौ रे।
पेलन पान गये दिन यौंही, माया मोह बंधायौ रे ॥ १ ॥
जोबन माँहिं काम रस लुबधौ, कामनि हाथ बिकायौ रे।
जैसें बाजीगर कौ बानरा, घर घर बार नचायौ रे ॥ २ ॥
तीजापन में कुटंब भयौ तब, अति अभिमान बढ़ायौ रे।
मेरी सरभरि करै न कोई, हौं बाबा कौ जायौ रे ॥ ३ ॥
बिरध भयौ सिर कंपन लागौ, मरनै कौ दिन आयौ रे।
सुन्दरदास कहै संमुझावै, कबहूं राम न गायौ रे ॥ ४ ॥

(३)

कौनै भ्रम भूले अंधला।

अपना आप काटि कै मूरष, आपुहि कारन रंधला ॥ (टेक)

मात पिता दारा सुत सम्पति, बहु बिधि भाई बंधला।
अन्तकाल कोइ काम न आवै, फोकट फाकट धंधला ॥ १ ॥
गये बिलाइ देव अरु दाना, होते बहुतक मंधला।
तुम कहा गर्ब गुमान करत हौ, नख शिख लौं दुरगंधला ॥ २ ।
या मुख मैं कछु नाहिं भलाई, काल बिनासै कंधला।
सुन्दरदास कहै संमुझावै, राम भजहु निरसंधला ॥ ३ ॥

---

२ रा पद—हुलरायौ=हाल्रा दिया, पलने में लडाया, हिलाया झुलाया। बार=द्वार पर, बाहर।

३ रा पद—रंधला=रंध गया, सीझ गया। 'ला' अक्षर प्रायः स्वार्थ प्रत्यय वा बहुत का बोधक है यह गुजराती भाषा का लटका दिखाता है। बंधला=बंधा। या

(४)

देषहु दुरमति या संसार की।

हरि सो हीरा छाडि हाथ तें बांधत मोट विकार की॥ (टेक)

नाना विधि के करम कमावत, षबरि नहीं सिर भार की।
झूठै सुख मैं भूलि रहे है, फूटी आंषि गंवार की॥ १॥
कोई षेती कोई बनजी लागे, कोई आस हथ्यार की।
अंध धंध मैं चहुं दिशि धाये, सुधि बिसरी करतार की॥ २॥
नरक जानि कैं मारग चाले, सुनि सुनि बात लबार की।
अपने हाथ गले मैं बाही, पासी माया जार की॥ ३॥
बारम्बार पुकार कहत हौं, सौं है सिरजनहार की।
सुन्दरदास बिनस करि जैहै, देह छिनक मैं छार की॥ ४॥

(५)

या मैं कोऊ नहीं काहू को रे।

राम भजन करि लेहु बावरे, औसर काहे चूकौ रे॥ (टेक)

जिनसौं प्रीति करत है गाढी, सो मुख लावैं लूकौ रे।
जारि बारि तन षेह करैंगे, देदे मूड ठरूकौ रे॥ १॥
जोरि जोरि धन करत एकठौ, देत न काहू टूकौ रे।
एक दिना सब यौं ही जैहै, जैसें सरवर सूकौ रे॥ २॥
अजहूं वेगि संमुझि किन देषौ, यह संसार बिभूकौ रे।
माया मोह छाडि करि बौरे, सरन गहौ हरिजू को रे॥ ३॥

बहुत भाई बन्धु। मंधला=मन्दिरवाले। स्वर्ग वाले। कधला=केले के गोभे की तरह या घंधर-गर्दन तोड़कर।

४ था पद—दुरमति=दुर्मति=खोटी बुद्धि। उल्टी समझ। लबार=झूठा उपदेशक या गुरु। बाही=मारी, डाली। जार=जाल। सौं=सौगन्द, दुहाई।

प्रान पिंड सिरजे जिनि साहिब, ताकों काहे न कूकौ रे।
सुन्दरदास कहै संमुझावै, चेला है दादू कौ रे॥ ४॥

(६)

स्वामी पूरन ब्रह्म विराजहीं।
सदा प्रकाश रहै जिनकै उर, भरम तिमिर सब भाजहीं॥ (टेक)
भाव भगति अरु प्रेम मगन अति, रोम रोम धुनि बाजहीं।
ज्ञान ध्यान सबही निधि पूरन, सकल भवन में गाजहीं॥ १॥
दीनदयाल परम सुखदाई, करत सबनि कौ काजहीं।
जिनकी महिमा जाइ न बरनी, फेरि संवारत साजहीं॥ २॥
अति अपार भवसागर तारत, दैकरि नाम जिहाजहीं।
अनायास प्रभु पारि करत हैं, बाह गहे की लाजहीं॥ ३॥
किये प्रगट जगदीस जगत में, नाना भांति निवाजहीं।
सुन्दरदास कहै गुरु दादू, हैं सबके सिरताजहीं॥ ४॥

(७)

बलिहारी हूं उन संत की।
जिनकै और झौर कछु नाहीं, कहैं कथा भगवंत की॥ (टेक)
शीतल हृदय सदा सुखदाई, दया करैं सब जंत की।
देषि देषि वै मुदित होत हैं, लीला आप अनन्त की॥ १॥
जिन तें गोपि कहूं कछु नाहीं, जानत आदि रु अन्त की।
सुन्दरदास कहै जन तेई, राषत बात सिद्धन्त की॥ २॥

---

५ वां पद—या मैं=इस सृष्टि में। लूकौ=लूका, फीका। ठक्कौ=ठरका, कपाल क्रिया मे नरिल से कपाल में ब्रह्मरध्र पर ठकोरा लगा कर माथा खोलना जिससे भेजे का दाह शीघ्र हो जाय। विमूरा=चमका। कूकौ=पुकारो रटो।

७ वां पद—और झौर=अन्य झोड़, झगड़ा। वा उरझार, उलझन।

(८)

आये मेरे अलष पुरुष के प्यारे ।

परम हंस अतिसै करि सोभित निर्मल दशा निहारे ॥ (टेक)

देषत ही शीतलता उपजी मिलत सकल अघ जारे ।

वचन सुनत भै भ्रम सब भागे, संसै सोक निवारे ॥ १ ॥

चरणामृत लेत ही परम सुख, उपज्यौ आज हमारे ।

शीत पाइकैं मुक्त भये है, काटे बन्धन सारे ॥ २ ॥

महिमा अनंत कहां लग बरनौं, कहित कहित कहि हारे ।

आप सरीषे किये तुरत ही, सुन्दर पार उतारे ॥ ३ ॥

(९)

सन्तनि जब गृह पाव धरे ।

धन्य दिवस सोइ घरी महूरत, जा क्षण दृष्टि परे ॥ (टेक)

अति आनन्द भयौ मन मेरे, बिगसत अंक भरे ।

करि दण्डौत प्रदक्षिण दीनी, नखशिख अंग ठरे ॥ १ ॥

विनती बहुत करी तिन आगे, दीन बचन उचरे ।

होइ प्रसन्न मन्दिर महिं आये, पावन धाम करे ॥ २ ॥

चरण पषालि लियौ चरनौदिक, पूरब पाप गरे ।

सुन्दर तिनकौ दरसन पावत, कारिज सकल सरे ॥ ३ ॥

(१०)

करि मन उनि सन्तनि की सेवा ।

जिनकै आंन भरोसा नाहीं, भजहिं निरंजन देवा ॥ (टेक)

---

८ वां पद—शीत=महा प्रसाद ।

९ वां पद—ठरे=ठई=दंडायमान हुए । पसरे ।

सील सन्तोष सदा उर जिनके, राम नाम के लेवा।
जीवत मुक्त फिरै जग महिया, उरझे कौ सुरझेवा ॥ १ ॥
जिनके चरण कंवल कौं वंछत, गंगा जमुना रेवा।
सुन्दरदास इन्हुं की संगति, मिलि है अलप अभेवा ॥ २ ॥

(११)

राम निरञ्जन की बलिहारी।
रूप रेख कछु दृष्टि परै नहिं कौंन सकै निरधारी ॥ (टेक)
जाकौ कीयौ जगत नाना विधि यह माया विस्तारी।
कीमति कोऊ कहै कहा कहि नहिं हलुका नहिं भारी ॥ १ ॥
सब घट व्यापक अन्तरजामी चेतनि शक्ति तुम्हारी।
सुंदर शक्ति काढि जब लीनी रूसि रहे नर नारी ॥ २ ॥

(१२)

अहो यहु ज्ञान सरस गुरुदेव कौ, जाके सुनत परम सुख होई।
सहज मिलै परब्रह्म कौ कष्ट कलेश न कोई ॥ (टेक)
कछु संसय सोक रहै नहिं निकसि जाइ सब सालो।
ज्यौं अंमृत के पीवतें अमर होइ ततकालो ॥ १ ॥
सत संगति मिलि खेलिये जुग जुग फाग बसन्तो।
राम रसांइण पीजिये कबहुं न आवै अन्तो ॥ २ ॥
अनहद बाजा बाजही अन्तहकरण मंझारो।
कंवल प्रफुल्लित होत है लागै रङ्ग अपारो ॥ ३ ॥

---

१० वां पद—महिवां=मांही, अन्दर । रेवा=रेवा नदी, नर्मदा नदी। अभेवा=अखंड, अद्वैत, भेद रहित।

११ वां पद—रूसि रहे'''=शक्तिहीन पुरुष को स्त्री पसन्द नहीं करती। और शक्ति रहित स्त्री को पुरुष नहीं चाहता। अर्थात् व्यर्थ निरर्थक निकम्मे हो गये।

भानि उदै ज्यौं होतही अन्धकार मिटि जाये।
सुन्दर ज्ञान प्रकाशतें ब्रह्मानन्द समाये ॥ ४ ॥

(१३)

पहली हम होते छोकरा।
ब्रह्म विचार वनिज हम कीयौ ताही तें भये डोकरा ॥ (टेक)
भली वस्तु संचय करि रापी लेनें आवे लोकरा।
यह उधारि को सोदा नाहीं दीजे लीजे रोकरा ॥ १ ॥
जो कोइ गाहक लेत प्यार सौं ताकौ भागै सोकरा।
सुन्दर वस्तु सत्य यह यौंही और वात सब फोकरा ॥ २ ॥

(१४)

पहली हम होते छोहरा।
कौडी वेच पेट निठि भरते अवतौ हूये वोहरा ॥ (टेक)
दे इकोतरासई सबनि कौं ताही तें भये सोहरा।
ऊंचौ महल रच्यौ अविनाशी तज्यौ परायौ नोहरा ॥ १ ॥
हीरा लाल जवाहिर घर मैं मानिक मोती चौहरा।
कौंन वात की कमी हमारे भरि भरि रापे भौंहरा ॥ २ ॥
आगे विपति सही बहुतेरी वै दिन काटे दोहरा।
सुन्दरदास आस सब पूगी मिलियौ राम मनोहरा ॥ ३ ॥

---

१३ वां पद—लोकरा=लोगबाग। लोक के पुरुष। सोकरा=शोक, दुःख। फोकरा=तुच्छ (फोक माफ जैसी रही)।

१४ वां पद—इकोतरासई=एक रुपया सैंकड़ा पीछे ब्याज। सोहरा=सुखी। नोहरा=मुख्य मकान के सम्बन्धी दूसरा मकान जिसमें पशु, घास आदि रखते जाते हैं। चौहरा=मोती की चौ लड़ा कीमती। अथवा चुपरी हुई हुई चौतर मैं ज्यौं

(१) राग मलार

अब हम गये राम (जी) के सरनैं।
या बिन और नहीं कोइ संश्रय, मेटै जामन मरनैं ॥ (टेक)
भटकत फिरे बहुत दिन तांई कहूं न पार उतरनैं।
आन देव की सेवा करि करि, लागे बहुत हिंजरनैं ॥ १ ॥
काहू ऊपरि कियौ बहुत हठ, काहू ऊपर धरनैं।
दीजै दोष करम अपनै कौं, वै दिन यौं ही भरनैं ॥ २ ॥
औतारन्हि की महिमा सुनि सुनि, चाले तीरथ फिरनैं।
हम जान्यौं येई परमेश्वर, पायौ उनहुं कौ निरनैं ॥ ३ ॥
बहुत कृपा कीन्ही तब सतगुरु, आये कारजि करनैं।
दियौ बताइ पुरुष वह एकै, सुन्दर का कहि धरनैं ॥ ४ ॥

(२)

देषौ भाई आज भलौ दिन लागत।
बरिषा रितु को आगम आयौ, बैठि मलारहिं रागत ॥ (टेक)
राम नाम के बादल उनये, घोरि घोरि रस पागत।
तन मन मांहिं भई शीतलता गये विकार जुदागत ॥ १ ॥
जा कारनि हम फिरत बियोगी, निशि दिन उठि उठि जागत।
सुन्दरदास दयाल भये प्रभु सोई दियौ जोई मागत ॥ २ ॥

(३)

पिय मेरे बार कहा धौं लाई।
ऋतु बसन्त मोहि वा बिधि बीती, अब बरिषा ऋतु आई ॥ (टेक)

और चवाहरात की। चौलड़ी मोती की। चौगुनी। मौंहरा=तहखाना। गोदाम।
दोहरा=दोरै रहकर, दुखी होकर।

[राग मलार] १ ला पद—जामन मरनैं=जन्म मरण, जन्मांतर। हिंजरनैं=शोक करने, पछतावे।

बादल उमगि चले चहुं दिशि तें, गरज सुनी नहिं जाई।
दामिनि दमक करेजा कम्पै, बून्द लगत दुखदाई ॥ १ ॥
कारी रैनि अन्धारी देषत, बारी वैस डराई।
जारी विरह पुकारी कोकिल, भारी आगि लगाई ॥ २ ॥
दादुर मोर पपीहा पापी, लखत न पीर पराई।
ये सु जरे परि लौंन लगावन, क्यों जीऊं मेरी माई ॥ ३ ॥
ऐसी विपति जानि प्रभु मेरी, जो कहुं देहि दिषाई।
सुन्दरदास विरहनी व्याकुल, मृतकहिं लेहु जिवाई ॥ ४ ॥

(४)

हम पर पावस नृप चढि आयौ।
बादल हस्ती हवाई दामिनि, गरजि निसान बजायौ ॥ (टेक)
पवन तुरङ्गम चलत चहुं दिश, बून्द बान झर लायौ।
दादुर मोर पपीहा पाइक, मारै मार सुनायौ ॥ १ ॥
दशहू दिशा आइ गढ घेर्यौ, विरहा अनल लगायौ।
अइये कहां भागि कै सजनी, रजनी दुन्द उठायौ ॥ २ ॥
को अब करै सहाइ हमारी, पिय परदेश हि छायौ।
सुन्दरदास विरहनी व्याकुल, करिये कौंन उपायौ ॥ ३ ॥

(५)

परम हिंडोलना झूलत सब संसार।
है हिंडोल अनादि को यह फिरत वारम्वार ॥ (टेक)
दोइ खम्भ सुख दुख अडिग रोपे, भूमि माया माहिं।
मिथ्यात ममता कुमति कुदया, चारि डांडी आहिं ॥

३ रा पद—कारी रैन=घन का अन्धारा।
४ था पद—हवाई=गुब्बारा। पाइक=पैदल सिपाही।

पाप पटली पुन्य मरवा, अधो ऊरध जांहिं।
सत्व रज तम देहिं झोटा सूत्र पैंचि झुलाहिं॥ १॥
तहां शब्द सपरश रूप रस घन, गन्ध तरु विस्तार।
तहां अति मनोरथ कुसुम फूले, लोभ अलि गुंजार॥
चक्रवाक मोर चकोर चातक पिक ऋषीक उचार।
तरल तृष्णा बहत सरिता, महा तीक्षण धार॥ २॥
यह प्रकृति पुरुष मचाइ राख्यौ, सदा करम हिंडोल।
सजि विविधि रूप बिकार भूषन, पहरि अंगनि चोल॥
एक नृत्यत एक गावत, मिलि परस्पर लोल।
रति ताल मदन मृदंग बाजत, दुन्दु दुन्दुभि ढोल॥ ३॥
यहि भांति सबही जगत झूलै, छ रुति बारह मास।
पुनि मुदित अधिक उछाह मन मैं, करत विविधि बिलास॥
यौं झूलतैं चिरकाल बीतौ, होत जनम बिनास।
तिनि हारि कबहूं नांहिं मानी, कहत सुन्दरदास॥ ४॥

(६)

देषौ भाई ब्रह्माकाश समानं।
परब्रह्म चैतन्य व्योम जड यह विशेषता जानं॥ (टेक)
दोऊ व्यापक अकल अपरमिति दोऊ सदा अखंड।
दोऊ लिपैं छिपैं कहुं नांहीं पूरन सब ब्रह्मण्ड॥ १॥

---

५ वां पद—इस पदमें कर्म बन्धन को हिंडोले से रूपक बांधा है। इस प्रकार का वर्णन अन्य महात्माओं ने भी किया है। सूत्र=रस्सी। तीन गुण (तंतु वा तार) से बनी है। अलि=भौंरा। चक्रवाक=चकवा पक्षी। ऋषीक=ऋषि पुत्र। वा ऋष्यक=हिरन। (यह शब्द किस प्रयोजन से दिया गया है सो स्पष्ट नहीं होता है। स्यात् लेख दोष हो)। लोल=लटके से खेल करते हुए वा चंचल। वा लालची। दुंदु=द्वंद, द्वैत भाव। सुखदुःखादि।

ब्रह्म मांहिं यह जगत देषियत ब्योम मांहिं घन यौंहीं।
जगत अभ्र उपजैं अरु बिनसैं वैहै ज्यौं के त्यौं हीं॥ २॥
दोऊ अक्षय अरु अविनाशी दृष्टि मुष्टि नहिं आवैं।
दोऊ नित्य निरंतर कहिये यह उपमान बतावैं॥ ३॥
यह तौ येक दिषाई है रुप, भ्रम मति भूलहु कोई।
सुन्दर कंचन तुलै लोह संग, तौ कहा सरभरि होई॥ ४॥

(१) राग काफी

इन फाग सबनि कौं घर षोयौ, हो।
अहो हौं, कहत पुकारि पुकारि॥ (टेक)
सुनि सुनि लीला कृष्ण की हो, दूनौं उपज्यौ काम।
बूडे काली धार मैं हो, कतहूं नहिं बिश्राम॥ १॥
पंडित पैंडौ मारियौ हो, कहि कहि ग्रन्थ पुरान।
सूतौ सर्प जगाइयौ हो, फिरि फिरि लागौ पान॥ २॥
पहलैं आगि परै हुती हो, पूला नाष्यौ आइ।
रोगी कौं रोगी मिलै तौ, ब्याधि कहां तैं जाइ॥ ३॥
माया ऐसी मोहनी हो, मोहे हैं सब कोइ।
ब्रह्मा बिष्णु महेस की हो, घर घरनी भइ सोइ॥ ४॥
चन्द्रवदन मृगलोचनी हो, कहत सकल संसार।
कामिनि बिष की बेलडी हो, नख शिख भरी बिकार॥ ५॥
देषत ही सब परत हैं हो, नरक कुंड के मांहिं।
या नारी के नेह सौं हो, बेगि रसातलि जांहिं॥ ६॥

६ इस पद—इसमें आकाश से ब्रह्म की तुलना की है। आकाश से ब्रह्म की सूक्ष्मता, व्यापकता आदि बताये हैं। "खं ब्रह्म" इस श्रुति वाक्य से (ख) आकाश को ब्रह्म से उपमा दी है।

नारी घट दीपग भयौ हो, ता मैं रूप प्रकाश।
आइ परै निकसै नहीं, करत सबनि कौ नाश॥ ७॥
जरि जरि मुये पतंग ज्यौं हो, गये जन्म कौं रोइ।
सुन्दरदास कहा कहै हो, संत कहै सब कोइ॥ ८॥

(२)

मेरे मीत सलौने साजना हो।
अहो तुम, काहे न दरसन देहु॥ (टेक)
आयौ फाग सुहावनौ हो, सब कोई करत सिंगार।
मेरी छतिया दौं जरै हो, कबहु न बुझत अंगार॥ १॥
अपनै अपनै घर घर कामनि, पेलत पिय की जोर।
देषि देषि सुख औरु सषिन कौ, कटत करेजा मोर॥ २॥
चोवा चन्दन केसरि कुम कुम, उडत गुलाल अबीर।
हौं तुम बिन मेरे प्रान पियारे, कैसैं के रापौं धीर॥ ३॥
बाजत चङ्ग उपंग पषावज, राइ गिरगिरी ढोल।
सुनि सुनि बिरहनि के मन महिया, सालत सब के बोल॥ ४॥
बार बार मोहि बिरह सतावै, कल न परत पल एक।
कहि जु गये ते बेगि मिलन की, बीते दिवस अनेक॥ ५॥
तुम जिनि जानौं है बिभचारनि, हौं पतिबरता नारि।
और पुरुष भईया सम मेरे, यह तुम लेहु बिचारि॥ ६॥
सुरति कोकिला रसना चातक, पिव पिव करत बिहाइ।
नैंन चकोर भये मेरे प्यारे, निश दिन निरपत जाइ॥ ७॥
अब मोहि दोष कछू नहिं लागै, सुनियौ दोऊ कान।
सुन्दर बिरहनि कहत पुकारै, तुरत तजौंगी प्रान॥ ८॥

[राग काफी] १ ला पद—घर घरनी=पत्नी, स्त्री। २ रा पद—दौं=अग्नि।

(३)

मोहि फाग पिया बिन दुख भयौ हो।
अहो हौं कैसी करौं कत जांउं ॥ (टेक)
जब हौं देषौं उडत गुलाल हि, केसरि की झकझोरि।
तबहिं सु मेरै आगि लगत है, हियरे मैं उठत मरोरि ॥ १ ॥
जब हौं सुन्यौ झिमझ्झ बाजत, बीना ताल मृदंग।
तबहिं सु बिरह बान मोहि मारै, बेधत नख सिख अंग ॥ २ ॥
कै हौं जाइ परौं गिरवर तें, कै कूप धस दैव।
कै हौं तलफि तलफि तन त्यागौं, कै सिर करवत लैव ॥ ३ ॥
है कोउ पथिक- संदेस हमारौ, प्रीतम सौं कहै जाइ।
सुन्दर बिरहनि प्रान तजत है, बेगि मिलहु किन आइ ॥ ४ ॥

(४)

रमइया मेरा साहिबा हो।
अहो मैं सेवग पिजमतिगार ॥ (टेक)
पाव पलौटौं पंपा ढोलौं, निस दिन रहौं हजूरि।
जो फुरमावौ सो करि आऊं, कबहुं न भाजौं मैं दूरि ॥ १ ॥
जो पहिरावौ सोई पहिरौं, जो तुम देहु सु पाउं।
द्वार तुम्हारो कबहुं न छाडौं, अनत कहूं नहिं जाउं ॥ २ ॥
तुम्हरे घरके पाले पोसे, तुमही लिये बुलाइ+।
ज्यौं भानै त्यौं राषि गुसांई, उजर कियौ नहिं जाइ ॥ ३ ॥

झोर=झोक, झोंकी बनकर। राइ गिरगिरी=एक प्रकार की सारंगी या बड़ा चिकारा।
बेल=बजा, दोरा=आ मपन का पन।

३ ॥ पद—झिम=झांझ। देव=देवै। लैव=लेवौं। ० मूलप्रति पु० में 'पथक' पाठ है जो लेख दोष ही जानें।

जौ रीझहु तौ इतनौ दीज्यौ, लेउं तुम्हारौ नाम।
और कछू अब मांगत नाहीं, सुन्दरदास गुलाम ॥ ४ ॥

(५)

पिय खेलहु फाग सुहावनौ हो।
अहो यह आयौ है फागुन मास ॥ (टेक)
ज्ञान गुलाल करौं नाना विधि, तन मन केसरि घोरि।
चित चन्दन लै छिरकौं ललना, जौं न चलौ मुख मोरि ॥ १ ॥
अनहद शब्द झांझि डफ बाजैं, ताल मृदंग उपंग।
सुमिति पिचक लै धाऊं ललना, भरहिं परस्पर अंग ॥ २ ॥
उततैं तुम इततैं हम होइ करि, मांझ करहिं झकझोर।
देखैं अबहिं कवनधौं जीतै, बहुत करत तुम सोर ॥ ३ ॥
हम हैं पंच पचीस सहेली, तुम जु अकेले राइ।
चहूं दिशातें पकरि राषिहैं, कैसैं कै जाहु छुड़ाइ ॥ ४ ॥
जोरावर तुम अधिक सुने हो, बहुतनि पै गये भागि।
तौ जानौं जौ अबहि छूटि हौ, लपटि रहौं गर लागि ॥ ५ ॥
अबहिं सु मेरौ दाव बन्यौ है, गारी देत हौं तोहि।
और और त्रिय कै संग राते, बिसरि गये कहा मोहि ॥ ६ ॥

---

४ था पद—खिजमतिगार=(फा०) खिदमतगार=नोकर, सेवक। +'मुलाइ'= भुलाइ, बैला पुचकार कर बच्चों की तरह रक्खे। यह लेख दोष से भ का म लिखा गया ऐसा प्रतीत होता है, क्यों कि 'मुलाइ' का कुछ अर्थ नहीं होता है (?)। परन्तु व्यापारियों की बोली में 'मुलाई करना' सौदा करना, मोल लेना देना करना कहा जाता है। इस पर से 'लिये मुलाइ' का अर्थ 'मोल लिये' ऐसा हो सकता है। यह अर्थ बा० रघुनाथप्रसादजी सिंहाणिया से हमें ज्ञात हुआ तदर्थ धन्यवाद। यही अर्थ उत्तम और संगत है। इस अर्थ को लेने से 'मुलाइ' पाठ

माइ न बाप कुटंब नहि तुम्हरें, निगुसायें हो नाहु।
समय जानिकै हंसि बोलत हौं, जिनि कछु जियहि रिसाहु॥ ७॥
फगुवा हमसु कछू नहि लैहैं, तुमहि न दैहैं जांन।
सुन्दर नारि छाडिहैं कैसें, हो हो कंत सुजान॥ ८॥

(६)

हरि आप अपरछन ह्वै रहे हो।
ताहि लिपै छिपै कछु नाहि॥ (टेक)
ॐकार की आदि दै हौं और सकल ब्रह्मण्ड।
पेलत माया मोहनी हो सप्त दीप नौ षंड॥ १॥
ब्रह्मा सावत्री मिले हो विष्णु लक्ष्मी संग।
शंकर गौरि प्रसिद्ध है हो ये माया के रंग॥ २॥
नाना विधि ह्वै विस्तरी हो षेलन लागी फाग।
ब्रह्म न काहू मिलन दे हो रोकि रही सब माग॥ ३॥
माया जडसु कहा करै हो प्रेरक औरै कोइ।
ज्यौं बाजीगर पूतली हो हाथ नचावै सोइ॥ ४॥
लोक चेष्टा करत हैं हो सूरज कै जु प्रकास।
ताहि कछू व्यापै नहीं हो हरष सोक दुख त्रास॥ ५॥

ठीक है और 'भुआइ' बनाना आवश्यक नहीं रहता है। इस अर्थ की सहायता से 'शब्दसागर कोष' में 'भोलाई' शब्द मिल गया जिसका अर्थ भाल पूछना या बातें करना है। (स०)

५ वां पद—पिचक=पिचकारी। निगुसायें=बिन धणी गुसाईं वाला। नाहु=नाह, नाथ। सुंदर नारि=सुंदरदास नाम की नारी। अथवा रूपवती नारी, स्त्री। जो तुम्हें नहीं छोड़ैगी। अथवा ऐसी सुंदरी नारी को फिर तुम क्यों छोड़ोगे अर्थात् सदा ही अपनी कर रक्खोगे।

अहंकार कौं धरत है हो तबलग जीव प्रमांन।
अंधकार तब भागि है हो जब सु उदै होइ भांन ॥ ६ ॥
जीव शीव अंतर इहै हो देषहु प्रगट हि नैंन।
जैसें जलतें ऊपजै हो तरंग बुद्बुदा फैंन ॥ ७ ॥
परमारथ करि देषिये तौ है सब ब्रह्म विलास।
कहन सुनन कौं दूसरौ हो गावत सुन्दरदास ॥ ८ ॥

(७)

बहुतक दिवस भये मेरे सम्रथ सांईया।
कोऊ कागर हू न पठाइ संदेस सुनांईया ॥ (टेक)
पंथ निहारत आइ उपाइ किये घने।
मोहि असन बसन न सुहाइ तजे सुख आपने ॥ १ ॥
कल न परत पल एक नहीं जक जीयरा।
यह सूकि गई सब देह भया मुख पीयरा ॥ २ ॥
भूष न प्यास उदास फिरौं निस बासरा।
इन नैंन न आवत नींद नहीं कछु आसरा ॥ ३ ॥
दूभर रैनि विहाइ रहौं क्यौं एकली।
मैं छाडे सकल सिंगार लई गलि मेषली ॥ ४ ॥
चन्दन पौरि तजीर भस्म लगाई है।
कछु तेल फुलेल न सीस जटा सु बढ़ाई है ॥ ५ ॥
जोगनि होइ रही जग मोहन कारनै।
तुम काहे न दरसन देहु करौं तन वारनै ॥ ६ ॥

---

६ ठा पद—ऊँकार की आदि है... ।—"ओंकार थे ऊपजै . । पहली कीया आपर्यं उतपति ओंकार। ओंकार थैं ऊपजै पचतत्त आकार।...। (दादू बाणी। अंग २२)।

मेरी पून पना अब कौंन कहीं फिन रावरे।
तेरी सूरति की बलि जाउं मेरें गृह आवरे॥ ७॥
सुन्दर बिरहनि के पीव गहर न लाइये।
मोहि मिहरि मया करि बेगि दरस दिपाइये॥ ८॥

(८)

तूंही तूंही तूंही तूंही तूंही तूंही सांई।
क्यौं ही क्यौं ही क्यौं ही क्यौं ही दरस दिपाई॥ (टेक)
पीव पीव पीव पीव रसना पुकारै।
रटत रटत तोहि कबहूं न हारै॥ १॥
निस दिन नख शिख रोम रोम टेरै।
पल पल छिन छिन नैंन मग हेरै॥ २॥
सोचि सोचि ससकत सास उसासा।
धपि धपि उठत रगत अरु मांसा॥ ३॥
बार बार सुन्दर बिरहनी सुनावै।
हाइ हाइ हाइ तुम मिहर न आवै॥ ४॥

(९)

पीव हमारा, मोहि पियारा,
कब देषौंगी मेरा प्रान अधारा॥ (टेक)

---

७ वां पद—कागर=कागज़ (फा०)। गलि=गले में। सेपली=साधुओं के पहनने का छोटा चौकोरा वस्त्र जिसको बीच में से कटा या खुला रखकर गले में डाल लेते हैं जिससे अग टक जाय। तजीर=तज दी, और। अथवा तजीर=तजदेही तुरंत। (भस्म लगाली)। गहर=गाढ़ी, कड़ापन।

८ वां पद—धपि धपि=जल कर, वा धड़क २ कर।

ये सषी इहै अंदेसा, पायौ न संदेसा।
काहे तें बिरमि रहे परदेसा॥ १॥
ये सषि फिरौं उदासा, भूष न प्यासा।
कब पुरवैंगे मेरे मन की आसा॥ २॥
ये सषि बिरह सतावै, नींद न आवै।
कठिन कठिन करि रैंनि बिहावै॥ ३॥
ये सषि अजहुं न आया, किन बिरमाया।
सुन्दर बिरहनि अति दुख पाया॥ ४॥

(१०)

आज तौ सुन्यौ है माई संदेसौ पिया को।
प्रफुलित भयौ मेरौ कंवल हिया को॥ (टेक)
करौंगी सिंगार घसि चन्दन लगाऊं।
सेजरी संवारूं तहां फूलरे बिछाऊं॥ १॥
मेरौ गृह आइ मोहि देहिंगे सुहागा।
पेलौंगी परसपर बडे मेरे भागा॥ २॥
परम पुरुष मेरा पीव अबिनासी।
देषौंगी नैंन भरि सब सुख रासी॥ ३॥
जन्म सुफल करि लैउंगी मैं लाहा।
सुन्दर बिरहनि कै भयौ है उछाहा॥ ४॥

(११)

पूब तेरा नूर यारा पूब तेरे बाइकैं।
काहे न निहाल करौ दरस दिषाइकैं॥ (टेक)

---

९ वां पद—बिहावै=निकलै, कटै।

१० वां पद—फूलरे=फूल (प्यार का शब्द फूलरे है।)। लाहा=लाभ।

तेरे काज चली हौं तौ पलक हंसाइ कैं।
ढूंढत फिरत पिय कहां रहे छाइकैं॥ १॥
इश्क लिया है मेरा तन मन ताइकैं।
कल न परत मुझ बिन देंपैं राइकैं॥ २॥
मिहरि करहु अब लेहु अंग लाइकैं।
निस दिन रहौं सांई नैंननि समाइकैं॥ ३॥
जानत तुम हि सब कहूं क्या बताइकैं।
हिलि मिलि सुख दीजै सुंदर कौं आइकें॥ ४॥

(१२)

महबूब सलौंने मैं तुझ काज दिवाना।
आसिक कौं दीदार दै मेरा देपि दरद सुविहाना॥ (टेक)
इसक आगि अति परजली अब जारत तन मन प्राना।
निस दिन नींद न आवई इन नैंन तुम्हारौ ध्याना॥ १॥
यह दुनिया सब फीकी लगी अरु फीका जुमल जिहाना।
सुन्दर तेरे नूर कौं कब देंपैगा रहिमाना॥ २॥

(१३)

सहज सुंन्नि का षेला अभि अन्तरि मेला।
अविगति नाथ निरंजना तहां आपै आप अकेला॥ (टेक)
यह मन तहां विलमाइये गहि ज्ञान गुरू का चेला।
काल करम लागै नहीं तहां रहिये सदा सुहेला॥ १॥

---

११ वां पद—यारा=हे यार! हे प्यारे!।

१२ वां पद—सुविहाना=हे सुभहान! (अ०) हे ईश्वर!। जुमल=(अ०) जुमला, सारा। रहिमाना=हे रहमान (अ०) रहमतका करनेवाला, दीनदयाल परमात्मा।

परम जोति जहां जगमगै अरु शब्द अनाहद भेला।
संत सकल पहुंचै तहां जन सुन्दर वाही गैला ॥ २ ॥

(१४)

अलप निरंजन थीरा कोई जानै बीरा।
कृत्तम का सब नाश है अजर अमर हरि हीरा ॥ (टेक)
सुन्नि सरोवर भरि रह्या तहां आवै निरमल नीरा।
वार पार दीसै नहीं कहुं नाहीं तट न तीरा ॥ १ ॥
कछु रूप बरण जाकै नहीं वह स्वेत स्याम नहिं पीरा।
ता साहिब कै वारनै यह सुन्दरदास फकीरा ॥२॥१६४॥

(१) राग ऐराक

लालन मेरा लाडिला तू मुझ बहुत पियारा।
रापौं रे नैंननि माहिंकै पलक न पोलौं किवारा ॥ (टेक)
सूरति रे तेरी पूब है नूर न बरन्या जाई।
ताकै सब कोई सामुहा दिठि जिनि लागै माई ॥ १ ॥
बानी रे तेरी मोहिनी मोह्या सकल जिहाना।
पीर पैकंवर औलिया ये सब भये हैं दिवाना ॥ २ ॥
मैं भी रे तेरी आसिकी तू महबूब रे साईं।
बलि बलि तेरे नूर की तुझ परि घोलि गुसाईं ॥ ३ ॥

---

१३ वां पद—अभिअतर=अभ्यतर=बहुत ही अंदर, अंतरात्मा में। गैल=समागम, ब्रह्म की प्राप्ति। सुहेला=आनंद में। सुखी।

१४ वां पद—थीरा=स्थिर वा अचल हृदय हो जाने पर वहां विराजमान हुआ। कृत्तम=कृत्रिम, बनावटी माया।

कीरति रे तेरी मैं सुनी तीन्यौ लोक मंझारा।
आया रे बन्दा बन्दगी सुन्दरदास विचारा॥ ४॥

(२)

ढोलन रे मेरा भावता मिलि मुझ आइ सबेरा।
जिय तरसै दीदार कौं कब मुख देषौं तेरा॥ (टेक)
जोबन रे मेरा जात है ज्यौं अंजुरी का पांनी।
हौं तलफौं तुझ कारनै तैं मेरी एक न जानी॥ १॥
अन्दरि रे साईं मेरडै पैठा इसक दिवाना।
भाहि लगी इस पिंजरै जारत नख शिख प्राना॥ २॥
निस दिन रे पन्थ निहारतैं नैंना भये हैं उदासा।
कल न परत पल एक हू मुझ दरसन की प्यासा॥ ३॥
अबहिन रे ऐसी बूझिये बात विचारहु येहा।
सुन्दर विरहनि यौं कहै वोर निबाहौ नेहा॥ ४॥

(३)

प्रीतम रे मेरा एक तू और न दूजा कोई।
गुप्त भया किस कारनै काहे न परगट होई॥ (टेक)
हृदै रे मेरै तू बसै रसना नाम तुम्हारा।
श्रवनहु तेरे गुन सुनौं नैंनहु पीव पियारा॥ १॥
नख शिख रे तूंही रमि रह्या रोम रोम घट सारै।
मन मनसा मैं तू बसै छिन छिन सुरति संभारै॥ २॥

[राग रेखता] १ ला पद—दिदि=नजर, दृष्टि। ढोलिन=पुरुष बर प्यारी अऊं।
२ रा पद—मेरडै=(पं०) मेरे। भाहि=दाह, अग्नि। पिंजरै=शरीर में।
अबहिं न ...=अबतक भी मेरी सुध नहीं ली। यह बात विचारने योग्य है, बड़ा आश्चर्य है।

व्यापक रे तीनों लोक में जल थल अग्नि मंझारी।
पवन अकाश जहां तहां सब में सिफति तुम्हारी ॥ ३ ॥
हम तुम रे अंतरि क्यों भया यह मोहि अचिरज आवै।
बार बार करि बीनती सुन्दरदास सुनावै ॥ ४ ॥

(४)

रासा रे सिरजनहार का सो मैं निस दिन गाऊं।
करजोरें विनती करौं क्यों ही जौ दरसन पाऊं ॥ (टेक)
उतपति रे साई तैं किया प्रथम हि वो ओंकारा।
तिसतें तीन्यौं गुन भये पीछै पंच पसारा ॥ १ ॥
तिनका रे यह ओजूद है सो तैं महल बनाया।
नव दरवाजे साजि कैं दसवें कपाट लगाया ॥ २ ॥
आपन रे बैठा गोपि ह्वै व्यापक सब घट माहीं।
करता हरता भोगता लिपै छिपै कछु नाहीं ॥ ३ ॥
ऐसी रे तेरी साहिबी सो तू ही भल जानै।
सिफति तुम्हारी साइयां सुन्दरदास बषानै ॥ ४ ॥१६८॥

(१) राग सकराभरन

मन कौन सौ जाइ अटक्यौ रे।
ऐसें बध्यौ छोर्‌यौ न छूटै कैंधक धरिया झटक्यौ रे ॥ (टेक)
जाही दिश तू भ्रमतौ ही आयौ ताही दिश कौं लटक्यौ रे ॥ १ ॥

---

३ रा पद—रसना=जिव्हा पर। सिफति=(अ०) सिफत=गुण। अंतरि= अतर, फर्क, भेद।

४ था पद—रासा=यशगान। लड़ाई की ख्याति। दशवें=भृकुटी के मध्य तीसरा नेत्र। अथवा ब्रह्मरंध्र।

भूलि रह्यौ विषया सुख मांहीं याही तें निश दिन भटक्यौ रे ॥ २ ॥
गुरु साधन कौ कह्यौ न मानें बहु विधि करि उनि हटक्यौ रे ॥ ३ ॥
सुन्दर मंत्र न लागत कोई माया सांपनि गटक्यौ रे ॥ ४ ॥

(२)

मन कौंन सौं लगि भूल्यौ रे।
इन्द्रिनि के सुख देषत नीके जैसें सेंवरि फूल्यौ रे ॥ (टेक)
दीपक जोति पतंग निहारै जरि बरि गयौ समूल्यौ रे ॥ १ ॥
झूठी माया है कछु नांहीं मृग तृष्णा में भूल्यौ रे ॥ २ ॥
जित जित फिरै भटकतौ यौंही जैसें वायु बघूल्यौ रे ॥ ३ ॥
सुन्दर कहत संमुझि नहिं कोई भवसागर में झूल्यौ रे ॥ ४ ॥२००॥

(१)   राग धनाश्री

आवौ मिलहु रे संत जना हो हो होरी।
सब मिलि षेलहु फाग रंगनि रंग हो हो होरी ॥
राम नाम गुन गाइये रङ्ग हो हो होरी।
देषहु मोटे भाग रंगनि रंग हो हो होरी ॥ (टेक)
काया कलश भराइये रङ्ग हो हो होरी।
प्रेम प्रीति घसि घोरि रंगनि रङ्ग हो हो होरी ॥
सहज सील मन अरगजा रङ्ग हो हो होरी।
भाव भगति झकझोरि रंगनि रङ्ग हो हो होरी ॥ १ ॥

[राग संकराभरन] १ का पद—साधन=साधुओं। मंत्र=गारुड़ी मंत्र। गटक्यौ=खाया। डसा।

२ रा पद—सेंवरि=सेमल का फूल निर्गंध होता है वैसे ही विषय भोग तुच्छ है।

ज्ञान गुलाल उडाइये रङ्ग हो हो होरी।
सुमति पिचक कर लेहु रंगनि रङ्ग हो हो होरी॥
भरहु परसपर आतमा रंग हो हो होरी।
हरि जस गारी देहु रंगनि रङ्ग हो हो होरी॥ २॥
शब्द अनाहद बाजहीं रङ्ग हो हो होरी।
बीना ताल मृदंग रंगनि रङ्ग हो हो होरी॥
रोम रोम सुख ऊपजै रङ्ग हो हो होरी।
पेल मच्यौ सत संग रंगनि रङ्ग हो हो होरी॥ ३॥
अमी महा रस पीजिये रङ्ग हो हो होरी।
पूरणब्रह्म विलास रंगनि रङ्ग हो हो होरी॥
मतिवाले सब साधवा रङ्ग हो हो होरी।
माते सुन्दरदास रंगनि रङ्ग हो हो होरी॥ ४॥

(२)

मींयां हर्दम हर्दम रे अपने साईं को संभाल।
मुसलमान ईमान राषिलै करद हाथ तें डाल॥ (टेक)
सुनि यह सीष पुकार कहत हौं मिहरवानगी पाल।
सब अरवाहैं सिरजी साहिब किसकी काटत पाल॥ १॥
पाच सात मिलि पकै सहनक ह्वै बैठै बेहाल।
मुरदा पाइ भये तुम मोमिन कीया कहत हलाल॥ २॥
ये जु तुम्हारे काजी मुलना झूठें मारत गाल।
अपने स्वारथ तुमहिं बतावैं उनकौं दोजग हाल॥ ३॥

[राग धनाश्री] १ ला पद—रंगनि=बहुत से रसरंग प्रेम भक्ति ज्ञान के हैं उनमें रंग कर, मस्त होकर। भरहु परसपर आतमा=आत्मारूपी रंग भरा जल पिचकारी में भरो। मतिवाले=मतवाले, मस्त। अथवा सुमति धारण करनेवाले, बुद्धिमान, शा`

इला इलाहि इल्ला की सब घट मैं बरत मसाल।
कलमा का तुम भेद न पाया फूटा करम कपाल ॥ ४ ॥
यह तो महमद नां फुरमाया जो तुम पकरी चाल।
कीया पून तुम्हारी गरदनि ह्वै हैं बुरा हवाल ॥ ५ ॥
मादर पिदर पिसर बिरादर झूठ मुलक सब माल।
इनमें काहे जरत दिवाने देषि अग्नि की झाल ॥ ६ ॥
अजहूं समझ तरस करि जिय मैं छाडि सकल जंजाल।
करि दिल पाक पाक मैं मिलि है नियरैं आवत काल ॥ ७ ॥
सांईं संती साटि मिलावै सोई पूछ दलाल।
सुन्दरदास अरस के ऊपरि रहै धनी कै नाउ ॥ ८ ॥

(३)

हौं तौ तेरी हिकमति की कुरवान मौले सांईं वे।
सकल जिहान किया पुनि न्यारा यह गति किनहूं न पाई वे (टेक)
शेष मसाइक पीर अवलिया बहु बंदगी कराई वे।
कुदरति कौंन कहै तू ऐसा हैरत गये हिराई वे ॥ १ ॥

---

२ रा पद—हर्दम=(फा०) हर=प्रत्येक, दम=स्वास। स्वास स्वास में भगवान को याद कर। करद=छुरी। अरवाहें=(अ०) रूह (आत्मा) का बहुवचन। सब जीव। पकै सहनक=हंडिया में मांस पकाया। मोमिन=(अ०) ईमानदार। हलाल=कलमा को पढ़कर मुसलमान बकरे या पशु को काटते हैं उसे हलाल करना कहते हैं। दोजग=दोजख=नरक (फा०)। इलाइला...। मुसलमानों का कलमा नामक मंत्र—"लाइलाहे लिल्लाह मोहम्मद रसूलिल है'। (नहीं है कोई पूजने योग्य सिवाय परमेश्वर के और मोहम्मद उसका पैगम्बर है, उसके दूतों को संसार में पहुंचाने वाला हरकारा है)। किया पून=जो पून किया सो (तुम्हारी गर्दन पर है, अर्थात् इसका दंड भगवान तुम्हें देगा)। तरस=दया। साटि=मेल। अरस=आकाश, स्वर्ग। नाउ=(दे०) पग।

सुर नर मुनि जन सिध अरु साधक शिव बिरंचि उन तांई वे ।
उनमनि ध्यान रहत निस वासर वै भी कहत डरांई वे ॥ २ ॥
अति हैरान भये सब कोई तेरी पनह रहांई वे ।
मुझ गरीब की क्या गमि येती सुंदर बलि-बलि जाई वे ॥ ३ ॥

(४)

सांई तेरे बंदों की बलिहारी ।
सुहबति रहैं परम सुख उपजै बातें कहत तुम्हारी ॥ (टेक)
चलतें फिरतें जागत सोवत दरदवंद अति भारी ।
दुनियां सौं फारिक ह्वै बैठे राह गही कछु न्यारी ॥ १ ॥
निर्मल ज्ञान ध्यान पुनि निर्मल निर्मल दृष्टि उघारी ।
निर्मल नांव जपत निसबासर निर्मल गति मति सारी॥ २ ॥
अपना आप करत नहिं परगट ऐसैं बडे बिचारी ।
सुन्दरदास रहैं क्यों छाने जिनकै घट उजियारी ॥ ३ ॥

(५)

अहो हरि देहु दरस अरस परस तरसत मोहि जाई ।
प्रान त्याग होंन लाग मिलिहौ कब आई ॥ (टेक)
फिरत हौं उदास बास आस एक तेरी ।
निस बासर कल न परत देहु दादि मेरी ॥ १ ॥
अति बियोग लिये जोग भोग काहि भावै ।
तुही तुही मन मांहि जपत और न कहि आवै ॥ २ ॥
तात मात बंधू सुत तजी लोक लाजा ।
तुम बिना सुख और सकल मेरे किहिं काजा ॥ ३ ॥

---

३ रा पद—कुरबान=न्योछावर, बलिहारी । मौला=स्वामी । कुदरति=क्या कुदरत, क्या मजाल है किसी को । पनह=पनाह (फा०), शरण ।

४ था पद—सुहबति=(अ०) सत्संग । दरदवंद=दर्दमंद, विरह कातर ।

प्रभु दयाल कहियत हौ सकल अँतरजामी।
काहे न सँभाल करहु सुन्दर के स्वाँमी ॥ ४ ॥

(६)

सज्जन सनेहिया छाइ रहे परदेश।
बालापन जोबन गयौ पंडुर हूवा केस ॥ (टेक)
मेरे मन मैं और थी तुम कछु ठानी और।
तुम करि हौ सोई सही मेरी झूठी दौर ॥ १ ॥
मैं जान्यौ औसर भलौ पीय मिलहिंगे आइ।
तेरे कछु भायें नहीं तलफि तलफि जिय जाइ ॥ २ ॥
मैं अबला अति ही दुखी तुम सम्रथ सब बात।
जब सुदृष्टि करि देखिहौ तब मेरे कुसरात ॥ ३ ॥
मैं चातक पिय पिय करौं तुम जलधर जलदानि।
सुन्दर बिरहनि यौं कहै प्यास बुझावौ आनि ॥ ४ ॥

(७)

हरि निरमोहिया कहाँ रहे करि बास।
पहलैं प्रीति लगाइकैं अब क्यौं भये उदास ॥ (टेक)
लाड लडाये बहुत ही हँसि पुसाई कोडि।
बनिजारा की आगि ज्यौं गये बलंती छोडि ॥ १ ॥
पलक घरी जुग जात है क्यू करि राखौं प्रांन।
मैं जानौं संगही रहौं तुम यह तौरी तांन ॥ २ ॥

---

५ वाँ पद—प्रान त्याग होंन लगे=प्राणों का त्याग होने लग गया है। टेरु दरद=पुकार सुन। बरा=भूरा। कहियत=कहाये जाते हो।

६ ठा पद—पंडुर=सफ़ेद। (बुढ़ापा आ गया अब)। भायें=भाविनी=रुचता है। कुसरात=कुशलता, खैरसल्लाह, खुशीपना।

बीति गये दिन बहुत ही अंतरजामी राइ।
कै तुम आवौ आपतें कै तुम लेहु बुलाइ ॥ ३ ॥
अबतौ ऐसी क्यों बनें प्यारे प्रीतम लाल।
सुंदर बिरहनि यौं कहै दरसन देहु दयाल ॥ ४ ॥

(८)

हरि हम जाणियां, है हरि हम हीं मांहि।
जौ बाहर कौं देषिये, तो कछु दूजा नांहिं ॥ (टेक)
जौ हम इहां बैठे रहें तौ वह नाहीं दूरि।
जौ शत जोजन जाइये तौ उंहऊं भरपूरि ॥ १ ॥
शेष नाग वैकुंठ लौं जहां लगै ब्रह्मंड।
वह हरि उहऊंतें परै इहां परै नहिं षंड ॥ २ ॥
योंही वेदन मैं कह्यौ योंही भाषहिं संत।
यौं जाणैं विन ह्वै नहीं जनम मरन कौ अंत ॥ ३ ॥
जाकौं अनुभौ होइ है सोई जानै जान।
सुन्दर याही संमुझि है याही आतम ज्ञांन ॥ ४ ॥

(९)

ब्रह्म विचार तें ब्रह्म रह्यौ ठहराइ।
और कछू न भयौ हुतौ भ्रम उपज्यौ थौ आइ ॥ (टेक)
ज्यौं अन्धियारो रैनि में कल्पि लियौ रजु व्याल।
जब नीकें करि देषियौ भ्रम भाग्यौ ततकाल ॥ १ ॥

---

७ वां पद—कोडि=कोटि, बहुतसी। तौरी तांन=खतम काम कर दिया, निराली ही ठानी। झटक कर मेरे प्यान से निकल गये।

८ वां पद—उहऊं=वहां भी वही। षंड=खंड, टुकड़ा अर्थात् उसका विभाग नहीं वह अखण्ड है।

ज्यौं सुपनै नृप रंक ह्वै भूलि गयौ निज रूप।
जागि पर्‌यौ जब स्वप्न तें भयौ भूप कौ भूप॥ २॥
ज्यौं फिरतैं फिरती दसै जगत सकल ही ताहि।
फिरत रह्यौ जब बैठिकैं तब कछु फिरत न आहि॥ ३॥
सुन्दर और न ह्वै गयौ भ्रम तें जान्यौं आंन।
अब सुन्दर सुन्दर भयौ सुन्दर उपज्यौ ग्यांन॥ ४॥

(१०)
(संस्कृतमय)

दृश्यते वृक्ष एक अति चित्रं।
ऊर्द्धमूलमधोमुख शाखा जंगम द्रुम शृणु मित्रं॥ (टेक)
चतुर्विंश तत्त्वभिर्निर्मितं वाचः यस्य दलानि।
अन्योऽन्य वासनोद्भव तस्य तरोः कुसुमानि॥ १॥
सुख दुःखानि फलानि अनेकं नानास्वादन पूर्नं।
जनात्मा विहंगम तिष्ठति सुन्दर साक्षीभूतं॥ २॥

---

९ वां पद—आन=अन्य, दूसरा, आप से भिन्न, द्वैतभाव। सुन्दर भयौ=निज रूप प्राप्त हुआ। वा शुद्ध सच्चिदानन्द रूप की प्राप्ति हुई।

१० वां पद—संस्कृत भाषामय पद है। दृश्यते=दिखाई देता है। चित्रं=विचित्र, अद्भुत। ऊर्द्धमूलम्=जिसकी जड़ ऊपर को है। अधोमुखशाखा=डालियां नीचे की ओर हैं। वाचः यस्य दलानि=(छंदांसि यस्य पर्णानि—गीता) वचन जिसके पत्ते हैं। जंगम द्रुम=चलता हुआ वृक्ष। शृणु मित्रं=हे मित्र सुनो। चतुर्विंश तत्त्वभिर्निर्मितं=चौबीस तत्त्वों से बना हुआ है। अन्योऽन्यवासनोद्भव (सद्भुतानि वा)=नाना प्रकार की वासनाओं से उत्पन्न हुए। तस्य तरोः कुसुमानि=उस वृक्ष के पुष्प हैं। सुखदुःखानि फलानि=सुख दुःख आदि द्वंद्व उसके फल हैं। अनेकं=अनेक। नानास्वादन पूर्नं=नाना प्रकार के रस स्वादों से भरे हैं (पूर्नं=पूर्णं)। जनात्मा विहंगम तिष्ठति=वहां आत्मारूपी पक्षी

(११)

(संस्कृतमय)

क गतन्निजपरविभ्रमभेदं ।
यन्नानात्वं दृश्यते पूर्वमधुना रूपं ममेदं ॥ (टेक)
यथा शरीरे अंग पृथग्नहि ज्ञानकर्मकरणानि ।
तथा अहं व्यापक परिपूर्णः स चराचर सर्वाणि ॥ १ ॥
यथा सागरे भंगबुद्बुदा उत्पद्यन्तेऽनंताः ।
तथा विश्वमयि अहं विश्वमयि सुदर मध्याद्यंताः ॥ २ ॥

(१२)

(आरती)

आरती परब्रह्म की कीजै ।
और ठौर मेरौ मन न पतीजै ॥ टेक)
गगन मंडल में आरती साजी, शब्द अनाहद झालरि बाजी ॥ १ ॥
दीपक ज्ञान भया प्रकासा, सेवग ठाडे स्वामी पासा ॥ २ ॥

बैठा हुआ है। सुदर साक्षीभूत=सुदरदासजी कहते हैं कि, वह पक्षी साक्षीभूत होकर बैठा है। यह वृक्ष का रूपक इस शरीर पर घटाया गया है। इसका ही वर्णन गीता के अ० १५। श्लो० १–३ में है। वहां विश्ववृक्ष कहा है।

११ वां पद—क्वगत=कहां गया। निजपरविभ्रमभेदं=अपना पराया आप और दूसरा ऐसा भ्रम भरा भेद (द्वैतभाव)। यन्नानात्व दृश्यते पूर्वं=जो इस ब्रह्म ज्ञान से पहिले नानात्व भेद दिखाई देता था वह (मिट गया)—न रहकर, अधुनारूप ममेदं=अब मेरा निज आत्मस्वरूप हो गया है। यथा...करणानि=शरीर से उसके अग पृथक् नहीं और ज्ञान, कर्म और कारण पृथक नहीं वैसे ही—तथा सर्वाणि= वैसे ही मुझ व्यापक में सर्व चराचर व्यापते हैं। यथा ऽनताः=समुद्र में जैसे बुदबुदे बनते बिगड़ते हैं। तथा.. यन्ताः=वैसे ही मैं विश्व में और विश्व मुझ में आदि मध्य और अत पाता है।

अति उछाह अति मंगल चारा, अति सुख बिलसै बारंबारा ॥ ३ ॥
सुन्दर आरती सुन्दर देवा, सुन्दरदास करै तहां सेवा ॥ ४ ॥

(१३)

आरती कैसैं करौं गुसाईं ।
तुमहीं व्यापि रहे सब ठांई ॥ (टेक)

तुमहीं कुंभ नीर तुम देवा, तुमही कहियत अलख अभेवा ॥ १ ॥
तुमहीं दीपक धूप अनूपं, तुमही घंटा नाद स्वरूपं ॥ २ ॥
तुमहीं पाती पहुप प्रकासा, तुमही ठाकुर तुमही दासा ॥ ३ ॥
तुमहीं जल थल पावक पौंना, सुन्दर पकरि रहे मुख मौंना ॥ ४ ॥

इति श्री स्वामी सुन्दरदास विरचित पद समाप्त सर्वपद संख्या २१३

---

१२ वां पद—[आरती] निर्गुण उपासना में यह परापूजा का विधान है जिसका एक अङ्ग आरती (आरात्रिक—नीराजन) भी है। मानसिक पूजा की विधि वेदांत के आचार्यों ने भी लिखी है। शंकराचार्य आदि के रचे विधान प्रस्तुत हैं। आरती में घंटा, शंख, दीपक आदि की आवश्यकता होती है। दीपक के स्थानापन्न ज्ञानरूपी दीपक है। घंटा, झालर आदि के शब्दों के स्थानापन्न अनाहत नाद है। आरोक्षता का भाव है जिसमें सेव्य सेवक की एकता प्रदर्शित है। ब्रह्मानंद की प्राप्ति ही अति उछाह है। इस आरती की सुंदरता प्रत्येक अङ्ग में विद्यमान है इसही से सबही सुंदर है। निर्गुण उपासक महात्माओं ने सबही ने आरतियां कही हैं। कबीरजी, नानकजी, रैदासजी, नामदेवजी, दादूजी और दादूजी के अन्य शिष्यों ने भी आरतियां कथन की हैं। तुलसीदासजी ने तो रामायणजी तक की आरती लिखी है, यद्यपि वे सगुण उपासक थे।

१३ वां पद—इस दूसरी आरती में तो परमात्मा (सेव्यदेव) को सर्वव्यापी कहकर आरती की प्रत्येक चीज में बता दिया है। यह गहरा अद्वैत भाव है। यहां तो कोई रत्ती भर भी अवकाश नहीं रक्खा है। पूर्ण एकता और कैवल्य है ॥ इति ॥

॥+॥ पदों की सुन्दरानन्दी टीका समाप्त ॥+॥

फुटकर काव्य

अथ फुटकर काव्य

॥ अथ चौबोला ॥*

दोहा

पीपरदेसैं गवन करि बरवट गये रिसाइ।
परासपी मो रोवना साल रिदै नहिं जाइ ॥ १ ॥

---

* इन छदादिका क्रम कुछ तो (क) मूल पुस्तक से और कुछ (ख) खुली पुस्तक से और शेष क्रम की संगति से रखा गया है। (क) पुस्तक में "चौबोला, गूढार्थ, "पद" की समाप्ति के आगे पाने २५४॥ से २५६ तक हैं।

छद १—(इन छदों में गूढ़ अर्थ के निमित्त शब्दों मे श्लेष प्राय रक्खा है और चार नाम प्रत्येक दोहे मे से निकलते हैं। कहीं शब्दों को विच्छिन्न करने से, कहीं यतिभंग से, कहीं शब्द में न्यूनाधिक करने से अर्थ निकलता है।)—पी=पीव, प्रियतम। परदेसैं=दिसावर। दूसरा अर्थ—पीपरदा=पीपल्दा एक कस्बा राज्य जयपुर में है। बरवट=बड़ का वृक्ष। दूसरा अर्थ गांव का नाम। रिसाइ=रूसकर, अप्रसन्न होकर। परा सपी=हे सखी! पड़ गया। मो रोवना=मुझको रोना (विलाप करना)। दूसरा अर्थ—परास गांव का नाम। मोरो—मोर गांव का नाम, टोडे रायसिंह के पास जहां सुन्दरदास जी का एक स्थान भी है। साल-रिदै=साल, कसक, दुख का खटका। रिदै=हृदय दिल में। दूसरा अर्थ=साल-रदै—सालरदह=गांव का नाम।

बहे रावरे कौन दिशि आव रावि मन मोर।
हररें हररें जिनि फिरहु करहु कृपा की कोर॥ २॥
जमी रीस तुम करत हौ सदा फरक दै जात।
अनारपनौं कौनें यद्यौ करुणा नेंकु न गात॥ ३॥
मैंथी अपने माइ कै सगा मिल्या मोहि द्वार।
करौं जीव नौछावरी धना गई बलिहार॥ ४॥

छंद २—बहे रावरे=बहेड़ा (औषधि)। दूसरा अर्थ—रावरे=राज (आपके, प्यारे के (हाथी घोड़े लश्कर) किस दिशा (तरफ) बहे, गये। आव रावि= आवला (औषधि)। दूसरा अर्थ—आवो मेरा मन रक्खो—अर्थात् दिसावर से पधार कर मेरे मन को शांति करो। हररें=हरड़ै (औषधि)। दूसरा अर्थ—इधर उधर (मुझे छोड़ कर)। अध्यात्म में इन दोनों छंदों का ब्रह्म सम्बन्ध में अर्थ स्पष्ट ही है। भगवद्भक्ति के अभाव से वा आत्मध्यान के न होने से मन को महा क्लेश होता है। निष्फल संकेत निगुण का है। निगुण में न फँसकर मन को परमात्मतत्व में लीन करने के निमित्त प्रार्थना है कि मुझ पर ऐसी कृपा करो कि चित्त विषयों में न जाय।

छंद ३—जमी=जबही। रीस=गुस्सा, रोस। सदा=हृदय, सर्वदा। आवाज़। फरक दै जात=फड़कने लग जाय। दूसरा अर्थ—जमीरी=कमीरी (फल)। सदाफर=सदाफल, सीताफल (फल)। श्रीफल। धीस। अनारपनौं=अनाड़ीपन, चतुराई का न होना। करुणा=दया। दूसरा अर्थ—अनार (फल)। करुणा (फल)।

छंद ४—मैं थी=मैं (अपनी) माँ के (मय के, पीहर) गई थी। दूसरा अर्थ—मेथी (साग)। सगा मिल्या=प्यारा मुझे मिल गया। दूसरा अर्थ=साग (शाक)। करौं जीव नौछावरी=मैं अपने प्राणों को (प्यारे पर) न्योछावर (अर्पण) कर दूं। दूसरा अर्थ=कलौंजी, वा करौंदा। धना गई=धन (तन, मन धन) को वार फेर भगवदर्पण कर दिया। दूसरा अर्थ=धनिया (साग, मसाला)।

सूठिक चूकौ तू धनी पी परिहरि किम जाइ।
अज मौ इनि दीधौ विरह बचन सँभालौ आइ ॥ ५ ॥
चंपा करे न पाव मैं जुही तिहारैं हेज।
जाही विधि तुम अब कहौ जाइ बिछाऊं सेज ॥ ६ ॥
केत कीन मैं बीनती केव रापि हौं चित्त।
सेव तीनि विधि करत हौं कुंज कली के मित्त ॥ ७ ॥

अध्यात्म में अर्थ निकल रहा है कि माइ, माया में मैं फँसा था। परन्तु भग
तो मुझे गुरू के बताये द्वार (रास्ते) से प्राप्त हो गये। उन प्रियतम परम
पर मेरे प्राणों को मिटा दूं। धन्य धन्य मैं बलिहार जाऊ कि मेरा ऐसा भ
उदय हुआ, गुरु कृपा से।

छद ५—सू (स्यू–गुजराती) ठिक (ठिगाकर) चूकौ (चूकते हो)
धनी तू ! हे पी (पीव-पीतम) ! तू हम दीनजनों को परिहरि (छिटका क
किम (क्यों) जाइ=जाता है। हमारे अपराध से प्रभू ! आप हमें निरा
न छिटकाइये !। दूसरा अर्थ—सूठि=सुंठि (औषधि)। चूकौ=चूका (अ
साग)। पीपरि=पीपल (औषधि)। अज (आज वा अब भी) मौ (मुझे
इनि (इन्होंने, प्यारे ने) दीधौ (दिया)। बचन सँभालो आइ=मिलने के क
करार को मेरे पास आकर निभावो। दूसरा अर्थ—अजमोद=अजवाइन वा अ
मोद (औषधि) सँभाला=सभालू (वातहर्त्ता औषधि)।

छद ६—चपा=१ चापे, दबाये। जुही १—जो रही। हेज=प्रेम। २ च
(सुगध वृक्ष फूल)। जुही २=जूही (सुगध वृक्ष गाछ फूल)। —जा
(वृक्ष विशेष), जाइ (जया कुसुम, चमेली) ये चार निकले।

छद ७—केत=कितनी। केतकी=केतकी (सुगध पौधा पुष्प)। केव
रोककर, निरतर। केवरा=केवड़ा (सुगध पौधा पुष्प)। सेव=सेवा। तीनि
विधि=त्रिविधि, तन, मन, धन वा मन बुद्धिचित से वा भक्ति ज्ञान वैराग्य से
सेवती=सुगध पुष्प। कुंजकली=कुंजगली। कुंज=सुगंध पुष्प। यों चार ना
निकले।

रत नहिं दीसै तोर चित्त मो तीपो मन आहि।
लालन यहु दुख बहुत है मानि कह्यौ मिलि चाहि ॥ ८ ॥
गौरी मेरो पीव तजि पर्यौ कानरा बोल।
कैसैं होत कल्यान अब रूठौ नाह हिंडोल ॥ ९ ॥
सूहौ मुहि सांई करी धना सीस सिरताज।
आशा पूरइ जीव की राम गरीब निवाज ॥ १० ॥
दुवा तिहारी लेतही कल्मष रहे न कोइ।
काग दशा सब मिटि गई लेप कर्म यौं होइ ॥ ११ ॥

छंद ८—रत=अनुरक्त। मो तीपो=मेरा तीव्र (मन) आहि=है। रतन=रत्न। मोती=मुक्ता, मोती। लालन—हे लालन, प्यारे, लाडले! मानि कह्यौं=कहना मान्। लाल=लाल, रत्न। मानिक=माणिक्य। ये नाम निकले।

छन्द ९—गौरी मेरो···—हे गौरी सखी! मेरा पीतम मुझे तजि गया। कान में ऐसा असह्य वचन पड़ा, सुना। अब कुशल नहीं जब नाह (नाथ) हिंडोले पर से या हिंडोले की ऋतु में रूस गया। गौरी, कानड़ा, कल्याण, हिंडोल इन रागों के नाम निकलते हैं।

छन्द १०—सूहौ मुहि...मेरे स्वामी ने मेरे सुहाती मेरे ऊपर कृपा करी। मैं धन्य हू सबका सिरताज हो गया मेरा सीस (भगवतचरणों में नत होकर) धन्य हुआ। आशा पूरइ ..—भगवान दीनबन्धु हैं, इस क्षुद्र जीवन की आशा को पूर्ण कर दी। इसमें से सूहा (राग) धनासी (धनाश्री राग)। आशा (आसा राग)। पूरइ (पूरिया, या पूर्वी राग)। रामगरी (रामग्री राग) ये नाम निकलते हैं।

छन्द ११—दुवा तिहारी...—दुवा=दुआ, शुभाशीश। कल्मष=पाप। काग-दशा=कागले की सी अर्थात् बुरी दशा, विपत्ती। कर्म का लिखा, भाग्य का भोग। इसमें से—दुआति (दवात स्याही की), कलम (लेखनी), कागद (कागज़, पत्र), लेखक (लिखनेवाला) ये चार शब्द निकले।

मारू मन कौं पटकि कैं केदारा सूं प्रीति।
नट बाजी भूलौं नहीं भैरव रापौं जीति ॥ १२ ॥
वलकल वोढें का भयौ का विलमाहिं रहाइ।
का समीर साधन किये लाहो नूर दिपाइ ॥ १३ ॥
आगरा सु मम पीव है दिलि में और न कोइ।
पट नारी तातें भई राजमहल में सोइ ॥ १४ ॥

छन्द १२—मारु मन...—मन को मारु (एकाग्र कर लूं)। के दारा सू—स्त्री से प्रेम क्यों किया ? नटबाजी (नटकला, फुरती से कर्म फन्द से निकलने की कला), भैरव—भैरव समान बलवान मन को जीत कर, वश में लाकर। इसमें से—मारू (राग), केदारा (राग), नट (नटनारायण राग), भैरव (भैरव राग), ये चार नाम निकले।

छन्द १३—बलकल...—बलक्ल (वृक्ष की छाल, भोजपत्र का ओढन) वोढे (पहनने से)। बिल (गुफा, मठ) में घुस रहने से। समीर (पवन) के साधने (प्राणायाम प्रत्याहारादि करने से)। लाहो (लाभ, परम लाभ की प्राप्ति)—आत्म साक्षात्कार, नूर (तेज, प्रकाश) दिखाइ=दिखाई देने से, दर्शण ज्योतिस्वरूप के होने से। सच्चा फल मिलसकता है। उसकी प्राप्ति के बिना अन्य क्रियाएं वृथा हैं। इसमें से बलख (बलख बुखारा नगर), काबिल (काबुल शहर), कासमीर=कश्मीर नगर। लाहोर (शहर)—ये चार नाम निकलते हैं। (नोट—लाहो नूर में नू का लोप करना पड़ता है, या नूर को नगर का विकृतरूप मान लें)।

छन्द १४—आगरा...—मेरा पीतम आ गया या घर में आ गया है (गरा=घरां, घर में)। दिलि में=मेरे दिल में वही बस रहा है अन्य कुछ नहीं है। मैं मेरे राजा (पति) के महल (स्थान) में आनन्द में रहती हूं इससे पटनारी (मुख्य, प्यारी सुहागिनी—या पटराणी) बन गई हूं। भगवान् की अत्यन्त कृपापात्र बन गई अर्थात् मुझे ब्रह्म साक्षात्कार से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो गई है। इस दोहे में से—आगरा (शहर), दिल्ली (दिल्ली शहर), पटना (शहर), राजमहल (बगाल

काशी लागा बहुत ही गया और ही बाट।
अजो ध्यान अब करत हौं तिरबेनी के घाट॥ १५॥
कुरुपेत कौनि दान तू हरिद्वार तब जाइ।
बदरी तासौं क्यौं रहै सुर सरीर मैं न्हाइ॥ १६॥
थरी लीपि का कीजिये शिवहार हि पय पान।
बहर बलाइन-समझई बौरी नेक न ज्ञान॥ १७॥

॥ इति चौबोला ॥ १ ॥

का शहर जिसे जयपुर के महाराज मानसिंहजी ने वहाँ की विजय करके आबाद किया था। जयपुर राज्य के परगने टोडे में भी एक राजमहल करबा बनास नदी पर सुन्दर बसा है।)—ये चार नाम निकले।

छन्द १५—काशी...—तू अन्य बाट (बुरे रास्ते, मार्ग) जाकर क्या तू शील व्रत (यति व्रत=ब्रह्मचर्य आदि उत्तम मार्ग में) प्रवृत्त क्यों नहीं हुआ? अजो (अजू=तल्लीन) ध्यान अब करता हूं। इड़ा पिंगला सुषुम्नारूपी नाड़ी नदियों के स्थान में साधनशील होकर। इस दोहे में से चार नाम निकलते हैं—काशी, गया, अयोध्या, त्रिवेणी (प्रयाग) तीर्थ।

छंद १६—कुरु पेत कौ...—हे नदान मूर्ख! तू कुरु=कर। पेत=क्षेत्र जो काया, उसको उत्तम कर्मों से शुद्ध कर ले। तब तू हरि (परमात्मा) के द्वार (धाम को) जायगा। ता (उस) प्रीतम ब्रह्म से तू क्यों बदला हुआ (बददिल वा बेदिल) रहता है? सुर जो देवता उनका सा शरीर (काया) न्हाय (पाकर) भी। अथवा शरीर में सुर (स्वर) का साधनरूपी इड़ा पिंगला नदियों में (नाड़ियों के स्थानों में) साधनशील होकर भी।—इस दोहे में ये चार नाम निकलते हैं—कुरुक्षेत्र हरिद्वार, बदरीनाथ, सुरसरी (गंगा)।

छंद १७—थरी लीपि...—धरा जो शरीर उसके शृंगार और लहाने से क्या प्रयोजन। इसको पालने से वैसाही फल है जैसा कि शिवहार=शिव के गले का हार, सर्प जो है उसको दूध पिलाना। "पयः पानं भुजंगानां केवलं विषवर्द्धनम्"। अथवा

॥ अथ गूढार्थ ॥

दोहा

शिव चाहत है आपनौं बिधि नीकै करि धारि।
विष्णु इहै निशि दिन रहै व्याप न शील विचारि ॥ १ ॥

थड़ा=चौका लीप पोतने की आवश्यकता (साधुओं और मतियों को) नहीं है, क्योंकि उनका कल्याणकारी अहार दूध है। महर=वहिर माहर के विषयादिक थलाएं हैं, अनिष्टकारी हैं। हे थाक्ली तुमको ज्ञान नहीं है। इस दोहे में से चार नाम निकलते हैं—थड़ौली (गांव का नाम), शिवहार (सिंवार—राजावतों का ठिकाना), अहर—बहरांवड़ा (गांव सवाई माधोपुर राज्य जयपुर में), बौरी—बौंली (कस्बा तहसील—राज्य जयपुर में)।

इति चौबोला की सुन्दरानन्दी टीका।

गूढार्थ—दोनों कविता प्रकरण "चौबोला गूढार्थ" एक ही शीर्षक में भी लेते हैं। पूर्व प्रकरण में चार २ शब्द वा नाम निकलते हैं और उनके साथ दूसरे अर्थ भी। परन्तु इस उत्तर प्रकरण में सब दोहों में ऐसा नहीं है। इस कारण इसको पृथक् रक्खा है। यह भी अन्तर्लापिका का एक भेद है। शब्दालंकार में अर्थालंकार की भी झलक है। अध्यात्म अर्थ स्पष्ट ही निकलता है।

१ म छंद १ अर्थ—शिव=कल्याण। बिधि=क्रिया, विधान, साधन, अभ्यास। विष्णु=(विसन) व्यसन। "विद्या व्यसनम् व्यसनम् हरिनाम केवलम् व्यसनम्"। अपने जीवन का उद्देश्य नित्य निरंतर रटना और ध्यान। २ अर्थ—शिव=महादेव। विधि=ब्रह्मा। विष्णु=विष्णु भगवान, नारायण। ये तीनों देव तीनों गुणों—तम, रज, सत—के सृष्टि क्रम में प्रधान स्वरूप माया विशिष्ट ब्रह्म के हैं। तीनों गुणों से अतीत वा परे होने को केवल शील (सत्कर्म) के विचारते रहने से ही इस अवस्था (तुरीया) में व्यापकता नहीं प्राप्त हो सकती है। अंतर्मुखी होकर अंतरात्मा का साक्षात्कार ही व्यापकता दे सकता है।

वासुदेव हित छाडिकैं प्रद्युम्नहि मन दीन्ह।
अनिरुद्धहि कीयौ सदा सकर्षण नहिं कीन्ह॥ २॥
राम लक्ष्मन शत्रुघन भरत जानि करि प्रीति।
सीता शान्ति सदा रहै यह सन्तन की रीति॥ ३॥
हनूमान कूं जानि कैं सुग्रीवहि रटि राम।
वालि कनक तौरै श्रवन अगद कौनैं काम॥ ४॥

---

२ रा छद—१ ला अर्थ—वासुदेव=परमात्मा। प्रद्युम्न=काम, विषयादि की कामना। अनिरुद्ध=बेरोक, स्वतन्त्र, यथेच्छ अनर्गल प्रवृत्ति से। सकर्षण=सयम, विषयादि से मन को खैंचना।—२ रा अर्थ—वासुदेव=श्रीकृष्ण। प्रद्युम्न=श्रीकृष्ण के पुत्र। अनिरुद्ध=श्रीकृष्ण के पौत्र, प्रद्युम्न के बेटे। सकर्षण=बलरामजी, श्रीकृष्ण के बड़े भाई। यों चारों पवित्र नाम एक साथ आये हैं। इनमें से उक्त प्रथम अर्थ निकलता है।

३ रा दोहा—पहिला अर्थ—शत्रुओं का—(काम, क्रोध, लोभ, मोहादि का) घन (समूह) इस शरीर वा अन्तःकरण में भरत (भरता हुआ, अन्दर प्रवेश करता हुआ) जानकर, प्रीति (भक्ति, तल्लीनता) का लक्ष्य राम (परमात्मा) में सीता (सिंचने से, पूर्ण ओत प्रोत लगा देने से) शांति (परमानंद उत्तम अवस्था) सदा रहती है वा रखते हैं। सतन (परमात्मा के प्यारे भक्त साधु जनों) की यही रीति (प्रक्रिया वा विधि) है।—दूसरा अर्थ—राम=रामचन्द्रजी। लक्ष्मण=रामचन्द्र के तीसरे छोटे भाई। शत्रुघन=रामचन्द्र के चौथे छोटे भाई। भरत=रामचन्द्र के दूसरे छोटे भाई। सीता=जानकीजी, रामचन्द्रजी की राणी। ये पांच नाम निकले हैं, इनही द्वारा उक्त अर्थ भासमान होता है।

४—जानि कैं=यह जान करके, अथवा ज्ञान प्राप्त कर लेने की अवस्था मान (अभिमान अहंकार) को हनू (मारूं अर्थात् अपापमार गुणातीत हो जाऊं) और सुग्रीवहि (अच्छे गले वा रागसे अथवा सुघरता से) राम (परमात्मा) को निरन्तर रटि (भजता रहूं)। यह अगद (आभूषण) कनक वालि (सोन की

जल सोइ जायगा दिल किया सुंदर

फ़कीरी (में) फिरत फ़ारिक जानि सो

उसका नाव दिल में इश्क उपज

चौकी बंध

॥ चामर छन्द ॥ दरम्म नें उसका नाव दिल मे इश्क उपजै दरद।
दरदवंद पुकार करें होइ सब सों फरद॥
दर फ़कीरी (में) फिरत फारिक जानि सोई मरद।
दर मजल सोइ जायगा दिल किया सुन्दर मरद॥४॥

इसके पढ़ने की विधि।

चित्र काव्य के चित्र के मध्य से 'द' अक्षर से प्रारंभ करके 'नें' अक्षर को कूदतक पढ़ कर उसके आगे पार्श्व मे 'उसका' से लगाकर 'जै' तक पढ़ कर अंदर का 'दरद' शब्द पढ़ें। यों एक चरण प्रथम का हो गया। अब उसही मध्यस्थ 'द' से प्रारम्भ कर फिर उलटा 'दरद' शब्द को पढ़कर दूसरे पार्श्व मे के 'वंद' से 'सों' तक पढ़ते हुए अंदर के 'फरद' शब्द को पढ़ें। यहा दूसरा चरण हो चुका। फिर वैसे ही उस मध्य के 'द' से पार्श्व तीसरे के 'कीरी' आदि को पढ़ते हुए कोने के 'ई' को पढ़ कर अंदर के 'मरद' शब्द को पढ़ें। यों तीसरा चरण हो गया। अन्त मे फिर उसही मध्यवर्ती 'द' से पार्श्व चौथे के शब्दों को पढ़ते हुए 'सुन्दर मरद' पर अन्दर छन्द को समाप्त करें। चौथा चरण हो गया॥

त्यागी माया देवकी कियौ जसोमति हेत।
पिवै अमी रस गोपिका कान्ह मिले कुरु खेत॥ ५॥
राम राम रटिवौ करहु रामा रमा निवारि।
धर्म धाम में प्रगट है काम काम कौ मारि॥ ६॥

बाली कान में पहनने की) जिस काम की जिससे कान ही टूटने लग जाय। यहाँ शरीर और उसके विषयानन्द से अभिप्राय है, कि इस विषयलोलुपता का आनन्द वास्तव में आत्मा का परम शत्रु अहितकारी है। इससे उल्टी हानि होती है—अधोगति और नरक निवास हो जाता है। अतः त्यागने योग्य है।—दूसरा अर्थ—हनुमान, जानकी, सुग्रीव, बाली, अगद—ये नाम निकलते हैं स्पष्ट ही जिनके अन्दर से उक्त अर्थ आता है।

५—देव (परमात्मा) की माया (त्रिगुणात्मक प्रकृति) को त्यागी (जीत ली) और जसोमति (शुद्ध बुद्धि से) जैसा भी परमोत्कृष्ट हेत (प्रेम-पराभक्तिभाव) किया। गोपि का (अन्तरात्मा में—भ्रमर गुफा में छिपा) प्रेम (पराभक्ति) का अमीरस (अमृत—ब्रह्मानन्द) को पान करै, मग्न हो जाय। क्योंकि कुरुषेत (धर्म का मूल क्षेत्र) पवित्र अन्त करण—सच्चा हृदय जो है, उसमें कान्ह (कृष्ण-परमात्मा) मिले (प्राप्त हुए)। २ रा अर्थ—इसमें माया (वसुदेव की कन्या), देवकी (वसुदेव की राणी, कृष्णजी की जननी)। जसोमति=यशोदा कृष्णजी को पालन करनेवाली माता। गोपिका। कान्ह। कुरुक्षेत्र। ये नाम स्पष्ट खुलते हैं। श्रीकृष्ण ने अपनी जननी देवकी को छोड़कर गोकुल वृन्दाबन में जसोदाजी को माता जान प्रेम किया। वहां बसने से यह फल अधिक हुआ कि गोप गोपिकाओं को पराभक्ति मिली। वे प्रेम की धजा कहाई। कुरुखेत वा प्रभासक्षेत्र में बिछुड़े कृष्ण फिर मिले।

६—अर्थ स्पष्टसा ही है—रामनाम बारबार भजते रहो। रमा (लक्ष्मी, धनधाम) वा लोभ को। रमा (स्त्री, कामिनी, काम) को निवारि (तजकर)। धाम धाम (घट घट) में परमात्मा की सत्ता चेतनरूप से अनभासित होती है। काम (कामदेव, विषय) और काम (कर्म) को मारि (निवृत्त) वा त्याग कर।

गो पर गो चारत फिर्‍यौ गोरस पोयौ मन्द।
गोरषनाथ न ह्वै सक्यौ गोविन्द गह्यौ न चन्द॥ ७॥
बार बार गणियौ कियौ बार गई सब बीति।
बार बार क्यौं फिरत है बार बार मन जीति॥ ८॥
अर्क हि त्यागै जानि कैं चन्दन जाकै पास।
ता राजा कै संग ह्वै नभ मैं कियौ निवास॥ ९॥

७—गो इंद्रियों का चार (व्यवहार) ही करता रहा और भटकता फिरा। गोरस (ब्रह्मानन्द वा ज्ञान का आनन्द) खो दिया, हे मंदबुद्धि मुर्ख!। योग की क्रियाएं करता रहा परन्तु श्रीगुरु गोरक्षनाथ की सी सिद्धियां प्राप्त नहीं कर सका। गोविंद (परमात्मा) की प्राप्ति भी नहीं हो सकी और न चन्द (चन्द्रमा की सी शीतलतामय शांति ही) पा सका। वा कोरी गायें ही चराता फिरा उनसे दुग्ध पाकर गोरस की प्राप्ति कर नहीं सका। गो (गाय को रख, पाल करके) रख कर भी उनका नाथ (स्वामी) अर्थात् गोपाल (भगवद्भक्त) नहीं हो सका। गो (इंद्रिय) का विंद स्वामी मन गह्यौ (वश) में नहीं कर सका। और न चन्द (परमात्मारूपी सूर्य से प्रकाश पानेवाला जीवात्मा चांद) को ही ध्यान, योग वा भक्ति से परमात्मा में (उसके चरणों में) गह्यौ (लीन कर सका)।

८—बार बार (बारुं बार, बेर बेर में) द्रव्य को मुद्राओं को गिण गिण कर, धन संग्रह किया। इसही में बार (समय, आयु) बीत गई। बार बार (द्वार द्वार, घर घर, मत मतांतरों में) क्यों भटकता है। मन को प्रत्येक समय निरंतर बहिर्मुखता वा विषयों से निकाल कर अन्तर्मुख करके जीति (वशकर, एकाग्र करता रह)।

९—जिसके पास चन्दन है वह पुरुष अर्क (आकड़े, मदार) को त्याग देता है। आत्मानन्दरूपी चन्दन के सामने विषयानन्द आकड़ा सदश कटु है। जिस राजा (परमेश्वर) के संग (सामीप्य मोक्ष) प्राप्त किया जो नभ (गगन मंडल-शून्य लोक-अनन्तता) में निवास कियो (प्रविष्ट है) सर्व व्यापक है। दूसरा अर्थ—

अग्नि बाण करि चौगुनें लक्षण एकहु नांहिं।
अनुड्वान सो जांनिये संमुम्फि देपि मन मांहि॥ १०॥
मिश्री निद्रा पंडसुत चतु रक्षर त्रय नाम।
पीयें आयें अरु मिलें सुख है आठौ जाम॥ ११॥
ऋषी करण वसुदेव सुत इनके अर्थ हिं जांनि।
तीन नाम तिनमें प्रगट चतुरक्षर पहिचांनि॥ १२॥
रामार्पण सब करत हैं कृष्णार्पण नहिं कोइ।
कृष्णार्पण कृष्ण हिं मिलै रामार्पण घर षोइ॥ १३॥
रामा पाइ रवि पुत्र की तर जो है पर नारि।
दास रहै सो दुःख में तीनौं उलटि बिचारि॥ १४॥

अर्क=सूर्य। चद=चन्द्रमा। तारा=नक्षत्र। नभ=आकाश मडल। ये शब्द ज्योतिष सम्बन्धी इसमें से निकलते हैं।—

१० वां दोहा-अग्नि=१ एक। बाण=पांच ५। १+५=६। ६ के चौगुने=२४ चौबीस। चौबीस लक्षण में से एक भी जिस पुरुष में न हो, वह पुरुष अनुड्वान=बैल है, मूर्ख है।

११—मिश्री पिये (मीठा पीने से) निद्रा लिये (सर्वरोग हरी निद्रा, गहरी नींद से) पडसुत=युधिष्ठिर=धर्म—धर्म मिले (धर्म की प्राप्ति से)। (इन चार २ अक्षर वाले शब्दों के अभिप्राय से सुख होवै।

१२—ऋषी=ज्ञानी। करण=दानी। वसुदेवसुत=कृष्ण=योगी।

१३—रामा=स्त्री (इससे स्थूल प्रेम-विषय वासना) के अर्थ सब (लौकिक) जन संग्रह करते हैं। स्त्री पुत्रादि में मोह कर सर्वस्व खोते हैं। परन्तु कृष्ण (परमात्मा) के अर्थ दानादि, ध्यान, ज्ञान नहीं करते। प्रथम से अनिष्ट, द्वितीय से इष्ट की प्राप्ति है।

१४—रमा का सुल्टा—मार। रविपत्र=यम। तर का सल्टा=रत, अनरक्त, आसक्त। दास का सुल्टा सदा।

रसु सोई अमृत पिवै रन सोई जिह ज्ञान।
शुप सोई जो बुद्धि बिन तीनों उलटे जान ॥ १५ ॥
तारी बाजै कुभ ज्यों पैरा गर्ब गुमांन।
लैबौ मिथ्या राति दिन लाभ न होइ निदांन ॥ १६ ॥
तरक बुराई बहुत बिधि हैरिप माया जाल।
नरम होइ पल एक मैं करन जाइ तत्काल ॥ १७ ॥
मरा मना भजियौ करौ गरा पदो नहिं कोइ।
ईसो धुसा जानिये हूका पैलि न सोइ ॥ १८ ॥
नयराना व्यापक सकल रकारानि सब ठौर।
वदेसुवा सब मैं बसै मीनानय सिर मौर ॥ १९ ॥
नाकरिये नहिं मांगते कछून लागत दांम।
रैमानै जु त्रिपा धुक्कै पी पाणी बिश्राम ॥ २० ॥

---

१५ वां दोहा—रसु का सुलटा—सुर, देवता। रन का सुलटा—नर, मनुष्य। शुप का सुलटा—पशु, मूर्ख।

१६ वां दोहा—तारी का सुलटा—रीता। पैरा का सुलटा—रापै। लैबौ का सुलटा—बौलै।

१७—तरक का सुलटा—करत। हैरिप का सुलटा, परि है। नरम का सुलटा, मरन है। करन का सुलटा, नरक।

१८—मरा मना का सुलटा—नाम राम—राम नाम। गरापदो का सुलटा—दोष राग=राग दोष। ईसो धुसा का सुलटा—साधू सोई। हूका पैलि का सुलटा—लिपै काहू–काहू (न) लिपै।

१९—नयराना का सुलटा—नारायण। रकारानि का सुलटा—निराकार। वदे सुवा का सुलटा—वासुदेव। मीनानय का सुलटा—यननामी। जिसके बहुत नाम हों। अनंत गुणवाला।

कर्म काटि न्यारा भया धीसौं सिरवा संत।
रमैं रैनि दिन राम सौं जीवै ज्यौं भगवंत ॥ २१ ॥
नाम हृदै निश दिन सुनै मगन रहै सब जांम।
देपै पूरन ब्रह्म कौं वही एक विश्रांम ॥ २२ ॥
॥ इति गूढार्थ ॥ २ ॥

॥ अथ आद्यक्षरी ॥❀

दोहा

स्वा ति बून्द चातक रटै, मी न नीर बिन छीन॥
दा दू जीयौ रामहित, दू सर भाव न कीन॥ १ ॥
स मदृष्टि सब आतमा, छ्य क्त किये गुण देह॥
क र्म काट लागै नहीं, रि दै बिचार सु येह॥ २ ॥

२०—२१—२२—दोहों में कोई विशेष टीकायोग्य गूढार्थ नहीं दिखाई देता है॥

॥ इति गूढार्थ की सुन्दरानन्दी टीका ॥

❀ इन आठ दोहों में आठ अक्षरों का यह दोहा स्वा० सु० दा० जी ने इस ढग से दिया है कि एक २ अक्षर, एक २ दोहे के पाद के आदि में आ गया है। चित्रकाव्य के भेदों में 'आद्यक्षरी' भी एक चतुराई होती है। यह अंतर्लापिका का एक भेद है—("अलंकार मञ्जूषा" पृ० २१)—

दोहा यह है:—

स्वा–मी–दा–दू–स–छ्य–क–रि ।भ–जे–नि–रं–ज–न–ना–थ–।।
ति–न–ही–दी–या–आ–पु–ने ।सुं–द–र–कै–सि–र–हा–थ–।।

१—चातक=पपीहा। मीन=मछली।

२—छयक=छूटे। मिटे। काट=मैल।

भव जल राचे बूडते, जे आये उन पास॥
निर्भै कीये पलक मैं, रंच न जम की त्रास॥ ३॥
जन्म मरण तिनि के मिटे, नजरि परे जे कोइ॥
नाटक मैं नाचै नहीं, थकित भये थिर होइ॥ ४॥
तिरत न लागी वार कछु, नवका दीयौ नांम॥
हींन जाति हरि कौं मिले दीरघ पायौ धांम॥ ५॥
या मैं फेर न सार कछु आशा पूरइ आइ॥
पुन्य पाप के फन्द तें, ते सब दिये छुडाइ॥ ६॥
संन्य माहिं सूरय उदय दश हूं दिशा प्रकाश॥
रहै निरन्तर मग्न है, कैसौ जन्म विनाश॥ ७॥
सिद्ध भये सब साधि कैं, रही न कोऊ शंक॥
हारि जीत अब को करै, थपै और ई अंक॥ ८॥

॥ इति आद्यक्षरी ॥ २ ॥

५—दीरघ=बड़ा, विशाल।

७—सून्य=शून्यावस्था। निर्वृत्ति का स्थान। सूरय=ब्रह्म का प्रकाश। कै=किये। सौ=सारे। वा अनेक।

८—साधिकै=साधन करके। अभ्यास के बल से। हार जीत=जीवन जजाल का जूआ खेल। थपे=स्थापित हो गये, बण गये। अंक=हिसाब, लेख। कर्म रेखा॥

॥ अथ आदि अंत अक्षर भेद ॥ ४ ॥

दोहा

येकाकी जेई भये । करी न कोई टेक ॥
येक ब्रह्म सों मिलि गये । कमधज साधु अनेक ॥ १ ॥
दोऊ कुल तें ह्वै जुदो । इन के संग न जाइ ॥
दोप छाडि पावै मुदो । इहा उहा सुख पाइ ॥ २ ॥
तीनौं पन मैं ह्वै जती । नर शिख पावै चैन ॥
तीक्षण होइ महा मती । नर हरि देषै नैन ॥ ३ ॥

आद्यन्ताक्षरी मे यह छंद है—ये क ये क दो इ दो इ । ती न ती न चा रि चा रि । पां च पां च सा त सा त ।

(१) त्यागी, अकेला—"एकाकी यतचित्तात्मा" (गीता) टेक=हठ, तर्क वितर्क, वाद विवाद, संदेहादि । कमधज=कबधज—महावीर, शूरताधारी, जिन्होंने अपना सिर भक्ति ज्ञान में दे दिया और काम क्रोध लोभ मोह विषयादि से लड़े ।

(२) दोऊ कुल=हिन्दू और मुसलमान । अथवा स्त्री पुत्रादि सम्बन्धियों का कुल और विषय और इन्द्रियादि का कुल । मुदो=मुद्दआ (अ॰)—असल मतलब, प्रधान अर्थ वा प्रयोजन (ज्ञान भक्ति वा ध्येय परमात्मतत्व की प्राप्ति) । इहां उहां=इस लोक में और परलोक में ।

(३) तीनौंपन=बालकाल, युवावस्था और वृद्धावस्था । अर्थात् बालब्रह्मचारी और सयमी—जैसे कि सुन्दरदासजी स्वयम् थे । चैन पाने का उनका निजका अनुभव या सोही कहा है । मती=बुद्धि महा तीक्ष्ण (तेज, तीव्र) हो जैसे वे आप तेज़ अक्ल के थे । नर हरि=नर (भक्त वा ज्ञानी जन) हरि (परमात्मा) को देखें—साक्षात् अनुभव करै । वा नर हरि=नृसिंह (भगवान) ।

चारि बेदकी सुनि रिचा । रिस आपनी निवारि ॥
चाहि छाडि ज्यौं ह्वै सचा । रिण सिर तैं जु उतारि ॥ ४ ॥
पांवन नाम सदा जपां । चरन कमल चित राच ॥
पांनि ग्रहण कैसें थपां । चमकि कहैं सुख साच ॥ ५ ॥
साध संग ऊंची दसा । तम रज कौ ह्वै पात ॥
सार सुधा पावै उसा । तत दरसी कुशलात ॥ ६ ॥
आयौ ठाहर अवस आ । ठहरायौ दिठ पीठ ॥
आशा तृष्णा छाडि आ । ठवकि लियौ मन धीठ ॥ ७ ॥

---

(४)—रिचा=ऋचा, मंत्र । रिस=क्रोध, हठ । चाहि=कामना । सचा=निष्कपट, भगवान से सच्चा प्रेम । रिण=ऋण । तीन प्रकार के ऋणों (कर्जों) से ज्ञानी पुरुष उऋण होकर उतार देता है—पितृऋण, ऋषि ऋण और देव ऋण ।

(५)—पांवन=पवित्र । जपां=जपते रहैं । राच=रचाकर, खूब लगा कर । पांनिग्रहण—पति परमेश्वर से स्त्री-पुरुष का सा गाढ़ प्रेम । कैसे थपां=स्थापन करैं, जोड़ैं । चमकि=सतर्क, सावधान होकर, ससार के धोखे से चमक कर । सदा सत्यव्रत धारण करैं ।

(६)—दसा=दशा, स्थिति, दर्जा, मंजिल । तम रज=तमोगुण और रजोगुण का पात (गिराव) निवारण होकर सतोगुण (शांतिभाव) उत्पन्न हो या पावै । उसा=वैसा जैसा कि हरेक आदमी को नहीं मिलता । अत्यन्त उत्कृष्ट । महान । ततदरसी=तत्वदर्शी, ज्ञानी । कुशलात=शांति, कैवल्य की अवस्था । योगक्षेम ॥

(७)—चंचल मन अष्टांग योग साधन से अपनी ठाहर (ठौर=स्थान, जगह, अन्तरात्मा में स्थिर निश्चल) आही तो गया । दिठ पीठ=दृष्टि या पृष्ठ पराछें, सम्मुख या पीठ पीछे, आराक्ष या परोक्ष । आ=अब, अब ऐसे ध्यान या यतन के

घेरि पंच पर्वत लघे। रिद्धि सिद्धि दी डारि॥
माती हरि रस सों उमा। रिझये शिव शिवनारि॥ ८॥
रापत काहे न बापुरा। मसकति करि कै माम॥
नास करै मति आपना। मरद होइ तज काम॥ ९॥
लेवै तौ हरि नाम ले। हरि सौं करै सनेह॥
देवै तौ उपदेश दे। हम जानत हैं येह॥ १०॥
तापस कै काचा मता। तप करि जारत गात॥
माल मुलक चाहै रमा। तरसत ही दिन जात॥ ११॥

साधन से। ठबकि=रोक लिया। धीठ=ढीठ धृष्ट।

(८)—पंच पर्वत=पांच इन्द्रियां वा पंचतत्व जीते। लघे=उलांग गये। रिद्धिसिद्धि=करामातें। "करामात कल्फ है" (दादूजी का वचन) ऐसा समझ छिटका दी। उमा=पार्वती, प्रकृति अपने प्रवृत्ति के स्वभाव को छोड़ निवृत्ति में लग गई। शिवनारि=पार्वती, माया। शिव=परमात्मा, परम पुरुष को प्रसन्न किया॥

(९)—बापुरा=बेचारा, दीनजन। माम=अहंकार। मसकति=मशक्कत (अ०) मेहनत, साधन, अभ्यास। अपना=आत्मा का। अज्ञान वा कुकर्म से अपनी आत्मा का अकल्याण मत कर। मरद=मर्द (फा०) वीर होकर काम (कामनाओं) को त्याग दे॥

(१०)—लेने देने का व्यवहार इतना ही उत्तम है कि लेने को हरि नाम है देने को सत्संग'। 'साधुजन लेबोही करतु हैं'। "साधुजन देबो ही करतु हैं"। ये दोनों सवैया सु० दा० जी के एसे ही अर्थों को बताते हैं।

(११)—जो तपस्वी तप करके कच्चा मता (मनसूबा) कर लेता है, तप से डिग जाता है, वह अपने शरीर को मानों वृथा ही जलाता गलाता है। जिसन संसार के धन, जन, राज्य लक्ष्मी की प्राप्ति की कामना और लालसा में तरसते ही जीवन गमाया। वह वृथा जीया।

गेरत नग नर जग मगे । हग्निाक्षी अति प्रेह ॥
येकन जान्यौ जिनि किये । हठ सिर डारी पेह ॥ १२ ॥
जाप जपे बिन है सजा । गिरा अमी रस पागि ॥
भाव रापि सज्जन सभा । गिर परि चरनहु लागि ॥ १३ ॥
माधवजी भजि त्यागि मा । रस पी वारंवार ॥
लाभ कौन यातें भला । रहै सुरति इकतार ॥ १४ ॥
जाल पसार्यौ है अजा । हद बेहद नहिं नाह ॥
राति दिवस आवै जरा । हरि भजि करि निर्वाह ॥ १५ ॥

(१२)—मृगनयनी स्त्री से अति प्रेम करके रति में अपने जोहर (वीर्य) का क्षय कर, जग मगे (जगत के मार्ग में—विषयानन्द में) अनुरक्त रह कर, एक अद्वैत परमात्मा को नहीं जाना । उन्होंने तो हठ कर अपने जीवन को धूल में मिला दिया।

(१३)—रामनाम के जपे बिना (पुनर्जन्म के भोगों का) दण्ड मिलता है । इस लिये जिह्वा (वाणी) से अमृत भरे नाम संकीर्तन में जुटजा । साधु संगति में श्रद्धा रख । उनके और भगवान के चरणों में पड़जा ।

(१४)—मा (लक्ष्मी, धनादि सम्पत्ति) त्याग कर भगवान को लगकर भजता रह । नामामृत सदा पीता रह । सुरति (भगवान में सच्ची रति या वृत्ति) एक तार से लगातार इकसार लगी रहने से बढ़कर और अच्छा लाभ कुछ भी संसार में नहीं है ।

(१५)—अजा—अजन्मा (माया) ने जीवों पर मोहजाल फैला रक्खा है जैसे शिकारी हिरन आदि को फांसने का । शिकारी के जाल की तो कोई हद या ओर-छोर भी होता है । परन्तु मायाजाल की कोई सीमा नहीं है और न इसके नाह (फन्दों या बंधनों) की कोई हद ही है । भगवान का भजकर इस फंद से निकल कर जीवन को बिता ॥

बास करत सब जग मुवा। रन बन चढे पहार॥
पाप कटै न बिना कृपा। रटि लै सिरजन हार॥ १६॥

॥ इति आद्यंताक्षरी ॥ ४ ॥

॥ अथ मध्याक्षरी ॥

छप्पय

शंकर कर कहि कौंन ॥ पिनाक ॥
कौंन अंबुज रस रंगा ॥ भ्रमर ॥
अति निलज्ज कहि कौंन ॥ गनिका ॥
कौंन सुनि नाद हिं भंगा ॥ कुरंग ॥

---

(१६)—ससार वा जगत जन्मता है मरता है और अपने वसने के अनेक उपाय करता है। अरण्य, वन वा पहाड़ों पर भी वास करता है वा एकांत वास करता है। परन्तु विना भगवत्कृपा के पाप नहीं कट सकते। इस लिए बनानेवाले मालिक को भजता रह ॥

आ ठ आ ठ घे रि घे रि मा रि। रा म ना म ले ह दे हा ॥ ता त मा त गे ह ये ह। जा गि भा गि मा र डा र। जा ह रा ह वा र पा र॥ (१६ तक)॥

॥ इति आद्यंताक्षरी ॥ ४ ॥

मध्याक्षरी—तीनों मध्याक्षरी छन्द अंतर्लापिका के भेद हैं, क्योंकि प्रश्नों के उत्तर छन्दों ही में दिये हैं। यही नियम है (देखो "प्रियाप्रकाश" पृ० ४११)

(१)—पिनाक= महादेवजी का धनुष। गनिका=वेश्या। कुरंग=हिरण—नाद (गाना) सुनकर स्तब्ध हो जाता है अथवा इसका सुनकर चमक जाना है। कुंजर=हाथी जो विषय-मद में करतबी हथिणी को देख कर उस पर झपटता है और

काग अन्ध कहि कौंन ॥ कुंजर ॥
कौंन कै देषत डरिये ॥ पंनग ॥
हरिजन त्यागत कौंन ॥ क्लेश ॥
कौंन षाये तें मरिये ॥ मोहुरो ॥
कहि कौंन धात जग मैं रवन ॥ कनक ॥
रसना कौं को देत वर ॥ सारदा ॥
अब सुन्दर द्वै पष त्यागि कै ।
'नाम निरंजन लेहु नर' ॥ १ ॥* (१) ॥

सब गुन युक्त सु कौंन ॥ विचित्र ॥
कौंन सकुचै नहि देतें ॥ उदार ॥
विष्णु पारषद कौंन ॥ सुनंद ॥
दूर दुरत कौंन तजे तें ॥ मदन ॥

खड्डे में जा पड़ता है । पंनग=सर्प-विषधर काला सांप । क्लेश=क्लेश । भगवत् की भक्ति या ब्रह्म ध्यान के आनन्द में उनको संसार का दुःख नहीं गमता है । मोहुरो=ज़हरी मोहरा । रवन=(रमण) रम्य, सुन्दर । कनक=स्वर्ण, सोना । वर=वरदान सारदा=शारदा, सरस्वती । द्वै पष=दोनों पक्ष—हिन्दू और मुसल्मान का । निरंजन मतवाले दोनों से भिन्न हैं ॥—

* इसका उत्तर एक साधु पुरोहित श्री नारायणजी द्वारा प्राप्त हुआ सो यों है:— पांकज करहि विलास भ्रमर अरुज रस रंगा । अति निलज्ज गनिका सु कुरंग सुनि नादहि भंगा ॥ कहि कुंजर (गंजन) कामांध अनल (पंनग) देखत ही डरिये । हरिजन त्याग क्लेश महुर (मदन) खाये तें मरिये । कनक धात जगमें रवन रसना को दे सारद वर । इनमें द्वै पष त्यागि के नाम निरंजन लेहु नर ॥ १ ॥

(२)—विचित्र=चतुर अर्जुन प्रसिद्ध का । उदार=दानी । विष्णु पारषद=ईश्वर का सखा जिसका नाम सुनंद था । मदन=कामदेव । अचेत=ज्ञानहीन जिनमें न हो, मूर्ख । पवन=वायु, पवन । मन्मथ=कामदेव, कामोद्दीपक । मघवा=इन्द्र, मेघ, बादल ।

समुझत नहीं सु कौन ॥ अचेत ॥
कौन हरि सुमिरत भागै ॥ पातग ॥
वनिक वृत्ति कहि कौन ॥ वन्यज ॥
कौन । जल वर्षन लागै ॥ मघवा ॥
कहि कौन नृपति तजि द्वन्द्व सब ॥ जनक ॥
सदा रहै मध्यस्थ मन ॥
यौं सुन्दर आपुहि जानि तू।
'चिदानन्द चेतन्य घन' ॥ २ ॥

चौपई *

पोवै कहा सूत्र के मांहि ॥ मनिका ॥
नारद सुनत चालै को नांहि ॥ कुरंग ॥
सीस कवन कै अंकुश गंजन ॥ कुंजर ॥
को विदेह भजि भयौ निरजन ॥ जनक ॥

जनक=वैदेही जनकराजा जो सुख दुःख दोनों को जीत चुके थे और फिर राज्य करते थे और उदासीन (मध्यवर्ती) रहते थे। शुक को ज्ञान देने वाले। "उत्तर वरण जु बाहिरै बहिर्लापिका होय। अंतर अन्तरलापिका यह जानै सब कोय"। (कवि प्रिया की टीका। प्रियाप्रकाश पृ० ४१०)

* इसमें से नि-र-ज-न-भ-ग-व-त-सु-न्द-दे-व-दा-दू-दा-स। यह निकलता है।

(१)—नाद=उत्तम गान सुनते ही हिरण खड़ा रह कर सुना करता है। शिकारी को मौका मिल जाता है। गंजन=मारनेवाला। वश करने वाला। विदेह=जिसको योगारूढ़ता या ज्ञान की ऊंची गति मिल गई हो। राजा जनक कर्मयोगी थे। राज करते हुये भी इतने ज्ञानी सिद्ध थे कि परमहंस शुकदेवजी ने भी उनसे ज्ञान सीखा था, जब पिता व्यासदेव ज्ञान की पराकाष्ठा तक उनको नहीं पहुंचा सके थे।—इसही आख्यायिका के संकेत स्वरूप मध्याक्षरों में 'शुक' मुनि का नाम

कौन नगर जहां उपजै लौंन ॥ सांभर ॥
नदी नाथ सौ कहिये कौन ॥ सागर ॥
का ऊपर असवार चढन्त ॥ पवंग ॥
कहा कटै भजतें भगवन्त ॥ पातक ॥
दुखदाइक सो कहिये कौन ॥ असुर ॥
गिर कैलाश कवन को भौन ॥ शंकर ॥
पथी कौं का दीजै भेव ॥ संदेस ॥
कौन त्यागि चाले सुकदेव ॥ भवन ॥
को बन में गहि बैठै मौन ॥ उदास ॥
हस्ती के सिर शोभा कौन ॥ सिंदूर ॥
काके कीये कनक अवास ॥ सुदामा ॥
त्यागी कौन सु दादूदास ॥ ४ ॥ बासना ॥ ३ ॥

॥ इति मध्याक्षरी ॥ ५ ॥

दिया है। और इस में भगवत—निरजन—और दादूदास को साथ कहने से यह अभिप्राय है कि जैसे शुकदेव भगवत स्वरूप हो गये थे वैसे ही दादूजी ब्रह्मरूप हो गये थे। निरजन पथों मे सिद्धान्त को यही विशेषता है कि भक्तिमय-ज्ञान द्वारा ह शाघ्र अद्वैत की सिद्धि प्राप्त होती है। शुकदेवजी सैं गौड़पादाचार्य—शंकराचार्य—रामानन्द—कबीर—गोरख—नानक—दादूदयाल आदि सिद्ध महात्माओं द्वारा यह सिद्धात जगत में व्यापक होकर लाखों का इसने निस्तारा किया।

३—इन चारों चौपई छन्दों में से जो उत्तर निकलता है वह शब्द के अक्षर न होने से अर्थात् बाहर रहने से बहिर्लापिका है। और मध्य में से उत्तर निकलता है—अर्थात् उत्तरों के शब्दों के आदि के और अन्त के अक्षर छोड़ दिये जाने से बीच के अक्षर उत्तर देते हैं।

॥ अथ चित्रकाव्य के बन्ध* ॥

(१) अथ छत्र बन्ध ।

छप्पय

सुंनहुं अंक की आदि दृशाइक विधि सुत फेते ।
रस भोजन पुनि जान भनौ योगांगहि जेते ॥
जलज नाभि दल बूझि हुई कै कंचन बांनी ।
निरषि भुवन पुनि कहौ रंभ वय किती बषांनी ॥
जग मांहि जु प्रगट पुरान कै नंदन नख कर पग गनं ॥
सब साधन के सिर छत्र यह 'सुन्दर भजहु निरंजनं' ॥ १ ॥

---

* प्राचीन गुटके में ये १४ चित्रकाव्य चित्रों में दिये हैं, तथा इनमें से ७ के छंद भी पृथक् दिये हैं उनके नाम ये हैं—छत्रबंध, कमलबंध १, कमलबंध, २ चौकोबंध १, चौकोबंध २, वृक्षबंध, गोमूत्रिकाबंध । मैंने 'चित्रकाव्य' ऐसा नाम यों रक्खा है कि ये छन्द चित्रों में भी आ सकते हैं । इसलिए इनको एकस्थानी भी कर दिया है, और यही क्रम खुले पत्रे की पुस्तक का है ।

१—छत्रबंध—यह छप्पय अन्तर्लापिका की है । पदार्थों के प्रथम शब्दों के प्रथम अक्षरों से—सुं—द—र—भ—ज—हु—नि—र—ज—नं—यह पादार्थ निकलता है जो छन्द के अन्त में विद्यमान होने से अन्तर्लापिका हुई । इसकी व्याख्या दी जाती है—सुंनहु अङ्क की=अङ्कों की आदि सुन्य (शून्य है) । अथवा अंकों की आदि ऐक' १ है ऐसा सुना है । दसाइक ..=दश विधिसुत=सनकादिक ४ हैं—सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन । इनकी गिनती ४ है । और इनकी दशा सदा सर्वदा बाल्यावस्था बनी रहती है और ये अमर हैं । ब्रह्मा के ये मानसपुत्र हैं । सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए थे ।—रस भोजन=भोजन के पदार्थों के रस छह हैं=मीठा,

खट्टा, खारा, चरपरा, कडुवा, और कसैला। योगांग=आठ हैं—१ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम ५ ध्यान ६ धारणा ७ प्रत्याहार, ८ समाधि। जलज नाभिदल= ब्रह्मा के कमल के (जिसमें वह प्रगटा) १० दल (पांखड़ियां) हैं। कवल बानी=उत्तम सोने के १२ बानी कही जाती हैं। यह सोना "बारहबानी का" है, ऐसा कहते हैं। भुवन=लोक १४ हैं—७ स्वर्ग और ७ पाताल। (स्वर्ग ७—भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक तपलोक, सत्यलोक। ७ पाताल—तल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल।) रम्भवय=रम्भा इन्द्रकी अप्सरा का सदा १६ वर्ष की वय रहती है। पुराण=१८ प्रसिद्ध हैं (पद्म, विष्णु, वराह, वामन, शिव अग्नि, ब्रह्म, ब्रह्मांड ब्रह्मवैवर्त, १० भविष्य, भागवत, मार्कंडेय, मत्स्य, नारद, स्कंद, कूर्म, लिंग, १८ गरुड।) नदन=पुत्र (जन्म लेते ही) के २० नख होते हैं। सब साधन के =यावन्मात्र भी जितने ज्ञान कर्म और भक्ति के साधन (प्रक्रिया—अभ्यास) मुक्ति या ब्रह्मैक्य के लिए हैं उन सबका शिरमोर यह निरंजन निराकार शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म परमात्मा का भजन है। उसको भजना चाहिये। इस छप्पय के पदों के आद्याक्षरों में संख्याएं हैं—०—१—(२)—८—६—८—१०—१२—१४—१६—१८—२०। इसका यह अभिप्राय लिया जा सकता है कि शून्य में से क्रमशः सब सृष्टि हुई। जो बीस तक संख्या ली गई इसका अर्थ यह माना जा सकता है कि निरंजन का भजन बीसों बिस्वा (पूर्णतया) उत्तम और सब में ऊंचा है, जिसमें सब साधन का प्रभाव वा फल अवश्य ही सुप्राप्य और सद्गति देनेवाला है।—इस छप्पय का उत्तर वा संख्याओं का उल्लेख एक दूसरे छप्पय में चित्रकाव्य के चित्र में दाहिनी तरफ को छत्र के नीचे दिया हुआ है। सुविधा के लिए यहां भी लिए देते हैं।—"सुन्यां आदि एकड़ा, दसा सनकादिक एक। रस भाजन पट् कहैं, भनत अराग विवेक॥ जलजनाभि दल दसम, हुते कलि बानो बारा। निरखि लोक दसतारि, रंभ षोडस ब्रह्म प्यारा॥ जग मांहि पुरान सु अट्ठदस, नंदन नख बीसहु गन। सब साधन के सिर छत्र यह, सुन्दर भजहु निरंजन"॥ १॥ सब साधन का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि सर्व साधुओं (सन्त, महात्मा, योगी, भक्त आदिकों) के सिर पर छत्र है। निरंजन का भजन सबका रक्षक है। इसको छत्रछाया में सब

(२) अथ कमल बंध

छप्पय

दरसन अति दुख हरन, रसन रस प्रेम बढावन ॥
सकल विकल भ्रम दलन धरन बरनौ गुन पावन ॥
सुदरन कृपा निधान, पवरि जन की प्रतिपालन ॥
हलन चलन सब करन, रितय करि भरि पुनि ढारन ॥
सठ संमझि विचारि संभारि मन, रहत न काहे परि चरन ॥
नम नरक निवारन जानि जन, सुदर सब सुख हरि सरन ॥ २ ॥

उपासकों और ज्ञानी आदिकों की रक्षा और सिद्धि का योगक्षेम होता है। इस उत्तर की छप्पय की अर्धालियों के अ यक्षरो से भी वही पादार्थ निकलता है—सु–द–र–भ–ज–हु–नि–र–ज–नं ॥ चतुरदासजी के लिखित चित्रकाव्य के चित्र में इस ही प्रकार मूल छप्पय और उसके उत्तर की छप्पय सामने सामने दी हुई हैं। उत्तर की छप्पय उलटी लिखी हुई है। उल्टी लिखने से ही उक्त अर्धाली स्पष्ट पढ़ी जाती है और ऐसा न करते तो सुन्दर वा सगत भी नहीं रहती ॥—यहा ही यह बात भी लिख देनी उचित है कि स्वामी चतुरदासजी ने जिस पानेपर छत्रबध का चित्र लिखा है, उसी पर नीचे गोमूत्रिका के दोनों छन्दों को ऊपर नीचे लिखकर "गोमुत्रिका बध जिहाज" नाम देकर जिहाज के आकार की चेष्टा की है। परन्तु ग्रन्थकार स्वामी सुन्दरदासजी ने "गोमूत्रिका बध" ही नाम दिया है जहाज बध का नाम नहीं दिया है। अतः हमने गोमूत्रिका के आकार ही चित्र में लिखे हैं वा त्रिपदी बध भी जो मूल प्राचीन गुटके में है। गोमूत्रिका बंध के छद से (१) त्रिपदी (२) चरणगुप्त (३) कपाटबध (४) अग्निकुण्ड (५) अश्वगति बध–"कविप्रिया", "चरण चन्द्रिका" आदिक ग्रन्थों में बनने सम्भव लिखे मिलते हैं। परन्तु हम को जहाजबध नहीं मिला। असम्भव यह भी नहीं है। चतुरदासजी ने भी किसी आधार अथवा प्रमाण ही से जहाजबध बनाया होगा।—सपादक ॥

(२) कमल बन्ध १ ला—अर्थ स्पष्ट है। अत्य पद में 'नम' शब्द नमस्कार

(३) कमल बंध

छप्पय

गगन धर्यौ जिनि अधर टरत मरजाद न सागर ॥
निर्गुन ब्रह्म अपार कहै को लिपि कै कागर ॥
टगत न धरनि सुमेर हठ हि गन यक्ष भयंकर ॥
रिदय न पावत तौर बिष्णु ब्रह्मा पुनि शंकर ॥
स्वर्गादि मृत्यु पाताल तर भजत तोहि सुर असुर नर ॥
रत भये जानि सुन्दर निडर प्रगट निकट हरि बिस्वभर ॥ ३ ॥

कर ऐसा अर्थ देता है। रसन रस=जिह्वा पर नाम के उच्चारण, वा भजन करने से प्रेमानन्द बढ़ाने वाला—हरि भगवान के चरणों का आश्रय है। बिकल=बुद्धि की बिकलता। दलन=नाशक। भ्रम=अज्ञ न, द्वन्द्व। पावन (पवित्र वा पवित्र करने वाले) हरि चरणों के गुणगण। बरन बरनौ=भांति-भांति के, वा अनत प्रकार के हैं। अथवा वर जो श्रेष्ठजन (ब्रह्मादिक देव, ऋषिमुनि भी उनका न=नही। बरनौ=वर्णन कर सकते हैं। सुढरन=बहुत (दीनजनों पर) दया से द्रवीभूत (जिनका हृदय पिघला सा) होता है। खबरि=दशा पर वा ज्ञात होते ही। प्रतिपालन=पालना करने वाले, दीनजनों की बुरी दशा में सहायक। हलन चलन=जड़ को चेतन (करने वाले—अर्थात् जीवत्व) के स्रष्टा। रितय=रीते को वा रीता करके। भरि टारन=भरकर फिर ढलका देनेवाला, रीता कर देने को समर्थ—"रीता भरै भरया ढुलकावै"। नम=नमस्कार कर ॥

(३) कमलबंध २ रा—कागर=कागज, पत्र, पुस्तक। टगत न=नहीं डिगते, स्थिर हैं। हठहि=दूर हो जाते हैं। रिदय=हृदय। तौर=तेरा अथवा ढग, भेद। मृत्यु=मृत्युलोक, पृथ्वी पर। अंत पाद की अन्वय यों होगी—विश्वभर हरि को निकट में प्रगट जानि सुन्दरदास निर्भय (निडर) रत (अनुरक्त-तल्लीन) हुये (हो गये)।

(४) चौकी बंध

चामर

दरस तें उसका नाव दिल में इसक उपजै दरद ॥
दरद वंद पुकार करतें होइ सबसौं फरद ॥
दर फकीरी में फिरत फारिक जानि सोई मरद ॥
दर मजल सोई जाइगा दिल किया सुंदर सरद ॥ ४ ॥

(५) चौकी बंध।

चौपईया

या पासैं आप रहै अविनाशी देखि बिचारहु काया ॥
या काहु न जाना जगत भुलाना मोहै मोटी माया ॥
या मांटी मांहैं हीरा निकस्या सतगुरु पोज लपाया ॥
या पाल लपेट्यां सुंदर दीसै याही पासैं पाया ॥ ५ ॥

(६) गोमूत्रिका बंध

दोहा

माया दुख को मूल है काया सुख नहिं लेश।
पाया विप मागूर है आया नखतहि केश ॥ ६ ॥

---

(४) चौकीबध १ ला—दरसतें···उसके दर्शनों और नाम लेने से हृदय में प्रेम और विरह की वेदना उत्पन्न होती है। दुरद वद=दर्द मद विरह से दुखी भक्तजन। फरद=(फा०) पृथक् त्यागी। फारिक (अ०)=त्यागी। मरद=(फा०) मर्द, पुरुषार्थी। सरद (फा०) सर्द, शांत।

(५) चौकीबध २ रा—या पासैं=इस देह (काया) धारी मनुष्य के पास (निकट=हृदय में) परमात्मा रहता है। मोहै=क्योंकि भगवान की माया मोह जाल फैला कर भुला देती है। मांटी=काया जो मृत्तिका आदि से बनी है और मरने पर मिट्टी हो जाती है। हीरा=परमात्मा रूप अमूल्य रत्न। लपाया=बताया। पाल लपेट्यां=यह शरीर 'चामकी पुतली' है।

(६) गोमूत्रिका बंध—इसकी भी व्याख्या "चित्र०" से दी जाती है।

गोजी गोजी नर निये निंदु पाल रह राम।
दक्ष विवेकी पाइ है चतुरक्षर विश्राम ॥ ७ ॥ ॐ

यथा गोमूत्रिका—गो=बैल, वृषभ चलते हुए मूतै और उसकी मूत्रधारा टेढी मेढी भूमि पर उपड़ै उसके आकार का लहरिया सा हो उसका चित्र बंध—इसकी विधि "सूधी पंक्ति युगल लिखो तिर्यक बाचि सुजान। सूधे तिर्यक शब्द इक गोमूत्रिका प्रमान'। १५। (चित्र चंद्रिका ग्रन्थ पृ० ४४।)—(गोमूत्रिका के प्रमाण दोहे की व्याख्या)—दो पंक्तियां छन्द की सीधी लिखैं। उन्हे पहिले सीधी रीति से पढ़िये। फिर दोनों पंक्तियों के अक्षरों को एक २ छोड़ कर पढ़िये ऊपर का पहिला तो नीचे का दूसरा। (ऊपर का दूसरा तो उसके साथ नीचे का तीसरा इत्यादि) टेढ़ी रीति से दोनों रीति से पढ़ने में जहां एक ही अक्षर निकलै वहीं 'गोमूत्रिका' बंध होता है। यथा 'माया' और 'खाया' में दूसरा अक्षर-'या'-एक ही बुलाता है। ऊपर नीचे की पंक्तियों में येही बुलता है। इसको एक ही बेर लिखा जाय तब गोमूत्रिका का आकार हो जाता है ॥—अर्थ दोहे का—काया शरीर में लेशमात्र भी (वास्तविक—सात्विक) सुख नहीं है। विषयों का सुख परिणाम में दु:ख देता है। विषय सब माया के विकार मात्र हैं। मामूर=भरा हुआ—खूब भरपूर जन्म भर इन विषयों का विष खाया है। और अब शिखनख सफेद बाल भी आ गये। मरने चले परन्तु विषय नहीं घटे ॥

ॐ ७ वें छद के अन्तिम चरण में पाठांतर 'दक्ष' शब्द का 'चतुर' शब्द है।

(७) (गोमूत्रिका)—गो=इन्द्रिय। जी=जीव। इन्द्रियों के सुख को जीव जिस नर (पुरुष) ने निये (नियत=निश्चय माना) कर निर्णय कर लिया, से ठीक नहीं। विंदु (शरीर का वीर्य) पाल कर अर्थात् जितेन्द्रिय रह कर रह (रटै वा रटै) राम (भगवान को)। दक्ष=चतुर। विवेकी=ज्ञानी। चतुरक्षर=चार अक्षरों—गोबिंदजी—में विश्राम=शांति वा सुख। चित्र में गोबिंदजी निकलता है)।

(७) अथ चौपड बंध

चौपई

हों गुन जीत सहों सबकी जु। हों सनमान सयान तजों जु॥
हौं कन खावत या तन में जु। हौं बन मे तजि जात हुतौ जु॥ ८॥

(८) अथ जीनपोस बंध

उल्लाला

सरस इसक तन मन सरस। सरस नवनि करि अति सरस॥
सरस तिरत भव जल सरस। सरस लगत हरि ल्इ सरस॥ ६॥
सरस कथा सुनि कै सरस। सरस विचार उदै सरस।
सरस ध्यान धरिये सरस। सरस ज्ञान सुन्दर सरस॥१०॥

(यह छंद चित्रकाव्य का ही है ग्रन्थ में नहीं है।)

(६) अथ वृक्ष बंध

मनहर

एक ही बिटप विश्व.......... ....भ्रम भूल है॥११॥

(यह छंद "मन के अंग" में २३ वा छंद है।)

(१०) अथ वृक्ष बंध

दोहा

प्रगट विश्व यह वृक्ष है, मूला माया मूल।
महातत्व अहंकार करि, पीछे भया सथूल॥ १२॥

---

(८) (चौपड़ बंध)—हौं=मैं। गुन=माया के तीनों गुणों को। सहौं=तितिक्षा रखता हू। सनमान सयान=मान अपमान चतुराई (छल कपट आदिक)। कन=अल्प अहार। थोड़ा भोजन करता हूं॥

(९) (जीन पोशबंध)—सरस शब्द के अर्थ=(१) आनन्दमय (२) भक्ति-सहित (३) ताजा सदा रहनेवाला (४) रस सहित-"रसो वै सः"—रस ब्रह्म ही है। (५) काव्यादि में नवरस (६) भोजन में षट्रस (७) सार वस्तु (८)

शापा निगुन त्रिधा भई, सत रज तम प्रसरंत।
पंच प्रशापा जानि यों, उपशापा सु अनंत ॥ १३ ॥
अवनि नीर पावक पवन, व्योम सहित मिलि पंच॥
इनही कौ विस्तार है, जे कछु सकल प्रपंच ॥ १४ ॥
श्रोत्र तुचा दग नासिका, जिह्वा है तिन माहिं॥
ज्ञान सु इन्द्रिय पंच ये, भिन्न-भिन्न वर्त्ताहिं ॥ १५ ॥
वाक्य पानि अरु चरन पुनि, गुदा उपस्थ जु नाम॥
कर्म सु इन्द्रिय पंच ये, अपने अपने काम ॥ १६ ॥
शब्द स्पर्श जु रूप रस, गंध सहित मिलि पुष्ट॥
मन बुद्धि चित्त अहं तहां, अंतहकरन चतुष्ट ॥ १७ ॥
इन चौबीस हु तत्व कौ, वृक्ष अनूपम एक॥
सुख दुख ताके फल भये, नाना भाँति अनेक ॥ १८ ॥

स्वादिष्ट। (९) सुन्दरभाव और प्रेम पूर्वक। अत जहा जैसा अर्थ रुचै वा इच्छित हो लगालें।

(१०) (वृक्ष वध २ रा)—देखो "ऊर्ध्वमूलोऽवाक् शाखा" "। (कठ-६।१३)=विश्व ससार। प्रगट=व्यक्तरूप, स्थूल होने से इन्द्रिय और ज्ञानगोचर। मूलामाया=प्रकृति साम्यावस्था में। मूल=जड़, आदि कारण। महातत्त्व=महत् तत्व। पीछे भया स्थूल=पहिले सूक्ष्म था। फिर त्रिगुण सपर्क से वा विकृत होने से प्रकृति विश्वरूप में स्थूल हो गई। "अव्यक्ताद् व्यक्तय सर्वे" (गीता)। प्रसरत=प्रसार, विस्तार होकर महान् सृष्टि बन गई जा अनत अपरिमित है। पंच प्रशाखा=(यहां स्वामीजी ने महत्तत्व और अहकार को दो मानकर और त्रिगुण मिलाकर) पांच प्रथम शाखा=स्कन्ध, डाले माने हैं। उपशाखा=प्रपच, पचीकरण की विधि से जानने योग्य। अवनि" पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश= ५। नेत्र आदि पांच ज्ञानेन्द्रियां। शब्दादि=पांच तन्मात्राएं। वाक् आदि=पांच कर्मेन्द्रियां। मन, बुद्धि, चित्त, अहकार=अंतःकरण चतुष्टय। यों ५+५+५+५+४=२४ तत्व सांख्य में हैं।

तामें दो पक्ष बसहिं, सदा समीप रहांइ।
एक भषै फल वृक्ष के, एक कछू नहिं पांइ ॥ १९ ॥
जीवातम परमातमा, ये दो पक्षी जांन ॥
सुन्दर फल तरु के तजैं, दोऊ एक समांन ॥ २० ॥

(११) अथ नाग बंध

मनहर

जनम सिरानौ जाइ………नाग पासि परि है ॥ २१ ॥
(यह छंद 'उपदेश चितावनी' के अंग में २९ वां छंद है।)

(१२) अथ हार बंध

मनहर

जग मग पग तजि…………………धारिये ॥ २२ ॥
(यह छंद 'उपदेश चितावनी' के अङ्ग में ३० वां छंद है ॥)

*(१३) अथ कंकण बंध

दुमिला

हठ योग धरै…… …… …………दूरि करै ॥ २३ ॥
(यह छंद 'उपदेश चितावनी' के अंग मे ३२ वां छंद है ॥)

तामें...उस विश्वरूपी वृक्ष में दो पक्षी रहते हैं। (१) माया से उपहित चेतन जीव। और (२) माया से अलिप्त चेतन ब्रह्म। वृक्ष के (संसार के भोग रूपी) फलों को जीव पक्षी खाता है। जब फल खाना (संसार के भोग अर्थात् माया के विकार विषय स्वादों को) जीव पक्षी छोड़ दे, तो वही ब्रह्मस्वरूप हो जाय।—"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया..." इत्यादि (मुंडक ३।१।)

* प्राचीन गुटके में दोनों कंकणबंधों के चित्र जो दिये हैं उनमें शब्द केवल वृत्त ही में हैं। चतुरदासजी के लिखे पन्नों में जो इनके चित्र हैं वे उक्त प्रकार से भी हैं और व्यूह प्रकार से भी।

(१४) अथ कंकण बंध

दुमिला

गुरु ज्ञान गहै ·····················राज करै ॥ २४ ॥

(यह छंद 'उपदेश चितावनी' के अंग मे २३ वां छंद है ॥)

॥ इति चित्रकाव्य के बंध ॥ ६ ॥

❀॥ अथ 'कविता लक्षण' ॥

छप्पय

नख शिख शुद्ध कवित्त पढत अति नीकौ लग्गै ।
अंग हीन जो पढै सुनत कविजन उठि भग्गै ॥
अक्षर घटि बढि होइ पुडावत नर ज्यौं चल्लै ।
मात घटै बढि कोइ मनौ मतवारौ हल्लै ॥
औढेर कांण सो तुक अमिल, अर्थहीन अंधो यथा ॥
कहि सुन्दर हरिजस जीव है, हरिजस विन मृत कहि तथा ॥२५॥

अथ गण बिचार

छप्पय

माधौजी है मगण यहै है यगण कहिज्जै ।
रगण रामजी होइ सगण सगलै सु लहिज्जै ॥
तगण कहै तारक जरात सु जगण कहावै ।
भूधर भणिये भगण नगण सुनि निर्गम बतावै ॥
हरि नाम सहित जे उच्चरहिं, तिनको सुभगण अट्ठ हैं ।
यह भेद जकै जानै नहीं, सुन्दर ते नर सट्ठ हैं ॥ २६ ॥

❀ यह नाम संपादक का दिया हुआ है ॥ सं० ॥ (२५) शुद्ध और सुन्दर कविता का लक्षण कितना अच्छा कहा है। औढेर=वहँगा औढेरिया । कांण=कांणां, एकाक्षी ।

(२६) अर्थ स्पष्ट । आठों गणों (म-य-र-स-त-ज-भ-न) के उदाहरण दिये हैं । देवता वर्णन में अशुभ नहीं ।

गणों के देवता और फल

मनहर

* मय गुरु मन लघु आदि गल भय जानि,
सत इम अन्त लेहु मध्य जर मानिये।
भूमि नाक चन्द तोय वायु सो गगन सूर,
अगनि हु आठ यह देवता बखानिये॥
लक्ष्मन बुद्धि जस भय आयु भ्रमन स,
सरु वंशनाश रोग जर मृत्यु ठानिये।
अष्ट गन नाम अरु देवता समेत फल,
सुन्दर कहत या कवित्त मैं प्रमानिये॥ २॥

* मगण नगण मित भगण यगण भृत्य,
सगण रगण शत्रु जन सम नित्य हैं।
मिलै दोइ मित सिद्धि मित भृत्य जय जानि,
मित्त सम मिलै कछु लक्षण कुछित्य हैं॥
मित अरु शत्रु मिलै दुख उतपन्न होइ,
मिलें भृत्य मित करै कारिज को सत्य है।

---

* यह तारे का चिन्ह जिन छंदों पर है वे न तो प्राचीन गुटके (क) में न खुले पत्रे की पुस्तक (ख) में किन्तु केवल चतुरदासजी के हाथ के लिखे हुए रंगीन चित्रों में हैं जो पत्रे (ख) खुली पुस्तक के साथ सम्पादक को फतहपुर से मिले थे।—सम्पादक।

(१) मगण—ऽऽऽ तीनों गुरु—पृथ्वी देवता। श्री (लक्ष्मी) फल। (२) नगण—।।। तीनों लघु—स्वर्ग देवता। बुद्धि फल। (३) भगण—ऽ।।— आदि गुरु फिर दो लघु—चन्द्रमा देवता। यश फल। (४) यगण—।ऽऽ आदि में लघु फिर दो गुरु। जल देवता। आयु फल। (५) सगण—।।ऽ—पहिले दो लघु अन्त मे एक गुरु। वायु देवता। भ्रमण (विदेश गमन) फल।

दास दोइ नाश होइ भृत्य सम हानि सोइ,
सुन्दर भिरति रिपु हारि कोउ पत्य हैं ॥ ४ ॥
* सम मित साधारण समभृत्य तें विपत्ति,
सम द्वै निफल सम रिपु म्रुद्ध होइ जू।
अरि मित शून्य फल शत्रु दास त्रियनाश,
रिपु सम मिलत हि हारि होत सोइ जू॥

---

(६) तगण–SSI–प्रथम दो गुरु अन्त में एक लघु–आकाश देवता। शून्य (वंशनाश) फल। (७) जगण–ISI–मध्य में गुरु आदि अन्त में लघु। सूर्य देवता। रोग फल। (८) रगण–SIS मध्य में लघु और आदि अन्त में गुरु–अग्नि देवता। मृत्यु फल। नीचे के कोष्टकों में शुभ और अशुभ गणों को स्पष्ट लिखते हैं।

सं०	शुभगण	गण रूप	देवता	फल	मित्रादिक
१	म गण	S S S	पृथ्वी	लक्ष्मी	मित्र
२	न गण	I I I	स्वर्ग	बुद्धि	मित्र
३	भ गण	S I I	चन्द्रमा	यश	दास
४	य गण	I S S	जल	आयु	दास
५	ज गण	I S I	सूर्य	रोग	सम
६	र गण	S I S	अग्नि	मृत्यु	शत्रु
७	स गण	I I S	वायु	भ्रमण	शत्रु
८	त गण	S S I	आकाश	शून्य	सम

अरि दोइ मिले तहा प्रभु कौं हरत वह,
सुगण विचारि धरि असुभ न पोइ जू।
ह ह्म ध र ध न प भ दग्ध अक्षर आठ,
सुन्दर कहत छंद आदि देन जोइ जू ॥ (५)॥

(४) (५) इन दोनों छदों में गणों का सयुक्त शुभाशुभ फल दिया है। जिसको कोष्टक द्वारा स्पष्ट दिखाते हैं:—

दो दो गण	संबध	परस्पर का योग	योग का फल
	(आपस में	१—मित्र+मित्र ·	१—सिद्धि
गण+नगण	दोनों)	२—मित्र+दास ···	२ -जय
SS+।।।	मित्र	३—मित्र+सम ···	३—हानि
		४—मित्र+शत्रु ··	४—दुख
		१—दास + मित्र	१—कार्य सिद्धि
गण+यगण	दास	२—दास + दास	२ नाश
।।+।SS		३—दास + सम ···	३—हानि
		४—दास + शत्रु ···	४—हार (पराजय)
		१—सम + मित्र ···	१-साधारण (अल्प फल)
गण+तगण	सम	२—सम + दास ··	२—विपत्ति
S।+SS।		३—सम + सम ···	३—विफल
		४—सम + शत्रु ···	४—निरुद्ध
		१—शत्रु + मित्र ·	१—शून्य
गण+सगण	शत्रु	२—शत्रु + दास ··	२—[illegible] नाश
।S+।।S		३—शत्रु + सम ···	३—हार (पराजय)
		४—शत्रु + शत्रु ·	४—स्वामि नाश

* कका के वरन लघु बारा पडी मांहि त्रिय,
सुरां मध्य पंच लघु अआदि समान है।
युत लघु पूरब दीरघ करै आ ई ऊ ॠ,
ॡ ए ऐ ओ औ अं अः सु दीरघ बषान है॥
दूपन चालीस और भूपन च्यारि सत,
पिंगल व्याकरण काव्य कोस सौं पिछांन है।
जीतै पर सभा लपै बात पर मन हू की
सबही सराहै कवि सुन्दर कहांन है॥ ६॥

सम=उदासीन। भृत्य=दास। कुछित्य=कुत्सित, बुरा। सुंदर=मित्र (यहां यह अर्थ) उपत्य=उत्पत्ति। मुद्ध=विरोध। विरुद्ध। सोइजू=सोही। ऐसा ही निश्चय करके। प्रभु=स्वामी। असुभन=अशुभगणों को। पोईजू=खो दीजै। त्याग दो। आदि देन जोइ जु=आदि (प्रारम्भ में) देने के योग्य नहीं हैं। आदि में उनको न दीजे।

(६) कक्का=वर्णमाला के अकारांत (वा इकारांत उकारांत आदि) सब अक्षर लघु ही रहते हैं। बारापडी=बारह स्वरों सहित वर्णों में से। त्रिय=तीन वर्ण आ-ई-ऊ वा इनसे सयुक्त अक्षर। सुरामध्य=स्वरों (सोलहों) में से। पंच= अ-इ-उ-ऋ-ऌ। अ+आ—इ+ई—उ+ऊ—ऋ+ॠ—ऌ+ॡ—ये समान हैं। युत लघु पूरब दीरघ करैं=संयुक्तों के पहिलेवाले ("सयुक्ताद्य दीर्घं") दीर्घ (गुरु) हो जाते हैं। आ से अः तक ११ स्वर (भाषा में) और इनसे संयुक्त व्यञ्जन भी दीर्घ होते हैं (गुरु)। (श्रुतबोध। छंद प्रभाकर। काव्य प्रभाकर)। "संयोगी को आदि जुत बिंदु जु दीरघ होय। सोई गुरु, लघु और सब कहैं सयने सोय" ॥ ३३॥ (कविप्रिया)।

दूषन चालीस—काव्य के दूषण अनेक हैं। "काव्य प्रकाशादि में शब्द दोष १६, वाक्यदोष २१, अर्थदोष २३, और रसदोष १०। सब ७० कहे हैं" (काव्य प्रभाकर। १० मयूख)। इनमें ३९ दोष गिनाये हैं। 'काव्य कल्पद्रुम' के प्रथम

सङ्ख्या वर्णन

* गनपति रदन मही दिनेशचक्ररथ,
चन्द शुक्रनेत्र एक आतमा ही मानिले।
गजदंत अयन नयन कर पाद पक्ष,
नदीतट नागजिह्वा द्विज दोइ मानिले॥
राम हरनयन अगनि क्रम बलि संध्या,
काल ताप जुर सूल पद्म तीन आनिले।
पानि धानी बरन आश्रम अजमुख वेद,
कूट जुग सेना मुक्तिफल च्यारि पानिले॥ ५

भाग रसमञ्जरी' में ६० दोष निरूपित किये हैं। ग्रन्थकार ने किसी मत से कहे हैं। और भूषण चार शत—इससे काव्यगुण और अलङ्कारादि सब मिला कहे हैं ऐसा प्रतीत होता है। *सुन्दर स्वामी का पांडित्य अगाध था॥*

(५) एक बाची सङ्ख्या के शब्द—गणेशजी के एक दांत ही है। मही पृथ्वी। दिनेश=सूर्य के रथ के एक ही पहिया है। शुक्राचार्यजी के एक नेत्र है॥ दो के बाची—हाथी के दो दांत होते हैं। अयन दो=उत्तराय दक्षिणायन। पाद=पाव दो। पक्ष=शुक्ल और कृष्ण, अथवा पक्षी के दो पांखें साप के दो जीभ। द्विज=दो जन्म होते हैं॥ तीन के बाचक—राम=रामचं परशुराम, बलराम। शिवजी के तीन नेत्र। अग्नितीन=वाडवाग्नि, दावाग्नि जाठराग्नि। अथवा दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय। क्रम=विक्रम=बल (तन मन, धन।) बलि=त्रिवली की तीन रेखा। सध्या तीन=प्रात, मध्यान्ह साय। काल=भूत, वर्त्तमान, भविष्यत्। ताप=तीन ताप, तापत्रय, (दैहिक, दैविक आध्यात्मिक। ज्वर=वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर। सूल=त्रिशूल के तीन कांटे। पद्म=पुष्कर का बाची शब्द वृद्ध पुष्कर, बुद्धवाय, ज्येष्ठकुंड। और क्रम विधि के अर्थ में=१ वेदविधि, २ लोकविधि, ३ कुलविधि॥ चार बाची सङ्ख्या शब्द=पानी= चार खान वा योनिवर्ग—जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज। ४ वाणिएं=परा,

* सनकादि बारि निद्धि संप्रदा उपाइ अंग,
जोधार चरन दिशि च्यार अंतःकरन है ॥
तत्त्व शर इन्द्री इरमुख पांडु वर्ग वह्न
पित मात कन्या पाप वायु पंच बरन है ॥
शासतर संपति करम दरशन रितु.
रस राग अंग यती पट सु तरन है।
धात दीप तृड ऋषि वार ह्य परवत
समुंदर पुरी सात कहत परन है ॥ ८ ॥

पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी। ४ वर्ण=ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्री, शूद्र। ४ आश्रम=ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यास। अजमुख=ब्रह्माजी के चार मुंह। ४ वेद=ऋग्, यजु, साम, अथर्व। कूट= (इसका प्रयोग चार वाची का नहीं मिला, अतः) चार अवस्थाएं आत्मा सम्बन्धी—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, कूटस्थ (तुरीया)। वा चार नीतियां—साम, दाम, दण्ड, भेद। अथवा विष्णुकी चतुर्भुज हैं उनकी चार भुजा। वा कूंट (कोना) चार कोने। जुग=युग चार हैं—सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग। सेना=चतुरंगिणी=हाथी, घोड़े रथ, पैदल। मुक्ति चार=सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य। फल=चतुष्फल=चतुर्वर्ग=धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। पानिलै=हाथ में ले, ग्रहण कर।

(८) सनकादि चार, ब्रह्मा के पुत्र=सनक, सनंदन, सनत्कुमार, सनातन। बारि, निधि=इसका पता चार के अर्थ में नहीं लगा। न तो बारि ही चार के अर्थ में प्रयुक्त होता, न निधि शब्द ही। बारिनिधि=जलनिधि=समुद्र के अर्थ में लें तो वे भी सात हैं। निधि भी नौ हैं। हमें ग्रन्थ "कविप्रिया" की टटोल से इसका शुद्ध पाठ 'बारण रद' हो सकता है मिला—ऐरावत के चार दांत होते हैं (प्रियाप्रकाश—पृ० २३०)। संप्रदा=संप्रदाय चार हैं—श्रीसम्प्रदाय, निम्बार्क, माध्व और बल्लभाचार्य। उपाइ=साम, दाम, दंड भेद। अंग=मस्तक, धड़, हाथ, पांव। जोधार (डि०) योद्धा चार प्रकार=गजारोही, अश्वारोही, रथारोही, पदाति (पैदल)।

चरन=चरण—छद के चार और चौपायों के चार पाद वा पाव। दिशा चार—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण। अतःकरण चतुष्टय=मन, बुद्धि चित्त, अहकार। पांच वाची सख्या—तत्व पाच=पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश। शर=कामदेव के पाच तीर। मोह, मत्त, शोष, विरह, अचेतन। पाच ज्ञानेन्द्रिया—आख, कान, नाक, जीभ खाल। हरमुख=महादेवजी के पांच मुख जिनसे वे पचमुख कहाते हैं। पांच पाडव=युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव। वर्ग=पांच वर्ग—कु चु टु तु पु—कवर्गादि पाच २ अक्षरों के (वर्णमाला में) यज्ञ=पचमहायज्ञ—स्वाध्याय, अग्निहोत्र, अतिथिपूजन, पितृतर्पण, बलिवैश्वदेव। पांच पिता=जन्म देनेवाला, राजा, जीवदान देनेवाला, गुरु (दीक्षा वा विद्या देनेवाला) और ससुरा। पांच माता=जननी, गुरुपत्नी, राजा की राणी, सास, मित्रपत्नी। पांच कन्या=अहल्या, द्रौपदी, तारा, कुंती, मदोदरी। पाप=ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्ण की चोरी, गुरुपत्नी गमन और इनके साथ ससर्ग। वायु=प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान। बरन,=वर्णित। छह की—शास्त्र ६=चारों वेद, पुराण और धर्मशास्त्र (स्मृति)। ६ सपत्ति=सम, दम, तितिक्षा, श्रद्धा, उपरति, समाधान। कर्म=छहकर्म—यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान लेना, दान देना। दर्शन=छह दर्शन—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदांत। ऋतु=छह ऋतु—वसत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमत, शिशिर। रस=षट्रस—खट्टा, मीठा, खारा, कडुवा, चरपरा, कसैला। राग=छहराग—भैरव, मालकौस, हिंडोल, दीपक, श्री, मेघ (मलार)। अग= वेद के छह अंग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छद, ज्योतिष, निरुक्त। ईति=(यह ईति का रूपांतर प्रतीत होता है)—छह इति ७ भी हैं। अति वृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डीदल, चूहादल, तोतादल, परतत्र (वा, ओला पड़ना)। और यति छह ६ ये हैं=लक्ष्मण, हनुमान, भीष्म, भैरव, दत्त और गोरख (नानकप्रकाश पू०)नरन=तृण— छहचारे—घास, कडव, पत्ते, पत्नी, तुस, दाणां॥ सात की—धातु=७ धातु—सोना, चांदी, तांबा, लोहा, रांगा, सीसा। धा—(चर्म) रक्त, मांस, मेद, हाड़ चरबी, वीर्य। दीप=७ द्वीप—जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, शाल्मल, मेद (वा प्लक्ष) पुष्कर। नृद= ७—सात अन्न—जव, गेहूं, चावल, मूग, अरहर, उड़द, चना। ७ ऋषि=कश्यप-

*वसु अहि परवत योग अंग व्याकरण,
　　लोकपाल दिगपाल सिद्धि आठ जग है।
पंड निद्धि द्वार नाडी रस ग्रह योगेश्वर,
　　नाथ नन्द ऊपर नौगुण नव तग है॥
दिशा दोष अवतार धुनि नाभि पद्म मुद्रा,
　　वायु दश एकादश रुद्र हर लग है।
मास राशि सूर भक्त संक्रांति पंथ पूर्न्यूं,
　　हृदय कमल वारा यम नेम पग है॥ ६॥

अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, वशिष्ठ, यमदग्नि। ७ वार—रवि, सोम, मंगल बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि। हय=सूर्य के सात घोड़े। ७ पर्वत=सुमेरु, हिमालय, उदयाचल, विंध्याचल, लोकालोक, गंधमादन, कैलास। ७ समुद्र=क्षीर, क्षार, दधि, मधु, घृत, सुरा, इक्षुरस। ७ पुरी=अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, द्वारिका, उज्जयनि। धरन=धरणी, पृथ्वी पर॥

(१) ८ को—वसु—८ वसु—धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास। अहि=७ सर्प—वासुकी, तक्षक, कर्कोटक, शंख, कुलिक, पद्म, महापद्म, अनन्त। ७ पर्वत=(ऊपर पर्वत गिनाये हैं। जो पर्वत शब्द से आठ लेते हैं वे आगे लिखे पर्वत कहते हैं) हिमालय, मलयगिरि, महेन्द्र, सह्याद्रि, शुक्तिगिरि, ऋक्षपर्वत, विंध्याचल, पारियात्र पर्वत। योग—अष्टांग योग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। अंग=(अंग ऊपर छह कह आये हैं। इसलिए यह अङ्ग शब्द योग शब्द के साथ समझें)। परन्तु शरीर के ८ अङ्ग साष्टांग कहने में जो आते हैं वे ये हैं—गोडे (पांव के), पांव, हाथ, पेट, शिर, वाणी, बुद्धि और दृष्टि। प्रमाण—"जानुभ्यां च तथा पद्भ्यां पाणिभ्यां मुरसा धिया। शिरसा वचसा दृष्ट्या प्रणामाऽष्टांग ईरितः"। ("आपटे की डिक्शनरी" तथा "वैष्णवमताब्जभास्कर")। व्याकरण=८ वैयाकरण—इन्द्र, चन्द्र, काशि, कृष्ण, पिशली, शाकटायन, पाणिनी, अमर। ८ लोकपाल=इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत,
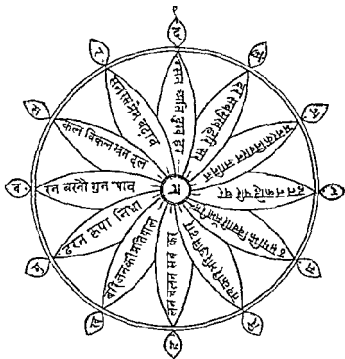
कमल बन्ध

छप्पय

दरसन अति दुख हरन रसन रस प्रेम बढ़ावन।
सकल विकल भ्रम दलन बरन बरनौं गुन पावन॥
सुदरन कृपा निधान सकरि जन की प्रतिपालन।
हलन चलन सब करन रितय करि भरि पुनि ढारन॥
सठ ममक्ति विचारि सभारि मन गहत न काहे परि चरन।
नम नरक निवारन जानि जन सुन्दर मन सुख हरि सरन॥

पढ़ने की विधि

"दरसन" शब्द के 'दकार' पर १ का अङ्क है वहीं से प्रारम्भ करके दाईं ओर की पखुड़ियों के चरणों को पढ़ते जाय। अन्त का चरण 'सुदर' वाली पंक्ति में है।

यह छप्पय चित्रकाव्य ही में है, ग्रन्थ में नहीं है।

—तेरा तरवर ताल तेरा द्वार कहै फिर
रतन बतावै तेरा ये भी बात सही सो।

वरुण, वायु, कुबेर, शंकर। दिगपाल=८ दिग्गज—ऐरावत, पुंडरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदंत, सार्वभौम, सुप्रतीक। सिद्धि=अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व। जग=जगत में॥ ९ की—खंड=९ हैं—इलावर्त्त, रम्यक, कुरु, हरिवर्ष, किंपुरुष, भारतवर्ष, केतुमाल, भद्राश्व, हिरण्य। ९ निधि=पद्म, शंख, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील, खर्व। ९ नाड़ी=इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गंधारी, पूषा, गजजिह्वा, प्रसाद, शनि, शंखिनी। रस=काव्य में ९ रस—शृङ्गार, करुण, वीर, भयानक, अद्भुत, हास्य, रौद्र, बीभत्स, शांत। ९ ग्रह=सूर्य, चंद्र, बुध, शुक्र, बृहस्पति, मंगल, शनि, राहु, केतु। योगेश्वर=९ हैं—शुक्राचार्य, नारायण (श्रीकृष्ण), अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन आविर्होत्र, द्रुमिल, चमम और करभाजन। नाथ ९=गोरक्षनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, कारिणनाथ, गहिनीनाथ, चर्पटनाथ, रेवणनाथ, नागनाथ, भर्तृनाथ, गोपीचन्दनाथ (योगाङ्क)। ९ नंद=मगध देश का राजा महानंद और उसके ८ पुत्र, यों नवों को चाणक्य ने विष से मारा था। ९ गुण—शम, दम, तप, शौच, क्षमा, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान, मास्तिक्य। ऊ पर नौ—इस शब्द का कुछ संशोधन नहीं हो सका। यह लेखक दोष से किसी शब्द का अशुद्ध रूप है॥ १० की संख्या—दश दिशाएं प्रसिद्ध हैं। १० दोष=चोर, जुवारी, अज्ञ, कायर, गूंगा बहरा, अंधा, पागल, नपुंसक, कुरूप। १० अवतार=कच्छ, मच्छ, वामन, वराह, नृसिंह, परशुराम, रामचन्द्र, बुद्ध, कल्की। धुनि, नाभि, पद्म—ये दश की संख्या के वाची कैसे हैं इसका पता नहीं लगा। १० मुद्रा योग में=महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, उड्डियान, मूलबंध, जालंधरबंध, विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालन (हठयोग प्रदीपिका में)। १० वायु=प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, देवदत्त, कृकल, धनंजय। ११ रुद्र=अज आदिक॥ १२ मास। १२ राशिएं मेष आदिक। १२ आदित्य विवस्वान् आदिक। १२ भक्त प्रह्लाद आदिक। १२ संक्रांतिएं। १२ पथ=बारा बाट।

रतन भवन विद्या जम भट इन्द्री देव,
विषय कहीजें चौदा पंद्रा तिथि कही सो ॥
सुर सिणगार उपचार कला पारषद,
वय रंभा सोला सत्रा कोटि जल मही सो ।
समृत पुरान प्रवराम सेना भारत की,
भारहू अठारा वे अठारा ध्याइ लही सो ॥ १० ॥

---

(१०) १३ तरवर=वृक्षादि । तेरह वृक्षों का प्रमाण—'उदुम्बर वटश्चैव जम्बुद्रुमधाऽर्जुनम् । पिप्पलश्च कदंबश्च पलाशश्चोपतिदिकम् । मधूक मालगज्जंच बदर पर्णशारम्' । (गरुड़पुराण १९८ अ० । शब्दकल्पद्रुम से) । १३ ताल=तेरह बड़े सरोवर—मानसरोवर आदिक अथवा १३ तालें—चौताला, तिताला आदिक । १३ द्वार=सिंहद्वार, राजद्वार, इत्यादिक । तेरह रत्न=सूठ के गुण कथन में तेरह रत्न ऐसा बोलते हैं । रत्न पांच, नौ और १४ हैं ॥ १४ रत्न=लक्ष्मी कौस्तुभ मणि, रंभा, सुरा, अमृत, विष, ऐरावत, शार्ङ्ग-धनुष धन्वंतरि, कामधेनु, चन्द्रमा, कल्पवृक्ष, सप्तमुखी अश्व । १४ भवन=७ तो लोक और ७ द्वीप मिल कर । १४ विद्याएं=४ वेद+६ शास्त्र+१ मीमांसा+१ धर्मशास्त्र+१ न्याय+१ पुराण । १४ यम=धर्मराज, यमराज, मृत्यु, अनक, वैवस्वत, नील, दध्न, काल, सर्वभूतक्षय, परमेष्ठी, वृकोदर, उदुम्बर, चित्र और चित्रगुप्त । भट=१४ यमों के १४ भट । इन्द्रिय १४=५ ज्ञानेन्द्रिय+५ कर्मेन्द्रिय+४ अन्तःकरण । देव=१४ इन्द्रियों के १४ देवता । विषय=१४ इन्द्रियों के १४ मुख्य विषय (शब्द, स्पर्श आदिक) । १५ तिथियां=प्रसिद्ध हैं प्रतिपदा कृष्ण से अमावस्या तक अथवा प्रतिपदा शुक्ल से पूर्णिमा तक ॥ १६ सुर=स्वर वर्ण—अ से अः तक । १६ सिणगार—शृंगार—शौच, उबटन, स्नान, केशबंधन, अंगराग, अंजन, दन्तरंजन, (मिस्सी), महदी, बीड़े, वस्त्र, भूषण, सुगंध, पुष्पमाला, तिलक, ठोडी, ठोडी पर बिंदी । १६ उपचार=षोडशोपचार पूजन—आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ, आचमन, स्नान, वस्त्र, गंध, अक्षत, पुष्प धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, आरती, नमस्कार (वा दक्षिणा) १६ कला=चन्द्रमा की १६

उगनीस और बात विस्वा नख मानुष के,
बीस चक्षु श्रुति भुजा रावन के सुनिया।
इक बीस स्वरग सु बाईसी सो पातसा की,
क्षौहणी तेईस जरासंध साथि गुनिया॥
च्यारि बीस अवतार च्यारि बीस तीर्थंकर,
च्यारि बीस तत्त्व पीर च्यारि बीस धुनिया।
एक तें चौबीस लग सख्या संज्ञा कही यह,
सुदर मिलायौ जति कवि पुनि पुनिया॥ ११ ॥

कलाए—अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनि, चन्द्रिका, काति, ज्योत्सना, श्रिय, प्रीति, अगदा, पूर्णा, पूर्णामृता। १६ पारषद=जय विजय आदिक भगवान के पार्षद। ८ सखा श्रीकृष्ण के और आठ सखा श्रीरामचन्द्र के। वयरभा=रभा अप्सरा की सदा १६ वर्ष की अवस्था रहती है। प्रवराम=१८ प्रवान प्रवर—आत्रेय, वशिष्ट विश्वामित्र, भारद्वाज, यमदग्नि, आगिरस, गौतम, काश्यप, च्यवन, भार्गव, पराशर, शक्ति, शाडिल्य, आप्नुवान, मरीचि, बार्हस्पत्य, अगस्त्य, वत्सस। सेना भारत की=महाभारत मे १८ अक्षौहिणी थी—११ कौरवों की ७ पाडवों की। १८ भार वनस्पति के कहे जाते हैं। भगवद्गीता की १८ अध्याय हैं, स्मृतिया और पुराण भी १८ ही है। १८ स्मृतिया=मनु, याज्ञवल्क्य, पराशर, वशिष्ट, हारीत, नारद, अत्रि, आपस्तम्ब, शातातप, सख, लिखित, व्यास, भारद्वाज, काश्यप, दक्ष, विष्णु, यम, बृहस्पति १८। १८ पुराण—विष्णु, वाराह, वामन, पद्म, शिव, अग्नि, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड, भविष्य, भागवत, मार्कंडेय, मत्स्य, नारद, लिंग, स्कन्द, कूर्म, गरुड़।

⊛ नोट—ये ९ कवित्त क्रम सख्या मे, सख्याओं सहित, इस विचार से नहीं दिए ये—अर्थात् इन पर ऊपर से चली आई हुई सख्या इस विचार से नहीं लगाई गई थी कि "पच विधानी" को ढूढकर लगावें। परन्तु पचविधानी हमें पृथक् कोई वहीं नहीं मिली। "भूलि गयो हरिनाम को तू सठ"…। इस कवित्त

पर "पंचविधानी" ऐसा नाम लिखा हुआ ही चतुरदासजी के पत्रों आदि में मिला। परन्तु यह किसी भी अभिप्राय या अर्थ से पचविधानी नहीं कहा जा सकता है। 'सवैया' ग्रन्थ के "कालचितावनी" के अङ्ग का यह ८ वां छंद मात्र है।

(११) १९ उन्नीस पिण्डस्थान कहे जाते हैं (तिथ्यादितत्व-शब्दकल्पद्रुम)। २० विधा। बीस नख (नाखून) दोनों हाथों और दोनों पावों के। रावण के १० सिरों में २० आंखें और २० ही कान और बीसही भुजा सुनी जाती हैं। २१ स्वर्गों के नाम नहीं मिले। २२ सेना बादशाह की बाईसी कहाती थी। २३ अक्षौहिणी मगध देश के राजा जरासंध के पास थी जब वह मथुरापर चढ़ कर आया था। २४ अवतार=ब्रह्मा, वाराह, नारद, नरनारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभ, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, वेदव्यास, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, हंस और हयग्रीव। २४ तीर्थंकर=जैनियों के २४ देवता—ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, सुबुधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्यस्वामी, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, और महावीर स्वामी। २४ तत्त्व=प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, मन, पांच तन्मात्राएं, पांच महाभूत। (पुरुष इनसे भिन्न है)। २४ पीर=मुसलमानों के २४ पैगम्बर=(अलैहिस्सलाम) आदम, शीश, नूह, इब्राहीम, याकूब, इसहाक, यूसुफ, इस्माईल, ज़करिया, यहया, यूनुस, दाऊद, अयूब, लूत, सुलेमान, स्वालह, शुएब, ईसा, मूसा, इलयास, हारूं, यसआ, जिलकिफ़्ल, मुहम्मद साहिब। (इनके अतिरिक्त और बहुत से पैगम्बर हुए हैं। परन्तु यहां प्रधान २४ से प्रयोजन है।) 'पीर' शब्द गुरु (दीक्षा देनेवाले) का अर्थ देता है। इसलाम धर्म में 'खलीफा' और 'इमाम' बड़े धर्म-शिक्षक और शासक बहुतायत से हैं (खलीफा तो ४ ही प्रधान हैं जो मोहम्मद साहब के पास व पीछे हुए थे।)

❀· गणना छप्पै पंचक

अथ नव निधि के नाम

छप्पय

प्रथम पद्म निधि कहत दुतिय पुनि महा पद्म सुनि।
तृतिय संपसे नाम चतुर्थय मकर कहै मुनि॥
पञ्चम कच्छप होइ षष्ट सो प्रगट मुकुन्दं।
कुन्द सप्तमं जांनि अष्टम निल्ल भणिंदं॥
अत्र नवम पर्ब्ब कविजन कहत ये नव निधि के नाम हैं।
कहि सुन्दर सन्तन आदरहिं ते बंछहिं जु सकाम हैं॥ २७।

अथ अष्ट सिद्धि के नाम

प्रथमहिं अणिमा सिद्धि दुतिय पुनि महिमा कहिये।
तृतीय सु लघिमा जांनि चतुर्थी प्रापति लहिये॥
प्राकाशक पंचमी ईपिता षष्टी जांनहुं।
अवसिता जु सप्तमी अष्टमी बसिता मानहुं॥
ये अष्ट महा सिधि प्रगट ही ग्रन्थनि मांहि बषांनिये।
हरि भक्तनि के आधीन हैं सुन्दर यों करि जांनिये॥ २८॥

❀ यह नाम सम्पादक ने दिया है।

(२७) निल्ल=नील। भंणिंद=कहते हैं। पर्ब्ब=खर्ब।

(२८) अष्टसिद्धिए—"अणिमा महिमा चैव लघिमा प्राप्तिरेवच। प्राकाम्यच तथेशित्व वशित्वं च तथा परम्॥ यत्र कामावसायित्वं गुणानेता नथैश्वरान्" ॥ (मार्कंडेय पुराण) ये हो स्पष्ट "ब्रह्मवैवर्त्त पु०" में—"अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्य महिमा तथा। ईशित्व च वशित्वं च सर्वकामावसायिता" ॥ परन्तु 'अमरकोष' में कामावसिता को न देकर गरिमा को दिया है—"अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा। प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्व वशित्वं चा[illegible]" ॥

अथ सप्त वारों के नाम

प्रगट होइ आदित्य सोम जब हृदयें आवै।
मंगल दशहूं दिशा बुद्ध तब ही ठहरावै॥
बृहस्पति ब्रह्म स्वरूप शुक्र सब भासत ऐसैं।
थावर जंगम मध्य द्वैत भ्रम रहै सु कैसैं॥
है अति अगम्य अरु सुगम पुनि सद्गुरु बिन कैसैं लहै।
यह वार हि वार विचार करि सप्तवार सुन्दर कहै॥ २९॥

अथ बारह मास के नाम

कार्तिक काटै कर्म मार्गशिर गति यह्यासा।
पोष मिल्यौ सतसंग माघ सब छाडी आसा॥
फाल्गुन प्रफुलित अंग चैत्र सब चिंता भागी।
वैशाषा अति फल्या जेष्ट निर्मल मति जागी॥
आषाढ गयौ आनन्द अति श्रावण श्रवति अमी सदा।
भाद्रव द्रवति परब्रह्म जहि अश्विनि शांति सुन्दर तदा॥ ३०॥

अथ बारह राशि के नाम

छप्पय

मीन स्वाद सौं बध्यौ मेष मारग कौ आयौ।
वृष सूकौ तत्काल मिथुन करि काम वहायौ॥
कर्क रही उर माहिं सिंघ आवतौ न जान्यौ।
कन्या चंचल भई तुलत अकतूल उडान्यौ॥

प्राकाशकः=यह प्राकाम्य नाम की सिद्धि के स्थान मे लिखा है। ईषिता=ईशित्व सिद्धि। अवसिता=कामावसिता सिद्धि। वसिता=वशित्व सिद्धि।

(२९) वारहिवार=बारम्बार, निरंतर। मार्गशिर=मार्गशीर्ष, अगहन।

(३०) द्रवति=प्रेम में मग्न हो हृदय बहने लगै। अश्विनि=यहां निरंतर, नित्य का अर्थ है=अ+श्व=कल जिसमें नहीं। और आश्विन मास का अर्थ तो है ही।

वृश्चिक विकार विष डंक लगि सुंदर धन मित न भयौ।
परि मकर न छाड्यौ मूढमति कुंभ फूटि नर तन गयौ॥ ३१॥

ज्ञान नरक

छप्पै एकादशी *

मन गयंद बलवंत तासके अंग दिपाऊं।
काम क्रोध अरु लोभ मोह चहु चरन सुनाऊं॥
मद मच्छर है सीस सुंडि तृष्णा सु डुलावें।
द्वन्द दसन है प्रगट कल्पना कान हलावैं॥
पुनि दुविधा दृग देखत सदा पूछ प्रकृति पीछै फिरै।
कहि सुन्दर अंकुश ज्ञान कै पीलवान गुरु बसि करै॥ ३२॥

---

(३१) राशियों के नामों पर अक्षरों से अर्थान्तर दिखाने की चेष्टा है। वृष=वृक्ष। सूकौ=सूख गया। कर्क=करक, कसक। सिंघ–ध्वनि से, सींग। आवतौ=उगता हुआ क्रमश. निरला इससे ज्ञात नहीं हो सका। अक्तूल=अक का अर्थ पाप (अघ), तूल रुई की तरह (जैसे पिंदने में धुनने से) उड़ गया वा अक्तूल=वादबान नाव का हवा भरने से नाव को चञ्चल करता है। बिकार=विषय का विष, बीछू के डङ्क समान। धन=रासार की सम्पत्ति। मकर=मक्र, फरेब, कपट, दम्भ। कुंभ=जैसे घड़ा फूट कर नाश होता है और फिर काम नहीं आता, वैसे यह मनुष्य शरीर मृत्यु पाकर किसी काम का नहीं रह जाता है। अत जीतेजी ही भजन, ज्ञान, भक्ति करना।

* यह नाम सम्पादक का दिया हुआ है। ये सब ग्यारह छप्पय ज्ञान की पराकाष्ठा और वेदांत सिद्धांत से सराबोर हैं।

(३२) इस छप्पय में मन को हाथी का सुंदर रूपक बांधा है। द्वन्द दसन हैं प्रकट हाथी के बाहर के दो दांत (दो तो) दीखने मात्र हैं, वैसे द्वैत वा भेद भ्रम मात्र ही है।

पातिशाह रहमान हजूरी कीयें बंद।
और किये उमराव जितं अवतार कहिंट ॥
अवलि दूम अरु सीम चिहारम पच हजारी।
उनकौं सूबा दिये थिये जग मे अधिकारी ॥
वे थंद निकट सदा रहैं खिजमतगार हजूर के।
कहि सुन्दर दूर पडे रहैं जे सूबाइत दूर के ॥ ३३ ॥

परब्रह्म पतिशाह ज्ञान कहिये सहजादौ।
सांख्य योग अरु भक्ति बड़े उमराव अनादौ ॥
और क्रिया सब रीति जज्ञ जप तप व्रत जेतं।
तीर्थ अटन स्नान दान यम नियम सुचेते ॥
ज्यौं ब्याह समे अपने सुतहिं सहजादौ करि गाइयौ।
कहि सुन्दर सहजादौ बडे पातिशाह उर लाइयौ ॥ ३४ ॥

जाग्रत देह स्थूल सकल गुण वर्त्तत जामहिं।
स्वप्न सु लिंग शरीर वहै विधि जानहु तामहिं ॥

---

(३३) पतिशाह=परमात्मा बादशाह—सर्वेश्वर सर्वनियंता। रहमान (अ०)=अत्यंत दयालु। दूम=दोयम (फा०) दो हजारी या दूसरे दरजे के। सीम=(फा०) सोयम=तीसर दरजे क। पंजहजारी=पांच हज़ार के मनसबदार, बहुत बड़े दरजे के। बादशाह के दरबार और आमखास और मनसबदारो का रूपक भक्तों और ज्ञानिया को लेकर बांधा है।

(३४) सहजादा=शाहज़ादा—बादशाह का पुत्र। ज्ञानरूपी शाहजादा बादशाहरूपी ब्रह्म से प्रगट होता है। 'आत्मा वै पुत्र'— पुत्र है सो अपनी आत्मा ही है। 'ज्ञान ब्रह्म'—ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है। भावार्थ यह कि ईश्वर का पुत्र समान ज्ञान ही अत्यंत प्यारा है। 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' (गीता) ज्ञानी तो मेरी आत्मा ही है। जिसको परमात्मा ने अपने हृदय से लगाया—अपना समझा कृपा करके वही (भक्त वा ज्ञानी) पुत्र समान अपनाया गया। 'यम वै वृणुते'—

सुषुपति में सब लीन स्वप्न जाग्रत पुनि आवै।
तीनि अवस्था माहिं भ्रमै सो जीव कहावै॥
साक्षातकार तुरिया विषै ईश्वर ताहि बषानियें।
तुरिया अतीत सो ब्रह्म है सुन्दर यौं करि जानियें॥ ३५॥

अंत्यज देह स्थूल रक्त मल मूत्र रहे भरि।
अस्थि मांस अरु मेद चर्म आच्छादित ऊपरि॥
शूद्र सु लिंग शरीर वासना बहु विधि जामहि।
वश्य हु कारण देह सकल व्यापार सु तामहि॥
यह क्षत्री साक्षी आतमा तुरिय चढ़ें पहिचानियें।
तुरिया अतीत ब्राह्मण उही सुन्दर ब्रह्म बषानियें॥ ३६॥

अहंकार चांडाल बहुत हिंसा को कर्त्ता।
मन कौ शूद्र सुभाव कर्म नाना विस्तर्त्ता॥
बुद्धि वंश्य यह होइ करै व्यापार जहां लौं।
चित्त सु क्षत्रिय जानि नृपति नहि लोक तहां लौं॥
यह ब्राह्मण साक्षी आतमा सदा शुद्ध निर्मल रहै।
तुरिया अतीत जानहुं उहां ब्रह्म रूप सुन्दर कहै॥ ३७॥

जिसको योग्य समझता है उसही को दरस दिखाता है। अर्थात् ज्ञान और पराभक्ति हो से परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। ("यमेवैष वृणुते तेन लभ्य……"। कठ।२ या वल्ली।२२)

(३५) वेदांत के अनुसार जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया चार ही अवस्थाएं हैं। शुद्ध निर्गुण तुरीयातीत ब्रह्म को उक्त चारों से परे भिन्न ही स्वामीजी ने कहा है।

(३६) चार वर्ण और पांचवां अंत्यज कहकर उक्त ५ अवस्थाओं को समझाने का रूपक बांधा है। तुरिय=चोंडा अर्थ कहकर सुंदर श्लेष से अलङ्कार बनाया है।

(३७) अंतःकरण चतुष्टय और पांचवें आत्मा को लेकर यही दूसरा अलङ्कार बांधा है।

प्रथम भूमिका श्रवन चित्त एकाग्रहि धारै।
दुतिय भूमिका मनन श्रवन करि अर्थ विचारै॥
तृतिय भूमिका निदिध्यास नीको विधि करई।
चतुर्भूमि साक्षातकार संशय सब हरई॥
अब तासौं कहिये ब्रह्म विदु वर बरियान वरिष्ट हैं।
यह पंच षष्ट अरु सप्तमी भूमि भेद सुन्दर कहे॥ ३८॥

सुख दुख नींद अरूप जबहिं आवहिं तब जानैं।
शीत हु उष्ण अरूप लगैं सब पहिचानैं॥
शब्द रु राग अरूप सुनैं जानैं जाहीं।
वायुहु व्योम अरूप प्रगट बाहरि अरु माहीं॥
इहिं भांति अरूप अखंड है सो कैसें करि जानिये।
कहि सुन्दर चेतन आतमा यह निश्चय करि आनिये॥ ३९॥

---

(३८) साक्षात्कार तक चार। और फिर तीन भूमिका वर-वरियान-वरिष्ट। और ज्ञान की ७ भूमिकाए योगवासिष्ठानुसार "हठयोग प्रदीपिका" मे प्रारभ में कही हैं जिनका कथन ऊपर भी अन्यत्र टीका में कर दिया गया है। वे ७ भूमिकाए हैं—शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, परार्थभाविनी और तुर्यगा। (हठयोग प्रदीपिका। उपदश १। श्लो० ३ की टीका और पादटीप।)। इनमें प्रथम ४ तो सम्प्रज्ञात समाधि की, और आगे की ३ (सातवीं तक) असम्प्रज्ञात समाधि को है।

(३९) सुखदुखादि स्थूल दृश्यमान तो नहीं है परन्तु अरूप और मनबुद्धि इन्द्रियों से (स्पर्शादि से) जाने जाते हैं। परन्तु आत्मा चेतन स्वरूप है तब भी इस प्रकार कैसे जाना जा सकता है! अर्थात् योग के प्रकारों ही से साक्षात हो सकता है। जो ज्ञान की भूमिकाए दी है उनसे वा प्रक्रिया वेदांत में दी है उससे भी।

एक सत्य परब्रह्म एकतें गनती गनिये।
दश दश आगे एक एक सौं नाईं भनिये॥
एकहिं को विस्तार एक को अंत न आवै।
आदि एक ही होइ अन्त एकहि ठहरावै॥
ज्यौं लूता तंत पसारि कै बहुरि निगलि लूता रहे।
यौं सुन्दर एक अनेक ह्वै अन्त बेद एकै कहे॥ ४० ॥

अन्तहकरण अदृष्टि प्रमाता मापनिहारौ।
इन्द्रिय पंच प्रमाण प्रगट गज ताहि विचारौ॥
पंच विषय सु प्रमेय उहै कपरा गहि मापै।
इन तें गज यह भयौ प्रमा पुनि ताहि स्थापै॥
चत्वार विभाग प्रपच यह अज्ञान तें दिपान है।
कहि सुन्दर वस्तु विचार तें जगत विलै ह्वै जात है॥ ४१॥

अन्तहकरण चतुष्ट प्रमाता तोलत जानहु।
इन्द्रिय पंच प्रमाण तराजू बाट बपानहु॥

---

(४०) जैसे परब्रह्म एक है उससे अनत सृष्टि हैं। वैसे ही एक की सख्या से अनेक अनत सख्याएं एक २ बढाने से बनती हैं। और सख्याओं मे से एक २ घटाने से शेष एक रह जाता है। ऐसे ही सारी सृष्टि ईश्वर से निकली है और उसही मे समा जाती है। जैसे मकड़ी जाला पूरकर फिर अपने अन्दर समेट लेती है। यह दृष्टांत प्राय वेदांत मे सृष्टि और प्रलय के समझाने मे दिया गया है।

(४१) प्रमाता, प्रमाण प्रमर और प्रमेय—ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—को बजाज, गज और कपड़े के दृष्टांत मे समझाया है। प्रमा=यथार्थ ज्ञान। स्मृति (याद) से प्रमा भिन्न है। प्रमा ज्ञान का करण ही प्रमाण कहाता है। प्रमा ज्ञान अनाधिन अर्थ को बताता है अर्थात् विदय करता है। प्रमा ज्ञान प्रमाता साक्षी चेतन के आधिन हैं नहीं अतःकरण के आश्रित है। (देखो विचार सागर अङ्क १९७—२०१)। ये साभास ज्ञान होने से अविद्या (अज्ञान) कहा है।

तोलन लागै नाहि पंच जे त्रियै प्रमेयं।
तोलै तें ठहराइ प्रमाता ही कौ श्रेयं॥
कहि सुन्दर वस्तु विचार तें कहां प्रमाता पाइये।
पुनि कहां प्रमाण प्रमेय है कहां प्रमा ठहराइये॥ ४२॥

(१२) अथ अन्तर्लापिका

छप्पय

(१)

लंका मारि क्षत्रिय प्रहारि हलधारि रहै कर।
महीपाल गोपाल व्याल पुनि धाइ गहै वर॥
मेघ आश धुनि प्यास नाश रुचि कंवल वास जहिं।
बुद्ध तात हनु तात प्रगट जगतात जानि तिहिं॥
तुम सुनहु सकल पंडित गुनी अर्थ हि कहौ विचार करि।
चत्वार शब्द सुन्दर वदत 'रामदेव सारंग हरि"॥ ४३॥

(२)

देह मध्य कहि कौन कौन या अर्थ हि पावै।
इन्द्रिय नाथ सु कौन कौन सब काहू भावै॥

---

(४२) यहां तासडी बाट के उदाहरण वा दृष्टांत से वही विषय समझाया है। वस्तुविचार=वेदांत की प्रक्रिया से विचार करने से जो अचेतन है वह चेतन के प्रत्यक्ष में लुप्त हो जाता है।

(४३) इस अंतर्लापिका में "१ राम—२ देव—३ सारंग—४ हरि" यह चार शब्द निकलते हैं। पहिले चरण में १ रामचन्द्र २ परशुराम और बलराम निकलते हैं जो "राम" शब्द के अर्थ में हैं। दूसरे में राजा, कृष्ण, जो देव के द्योतक वा पर्याय हैं। व्याल (सर्प) को पकड़ कर खाय सो मयूर (सारंग) है। मेघ और पपीहा भौंरा और चातक भी सारंग कहे जाते हैं। बुद्ध तात= बुध का बाप चन्द्रमा जो 'हरि' का पर्याय है। हनुतात=हनुमान का पिता पवन जो 'हरि' का पर्याय है। जगतात=भगवान 'हरि' हैं ही।

पायें उपजत कौंन कौंन के शत्रु न जनमैं।
उभय मिलन कहि कौंन दुष्ट के कहा न तनमैं॥
अब सुन्दर कौ पावन जगत कौन रहे पुनि व्यापि करि।
"प्रान जान मन मान सुख साधु संग हित नाम हरि" ॥ ४४ ॥

(३)

कापालिक मत कौंन कौंन त्रेता युग कर्मा
रवि सुत कहिये कौंन कौन जैननि के धर्मा॥
त्यक्त सयंज्ञा कौंन कौंन सतति मुख सोहै।
बचन प्रमान सु कौंन कौन कतहूं नहिं मोहै॥
कहि सुन्दर अंकुश कौन सिरि आन पकरि काले कहौ।
'योग यज्ञ यम नेम तजि नाम सत्य दृढ करि गहौ" ॥ ४५ ॥

---

(४४) देहमध्य='प्राण'। अर्थजाने='जान', ज्ञानी। इन्द्रियनाथ='मन'। सबका भावै='मान', सम्मान। मान पाये 'सुख' उपजै। साधु के 'शत्रु' नहीं होता। उभय मिलन='संग', मिलाप। दुष्ट के 'हित' (परहित, अच्छा चाहना वा प्रेम) नहीं। जगत को पावन (पवित्र) करनेवाला 'नाम' (भगवान का)। सर्वत्र व्यापक 'हरि' भगवान हैं। यों अंत्य पाद के शब्द निकले।

(४५) कापालिक मत='योग' (कापालि शैवमत के जोगी जो मनुष्य का कपाल वा खोपड़ी रखते हैं और देवो के बलि चढ़ाते हैं)। त्रेता का कर्म='यज्ञ'। रविसुत='यम राज'। जैन का धर्म=नेम नथ। त्यक्तसयज्ञा=त्यागने के लिए शब्द='तजि' 'सयज्ञा'=सज्ञा का विकृत रूपांतर (यदि 'त्यक्त सुमज्ञा' पाठ हो तो अच्छा)। सतों के 'नाम' (भगवान का) सोहै। कतहू नहिं मोहै सो 'सत्य' है जो मोहसे डावाडोल नहीं होवै। अंकुश 'करि' (हाथी) के माथे मे आन (लावै, दै)। किस शब्द को लेकर पकड़ने के अर्थ में कहैं ?—'गहौ' शब्द को। यों अंत्य पाद के शब्दों का अतर्लापिका में प्रयोग हुआ।

(१३) बहिर्लापिका

उत्तम जन्म सु कौंन कौंन वपु चित्रत कहिये।
ब्रह्मा पोज्यौ कवन कौंन पय ऊपरि लहिये॥
धनुष संधियत कौंन कौंन अक्षय तरु प्रागा।
द्दग उन्मीलन कौंन कौंन पशु निपट अभागा॥
अव दान कवन कर दीजिये कौंन नाम शिव रसन धर।
कहि सुन्दर याकौ अर्थ यह "नमोनाथ सब सुखकर" ॥ ४६॥

(१४) अथ निमात छंद

मनहर

जप तप करत धरत व्रत ············लपत जन॥ ४७॥

(इस छंद के सब अक्षर अकारान्त हैं और यह 'सवैया' के 'चाणक के अंग' मे २ रा छंद है।

---

(४६) यह भी अन्तर्लापिका ही है। क्योंकि अर्थ छंद में से ही निकलता है। अन्त के र कार के साथ 'न-मो-ना-थ-स-ब-सु-ख-क-र' मिलाने से जो शब्द बनते हैं सोही अर्थ देते हैं। यथा उत्तम जन्म—'नर' का है। किसका वपु (शरीर) चित्रित है 'मोर' (मयूर) का—चदवें और रंग है। ब्रह्मा ने क्या खोजा ?—'नार' (नारि=सावित्री)। पय (दूध) के ऊपर से क्या लेते हैं ? 'थर'—(मलाई)। धनुष में क्या साधा (लगा कर चलाया) जाता है ? 'सर' (शर=तीर)। प्राग (प्रयाग में अक्षय रूंख कौन है—'बर' (बड़—बटवृक्ष—अक्षयवट।)। उन्मीलित (खुले हुए—निद्रारहित) द्दग (नेत्र) कौन हैं ?—देवता 'सुर' देवगण को निद्रा नहीं आती वे सदा जाग्रत ही रहते हैं।—इसीसे उनका नाम 'अस्वप्न' भी है। यथा—'आदित्या ऋभवोऽस्वप्ना अमर्त्या अमृतान्धसः' (अमरकोश।१।१।८)। निपट अभागा पशु—'खर' (गधा) है। दान किससे देते हैं ?—'कर' (हाथ) से। 'सुख' शब्द बोलने में यहां 'सुक्ख' पढ़ेगा, परन्तु लिखने में ख (केवल) से ही रहैगा, नहीं तो सुख, खर मे दोनों शब्द विकृत हो जायंगे।

(१५) अथ निगड बंध

छप्पय

(१)

अधर लगै जिनि कहत वर्ण कहि कौंन आदि कौ।
सब ही तें उतकृष्ट कहा कहिये अनादि कौ॥
कौन बात सो आहि सकल संसार हि भावै।
घटि वढ़ि फेरि न होइ नाम सो कहा कहावै॥
कहि संत मिलैं उपजै कहा दृढ करि गहिये कौन कहि।
अब मनसा वाचा कर्मना "सुन्दर भजि परमानन्दहि" ॥ ४८ ॥

(२)

प्रथम वर्ण महि अर्थ तीनि नीकी विधि जानहुं।
द्वितिय वर्ण मिलि अर्थ तीनि सोऊ पहिचानहुं॥
त्रितिय वर्ण मिलि अर्थ तीनि ता मध्य कहिज्जै।
चतुर्वर्ण मिलि अर्थ तीनि तिनि कौं सु लहिज्जै॥

---

(४८) निगड़=बेड़ी, जंजीर। इस छप्पय के अन्दर "परमानन्द हि" वाक्य में जो शब्द निकलते हैं वा अक्षर काम में लिये जाते हैं वे गुथे हुए से हैं। इससे इसे निगड़बंध कहा है। प–पकार अक्षर पवर्ग का आदि का (पहिला) वर्ण (अक्षर) है। पवर्ग के पांचों अक्षर होंठ मिलने से खुलते हैं। औष्ठ्य है। पर=उत्कृष्ट। अनादि परमात्मा। परमा=शोभा सब को भाती है। परमान= प्रमाण (सबूत) देने से बात पक्की होती है। परमानद=संत मिलने से परमानंद प्राप्त होता है। परमानदहि=(हि–इति निश्चयेन) परमानन्द ही को निश्चय करके दृढ़ (दृढ़ता–मजबूती से) गहि=नाम पकड़ो वा ग्रहण करो। भजि= प्राप्ति के अर्थ चिन्तन, ध्यान करते रहो।

"कविप्रिया"[1] में केशवदासजी ने इसे "व्यस्त समस्तोत्तर" नाम दिया है (१६ प्रभाव। ५२।)

पुनि त्यों पंचम षष्ठम सप्तम अष्टम नवम सुनहुं पढ़ू।
कहि सुन्दर याको अर्थ यह "करन देत काहू कछू" ॥ ४६ ॥

---

(४९) प्रथम वर्ण 'क'—इसके तीन अर्थ=जल, अग्नि, सुख। 'कर'—इसके तीन अर्थ=हाथ, किरण (सूर्य वा चाद की), हाथी की सूड़। 'करन'—इसके तीन अर्थ=राजा करण (महादानी), इन्द्रिय, देह। 'करन दे'—इसके तीन अर्थ=(१) करने दे (काम आदिक को), (२) जकात (कर) न दे (मत दे) (३) करन दे—कर्ण (कान) दे—उपदेश गुरु वाक्य में। 'करन देत'—इसके तीन अर्थ (१) करन (करण राजा) देता है। (२) (सूर्य वा चन्द्रमा) कर (किरणें) देते हैं। (३) कर (अपना हाथ) पतिव्रता स्त्री (दूसरे पुरुष को) नहीं देती है—अनन्य भक्त दूसरे का नहीं भजता है। 'करन देत का'— इसके भी तीन अर्थ—(१) क्या करने देता है ?—अर्थात् कम करने से क्या रोकता है ?। (२) करन (करण राजा) क्या देता है ? अर्थात् सोना देता है। (३) करन (करण—कान) देता है (लगाता है—गुरु शास्त्र के वचन में) क्या ? (पूछता है कि) क्या सुनता है ध्यान देकर ?—गुरु का उपदेश सुनता है। 'करन देत काहू'—इसही प्रकार तीन अर्थ हो सकते हैं। 'करन देत काहू कछू'— इसके भी 'कछु' का प्रयोग करने से तीन अर्थ हो सकते हैं। छह सात अक्षरों— अर्थात् क-र-न-दे-त-का-हू—तक अर्थ यथार्थ चलते हैं। आगे क—छू—के लगाने से कोई विशेष अर्थों की योजना सम्भव प्रतीत नहीं होती।

इस छप्पय पर फतहपुर के महंत स्वामी श्री गंगारामजी के दिये संग्रह में, एक पाना टीका का मिला। इसको आवश्यक संशोधन के साथ, अविकल नकल यहाँ दे देते हैं कि जिससे इस प्राचीन टीका की रक्षा हो और पाठकों को विशेष प्रकाश मिले। "सीत उष्ण दुख कष्ट सु कहा चहै विषयी पशु नर। शब्द किरी पुनि पर सु चहै जग जन शिष गुर॥ पुनि गुर ताको ध्यान तासु जग मुनि चहै का सुनि। आदर, दया, पतिव्रत, अंग सो देत न मुनि॥ मन, मुनि, हरिजन देत अग का मन की दशा ते तन पढ़ू। अब याको अर्थ जु देह है 'करन देत काहू कछू'।१। दोहा। कै सुख, कै अरु, कै अनिल, कै रवि, कै पुनि काम। कै कथन

सों प्रीति तजि, अरु भजिये हरिनाम ।२। कर गज पुस्कर हस्त कर कर जगात कर दान। कर विषया तजि हरि भजो जो प्रभु अमी समान ।३। करण कहावै रवितनय करण कहावै कान। करण नाव चख इन्द्रियन करणधार भगवान ।४। क—जल अग्नि, सुख—क कहिये जल जाकू तो शीत लागै । क कहिये अग्नि जाको उष्ण लागै। क कहिये सुख सो भजन सा लागै। क कहिये काम जासों विषय के अन्त म दुख होइ । कर जो विषयी मो कर भोग कर कहा चहै ? विषयी को ।१। नृप जो राजा कर भोग कहा चहै ? हासिल चहै, नाम चहै जगात ।२। सुर जो देवता कर भोग कहा चहै ? पूजा चहै ।३। करन जो कान भोग कहा चहै ? शब्द वों चहै ।१ —करन जो शिश्न इन्द्रिय भोग कहा चहै ? विषय चहै ।२। करण राजा कहा चहै ? पुण्य कियो चहै ।३ —अब गुरु के पास तीन जिग्यासी (जिज्ञासु) आये तिनको समुच्चय से उपदेश गुरु ने यह दिया कि "तुम करन दो"—। सो उन तीनो न अपन २ आशय क अनुसार अर्थ किया। (१) प्रथम जगतन (ससारी) न यह अर्थ किया कि 'करन दे'—नाम (हाथों स) दान दे। (२) जन जो साधुजन—उसने यह अर्थ किया कि 'करन दे'—न म कान दे शास्त्र श्रवण म। (३) अरु शिष्य ने यह अर्थ किया कि 'करन द'—नाम अपनी इन्द्रियों को (बाहर से रोक कर) हरि के ध्यान म दे। सो आगे तीनों न ये हो किया—(१) जगतन ने तो दान दिया। (२) अरु साधु ने शास्त्र श्रवण किया। (३) अरु शिष्य ने हरि-ध्यान किया ॥५॥—अब सुनिचन जीवन कौं निषेध करते हैं—कर दान दियौ तो का ? कुछ नहीं कियौ। १ चौपाइ०। पावन निमत्त०। 'करन'—श्रवन कियौ तो का ? कुछ नहीं कियौ। और 'करन दे' ध्यान धरयो तौ का ? कुछ नहीं कियौ ॥६॥ 'कर न देत'—या का एसा अर्थ होता है—काहू सुम किसी पुरुष कौ कर से दान नहीं देता है। कर हाथ करि कै दयावान पुरुष किसी जीव मात्र का चाट नहीं देता। 'करन देत काहू'—पतिव्रता काहू (अन्य पुरुष) को हाथ नहीं देतो (स्पर्श नहीं करती) है ॥७॥ 'करन देत काहूक—मन बाछित म आने वृत्ति देत ।१। 'करन देत काहूक—मुनि अपनी इन्द्रियाँ का हरिध्यान म देत (लगाते हैं) ।२। करन देत काहूक—

(१६) अथ सिंघावलोकनी

संज्ञा कौन अखंड कौन हरि सेवा लावै।
कंठ विराजै कौन कौन नर रांग कहावै॥
गुनहगार का पाइ कहा चाहै सब कोई।
कपि कै गल मैं कहा कहा ढुंढुवनि मिलि होई॥

हरि आपकी भक्ति काहू कौ (जात पांत पूछे नहिं कोइ। हरिकों भजे सो हरि का होइ।) कोई भी हरि को भजे उसे ही देत (दे देता है)। ३।८। 'करन देत काहू कछू'—तन जो पिछला जन्म काहू को कछु—विपर्जै—(उल्टी) किया न देत—नहीं देता है या होने देता है—(सब कुछ प्रारब्ध कर्मानुसार होता रहता है विपरीत नहीं होता है। शरीर अपने भोग भोगता है।)।१। 'करन देत काहू कछू'—साधु काहू को कुछ दुख नहीं देता है।२। 'करन देत काहू कछू'—(मुनिजन) इन्द्रियों को विषयों में तनिक भी नहीं जाने देते हैं।३।—॥९॥ दूजो अर्थ—सिद्धान्त अवस्था में करन जो इन्द्रियां निरहङ्कार हुई थकी—वैसे ही बर्तो—प्रारब्ध की प्रेरी थकी—ज्ञानी के बाधा नहीं। जीवन्मुक्त हुवा बर्तै। "ज्ञानी कर्म करै नाना विध···"। इत्यादि अब मुनिजन जीवों का साधन को निषेध करते हैं—अरे दान दिया सो का ?—कुछ नहीं। चौबोला छंद—"पावन हेत देह जो दीना। जीवन बीमति बमरस दीना॥ इस्नो होइ करि नींहि दीना। सुंदर संत मिले नहिं दीना ॥१॥ श्रवन करयौ तो कहा ? कामना बसिकै—कुछ नहीं। श्रवन करयौ (अरु) धारणा नहीं करी तो कहा ? कुछ नहीं।२। ध्यान धार्यो तो कहा ? कुछ नहीं। (क्योंकि)। दोहा। "ध्यान धरे का होत है, (जे) मनका मैल न जाइ॥ बगलो मीनों का ध्यान धरि, पकरि बिचारे खाइ" ॥३॥ (इन निगड-बंध को अर्थ गंभीर सो समझ) ॥

नोट—इस प्रकार के अर्थों का पन्ना (पत्र) हमको उक्त ग्रन्थ में प्राप्त हुआ सो यहां लिख दिया गया। दुःख सा इस बात का है कि न जाने ऐसे कितने ही ग्रन्थों का उन महात्मा स्वामी सुं० दा० जी का था जो लिपिकार की असावधानी और काल के प्रभाव से नष्ट हो गया ॥

अब सुन्दर पथिक कहा कहै मुक्त क्षेत्र का नाम है।
कहि हर रिपु हजरति थान कौं "सदा मारसी काम" है॥ ५०॥

(१७) अथ प्रतिलोम अनुलोम

काठ माहिं का देत कहा प्रीतम कौं कीजै॥
पाव चढ़त सो कहा कहा धनुष हि संधोजै॥
कापर ह्वै असवार वचन का प्रत्यक्ष कहावै।
पान करै सो कहा कहा सुनि अति सुख पावै॥
अब कहा दृढावै जैनमत का बिरहनि उर लगि वको।
कहि सुन्दर प्रति अनुलोम है "यह रस कथा दयालको"॥ ५१॥

(१८) अथ दीर्घाक्षरी

मनहर

"झूठे हाथी झूठे घोरा .... प्रानी है"॥ ५२॥
(इस छद मे सब अक्षर गुरु अर्थात् दीर्घ हैं, और यह छद 'सवैया' के 'काल चितावनी के अंग' का २५ वाँ छंद है।)

(१९) ज्ञान प्रश्नोत्तर चौकडी *

प्रथम होइ जिज्ञासु गहै दृढ करि वैरागा।
बाहिर भीतरि सकल करै मन वच क्रम त्यागा॥
सद्गुरु सरनै आइ कहै प्रभु मेरै चिन्ता।
जन्म मरन बहु काल भ्रमत नहिं आवै अन्ता॥
क्यू छूटौ आवागवन तें मेरै यह चिन्ता भई।
अब आयौ हौं तुम्हरै सरन तुम सद्गुरु करुणामई॥ ५३॥

---

* यह नाम सम्पादक का दिया हुआ है। स०। इसके चारों छदो मे वेदांत का सार सरल सुदर वाक्यों में कूट २ कर भर दिया है। १-२-३-४ इन चारों छदों मे वेदांत की प्रक्रिया अति ही सक्षेप मे स्वामीजी ने कृपा करके कही

देख्यौ अति जिज्ञास शुद्ध हृदये लय लीना।
सद्गुरु भये प्रसन्न ज्ञान वासौं कहि दीना॥
जन्म मरन नहिं तोहि बहुरि सुख दुःख न दोऊ।
काल कर्म नहिं तोहि द्वन्द्व परसै नहिं कोऊ॥
अब तत्वमसीति विचारि शिष सामवेद भाषै स्वयं।
कहि सुन्दर संशय दूरि करि तू है ब्रह्म निरामयं॥ ५४॥

आतम ब्रह्म अखंड निरन्तर है अनादि कौ।
जन्म मरन की सोच करै नर वृथा बादि कौ॥
स्वप्नै गयौ प्रदेश बहुरि आयौ घर माहीं।
जब जाग्यौ घर माहिं गयौ आयौ कहुं नांहीं॥
यहु भ्रमही कौ भ्रम ऊपजै भ्रम सब स्वप्न समान है।
कहि सुन्दर ताकौ भ्रम गयौ जाकै निश्चय ज्ञान है॥ ५५॥

प्रश्नोत्तर

पूछत शिष्य प्रसंग पूछि शंका मति आनै।
तुम कहियत हौ कौन मूढ़ तू मोहि न जानै॥
किहि विधि जानौं तुमहिं देह कै छत मात देषै।
तौ प्रभु देषौ कहा ज्ञान करि आशय पेषै॥
गुरु कह्यौ ज्ञान ज्यौं मैं सुनौ सुति करि निश्चय आनि है।
अब मैं प्रभु वर निश्चय कियौ तौ सुन्दर कौं जानि है॥ ५६॥

१। अधिकारी हुए बिना तो शिष्य नहीं हो सकता। और योग्य सद्गुरु मिले बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसका एक प्रमाण है—ऐसा कहते हैं कि सुन्दरदासजी के कुछ वेदांत के सवैये एक ज्ञान के जिज्ञासु ने मनुष्य ने सुने तो वह तत्काल विरक्त हो गया। और ब्रह्म प्राप्ति के निमित्त मस्त हुआ सुन्दरदासजी को ढूंढता हुआ उनके पास फतहपुर आया, पंजाब के लाहौर शहर से चल कर। यहां फतहपुर में स्वामीजी की अत्यन्त उच्च अवस्था ज्ञान की और उनके शुद्ध आचरण

(२०) काया कुंडलिया -

काया गढ को राव थौ अहंकार वलवंड।
सो लै अपनै वसि कियौ आतम वुद्धि प्रचंड॥
आतम बुद्धि प्रचण्ड खंड नव फेरि दुहाई।
मन इन्द्रिय गुण रैत आपने निकट बुलाई॥
सब सौं ऐसैं कह्यौ वसौ तुम हमरी छाया।
सुन्दर यों गढ लियौ विषम होतौ गढ काया॥ ५७॥

विचार देख कर उनका शिष्य हो गया और बहुत काल समीप रह कर ज्ञानमय भक्ति के आनन्द के रस को पान करता हुआ पंजाब की तरफ विचर गया। उसही बात की भूमिका पर यह रचना स्वामीजी की की हुई हो तो मानने योग्य है और ऐसा ही प्रतीत होता है। ऐसी प्रक्रिया और साधना वेदांत ग्रन्थों में बहुत उत्तम और विस्तार से लिखी हुई हैं और वेदांत के जिज्ञासु पुरुष उस प्रणाली से ज्ञान प्राप्त करके अद्वैत सिद्धि को पाते हैं—भगवान और गुरु कृपा के प्रताप से। वेदांत को "वृहत्त्रयी"—वेदांत को "लघुत्रयी"। गोरखनाथजी—कबीरजी—दादूजी श्यामचरणदासजी आदि महात्माओं की बाणियां, सद्गुरु और सत्संग।

※ कुंडलिया के पहिले 'काया' शब्द संपादक का लगाया हुआ है क्योंकि इस कुंडलिया में काया का वर्णन है।

(५७) (कुंडलिया)वलवंड=निजबल के घमंड में मदमत्त। आतमबुद्धि= आत्मज्ञान—ब्रह्मज्ञान। खंड नव=इस शरीर में सकल सृष्टि सूक्ष्मरूप से मानी है। और यह नवद्वारका महानगर है। दुहाई=ढोंडी राजा के हुक्म की। रैत= रइयत, प्रजा। छाया=छत्रछाया, आधीनता में। विषम=दुर्घट, दुर्दम, कठिनता से प्राप्त होनेवाला। अहङ्काररूपी राजा को ब्रह्मानन्द राजा ने जीत कर काया गढ को अपने आधीन कर लिया। अहङ्कार पर विजय पाते ही मन और इन्द्रिय तथा विषयादि भी आधीन हो गये।

(२१) अथ संस्कृत श्लोकाः

छंद शार्दूलविक्रीडितं

माधुर्योत्तर-सुन्दरां मम गिरा गोविन्दसम्बन्धिनीम् ।
यो नित्यं श्रवणं करोति सततं स मानवो मोदते ॥
न्यूनाधिक्य विलोक्य पण्डितजनो दोषं च दूरी कुरु ।
मे चापल्यसुबालबुद्धि कथितं जानाति नारायणः ॥१॥

पृथ्वीवारिचतेजवायुगगनं शब्दादि तन्मात्रकम् ।
बाह्याभ्यन्तरज्ञानकर्मकरणैर्नाना हि यद् दृश्यते ॥
तत्सर्वं श्रुतिवाक्यजालकथितं अन्ते च मायामृषा ।
एकं ब्रह्म विराजते च सततं आनन्दसच्चिन्मयम् ॥२॥

श्लोक १—माधुर्योत्तर=अत्यन्त मधुर। माधुर्यगुण जिसमें अत्यधिक हो। गिरा=वाणी, रचना। मोदते=मोद में भरता है। प्रसन्न हो जाता है। चापल्य=चपलता। भावार्थ—मेरी वाणी (रचना) भगवत्सम्बन्ध की (शांतरस-प्रधान) है। जो अत्यन्त ही मीठी है और सुंदर है। जो पुरुष इसे नित्य ही सुनता है वह आनन्द (ब्रह्मानन्द) पाता है। पंडित जन इसमें कमी बेशी को देखकर जो कुछ दोष दीखें उसे दूर कर लें—सुधार लें। मेरी तो यह बालबुद्धि और चपलता से की हुई वा कही हुई रचना है। इस बात को ईश्वर ही जानता है (अर्थात् मैंने तो परमात्मतत्व सम्बन्धी वाणी कही है। इसको भगवान परमात्मा जानता है कि कैसी बनी। बुरीभली सब उसको अर्पण है। अथवा मुझे लोग बड़ा महात्मा और कवि भले ही मानें, वास्तव में भगवान के सामने मेरी यह केवल बाललीला और अविनय मात्र है। जिसके लिए भगवान क्षमा करेंगे।)

श्लोक २—पृथ्वी, जल, अग्नि, हवा और आकाश पांच तत्व, और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध पांच तन्मात्राएं, बाहर भीतर ज्ञानेन्द्रिय तथा अन्तःकरण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) तथा ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां (हस्त, पाद,

छंद अनुष्टुप

अहं ब्रह्मोस्यहं ब्रह्मोस्यहं ब्रह्मेति निश्चयम्।
ज्ञाता ज्ञेयं भवेदेकं द्विधा भावविवर्जितम्॥ ३॥
अहं विख्यात चैतन्यं देहो नाहं जडात्मकम्।
जडाजडो न सम्बन्धो देहातीतं निरामयम्॥ ४॥

छंद भुजंगप्रयात

न वेदो न तन्त्रं न दीक्षा न मन्त्रं, न शिक्षा न शिष्यो न आयुर्न यन्त्रं।
न माता न ताता न बन्धुर्न गोत्रं, नमस्ते नमस्ते नमस्ते विचित्रम्॥ ५॥

वाक् उपस्थ और मेढ्) से जो स्थूल सूक्ष्म रूपों में नाना पदार्थ और कर्म दिखाई देते वा ज्ञात होते हैं, ये सब सुनने और कहने के जाल मात्र हैं, नाम रूपात्मक जगत् सारा का सारा ही मिथ्या झूठी माया ही है। वस्तुत एक ब्रह्म सत्-चित-आनन्द स्वरूप ही विराजता है वा सर्वोत्कृष्ट परमपवित्र सर्वशुद्ध ही सच्चा है और कुछ नहीं है।

श्लोक ३—निश्चय यही है कि मैं (मेरी आत्मा) ब्रह्म है, मैं (मेरी आत्मा) ब्रह्म है, मेरी आत्मा ब्रह्म है। ज्ञाता (जाननेवाला) और ज्ञेय (जो जाना जाय विषय पदार्थ) ये दोनों एक ही हैं, भिन्न नहीं हैं, दिव्यज्ञान होने की दशा में वे एक हो हो जाते हैं। और द्विधाभाव—द्वैत—ब्रह्म और माया—मैं और तू—ज्ञाता और ज्ञेय—ऐसा द्वैतभाव मिट जाता है।

श्लोक ४—मैं (आत्मा) विख्यात चैतनस्वरूप (ब्रह्म) हूं। जड़ात्मक देह (स्थूल) नहीं हू—अर्थात् देह में आत्मा का अध्यास करना अज्ञान है। जड़ के साथ चेतन का सत्य सम्बन्ध नहीं है—अर्थात् जो जड़ है सो चेतन नहीं, और चेतन है सो जड़ नहीं। वस्तुत जड़ सब मिथ्या भ्रम है—जो कुछ है सो चेतन वा उसकी सत्ता ही है—क्योंकि वह चेतन निरामय (निर्लेप—निरंजन) मायातीत देह (जड़) से भिन्न है। देखो ब्रह्मसूत्र पर शकर भाष्य का उपोद्घात—"युष्मदस्मद्...."।

श्लोक ५—जो न वेद है, न तंत्रशास्त्र है, न दीक्षा (गुरुवाक्य) है, न मंत्र

छंद अनुष्टुप्

ब्र ई जी च त्रिधा प्रोक्तं चि मा अ वै त्रिधाऽन्यथा।
चि ब्र मा ई अजिज्ञातुं सत्सा स सा ससाश्रिता ॥ ६ ॥

(२२) अथ देशाटन के सवैया ❀

इन्दव छन्द

लोग मलीन परे चरकीन दया करि हीन लै जीव संघारत।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य रु सूदर च्यारहि वर्ण के मंछ बघारत ॥

है, न शिक्षा है, न शिष्य है, न आयु (काल) है, न यत्र (ज्ञान और कर्म की सामग्री) है। न माता है, न पिता है, न बन्धु है, न गोत्र है। उस अद्भुत ज्ञानातीत (परमात्मा) को नमस्कार है, नमस्कार है ॥ (सुंदरदासजी ने अन्यत्र भी ऐसा वर्णन किया है।)।

श्लोक ६—ब्र=ब्रह्म। ई=ईश्वर। जी=जीव। ये तीनों, त्रिधा पृथक् २ कहे हैं। चि=चित्। मा=माया। अ=अविद्या। ये भी त्रिधा पृथक् २ तीन कहे हैं। परन्तु इन छहों (ब्रह्म-ईश्वर-जीव-चित्-माया और अविद्या) को यथार्थ तत्वतः तत्वज्ञान से जानने के लिए (सत्सा) सच्छास्त्रों (स) सत्संग (सा) साधुजनों (स) सत्य (सा) साम्य [अर्थात् समदर्शिभाव— "शुनिचैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः" (गीता)] वा साधन अथवा (स) समता (उक्त ही) को आश्रित करें। अर्थात् उनको ठीक २ जानने के निमित्त इन साधनों का अवलम्बन करना पड़ता है। इनके बिना दिव्य वा सत्य ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है ॥

इन श्लोकों में बहुत उत्तम पदार्थ भरे हैं, परन्तु स्थानाभाव से विस्तार से व्याख्या नहीं दी जा सकती है। विद्वान आप प्रयास करके विशेष विवरण ढूंढ़ निकालें ॥ इति ॥

कारो है अंग सिंदूर की माग सु सपनि राड छुरें दृग फारत ।

ताहिनें जानि कही जन सुन्दर पूरब देस न सन पधारत ॥ १ ॥

दया नहिं लेस रु लील रें भेप रु ऊभसै पैसन राड कुलच्छन ।

रावन प्याज बिगारत नाज न आवत लाज करै सब भच्छन ॥

बैठिये पास तौ आवत बास सु सुंदरदास तजौ न ततच्छन ।

लोग कठोर फिरें जैसें ढोर सु संत सिधार करै कहा दच्छन ॥ २ ॥

वान तहां की सुनी श्रवनों हम रीति पठाह की दूरिते आनी ।

बोलि निकार लगें नहिं नींकी असाडे तुसाडे करै पतरानी ॥

काहु की छौलि न मानत कोउ जी भट्ठी रोटी रु पूहदा पानी ।

सुंदरदास करै कहा जाइके संग तें होइ जु बुद्धि की हानी ॥ ३ ॥

हिक लाहोरदा नीर भी उत्तम हिक लाहोरदा बाग सिराहे ।

हिक लाहोरदा चीर भी उत्तम हिक लाहोरदा मेवा सिराहे ॥

---

* इन सवैया का नाम 'दशों दिशा के दाहे' भी लिखा देखा गया। परन्तु यह नाम ठीक नहीं। जो नाम ऊपर दिया वही समीचीन और संगत है। स्वामी सुंदरदासजी ने देशाटन बहुत किया था और अपने अनुभव का लेशमात्र मनोरंजक चमत्कृत भाषा में, अपने शिष्यों के ज्ञान वा मोद के अर्थ, इन दश सवैयों में कहा है। यदि वे अपने भ्रमण का सारा वृत्तान्त भलीभांति लिखते तो सबको बहुत लाभ होता। और कुछ पत्रे इस सम्बन्ध के थे भी वे नष्ट हो गये वा अप्राप्त हैं। ऐसा महंत गंगारामजी से ज्ञात हुआ था। इन सवैयों में (१) पूर्व देश (२) दक्षिण देश (३) पंजाब (४) लाहौर (५) गुजरात (६) मारवाड़ (७) मालवा (८) कुरसाना (९) फतहपुर (१०) उत्तर देश—इतनों के नाम आये हैं। लाहौर, मालवा, कुरसाना, और उत्तर देश की प्रशंसा की है। अन्य देश अप्रिय लगे थे। (१) खरे चरकीन=खड़े २ मल त्यागते हैं प्राय जल में ही। मछ बघारत=मछली को पकाकर खाते हैं। सिंदूर की माग=पूर्व में स्त्रियां प्राय सिंदूर की माग (सामंत) सौभाग्य चिन्ह को लगाती हैं। (२) बास=दुर्गंध। ततच्छन=तत्क्षण, तुरत।

(३) असाडे=हमारा। तुसाडे=तुम्हारा। पतरानी=पंजाब में स्त्री अधिक है। भट्ठी=तन्दूर की (बनी रोटी)। पूहदा=कुए का (निकला पानी) यह वर्णन सुंदरदासजी की प्रथम यात्रा का है जब वे पंजाब में गये थे।

हिक लाहोरदे हैं बिरही जन हिक लाहोरदे सेवग भाये।
किनइक बात भली लाहोरदी आहिनें सुंदर देषनें आये॥ ४॥
ओरनौ देस भले सब ही हम देपि भया गुजरात हू गांडी।
आभत छोत अतीत सौ कीजै बिलाई रु कूकर चाटत हांडी॥
विवेक विचार कछू नहिं दीसत डोलत जूथ जहां तहां रांडी।
सुंदरदास चलौ अब छांडिकै और रहोगे तौ होइगी भांडी॥ ५॥
वृच्छ न नीर न उत्तम चीर सु देसन में गत देस है मारू।
पांव में गोषरू मुर्ट गडै अरु आंषि में आइ परै उडि बारू॥
राबरि छाछि पिवै सब कोइ जु ताहि तैं पाज रतौंधुर न्हारू।
सुंदरदास रहौ जिन बैठिकै वेगि करौ चलिबे कौ बिचारू॥ ६॥
भूमि पवित्र हु लोग विचित्र हू राग रु रंग उठत्त बहंतें।
उत्तम अन्न असन्न वसन्न प्रसन्न हूँ मन्न जु पांत तहंतें॥
वृच्छ अनंत रु नीर बहंत सु सुंदर संत बिराजै जहंतें।
नित्य सुकाल पड़ै न दुकाल सु, मालव देस भलौ सबहीतें॥ ७॥
पूरब पच्छिम उत्तर दच्छिन, देस बिदेस फिरे सब जानें।
केतक द्यौस फतेपुर माहिं सु, केतक द्यौस रहे डिडवानें॥
केतक द्यौस रहे गुजरात, उहांहुं कछू नहिं आयौ है ठानें।
सोच बिचारि कै सुंदरदास जु याहि तें आनि रहे कुरसानें॥ ८॥

---

(४) हिक=एक। लिराहे=लाहिये, प्रणाम कीजे। दा=का। बिरहीजन=परमात्मा के विरह में कातर वा मस्त। (५) गांडी=चूतिया, भोंदू। जूथ=यूथ, समूह, इकट्ठी। रांडी=स्त्रियां। भांडी=फजीहत, अपमान। (६) गत देश=गया-बीता मुल्क। मारू=मरुस्थल, मारवाड़ (जोधपुर बीकानेर, जैसलमेर इ०)। मुर्ट=मुरट, एक प्रकार का घास में छोटा कांटेदार फल। बारू=बालूरेत। रतौंधू=रतौंधा, रात को नहीं सूझना। (एक क्षुद्र रोग है)। न्हारू=नहारुआ, बाला। (७) उठत्त बहंतें=उस देश के नामी गवैये हैं। असन्न=अशन, खाद्य पदार्थ। वसन्न=वसन, वस्त्र। पांत तहंतें=वहां से लेकर, गरीब भी पांत पहनते हैं। (८) आयो है ठानें=ठान (स्थान) पर आया।

("फूहड़ नारि फतेपुर मांहीं" ।)

सुचि अचार कछू न विचारत मास छठै कबहूंक सन्हांहीं ।
मड पुत्रावन थार परै गिर ते मब आटे मैं चोसनि जांहीं ॥
चेटी रु चेटन कौ मल धोवत वैसेंहि हाथन सौं अँन पांहीं ।
सुन्दरदास उदास भयौ मन फूहड नारि फतेपुर मांहीं ॥ ९ ॥
कंद रु मूल भले फल फूल सुरस्सरि कूल बने जु पवित्तर ।
आंधि न व्याधि उपाधि नहीं कछु नारि लगें तें टरै जु मनत्तर ॥
ज्ञान प्रकास सदाइ निवास सु सुन्दरदास निरै भव दुत्तर ।
गोरखनाथ सराहि हैं ताहि जु जोग कै जोग भली दिस उत्तर ॥१०॥

। इति देशाटन के सवैया ।

॥ २३ ॥ अथ अंत समय की साखी ॥

निरालम्ब निर्वासना इच्छाचारी येह ।
संस्कार पवन हि फिरै शुष्कपर्ण ज्यौं देह ॥ १ ॥ *
जीवन मुक्त सदेह तू लिप्त न कबहूं होइ ।
तौ कौं सोई जानि है तब समान जे कोइ ॥ २ ॥

अर्थात् स्थिति हुई । (वहां अधिक नहीं ठहर सके) । फतहपुर में कुछ वर्षों रह कर रामत को चलेगये । कई वर्षों पीछे आकर स्थिर बसे । कुरसाने=मारवाड़ में एक गांव है । यहां अंतक ठहरे रहे । यहां का प्रसंग और जलवायु हितकर और प्रिय रहा । अनेक ग्रन्थों की रचना यहीं हुई । (९) फूहड़नारि=फतहपुर में भिक्षादि यथारुचि न मिलने पर महात्मा ने अपने हृदय की अप्रसन्नता को यथार्थ कह दी है ।
(१०) गोरखनाथ सराहि है=महात्मा सिद्ध गोरक्षनाथजी ने भी उत्तराभ (हिमालय प्रदेश) को योग और तप साधना के योग्य बताकर प्रसन्नता प्रगट की है ॥

* यह दोहा ऊपर भी अन्यत्र आ चुका है ।

अंत समय की साखी—यह=यह आत्मा । निरालम्ब=स्वतंत्र, किसी के आश्रित नहीं । निर्वासना=वासना (कामादिक विषयों में मन की लालसा) से रहित ।

मानि लिये अंतहकरण जे इन्द्रिनि के भोग।
सुन्दर न्यारौ आतमा लग्यौ देह कौ रोग॥ ३॥
वैद हमारे रामजी औषधि हू है राम।
सुन्दर यहै उपाइ अब सुमिरन आठौं जाम॥ ४॥
सात बरस सौ मैं घटै इतने दिन की देह।
सुन्दर आतम अमर है देह षेह की षेह॥ ५॥
सुन्दर संसै को नहीं बडो महोच्छव येह।
आतम परमातम मिले रहौ कि विनसौ देह॥ ६॥

॥ इति फुटकर काव्य संग्रह समाप्त ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीस्वामी सुंदरदास विरचित समस्त सुंदर ग्रंथावली सम्पूर्णम् ॥

॥ शुभम् ॥

परन्तु यह देह (स्थूल, जड़) कर्मफल संस्कारों के बल रूपी वायु से सूखे पत्ते की तरह जन्मान्तर प्राप्त करती रहती है। आत्मा निर्विकार है। देह विकारवान् है। जे इन्द्रिन के भोग ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के जितने भी सुख दुःखादिमय भोग हैं वे अन्तःकरण तक ही प्रभाव डालते हैं, आत्मा से उनका कोई संबंध मात्र भी नहीं होता। आत्मा अलिप्त है। जो रोग है सो इस शरीर ही में है, आत्मा में नहीं है। सुंदरदासजी वर्षीयान् ९३ वर्ष के थे—निर्बलता का ही रोग था। षेह=मिट्टी, मृत्तिका। को नहीं=कोई नहीं, कुछ नहीं। आतम परमातम मिले, महात्मा सुंदरदासजी जीवन्मुक्त थे। उनको ब्रह्मानंद मिल चुका था॥ इति॥

"फुटकर काव्य संग्रह" की छंद संख्या सब इस प्रकार है—चौबोला=१७+ गूढार्थ=२२+आद्यक्षरी से मध्याक्षरी तक=३०+चित्रकाव्य के १९+कविता और गणागण के=७+संख्या वर्णन से बारह राशि के छप्पय तक=१०+छप्पय एकादशी से अंत समय की साखी तक=४४। यों १४९ छंद हैं।

॥ इति श्री सुन्दरग्रन्थावली की सुन्दरानन्दी टीका समाप्त। ॥

ॐ तत्सत्

महंत गंगारामजी की मुहर

राजस्थान प्रेस, कलकत्ता ।

परिशिष्ट

"सवैया" ग्रन्थ के छंदों की अनुक्रमणिका

[संकेत—जिन पर उलटी सुलटी कामां लगी हैं वे प्रायः अंत्यपादार्ध हैं।]

अ

प्रतीक	अंग	छंद
अग्नि मथन करि लकरी काढी	२२	१८
अजर अमर अविगत अविनाशी	२४	३
अज्ञानी कौं दुखकौ समूह जग	२९	२१
अधिक अजान बाहु मनमैं उछाह	१९	६
अनछतौ जगत अज्ञानतें प्रगट	३३	३
अंतहकरण जाकैं तमगुण छाइ	२९	१२
अन्धा तीनि लोक कौं देषै	२२	२
अन्नमय कोश सुतौ पिंड है प्रगट	२५	२४
अव्वल उस्ताद के कदम को पाक	२	४
असन बसन बहू भूषन सकल अङ्ग	१९	४

आ

प्रतीक	अंग	छंद
आगैं कछू नहिं हाथ परयौ पुनि	१२	१६
आठौ याम यमनेम आठौं याम	२०	१७
आतम चेतनि शुद्ध निरंतर	२५	३१
"आतमराम भजै किन सुन्दर"	२	१७
आतमा अचल शुद्ध एक रस रहै	२५	१८
आतमा आपुकौ आपु ही जानैं	२८	१०
आतमा कहत गुरु शुद्ध निरबंध	२८	२७
आतमा के बिषै देह आइकरि	२६	१३
आतमा शरीर दोऊ एकमेक	२५	१९
"आतमा सौ देव नांहि देह सौ न देहरा"	२५	२१
आदि हुतौ नहि अंत रहै नहिं	२९	१०
आदि हुतौ सोइ अन्त रहै पुनि	३२	२२
आंधरनि हाथी देषि झगरा	२८	१७
आनकि वोर निहारत ही	१६	१
आपने आपने थान मुकाम	१२	२१
आपनै न दोष देषै परके औगुन	१०	१
आपही कैं घटमैं प्रगट परमेश्वर है	१२	६
आपहु राम उपावत रामहिं	२१	६
आपुकी प्रसंसा सुनि आपुहो	२५	३९
आपुकौ भजन सुतौ आपुही	२५	२२
आपुकौं संमुखि देषि आपुही	२६	१५
आपुन काज संवारन के हित	१०	३
आपुन देषत है अपनौ मुख	२४	२२
आपुने भावतें दूर धतावत	२३	१०

म

शुद्धिपत्र

(३) सवैया (सुन्दर विलास)

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३८५		२	कोउ	कौ
३८७		८	शोभत	शोभित
३८६		१	आपिर	अपिर
३६६		५	चरनू	चरमू
३६६		१६	हुं	हू
४००		४	आपुनि	आपुनी
४०१	टीका	२	हूंत	दंन
४०३	मूल	३	तोनौं	तीनौं
४०४		८	दोगज	दोजग
४११		३	ऐसौंहि	ऐसैंहि
४१२		४	अपने	अपने
४१२		१७	मेरौ	मेरै
४१३		१४	धस्यौ	धस्यौ
४१८		७	निक्रम	विनमं
४२४		३	अपं है	अनै है
४२५		१०	दूप	दूप
४३१		४	जनक	जैनक
४३४		५	ताकौं नाह	ताकौं नाहि
४३४	टीका	१	(१२)	(११)

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४३५		१५	अपनें	अनेक
४३७		४	वारस	वा रस
४४१		२	त्यौं	ज्यौं
४४१		५	कं	कै
४४१		१०	काटत	काठत
४४५		१४	कोई	जोई
४४६		१	नकु	नँकु
४५०		६	फेरि	फेरी
४६०		६	करं	करँ
४६०	टीका	४	विल्व बिल्व के आगे से विल्केश्वर, नील पर्वत कनखल, हरिद्वार पढ कर बिल्व गङ्गयो आदिक पढ़ें।	
४६५		१६	मकरी	मठरी
४६८		१०	श्राक	आक
४७५		८	वूठि	वूडि
४७५	टीका	८	पक्ष	पद्म
४७६	,,	१	सवारौ	संवारौ
४७८	मूल	१	प्रिय	पिय
४७६		१३	वंन	वँन
४७६		१३	संन	सँन
४८०		१३	जज	जजै
४८७		५	वीनै	वीचै
४८६		५	मथ	साथ
४८६		१५	पुि।	पुनि

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६०		७	रिङ्गा	रङ्गा
४६१		३	क्षद्र	क्षुद्र
४६२		५	वश्य	वैश्य
४६२		६	छह	छांह
४६२		१२	अयर	अंबर
४६७		२	कीजिये	दीजिये
५७७		३	लागौ	लागै
५८६		१५	हात	हाथ
६४०		३	चूच	चुंच
६४२	टीका	८	६	८
६४६	"	२ के आगे छपने से रह गया।		इसका आख्यान साधु रामदासजी दूवलथनियां ने यों बनाया है कि—

(४) साखी

६६६		२	चिल	निलै
६६८		२	फं	फँ
६६५		१२	सुन्द	सुन्दर
६६६		३	सुन्द	सुन्दर
७०५		१	ब्रम्ह	ब्रह्म
७०६		४	पांडुवा	पंडुवा
७११		१२	होइ	फोइ
७२७		७	है लुभइ	रहै लुभाइ
७३५		६	गये	भये
७६२		७	पोलै	पोलै

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७७२		२६	ऐस	ऐसैं
७७६		६	हात	होत
८०७		२	नृप्त	तृप्त
८०७		४	सांचै	साधै
८११		१०	वंघन	बंधन
८१२		१२	दस	दसै
८१२		१६	कम	कर्म
८१६		८	सुददर	सुन्दर
८१६		१२	काइ	कोइ

(५) (पद भजन)

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८२१		३	दूत	दूध
८२६		१०	वरे	वारे
८३२		५	विचारा	विचारा रे
८३२		६	नहीं	नाहीं
८३३		१	मथुन	मैथुन
८३४		७।८	घी। घी	घी। घी
८३४		१०	गुमा	गुम
८४१		२	भ्र दूरि सव मकरिये	भ्रम सव दूरि करिये
८४५		३	पसा	पासा
८४७		७	संमुझावै	संमुझावै
८४७		१५	सुन्र	सुन्दर
८६१		१२	दासिन	दासनि
८७०		४	नि	तिन
८७६		११	सीवै	सोवै

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८७९		८	(टक)	(टेक)
८८९		१५	मांते	माने
९०२		१७	तहां	तहं
९३७		२	रूप ममेदं	रूप ममेदं

(६) फुटकर काव्य

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९७०	टीका	४	६।१३।	६।१।
९७२		११	तारक	तारक
९७६		१	कका	कक्का
९७८		२	दिशि	दिशा
९८७		३	नरक	गरक
९८९		८	वश्य	वैश्य
९८९		१५	निमल	निर्मल
९८९		१६	अतात	अतीत
९९२		५	लंका	लंक
१००२			शादूल	शार्दूल